सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

६३

(१ जून से २ नवम्बर, १९३६)

प्रकाशन विभाग,
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

भूमिका

प्रस्तुत खण्ड (१ जूनसे २ नवम्बर, १९३६) गाधीजी के ग्रामोद्धार-कार्यक्रममे प्रगतिके एक नये चरणको प्रतिबिम्बित करता है। गाधीजी अल्प कालके विश्रामके उपरान्त मसूर-स्थित नन्दी हिलसे लौटे तो दीन-दुखियोके बीच रहने और उन्हे जीनेका ढग सिखाने के लिए वर्धाके निकट सेगाँव नामक एक छोटे-से गाँवमें जा बसे, जिसकी आबादी मुश्किलसे ६०० थी (पृ० ४५०)। उन्होने देखा कि अज्ञान और जडतासे ग्रस्त "बेचारे गाँववालो को" यह चीज कोरे उपदेशोसे नही, बल्कि सेवा द्वारा और "व्यक्तिगत दृष्टान्त पेश" करके ही सिखाई जा सकती थी (पृ० ३७८)। वे यह सकल्प लेकर सेगाँव गये थे कि "चाहे प्राण भी क्यो न खतरेमें हो", वहाँसे हटना नही है (पृ० ३२२), और उन्होने इस सकल्पको पूरा करके दिखाया। कुछ लोगोको वे पहले ही वचन दे चुके थे, जिन्हे पूरा करने के लिए जूनके आरम्भमे दो सप्ताहके लिए और अक्तूबरके अन्तमे सप्ताह-भरके लिए उन्हे बाहर जाना पडा। शेष समय वे सेगाँवमे जमे रहे — युगो पुराने अज्ञान, रोग तथा अन्धविश्वासोसे लड़ते रहे, और एक गाँवको मनुष्यके रहने योग्य बनाने के लिए उनसे जो-कुछ बन पडा, वह करते रहे। उनके लिए "यह एक साधना" थी। इस नये और कठिन जीवनने उनके स्वास्थ्यको प्रभावित किया, और वे मलेरियासे ग्रस्त हो गये। अन्तमे यदि वे वर्धाके एक अस्पतालमे दाखिल हुए तो इसलिए कि ऐसा न करने पर उनके "कुछ मित्रोके दिलको . . चोट" पहुँचती (पृ० ३२०)।

इस बीच यूरोपके सिर सकटके बादल मँडराने लगे थे। जुलाईमे स्पेनका गृहयुद्ध छिड चुका था और द्वितीय विश्वयुद्धका सामान जुटाया जाने लगा था। भारतमे भी काग्रेसके अन्दर एक समाजवादी दल गठित हो चुका था, जो वर्ग-सघर्षके माध्यमसे आर्थिक पुनर्निर्माणका कार्यक्रम लेकर सामने आया था। पिछले अप्रैल महीनेमे जवाहरलाल नेहरूने काग्रेसका अध्यक्ष-पद सँभाला था। अब वे भी उक्त समाजवादियोके कार्यक्रमकी जोरदार हिमायत करने लगे। गाधीजी नेहरूकी नीतिके सामान्य लक्ष्योसे सहमत थे। उन्होने दो विदेशी अतिथियोको बताया, "वे जो वैज्ञानिक समाजवादकी बात कर रहे है उसके साथ मेरा कोई झगडा नही है। जिस प्रकारकी जिन्दगी आज वे सारे हिन्दुस्तानको जीते देखना चाहते है, मै उसी प्रकारका जीवन १९०६ से व्यतीत कर रहा हूँ" (पृ० २२५)। किन्तु भारतकी वास्तविक स्थितिकी अपनी समझ और

ग्रामाभिमुख अर्थव्यवस्था में अपनी दृढ आस्थाके कारण गाधीजी उन सब चीजोका अनुमोदन नही कर पाये जिनकी हिमायत नेहरू करते जान पडते थे। उनके नाम एक पत्रमे अपना दृष्टिकोण समझाते हुए गाधीजी ने लिखा, "मेरी कठिनाई सुदूर भविष्यके बारेमें नही है। . . . अगर वर्तमानको सँभाल लिया जाये तो भविष्य अपने-आप सँभल जायेगा" (पृ० १९६)। गाधीजी और जवाहरलालके दृष्टिकोणोके इस अन्तरके कारण दोनोके पारस्परिक स्नेहमे कोई कमी नही आई। समाचारपत्रोमें इस आशयकी एक खबर आई थी कि गाधीजी का कहना है, नेहरूके कार्यक्रमने मेरे जीवन-भरके कार्यको नष्ट कर दिया है। इसका प्रतिवाद करते हुए गाधीजी ने इसे "सफेद झूठ" बताया (पृ० २२४)। इसी प्रकार उन्होने इस कथनका भी जोरदार खण्डन किया कि गाधी और नेहरू एक-दूसरेके प्रतिस्पर्धी है। उन्होने कहा : "अगर हम एक-दूसरेके प्रतिस्पर्धी है भी तो हमारी प्रतिस्पर्धा एक ही ध्येयकी प्राप्ति के प्रयत्नमे लगे दो व्यक्तियोकी एक-दूसरेसे प्रेम करने की प्रतिस्पर्धा है" (पृ० १८१)।

गांधीजी की ही तरह काग्रेस-कार्यसमितिके कुछ सदस्योको भी जवाहरलाल नेहरू के समाजवाद-विषयक विचार स्वीकार्य नही थे। उन लोगोने कार्यसमितिसे त्यागपत्र दे दिये। इससे राष्ट्रीय राजनीतिमें एक छोटा-मोटा सकट पैदा हो गया। अन्तमे गाधीजी के ही हस्तक्षेपसे यह सकट टल सका। एक ओर तो उन्होने सदस्योको समझा-बुझाकर त्यागपत्र वापस लेनेपर राजी किया, और दूसरी ओर पारस्परिक स्नेह तथा विश्वासजनित स्पष्टवादितासे काम लेते हुए उन्होने जवाहरलाल नेहरूको बताया कि किस प्रकार वे लोग उनकी अधीरता और तुनक-मिजाजीसे घबराते थे। उन्होने लिखा "वे तुम्हारी झिडकियाँ और तुम्हारे हाकिमाना ढगके व्यवहारपर कुढते है, और सबसे अधिक इस बातसे कि उनके खयालसे तुम अपने-आपको अचूक और श्रेष्ठ ज्ञानवाला समझते हो।" यही कारण था कि गाधीजी के समझाने पर भी वे लोग जवाहरलालसे "साफ-साफ और निडर होकर बात" नही कर पा रहे थे (पृ० १५७)।

इसी प्रकार खादीके प्रश्नपर भी गाधीजी और नेहरूके मतभेदको काफी उछाला गया। खादीके सम्बन्धमे नेहरूकी बातोसे कुछ लोगोके मनमे ऐसी धारणा बन गई कि वे उसे कोई महत्त्व ही नही देते। गाधीजी ने इसे "झूठ-मूठका डर" बताकर इस विषयमे भी लोगोकी भ्राति दूर की। वस्तुत नेहरू ऐसा मानते थे कि "हमारे आजके कार्यक्रममे खादी एक महत्त्वकी चीज है" लेकिन वे यह नही स्वीकार करते थे कि "खादी हमारी गरीबीकी समस्याको अन्तत हल कर सकेगी।" वे "बडे-बडे कल-कारखानोके"-पक्षमे थे, यद्यपि उन्हे दिखाई दे रहा था कि "औद्योगीकरणके विकासके साथ भी हिन्दुस्तानमे गृह-उद्योगोके प्रसारके लिए काफी गुजाइश रहेगी" (पृ० १७)। इसके विपरीत, गाधीजी की राय थी कि "भविष्यके बारेमे जितनी दूरतक हम सोच

सकते हैं, खादीकी प्रधानता रहेगी।" यह सच था कि खादी मिलके बने कपडेसे होड़ नही ले सकती, क्योकि "खुले बाजारमे तो एक ज्यादा संगठित उद्योग सदा ही अपनेसे कम संगठित उद्योगको खत्म कर सकता है . . .।" किन्तु शरीर-श्रमके स्थानपर शक्ति-चालित यन्त्रोको प्रतिष्ठित करना मनुष्यके लिए कितना हानिप्रद हो सकता है, इसका खयाल रखना भी जरूरी था। गाधीजी के ही शब्दोमे "गाँवोको तबाह करने का इससे अधिक चतुराई-भरा और लाभप्रद उपाय तो कोई चगेजखाँ भी नही निकाल सकता।" इस शोषकनीतिके फलस्वरूप ग्रामीण लोगोमें "कोई काम करने का, सोचने का, बल्कि जिन्दा रहने तकका उत्साह तेजीसे नष्ट होता जा रहा" था। "जिन्दा होते हुए भी वे मानो मृत" थे (पृ० ८६)। इसलिए खादी तथा ग्रामोद्योगोके माध्यमसे गाधीजी एक नये अर्थशास्त्रकी रचना कर रहे थे; क्योकि "देश-देशका अर्थशास्त्र अलग होता है . . . गरीब और अमीरका अर्थशास्त्र भी अलग-अलग होता है" (पृ० १०५)।

वर्तमानकी जिस दूसरी समस्याकी ओर गाधीजी ने विशेष ध्यान दिया, वह थी अस्पृश्यता-निवारणकी समस्या। यह तत्त्वत. एक धार्मिक समस्या थी, किन्तु प्रधान मन्त्री रैम्जे मैकडॉनाल्डके साम्प्रदायिक निर्णय (कॉम्युनल एवार्ड)ने उसे राजनीतिक रूप प्रदान कर दिया था (देखिए खण्ड ५१)। हिन्दुस्तानके विभिन्न "धर्मोके नेता . . . हरिजनोको अपने-अपने धर्ममे मिलाने के लिए आपसमे प्रतिस्पर्धा करने" लग गये थे, और अम्बेडकर तथा कुछ अन्य लोग हरिजनोका सामूहिक धर्मान्तिरण करके उन्हे शेष हिन्दू-समाजसे अलग कर देनेका प्रयत्न कर रहे थे। डॉ० मुजे-जैसे कुछ हिन्दू नेता इस धर्मान्तिरणको समर्थन देनेको तैयार थे, बशर्ते कि हरिजन हिन्दू-धर्म छोडकर किसी अन्य धर्मको नही, बल्कि सिख धर्मको स्वीकार करे। मानों "हरिजन लोग मनुष्य नही, कोई माल-असबाब हो", इस तरह उनके धर्मको बदल देनेकी इस कूट-योजनापर गाधीजी ने गहरा दु ख व्यक्त किया, और इसम लगे "स्वयभू नेताओ" से पूछा कि वे "हरिजनोकी धार्मिक स्वतन्त्रताका सौदा करनेवाले होते कौन है?" इस समस्याके मर्मको उद्घाटित करते हुए उन्होने लिखा कि इसे "राजनीतिक या आर्थिक" दृष्टिसे देखकर "वे तो धर्मके महत्त्वको घटा रहे है। उचित तो यह है कि खुद राजनीति और अन्य बातोका मूल्याकन धर्मकी दृष्टिसे हो" (पृ० २५४-५५)।

अम्बेडकरने अस्पृश्यताको लेकर हिन्दू-धर्म पर तीन आरोप लगाये थे—"हरिजनोके साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया जाता है, निर्दयतापूर्ण व्यवहार करनेवाले अपने इस व्यवहारको निर्लज्जतापूर्वक उचित ठहराते है, और हिन्दुओके शास्त्रोमे इस प्रकारके निर्दय व्यवहारका समर्थन किया जाता है" (पृ० १४८)। गाधीजी ने इन

आरोपोको विशुद्ध धार्मिक दृष्टिकोणसे उचित माना। सच तो यह है कि काफी दिनो से गाधीजी स्वय ही यह अनुभव करते और कहते आ रहे थे कि "यदि अस्पृश्यता कायम रही तो हिन्दू-धर्म मिट जायेगा", बल्कि इससे भी आगे बढकर उन्होने कहा, "अगर मानवतापर लगा हुआ यह कलक दूर न हुआ तो इस धर्मको नष्ट ही हो जाना चाहिए" (पृ० ५६)। किन्तु वे जानते थे कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्मका अग नही है। जिन धर्म-ग्रन्थोको अम्बेडकरने अपने आरोपोके समर्थनमे उद्धृत किया था उन्हे पूर्णत. प्रामाणिक मानने से इनकार करते हुए गाधीजी ने कहा, "यथार्थत जो शास्त्र कहे जा सकते है उनका सम्बन्ध शाश्वत सत्योसे ही हो सकता है, और वे अन्तरात्मा, यानी ऐसे हर हृदयको स्पर्श करेगे जिसके ज्ञान-चक्षु खुल गये हो। ऐसी किसी बातको ईश्वरका वचन नही माना जा सकता जिसकी तर्क-बुद्धि द्वारा परीक्षा न हो सके या आध्यात्मिक रूपमे जिसका अनुभव न किया जा सकता हो।" गाधीजी का कहना था कि धर्मका आधार विद्वत्ता नहीं, वरन् "सन्तो और ऋषियोके अनुभव, उनके जीवन और उपदेश" होते है; और इसीलिए किसी धर्मकी अच्छाई-बुराईका "निर्णय उसके सबसे बुरे नमूनोसे नही, बल्कि उसके सर्वोत्तम नमूनोसे ही किया जा सकता है, क्योकि उस धर्मके सर्वोत्तम नमूनोको ही ऐसा आदर्श माना जा सकता है जिससे आगे न जा सके तो भी उसतक पहुँचने की आकाक्षा तो करनी ही चाहिए" (पृ० १६७-६८)।

गाधीजी ने सत्य और अहिंसाको हिन्दू-धर्मका सार बताया, किन्तु साथ ही उन्होने धर्मके क्षेत्रमें मानवीय आदर्शोसे युक्त सजीव प्रतीकोके महत्त्वको भी स्वीकार किया। उनका दृढ मत था कि "जो आदमी राम और कृष्णको ईश्वरके रूपमे नही मानता वह हिन्दू नही है।" स्वय गाधीजी उन "जीवत राम और कृष्ण" के उपासक थे "जो सत्य, शिव और पूर्णताके अवतार है", "जो आज मौजूद है, जो सदासे मौजूद रहे है, जो" मनुष्य के "अन्तरतमके विचारोको जानते है और" उसकी "गलतियोको हमेशा सुधारते रहते है" (पृ० ५०-५१)। इसलिए गाधीजी की दृष्टिमे मन्दिरमे जाकर पूजा-उपासना करना कोई अन्धविश्वास नही था। उन्हे ऐसा अनुभव होता था कि "जो श्रद्धा लाखो मनुष्योको प्रेरित करके मन्दिरोमे ले जाती है, उसमे कही कोई पुनीत और सत्यका तत्त्व अवश्य विद्यमान है" (पृ० ४४)। इस प्रकार, उनके विचारसे, मन्दिर-प्रवेश अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनका आवश्यक अग था। वे उन लोगोसे सहमत नही थे जो मानते थे कि "सारी हरिजन-समस्या आखिर एक आर्थिक समस्या ही है. . . " उनके विचारसे यह मुख्यत "हिन्दू-धर्ममे मौजूद एक रोगको दूर करने की समस्या" थी (पृ० ५०)। और यह रोग सारे मन्दिरोके द्वार हरिजनोके लिए खोल दिये जाने पर ही दूर हो सकता था।

हरिजनो तथा गरीबोंकी सेवा गाधीजी के लिए ईश्वरकी खोजका ही अंग थी। श्रमिकोकी एक सभामे बोलते हुए उन्होने कहा, "मेरा आनन्द तो एक ही बातमे है — ईश्वर-दर्शनमे है। यह दर्शन गरीबोमे ओतप्रोत होनेसे ही होगा। कगाल देशके गरीबोमे अगर मैं ओतप्रोत हो जाऊँ तो सारी दुनियाके साथ ओतप्रोत हो सकता हूँ।" (पृ० ४४०)। मॉरिस फ्राइडमनको उन्होने बताया, "मनुष्यका अन्तिम उद्देश्य है ईश्वरका साक्षात्कार — उसकी अनुभूति प्राप्त करना। उसके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी कार्य इस अन्तिम उद्देश्य — ईश्वरानुभूति — को ध्यानमे रखकर ही सम्पादित होने चाहिए।" उन्होने आगे बताया, "और यह तो सबकी सेवा द्वारा ही हो सकता है।" दूसरी ओर सबकी सेवा अपने देशभाइयोकी सेवा द्वारा ही हो सकती है, क्योकि वे हमारे "सबसे नजदीकी पडोसी" है (पृ० २६१)। यही बात उन्होने एक साधुके सामने इन शब्दोमे रखी, "हम केवल परमात्माकी सृष्टिके उस भागकी सेवा कर सकते है जो हमारे सबसे अधिक नजदीक हो और जिसके विषयमे हमे अधिकसे-अधिक ज्ञान हो" (पृ० २५३)। स्वयको इस प्रकार सम्पूर्ण रूपसे सेवार्पित कर देनेके लिए अपने अन्दर यह बोध जगाना वे आवश्यक मानते थे कि "जीव-मात्र अन्तमे एक ही है। . . . अनेकता . . . आभास-मात्र है। . . . एकके दोषकी जिम्मेदारी हम सबपर आती है" (पृ० १२८-२९)।

स्वयको गरीबोसे एकाकार कर देनेकी आकाक्षा ही गाधीजी को खीचकर सेगाँव मे बसने ले गई थी — ऐसे स्थानमे जो भारतीय गाँवोका एक सच्चा नमूना था, "जहाँ न डाकघर" था "न अच्छी भोजन-सामग्रीका भण्डार, न चिकित्सा-सुविधा, और जहाँ वर्षा-कालमे पहुँच सकना अत्यन्त कठिन" था (पृ० ७७)। फ्राइडमन यह मानने को तैयार नही थे कि "आध्यात्मिक उन्नतिके लिए . . . असुविधा-भरे गन्दे जीवनसे एकरूप" होना आवश्यक है। उनका समाधान करते हुए गांधीजी ने कहा, "शारीरिक सुख और शान्ति एक हदतक" आवश्यक हो सकती है, लेकिन "शारीरिक जरूरतोको, बल्कि उसकी व्यक्तिगत बौद्धिक जरूरतोको भी एक हदतक पहुँचने के बाद रोकना ही चाहिए, नही तो वे शारीरिक तथा बौद्धिक विलासमे परिणत होने लग जायेगी", और मनुष्यकी सारी शक्तिके सेवामे नियोजित किये जानेके मार्गमे बाधक बन जायेगी (पृ० २६२)।

गाधीजी का विचार था कि आध्यात्मिक दृष्टिसे अगीकार की गई दीनजनोकी सेवाके लिए तथ्यो और तफसीलोका पूरा ध्यान रखना आवश्यक है, किसी भी सुधार के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि तद्विषयक तथ्योकी पूरी तसवीर सामने हो। इसलिए सेवकोको अतिशयोक्ति कभी नही करनी चाहिए (पृ० १२९)। एक पत्रके उत्तरमे उन्होंने लिखा, "शाश्वत सत्योको ध्यानमे रखकर बारीकियोंका विचार

करनेपर ही हम उन सत्योंतक पहुँच सकते हैं। कमसे-कम मुझे तो जो-कुछ सत्यकी झाँकियाँ मिली हैं वे पूर्णतः नहीं तो मुख्यतः" सत्य और अहिंसा तथा इनके "इस महत्तम उद्देश्यको सामने रखते हुए छोटी-छोटी बारीकियोंपर ध्यान देनेसे ही मिली हैं" (पृ० १३८)। मीराबहनके रूपमें गांधीजी को एक ऐसी ही आदर्श सेविका प्राप्त हुई थी। उन्होंने अपने लिए सेगाँवमें जो झोंपड़ी बनाई थी वह "दरअसल और सच्चे अर्थमें उसकी झोपड़ी" थी — नक्शा और निर्माण, सब उनका अपना था। वह मात्र झोंपड़ी नहीं, एक कविता थी। उसकी "एक-एक चीजमें ग्राम्य मनोवृत्तिकी सुन्दर झलक देखकर" गांधीजी की "आँखोंमें आनन्दाश्रु भर आये" (पृ० १६५)। उन्होंने हरिजन-सेवकोंसे अपना काम इसी समर्पण-भावसे करने का आग्रह किया। उनको गांधीजी की सलाह थी कि वे हरिजनोंके पास जायें और स्वयं हर तरहसे सच्चे अर्थोंमें हरिजन बन जायें — अर्थात् उनकी सेवा करें, उनके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख बनायें (पृ० ५६), उन्हींकी तरह हर "सुबह . . . झाड़ू, फावड़ा, टोकरी आदि लेकर" निकल पड़ें और "झाड़ने-बुहारने, पाखाना उठाने और उसे गाड़ने का सब काम" करें (पृ० १७३)। किन्तु नैतिक पवित्रता भी उतनी ही आवश्यक थी, क्योंकि "चाहे जितना होशियार आदमी चरित्रहीन हो तो उसकी गन्दगीके छींटे सार्वजनिक जीवनपर तो पड़ते ही हैं" (पृ० ३१४)। गांधीजी मानते थे कि जब "हमारे पास" ऐसे "निःस्वार्थ और धार्मिक भावना रखनेवाले कार्यकर्ता काफी" संख्यामें होंगे तभी वह हृदय-परिवर्तन सम्भव होगा जो अस्पृश्यताको मिटाने के लिए आवश्यक है (पृ० १३७)।

जब हमें अपने बीच ईश्वरकी उपस्थितिकी अनुभूति न होती हो तब उसमें विश्वास रखने का क्या मूल्य हो सकता है — इस प्रश्नका उत्तर उपनिषदोंकी भाषामें देते हुए गांधीजी ने लिखा, "अपनी इन्द्रियों द्वारा तो हम उसे कभी नहीं पा सकते, क्योंकि वह उनसे परे है। अगर हम चाहें तो उसका अनुभव अवश्य कर सकते हैं, पर इसके लिए हमें इन्द्रियोंसे ऊपर उठना होगा।" उन्होंने आगे कहा, "दैवी संगीत हमारे अन्दर हमेशा गूंजता रहता है . . .। परन्तु इन्द्रियोंके कोलाहल और हलचलमें वह नाजुक संगीत विलीन हो जाता है" (पृ० ६४-६५)। स्वयं गांधीजी को आत्माके अस्तित्वका अनुभव प्रतिक्षण होता रहता था, और इसलिए उन्हें "कभी-कभी दिव्य संगीतकी गूंज भी सुनाई पड़ जाती" थी। उनका अनुभव था कि स्वयं प्रयत्न करने पर इसे कोई भी सुन सकता है, किन्तु यह ऐसा संगीत नहीं है कि कोई और सुनवा सके" (पृ० १५२)। इतने ही विश्वासपूर्वक गांधीजी यह भी मानते थे कि "अहिंसा ही हमारे जीवनका आदि स्रोत और अन्तिम लक्ष्य है। . . . अगर अहिंसा या प्रेम हमारा जीवन-धर्म न होता तो इस मृत्यु-लोकमें हमारा जीवन कठिन हो जाता।

. . . जिस दिन उसका आचरण . . . सार्वभौम हो जायगा, उस दिन स्वर्ग-लोक इस भूमिपर ही अवतीर्ण हो जायेगा।" गाधीजी मानते थे कि "स्वर्ग और पृथ्वी सब हमारे ही अन्दर हैं।" लेकिन दुःखकी बात यह है कि "हम पृथ्वीसे तो परिचित है, पर अपने अन्दरके स्वर्गसे हम बिलकुल अपरिचित है।" किन्तु यदि कुछ लोगोके लिए स्वर्गको भूमिपर उतारना, प्रेमका आचरण करना सम्भव है, तो वास्तवमे वह सबके लिए सम्भव होना चाहिए। लेकिन इस प्रेम-धर्मको वे ऐसा धर्म नही मानते थे "जिसे दलीलसे सिद्ध किया जा सके।" उनका कहना था कि "यह तो उन लोगोके प्रत्यक्ष जीवनसे सिद्ध हो सकता है जो परिणामोकी ओरसे निरपेक्ष बनकर इस धर्मका अपने जीवनमे पालन करते है" (पृ० ३४८-४९)।

गुजराती साहित्य परिषद्के अध्यक्षके आसनसे बोलते हुए गांधीजी ने साहित्यकारो को जनसाधारणके प्रति उनके कर्त्तव्यका स्मरण कराया। सेगाँव और वहाँके अस्थि-पंजरोका ध्यान आनेपर उन्हे बरबस यह स्वीकार करना पडा कि हमारा "साहित्य निकम्मा . . . है" वे ऐसा साहित्य और ऐसी कला चाहते थे जो करोडो आम लोगोके लिए हो (पृ० ४४९)। सस्ते और वासनामय साहित्यके प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए उन्होने कहा कि "जब आप स्त्रीके बारेमे लिखने के लिए कलम उठायें तो अपनी जननीको अपनी नजरके सामने रखे। यदि आप इस बातका विचार करते हुए लिखेगे तो आपकी लेखनीसे जो साहित्य निकलेगा, वह जैसे सुन्दर आकाशसे वर्षाकी बूँदे झरती है, उसी तरह नि.सृत होगा और जैसे वर्षाकी बूँदे धरतीका पोषण करती है उसी प्रकार वह भी स्त्री-रूपी धरतीका पोषण करेगा" (पृ० ४५४)। गाधीजी के अनुसार, लेखन-मात्र एक कला नही था, उसके पीछे ईमान-दारीका होना जरूरी था। एक व्यक्तिने 'हरिजन' मे प्रकाशनार्थ कुछ लेख भेजे थे। उसे उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा, "सदात्मा व्यक्तियोका सीधा-सादा लेखन प्रभाव-कारी होता है, जबकि केवल चतुर व्यक्तियोका प्रतिभाशाली लेखन भी प्रभावहीन सिद्ध होता है। लगता है, लेखक या वक्ताका अपना ओज शब्दोमे उतर आता है" (पृ० १९३)।

गत मई महीनेमे गाधीजी के मित्र डॉ० अन्सारीका निधन हो गया था। कुछ ही दिन बाद ९ जूनको उनके एक अन्य मुसलमान मित्र अब्बास तैयबजी का भी देहान्त हो गया, जो "कोई साधारण मुसलमान नही थे", जो "भारत-सेवक भी इसीलिए थे कि वे मनुष्य-जातिके सेवक थे", तथा जो "ईश्वरको . . दरिद्रनारायणके रूपमे" देखते थे (पृ० ८४-८५)। लगभग इसी समय एक और भी व्यक्तिगत व्यथा ने गाधीजी की परीक्षा ली। उनके ज्येष्ठ पुत्र हरिलालने इस्लाम स्वीकार कर लिया था। गाधीजी को स्वय इस धर्मान्तरणका कोई दुःख नही था। यदि "किसी सांसारिक

स्वार्थसे उसका कोई वास्ता न होता तो" उनका "उससे कोई झगडा नही" होता, क्योकि उन्हे विश्वास-था कि "इस्लाम भी वैसा ही सच्चा धर्म है जैसाकि मेरा अपना धर्म है।" गाधीजी को चोट यह देखकर पहुँची थी कि कुछ मुसलमानोने इस प्रसगपर किस प्रकार सार्वजनिक रूपसे आनन्दोत्सव मनाया था। "इस प्रदर्शनके पीछे" गाधीजी को कही "कोई धर्मकी भावना" दिखाई नही दी (पृ० ६-७)। उन्होने अपनी इस व्यथाको वाणी देते हुए "मुसलमानोके नाम जो पत्र लिखा . . . वह", गाधीजी के ही शब्दोमे, अपने "हृदयरक्त-रूपी स्याहीमे डुबोई हुई कलमसे लिखा" था (पृ० ५३)। एक मुसलमान मित्रको लिखा, "धर्म और इस दुखी देशकी खातिर इस विचित्र स्थितिपर तुम गौर करो, उसमे रुचि लो" (पृ० २६)।

ईसाई मिशनरियोकी एक मडलीके साथ हुई चर्चाके दौरान गाधीजी ने धर्मान्तरणके सम्बन्धमें अपना दृष्टिकोण सक्षेपमे इन शब्दोमे प्रस्तुत किया, "आप अपनी माताको पूजती है, इसलिए आप यह इच्छा नही कर सकती कि दूसरे लोग भी आपकी माताकी सन्तान हो जाये" (पृ० १००)।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखित सस्थाओ, व्यक्तियो, पुस्तकोके प्रकाशको तथा पत्र-पत्रिकाओके आभारी है

संस्थाएँ : गाधी स्मारक निधि तथा संग्रहालय, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली, साबरमती आश्रम सरक्षक तथा स्मारक न्यास और सग्रहालय, अहमदाबाद।

व्यक्ति : श्री ए० के० सेन, कलकत्ता; श्री बी० डी० म्हात्रे, बम्बई, श्री चन्द त्यागी, दिल्ली; श्रीमती एफ० मेरी बार, कोट्टागिरि; श्रीमती गगाबहन वैद्य, बोचासण; श्री घ० दा० बिडला, कलकत्ता, श्री जी० एन० कानिटकर, श्री जी० वी० केतकर, श्री काशिनाथ एन० केलकर, पूना, श्री कान्तिलाल गाधी, बम्बई; श्री कनुभाई एन० मशरूवाला, अकोला, श्रीमती लीलावती आसर, बम्बई, श्रीमती मीराबहन, आस्ट्रिया, श्री मुन्नालाल जी० शाह, सेवाग्राम; श्री नारायण देसाई, बारडोली, श्री नारायण जे० सम्पत, अहमदाबाद; श्रीमती शारदाबहन जी० चोखावाला, अहमदाबाद; श्रीमती प्रेमाबहन कटक, सासवड, श्री पुरुषोत्तम बावीशी, श्रीमती एस० अम्बुजम्माल, मद्रास, तथा श्रीमती विजयाबहन एम० पचोली, सनोसरा।

पुस्तकें : 'बापूकी छायामे मेरे जीवनके सोलह वर्ष', 'बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने', 'बापुना पत्रो – ६ · ग० स्व० गगाबहेनने', '(ए) बच ऑफ ओल्ड लेटर्स', 'गाधीजी और राजस्थान', 'गीतापदार्थकोष', 'इसीडेंट्स ऑफ गाधीजीज लाइफ', 'महात्मा द लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गाधी', खण्ड – ४, 'माई डियर चाइल्ड', 'पाँचवे पुत्रको बापूके आशीर्वाद' एव 'सम्पादकके पच्चीस वर्ष'।

पत्र-पत्रिकाएँ : 'गुजराती', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'सर्चलाइट', 'हरिजन', 'हरिजनसेवक', 'हरिजनबन्धु' और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ-सम्बन्धी सुविधाओके लिए सूचना और प्रसारण मन्त्रालय का अनुसन्धान और सन्दर्भ-विभाग, राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इडिया), नई दिल्ली, और कागज-पत्रोकी फोटो-नकल तैयार करने मे सहायता देनेके लिए हम सूचना और प्रसारण-मन्त्रालय, नई दिल्लीके फोटो-विभागके आभारी है।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमे गाधीजी के स्वाक्षरोंमे मिली है, उसे अविकल रूपमे दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमे हिज्जोकी स्पष्ट भूलोको सुधारकर दिया गया है।

अग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करने मे अनुवादको मूलके समीप रखने का पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनाने का भी पूरा ध्यान रखा गया है। छापेकी स्पष्ट भूले सुधारने के बाद अनुवाद किया गया है। और मूलमे प्रयुक्त शब्दोके सक्षिप्त रूप यथासम्भव पूरे करके दिये गये हैं। नामोको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखने की नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोके उच्चारणमे सशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गाधीजी ने अपने गुजराती लेखोमे लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोमे दी गई सामग्री सम्पादकीय हैं। गांधीजी ने किसी लेख, भाषण आदिका जो अश मूल रूपमे उद्धृत किया है, वह हाशिया छोडकर गहरी स्याहीमे छापा गया है, लेकिन यदि कोई ऐसा अश उन्होंने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोडकर साधारण टाइपमे छापा गया है। भाषणकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गाधीजी के कहे हुए नही है, बिना हाशिया छोडे गहरी स्याहीमे छापे गये है। भाषण और भेटकी रिपोर्टोके उन अशोमे, जो गाधीजी के नही हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कही-कही कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है, वहाँ दाये कोनेमे ऊपर दे दी गई है। परन्तु जहाँ वह उपलब्ध नही है वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोमे की गई है, और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोमे केवल मास या वर्षका उल्लेख है, उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमे रखा गया है। शीर्षकके अन्तमे साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गाधीजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधारपर उसका अनुमान लगाया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नही हुआ, वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये है।

इस ग्रंथमालामें प्रकाशित प्रथम खण्डका जहाँ-जहाँ उल्लेख किया गया है, वह जून १९७० का संस्करण है।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका, 'एम० एम० यू०' मोबाइल माइक्रोफिल्म यूनिटका, 'एस० जी०' सेवाग्राममें सुरक्षित सामग्रीका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

१. भाषण: बंगलोरकी नगरपालिका बस्तीमें[1]

[३१ मई, १९३६ के पश्चात्][2]

पिछले दिनों मुझे कोलारके स्वर्ण-क्षेत्रके मजदूरोंकी झोपड़ियाँ दिखाने ले जाया गया। उन्हें देखकर मुझे वरवस कहना पडा कि ये मनुष्यके रहने लायक नही हैं। खान-कम्पनी ३० से ४० प्रतिशतका लाभांश घोषित करे और कम्पनीके साझेदारोंके लिए इतना लाभ कमाकर देनेवाले लोगोंको गन्दी और टूटी-फूटी झोपडियोंमें रखा जाये, यह तो मुझे सरासर क्रूरता लगी। यहाँ आपने जो झोपडियाँ वनाई हैं वे वेशक उनसे अच्छी हैं। वे हवादार भी है और ठीक जगह वनी हुई हैं। लेकिन अविवाहित लोगों तथा विवाहित जोड़ो और जिन विवाहित जोड़ोंके पास वच्चे भी हों, उनकी अलग-अलग आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर झोपडियोंको एक न्यूनतम स्तरके मुताविक वनाना चाहिए। हमें यह समझना चाहिए कि पति-पत्नीको वच्चोंके साथ एक ही कमरेमें नहीं रहना चाहिए। इन झोपड़ियोंमें किसीको एकान्त-जैसी कोई चीज नही मिल सकती। नगरपालिकाएँ अपने गरीव कर्मचारियोंको फुटोंमे नापकर घरके लिए जमीन दें, यह वात तो मेरी समझमे नहीं आती। इनमें से प्रत्येक झोपडीमे एक और कमरा तथा एक वरामदा होना नितान्त आवश्यक है। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आप हरिजन-कर्मचारियोंको भी ये सुविधाएँ देने का इरादा रखते हैं लेकिन जव उनके लिए घर वनवाने लगें तो कृपया इस सुझावको ध्यानमे रखें। मुझे दु:खके साथ यह कहना पडता है कि अव भी ऐसी अनेक नगरपालिकाएँ हैं जिन्होंने अपने सवसे कम वेतन पानेवाले कर्मचारियोंको ये सुविधाएँ नही दी हैं। पता नही, अपने सवसे आवश्यक सेवकोंके प्रति अपने कर्त्तव्यका भान हमें कव होगा। अगर हम ऐसा नहीं करते तो शीघ्र ही हमारे समाजका नाश हो जायेगा और जो समाज अपने दोष दूर नहीं करता, उसका नाश तो होना ही चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-७-१९३६

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। यह भाषण गांधीजीने उस समय दिया था जव वे नगरपालिका द्वारा अपने कर्मचारियोंके लिए वनाये गये २५० घरोंकी एक वस्ती देखने गये थे।

२. भाषणमें कोलारके स्वर्ण-क्षेत्रके उल्लेखसे स्पष्ट है कि गांधीजी यहाँ ३१ मई, १९३६ के वाद गये थे। देखिए खण्ड ६२।

२. तार: दिल्ली हिन्दू सभाके मन्त्रीको[1]

१ जून, १९३६

हिन्दू सभा
मार्फत कालिया, दिल्ली

धन्यवाद। इस तरह की मार्गभ्रष्टताकी उससे अधिक चिन्ता नही करनी चाहिए जितनी धर्मको उसमे निहित सभी दोषोसे मुक्त करने के लिए जो जरूरी हो।

गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य प्यारेलाल

३. पत्र: मीराबहनको

बंगलोर सिटी
१ जून, १९३६

चि० मीरा,

तुम्हारा ३० मईका पत्र मेरे सामने है। मुझे खुशी है कि तुम निरन्तर प्रगति कर रही हो। अगर तुम बराबर अपने शरीरमे कुछ शक्ति बचाकर रखोगी तो मलेरियासे बची रहोगी।

हाँ, कलका दिन बहुत थकानेवाला था। फिर भी मुझे कोई नुकसान नही हुआ। सरदारको रास्तेमें तेज जुकाम हो गया, और आज भी ठीक नही हुआ है। लडके-लडकियाँ सोनेकी खाने देखने के लिए पीछे रह गये। आज लौटेंगे। दाहिना हाथ खूब काम देता रहा है। इसलिए मैं उसे आराम दे रहा हूँ।

गुजराती पत्रोमे हरिलालकी करतूतोकी[2] खूब चर्चा है।

१. यह निम्नलिखित तारके उत्तरमें दिया गया था: "हरिलालके धर्मान्तरणसे हिन्दुओंको गहरा आघात लगा है। कृपया बतायें कि हम भटके हुए भाईको कैसे रास्ते पर लायें।"

२. उन्होंने इस्लाम धर्म अपना लिया था और अपना नाम अब्दुल्ला रख लिया था।

अगर तुम स्थानीय शिमलेमें[1] रहोगी, तो वहाँ सम्पर्कका कोई स्थानीय साधन भी होना ही है। और मुझे आकर्षित करने के लिए दोनों स्थानोके तापमानोमें अन्तर भी होना जरूरी है।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३४४) से; सौजन्य मीराबहन। जी० एन० ९८१० से भी

४. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

१ जून, १९३६

प्रिय सतीश बाबू,

आपने तो मुझे अपने स्वास्थ्यका सन्तोषजनक विवरण लिख भेजा है, पर प्यारे-लालका कुछ और ही कहना है। वह कहता है कि आपका हृदय कमजोर है और आप बराबर अपनी शक्तिसे अधिक काम करते रहते है। मैं चाहता हूँ कि आप इस बातको समझ ले कि शरीरके साथ ऐसा दुर्व्यवहार निश्चित रूपसे पाप है।

आप जिस अकालके सिलसिलेमें काम कर रहे हैं वह क्या वही है जिसके सम्बन्धमें प्रफुल्ल बाबू काम कर रहे हैं, या कोई और?

प्रत्येक प्रदर्शनीके बाद पीछे कोई स्थायी चीज छोड जाने के बारेमें मुझे कई अडचने दिखती है। हमे कभी भी ऐसी जमीन नही मिलती जहाँ कोई पक्की इमारत बन सके। फिर, यह भी जरूरी है कि [स्थानीय][2] लोगोमें ऐसी इच्छा हो जिससे वे उसकी कीमत चुका सके और उसे अच्छी हालतमे रख सके। हम अगली कांग्रेस ठेठ देहातमे करेंगे। आपका सुझाव क्या है? कितनी कम लागतमे प्रबन्ध हो सकता है? आपको पता है कि लखनऊकी [प्रदर्शनी][3] अन्तत स्वावलम्बी सिद्ध हुई।

हम लोग बगलोर सिटीसे सम्भवत इसी १२ तारीखको रवाना होगे।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १६३०) से।

१. तात्पर्य मीराबहनके लिए बरोडामें, जिसे गांधीजी ने अपने एक पिछले पत्र (खण्ड ६२, पृ० ४९६)में "नाममात्र की पहाडी"की संज्ञा दी थी, बननेवाली झोंपडी से है।

२ और ३. साधन-सूत्रमें अस्पष्ट हैं।

५. पत्र : अमृतकौरको

१ जून, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

हम कल ही नीचे आये और काम चालू हो गया। हमने कल दिन-भर स्वर्ण-क्षेत्रका दौरा किया, हजार रुपयेसे ऊपर हरिजन-कोषके लिए इकट्ठा किया, और रात दस बजेके बाद जब लौटे तब ज्यादा थकान नही थी।

नन्दी हिलकी अपेक्षा बगलोरमे कुछ गर्मी है। और नन्दी हिलकी स्फूर्तिदायक हवा और शान्तिके बाद कोई जगह नही भाती। मेरे लिए तो जो आकर्षण वहाँ है वह किसी और पर्वतीय स्थलपर नही। मैंने एक लम्बी आहके साथ नन्दी छोडा। सरदार तो लगभग पस्त हो गये है। वे टहलनेके लिए भी बाहर नही गये। मै तो रोजकी तरह घटा-भर घूम आया। नि सन्देह बगलोरका मौसम आजकलके दिनोमे सुखद ही होता है। बात सिर्फ इतनी है कि हमारी आदत तो नन्दीने बिगाड दी।

मुझे खुशी है कि तुम फिरसे कातने लग गई हो।

हाँ, तुम्हारा लिफाफा अच्छा है पर तुमको उनके लिए इतनी भारी कीमत नही चुकानी चाहिए। यह काम तो घरके किसी ऐसे व्यक्तिको करना चाहिए जिसके पास घटे-भरका खाली वक्त हो, या उनको देना चाहिए जो मेहनतका आना-दो-आना कमा सकें तो शुक्र मानेंगे।

तुम निराशाका अनुभव क्यो करती हो? दिन-भरमे जितना कर सको उसी पर पूरा सन्तोष क्यो नही मानती? अगर तुम किसी बातमे लापरवाही करो तो बेशक अपने पर क्रोध करो, पर जब तुम्हारे पास समय ही न हो, तब तुम क्या कर सकती हो?

तुमने पढा होगा कि हरिलालने इस्लाम अपना लिया है। उसको तो कुछ सनसनी चाहिए और चाहिए धन। उसे दोनो मिल गये है। मै सोच रहा हूँ, मुसलमान मित्रोके नाम एक आम पत्र[1] लिखूँ। देखता हूँ, क्या बन पाता है। बेचारी बा और बेचारा कान्ति![2] दोनो ही बहुत उद्विग्न थे।

सप्रेम,

तानाशाह

१. देखिए "वक्तव्य : समाचारपत्रोंको", २-६-१९३६।

२. हरिलाल गांधीके पुत्र।

[पुनश्च :]

कामकाजके व्यवस्थित नियमो पर न चलने की हमारी आदतोके बारेमें तुम्हारा मत ठीक ही है। जिनमे यह दोष दिखे उनकी खबर लेना।

श्री राजकुमारी अमृतकौर
मैनर विले
शिमला प०

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७२९) से, सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६८८५ से भी

६. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

१ जून, १९३६

चि० नरहरि,

तुम सब खूब अच्छे होकर वापस आ चुके होगे। मणिबहनको[1] कैसा लगता रहा? क्या अब वह बिलकुल चंगी हो गई है? वनमाला[2] और मोहनका[3] शरीर कुछ सुधरा? सब लोग खूब घूमते थे न?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९०९४) से।

७. पत्र : हीरालाल शर्माको

१ जून, १९३६

चि० शर्मा,

१२ मइका तुमारा खत कल रातको बंगलुर पहोचने पर मिला। अब तो खुर्जा पहूचे होगे। प्रकृति अच्छी होगी। मैं वर्धा १५ तारीखको अवश्य पहोचूगा। तब आ जाना। दरम्यान मुझे बगलोर सिटी[4] लिखो।

बापुके आशीर्वाद

बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृ० २५१ के सामने प्रकाशित प्रतिकृतिसे

१, २ और ३. नरहरि भाईकी पत्नी, पुत्री और पुत्र।
४. मूलमें ये दो शब्द अंग्रेजी लिपिमें है।

८. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको[1]

बंगलोर
२ जून, १९३६

अखबारोंमें खबर छपी है कि करीब पन्द्रह दिन हुए, मेरे सबसे बड़े लड़के हरिलालने, जिसकी उम्र इस समय लगभग ५० सालकी है, इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया है और गत शुक्रवार, २९ मईको बम्बईकी जुम्मा मस्जिदमें एक भारी मजमेमें उससे तुमुल हर्षध्वनिके बीच इस्लाम ग्रहण करने की घोषणा करवाई गई। उसका भाषण खत्म होने पर उसके प्रशंसकोंने उसे चारों तरफसे घेर लिया, और उससे हाथ मिलाने के लिए आपसमें वे सब होड़ा-होड़ी करने लगे। अगर उसका यह धर्म-परिवर्तन शुद्ध हृदयसे होता, और किसी सांसारिक स्वार्थसे उसका कोई वास्ता न होता, तो मुझे उससे कोई झगड़ा नहीं था, क्योंकि मेरा विश्वास है कि इस्लाम भी वैसा ही सच्चा धर्म है जैसाकि मेरा अपना धर्म है।

मगर यह धर्म-परिवर्तन शुद्ध हृदयसे किया गया है, और इसके पीछे किसी तरहका कोई स्वार्थ नहीं है, इस बारेमें मुझे बहुत गहरा सन्देह है। मेरे पुत्र हरिलालको जो लोग जानते हैं, उन्हें यह मालूम है कि उसे बरसोंसे शराब पीनेकी लत लगी हुई है और वह वेश्यालयोंमें जाता रहा है। कुछ सालोंसे वह उन मित्रोंके बलपर जिन्दगी बसर कर रहा है, जिन्होंने उसकी अत्यन्त उदार दिलसे मदद की है। वह कुछ पठानोंका कर्जदार भी है, जिनसे उसने ऊँचे सूद पर रुपया लिया है। अभी कुछ ही दिन पहले तक जिस बम्बईमें अपने पठान कर्जदाताओंके मारे उसे अपनी जानतक का डर था, आज उसी बम्बई शहरमें वह महापुरुष माना जा रहा है। उसकी पत्नी अत्यन्त पतिव्रता थी। उसने उसके अनेक पापोंको, और उसकी बेवफाई तकको हमेशा माफ किया। इसकी तीन सयानी सन्तानें हैं—दो लड़कियाँ और एक लड़का, जिनके भरण-पोषणका भार वह बहुत पहले ही छोड़ चुका है।

कुछ ही सप्ताह पहले उसने अखबारोंमें हिन्दुओंके—न कि हिन्दू-धर्मके—विरुद्ध शिकायत लिखी थी, और यह धमकी दी थी कि या तो वह ईसाई हो जायेगा या मुसलमान। उसके उस पत्रकी भाषासे यह साफ मालूम होता था कि वह सबसे ऊँची बोली बोलनेवाले धर्मकी ओर जायेगा। उस पत्रका जो मंशा था वह पूरा हुआ। एक हिन्दू पार्षदकी कृपासे नागपुर-म्युनिसिपैलिटीमें उसे एक नौकरी मिल गई। इसके

१. "टु माई न्युमरस मुस्लिम फ्रैंड्स" (अपने अनेक मुसलमान मित्रोंके लिए) शीर्षकसे हरिजनमें प्रकाशित यह वक्तव्य अखबारोंके लिए २ जून, १९३६को जारी किया गया था।

बाद उसने एक दूसरा पत्र[1] अखबारोमे छपवाया, जिसमे उसने पहले पत्रको वापस लेते हुए अपने पूर्वजोके धर्मके प्रति अगाध श्रद्धा प्रकट की।

मगर घटना-चक्रने साबित कर दिया कि उसकी अर्थ-तृष्णा अभी शान्त नही हुई है, और उसे शान्त करने के लिए उसने अब इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया है। उसकी कुछ और भी बातें मै जानता हूँ, जिनसे मेरे इस निष्कर्षकी पुष्टि होती है।

अभी अप्रैलके महीनेमें जब मैं नागपुरमें था, वह मुझसे और अपनी माँ से मिलने आया था। उसने हमे बताया था कि भिन्न-भिन्न प्रतियोगी धर्मोके प्रचारक उसके साथ जैसा खुशामद-भरा व्यवहार कर रहे है वह सब देखकर उसे बड़ी हँसी आती है। ईश्वर क्या चमत्कार नही कर सकता? कौन नही जानता कि उसने क्षण-भरमे पत्थर-जैसे दिलोको मोम कर दिया है, और बडे-बडे पापियोको भी, मानो पल-भरमें, साधु-हृदय बना दिया है? इससे ज्यादा और किसी बातसे मुझे खुशी न होगी कि हमारी नागपुरकी मुलाकात और शुक्रवारकी इस घोषणाके बीच हरिलालने अपने पहलेके जीवन पर पश्चात्ताप किया है, और शराब और व्यभिचारको सदाके लिए छोडकर उसने अब अपनेको एकदम बदल डाला है।

मगर अखबारोमे जो खबरें आई है उनसे ऐसी कोई बात मालूम नही होती। उसे अब भी विलासिता और बढ़िया रहन-सहनमें मजा आता है। अगर वह बदल गया होता, तो मेरे चित्तकी प्रसन्नताके लिए वह जरूर पत्र लिखता। मेरे सभी पुत्रोको विचार और कार्यकी अधिकसे-अधिक स्वतन्त्रता रही है। उन्हे सिखाया गया है कि वे अपने धर्मकी जितनी इज्जत करते है उतनी ही इज्जत दूसरे धर्मोकी भी करें। हरिलालको मालूम था कि अगर वह मुझे बताता कि सच्चे जीवन और शान्तिकी कुंजी उसने इस्लाममे प्राप्त कर ली है, तो मैं उसके रास्तेमें किसी भी तरहकी बाधा न डालता। मगर हममे से किसीको भी, उसके पुत्र तकको, जिसकी उम्र इस समय २४ सालकी है और जो मेरे साथ रहता है, अखबार देखने से पहले इस बातकी कोई खबर नही थी।

मेरे पुत्रके मुसलमान बनने से जो मुस्लिम भाई फूले नहीं समाते वे अच्छी तरह जानते हैं कि इस्लामके सम्बन्धमे मेरे क्या विचार है। एक मुसलमान भाईने मुझे यह तार भेजा है :

> **उम्मीद करता हूँ कि आप भी एक सत्यशोधक होने के नाते अपने बेटेकी ही तरह इस्लाम कबूल कर लेंगे, जो दुनियाका सबसे सच्चा धर्म है।**

मुझे मानना पडेगा कि इन सब बातोसे मुझे चोट पहुँची है। इस प्रदर्शनके पीछे मैं कोई धर्मकी भावना नहीं पाता। मुझे लगता है कि उन लोगोने, जो हरिलालको मुसलमान बनाने के जिम्मेवार है, इस तरहके मामलेमें अपेक्षित मामूलीसे-मामूली एहतियातसे भी काम नही लिया।

१. इसपर गांधीजीकी टिप्पणीके लिए देखिए खण्ड ६२, पृ० २३५।

अगर हरिलाल, जैसाकि मुझे अंदेशा है, पहलेकी ही तरह पतित जीवन बिताता रहता है तो उसके धर्म-परिवर्तनसे हिन्दू-धर्मकी कोई हानि नही हुई है और उसका इस्लाम-ग्रहण करना इस्लामको कमजोर ही बनायेगा।

निश्चय ही, धर्म-परिवर्तन मनुष्य और उसके सिरजनहारके बीचका मामला है। केवल परमात्मा ही अपने बच्चोके हृदयको जानता है। हृदय अगर शुद्ध नही है तो धर्म-परिवर्तनका अर्थ, मेरी रायमे, ईश्वर और धर्मसे इनकार करना है। हृदयकी शुद्धिके बिना धर्म-परिवर्तनसे ईश्वर-भीरु मनुष्यको दुख ही होता है, आनन्द नही।

मै जो ये चन्द पक्तियाँ अपने असंख्य मुस्लिम मित्रोको सम्बोधित करके लिख रहा हूँ उसका प्रयोजन यह है कि वे हरिलालको उसके निकट-अतीतके जीवनके आधार पर परखे और अगर वे देखें कि उसका धर्म-परिवर्तन आत्मशून्य है और उसमें सचाई नही है तो उससे वे साफ-साफ वैसा कह दे और उसे हरगिज न अपनायें। अगर उन्हे उसमे ईमानदारी दिखाई दे, तो उन्हे चाहिए कि उसे सासारिक प्रलोभनोसे बचाये, ताकि अपनी ईमानदारीके कारण वह समाजका एक ईश्वर-भीरु सदस्य बन जाये। उन्हे मालूम होना चाहिए कि हदसे ज्यादा भोग-विलासमें फँसे रहने के कारण उसकी विवेक-बुद्धि मारी गई है, और वह सही और गलतमें, सत्य और असत्यमें भेद नही कर सकता। अगर वह एक नामकी जगह दूसरा नाम अपनाने से ईश्वरका एक सच्चा भक्त बन जाता है, तो मुझे इसकी चिन्ता नही कि लोग उसे हरिलाल कहे या अब्दुल्ला, क्योकि दोनो नामोका अर्थ ईश्वरभक्त ही है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ६-६-१९३६

९. पत्र : जमनालाल बजाजको

२ जून, १९३६

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मिला।

जुहूमें ठीक आराम मिलता हो – कसरत करते हो और खुराकका नियम-पालन करते हो तो मुझे सन्तोष है। पेडूके लिए पट्टी जरूरी ही है। तो भी डाक्टरकी सलाह लेनी हो तो लेना।

मै वर्धा १५ तारीखको पहुँचूंगा। मदालसाने[1] दो पक्तियाँ लिखकर ठीक बेगार टाली है। वहाँ जाकर वजन बढाया हो और मानसिक व्यथा समुद्रमें डाल दी हो तो भले ही पत्र न लिखे।

1. जमनालाल बजाजकी पुत्री।

ओम[1] कहाँ है? श्रीमन्‌का हिन्दी काव्य-सग्रह[2] तो मेरे पास है ही। मैं थोडा लिख भेजूँगा। हरिलालके बारेमें पढा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २९८२) से।

१०. पत्र : परीक्षितलाल ल० मजमूदारको

२ जून, १९३६

भाई परीक्षितलाल,

साथका पत्र[3] तुम्हारी जानकारीके लिए है। मैंने उन्हे लिख दिया है कि अपने सुझाव तुम्हारे सामने रखे और अगर बापा भडोच जाये तो उनके सामने भी रखें।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

हम १३ तक यही रहेगे।

इस पत्रका यह अर्थ नही है कि तुम्हे इस व्यक्तिको रख लेना है। मैं तो उसे पहचानता ही नही हूँ। यह जवाबदेही तुम्हारी ही है। जगजीवनदासको इसी हदतक जवाब दिया है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०३९) से।

११. पत्र : अबुल कलाम आजादको

[२ जून, १९३६ के पश्चात्][4]

प्रिय मौलाना साहब,

यदि आप सलग्न कागज पढ चुके है तो मैं चाहूँगा कि आप उसमे उठाई गई बातो पर अपनी सुविचारित राय दे। क्या इस तरहका धर्मान्तरण इस्लाममें न्यायसंगत माना गया है? इसके लिए जो तरीका अपनाया गया है, क्या वह वैध

१. जमनालाल बजाजकी पुत्री।
२. रोटीका राग; देखिए "पत्र: श्रीमन्नारायण अग्रवालको", १३-७-१९३६।
३. यह उपलब्ध नहीं है।
४. देखिए "वक्तव्य: समाचारपत्रोंको", २-६-१९३६।

है? इस प्रकरणको जिस तरह प्रचारित किया जा रहा है, क्या वह उचित या सहन करने योग्य है? अपनी सम्मति आप स्वय प्रकाशित करवायेंगे या मुझे इसकी अनुमति देंगे?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य प्यारेलाल

१२. पत्र : अमृतकौरको

४ जून, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

तुम नामजद नही की गईं, इसके लिए मैं तुम्हें बधाई देता हूँ। तुम्हारे सिर पर जितनी जिम्मेदारियाँ है उनमें से कुछ स्वय छूट जायें, तो इसमें लाभ ही है।

जहाँतक वाई० एम० सी० ए० का सम्बन्ध है, पूरी जानकारी पाये बिना मैं कोई मत व्यक्त नही करूँगा।

तुम्हारे लिए हाथीदाँतके सामान आज मैंने स्वय चुन लिये हैं। दुकानवाले तुम्हें सामान भेज देंगे, साथ ही बीजक भी। अगर चुनाव अच्छा नही है या सामान तुम्हारी रुचिके अनुकूल नही है तो अपनेको ही दोष दे लेना कि ऐसे अनभिज्ञ आदमीको यह काम सौंपा। अपनी राय बेहिचक जताना। ठीक पता दे दिया गया है।

बंगलोरमें भी मौसम ठंडा ही है।

मैंने मुसलमान मित्रोंके नाम एक काफी लम्बा पत्र लिखा है। मैं देखता हूँ कि यहाँके अखबार समूचा पत्र छापनेसे घबराते हैं। यदि कही नही छपा तो तुमको भेज दूँगा।

सप्रेम,

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५७६) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ६३८५ से भी

१. जालंधर नगरपालिकाके लिए।

१३. पत्र : अमृतकौरको

५ जून, १९३६

मूर्ख रानी,

तुम्हारा १ तारीखका पत्र अभी आया है। "खाली बोतलों" की आवश्यकता सम्भवत' मगनवाड़ीसे अधिक सेगाँवमे है। किन्तु सेगाँवसे पहले मैं जिस प्रकार मगनवाडीमे रहता था, वह स्थिति सेगाँवमें रहने लगने के कारण बदली नही है। मै सेगाँव मे रहते हुए भी उसी प्रकार मगनवाडीमें हूँ। पर तुम बोतले पाने के लिए कोई खास प्रयत्न मत करना। तुम्हारे पास जो फालतू बोतलें हो उन्हे आते समय अपने साथ लेती आना। उस्तरोको चाकूकी तरह इस्तेमाल नही किया जाता, उनसे हजामत ही की जाती है। आओगी तब चाकूके नमूने देखना। हाँ, मै चाहे जहाँ भी होऊँ, तुम्हारे वाल्टेयर जाते और लौटते समय दोनो बार यहाँ एक कोना तुम्हे रहने को मिल जायेगा।

आत्म-प्रशंसा भी कोई प्रशंसा है! और जब कोई हमेशा यह दावा करे कि वह किसीके दबावमें नही आ सकती, तो सुननेवाले के मनमे कुछ शक तो हो जायेगा। जे० के अनुसार तुम एक ऐसी व्यवस्थाकी अग हो जिसका आधार ही जबरदस्ती है। इसलिए तुम किसी की जबरदस्ती स्वीकार न करने का दावा जितना कम करो उतना ही अच्छा!!

खेसको वापस तुम्हे लौटाना तो महा-महा मूर्खता थी। क्या लेस भी तुम्हे मिल गई। बेचारे जेराजाणीने मुझे अपने उस पत्रकी प्रति भेजी है जिसमें उसने अपने आदमियोको लेस तुम्हे और खेस मुझे भेजने को लिखा था। यह तो अच्छा मूर्खताका चक्कर चला। कही यह छूत तुमसे तो नही आई है? खैर, भेजनेवाले को प्रतिवादका कडा पत्र लिखो। और उसे भेजने पर पैसे मत खर्च करना, अपने साथ लेती आना। आज्ञा अवश्य मानना।

सप्रेम,

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५७७) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६३८६ से भी

१४. पत्र : मिर्जा इस्माइलको

बंगलोर

५ जून, १९३६

प्रिय सर मिर्जा,

पत्रके लिए बहुत धन्यवाद। उसे पढकर आपसे यह कहने की हिम्मत कर रहा हूँ कि आप निम्नलिखित बातें महाविभवके समक्ष प्रस्तुत कर दें।

मुझे मालूम हुआ है कि दरबार लगता है तो हरिजनोंको उसमें भी शामिल नहीं होने दिया जाता। इस प्रतिबन्धके लिए हिन्दू-धर्ममें मुझे कही कोई औचित्य दिखाई नहीं देता। अगर राहत देने के रास्तेमें उचित और जिसका कोई निराकरण नही किया जा सके ऐसी बाधा न हो तो आशा करता हूँ यह प्रतिबन्ध हटा दिया जायेगा।

मैं तो आपसे यह निवेदन ही करूँगा कि जिन शर्तोंपर सवर्ण हिन्दुओके लिए मंदिरोंके द्वार खुले हुए हैं उन्ही शर्तोपर हरिजनोके लिए भी राज्यके सभी मन्दिरोके द्वार खोल देना आवश्यक है।

मुझे आशा है, हमारे बंगलोरसे रवाना होने से पहले हमारी मुलाकात हो पायेगी। मैं इस महीनेकी १२ तारीखको चलने की उम्मीद रखता हूँ।

हमारा जितना आतिथ्य-सत्कार हो रहा है उसके लिए एक बार फिर आपको धन्यवाद देता हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल

१५. पत्र : नारणदास गांधीको

५ जून, १९३६

चि० नारणदास,

कनुसे बात करने के विचारसे आज तक तुम्हारा पत्र दबाये रखा। कल पर्याप्त बातचीत हो गई। फिलहाल तो उसकी इच्छा मुझसे दूर रहने की नही होती। पडितजी[1] से खूब सगीत सीख लेने की इच्छा तो है ही। फिर भी विशेष इच्छा यही है कि मेरे पास रहकर जो सीखा जा सकता है सो सीखे। मैंने तो उसे अभयदान दे दिया है कि जब उसका मन मेरे पास रहने से भर जाये या पडितजी अथवा किसी दूसरेसे कोई खास चीज सीखना चाहे तो मै उसे खुशीसे छोड़ दूंगा। मेरी समझमें अभी तो इतना ही काफी है। मै देखता तो रहूँगा ही।

उसका मन स्वच्छ है किन्तु किशोर ही ठहरा; कितनी ही बार मन उद्वेगसे भर जाता है; किन्तु वह होता है क्षणिक। इसका कोई खास कारण होता हो सो नही है। उसकी-सी उम्रमे क्या हम सबको ऐसा ही कुछ नही होता?

शालाके विषयमे मेरी यह राय पक्की होती जा रही है कि अगर वह स्वावलम्बी न हो सके तो हमारी प्रवृत्ति उसे बन्द करने की बननी चाहिए। स्वावलम्बी न होने का यह अर्थ निकलेगा कि हम उसे स्वार्थवश चला रहे है। हम तो यह मानते है कि ज्ञान जिज्ञासुको ही दिया जाना चाहिए। अवश्य ही अगर हमारे पास ऐसे विद्यार्थी हो जो ज्ञान पाना तो चाहते है किन्तु खर्च नही निकाल सकते तो उनके लिए दान माँगना ठीक है। किन्तु अगर ऐसे जिज्ञासु मिले और वे उत्साहके साथ हमारे विचारोके अनुसार चले तो वे आर्थिक दृष्टिसे एक वर्षमे अपना पूरा खर्च निकाल सकते है। अमेरिकामे तो ऐसी बहुत-सी सस्थाएँ चलती है। इनमे विद्यार्थी प्रवेश लेने के बादसे ही अपने खानेकी व्यवस्था के लिए योग्य शरीरश्रम करते है और साथ-साथ ज्ञानोपार्जन भी करते है। इस विचार-विमर्शको तुम पत्र द्वारा चलाये रखना चाहो तो वैसा करना।

कनुने यह पत्र देखा। वह कहता है पंडितजी से सगीत सीखने की तीव्र इच्छावाली बात भी सही नही है। अगर उसे अहमदाबाद जानेका आदेश ही दे दिया जाये तो वह शायद शकरराव[2] व्यासके पास गाधर्व विद्यालयमे संगीत सीखने लगे। किन्तु ऐसा करने की उसकी इच्छा है, यह नही कहा जा सकता। उसकी तो एक ही इच्छा

१. नारायण मोरेश्वर खरे।

२. साधन-सूत्रमें शकरलाल है, जो भूल है।

है — मेरे पास रहना और जो मैं कहूँ, सो करते रहना। आज उसके मनकी हालत ऐसी है। मेरी देखरेख रहेगी। उसे लेकर कोई चिन्ता करना जरूरी नही है। उसने तुम्हे लम्बा पत्र लिखा है।

हरिलालके बारेमें समाचारपत्रोंको लिख भेजा है; मगर प्रकाशित अभी कुछ नही हुआ है। प्रकाशित होगा, ऐसा मानकर यहाँ नही लिख रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

वहाँकी कताईकी प्रगति उच्छी कही जायेगी। सरदारके बारेमें उनसे बात करूँगा। सधे तो वह यहाँ आ ही जाये।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/३) से। सी० डब्ल्यू० ८४९२ से भी; सौजन्य : नारणदास गाधी

१६. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

५ जून, १९३६

चि० गगाबहन,

तुम्हारा पत्र मिला। बच्चूभाईके[1] विषयमें पढकर दु.ख हुआ। जबतक वे खाट पर पड़े है तुम उन्हे छोड़ नही सकती। जुगतरामसे[2] कहना कि किसी होमियोपैथी जाननेवाले की सलाह ले। मेरी तो इसपर श्रद्धा नही है किन्तु इससे देवदासको लाभ हुआ था; और यहाँ एक कुशल डाक्टर[3] मिला था; उसने भी इस पद्धतिकी बड़ी तारीफ की। नुकसान तो उससे कुछ होता ही नही है; शायद फायदा हो जाये।

कुसुमका पत्र वापस भेज रहा हूँ। वह बोचासण जाये तो बहुत अच्छा। लीलावती आयेगी तो मैं उसे अवश्य प्रोत्साहित करूँगा। वर्धा पहुँचकर उससे बात करूँगा। अमतुस्सलाम वर्धामें नही है। वह तो दिल्लीमें ही है और उसके जल्दी दिल्ली छोडने की बात भी नही है। अगर वह तुम्हारे पास आये तो जरूर बडी मदद पहुँचा सकती है। उसे भी इससे लाभ होगा। उसे दिल्लीके पतेपर लिखना। वह गुजराती पढ लेती है। पता है : हरिजन निवास, किंग्जवे, दिल्ली।

१. गगाबहन वैद्यका भांजा।

२. बम्बईके एक प्रसिद्ध वैद्य।

३. कैप्टेन सी० डमन, जो ग्रेस मेडिकल मिशनमें चिकित्सा-विशेषज्ञ थे।

मैं जब गुजरात आऊँ तो मुझसे जरूर मिलना। वक्त निकाल लूँगा।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ६ : गं० स्व० गंगाबहेनने; पृ० ९०-१। सी० डब्ल्यू० ८८३१ से भी; सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

१७. पत्र : हीरालाल शर्माको

५ जून, १९३६

चि० शर्मा,

तुमको एक खत भेजा सो मिला होगा। तुमारा तार यहां मिला। उस बखत तुमने वर्धा तो पास ही किया होगा।

अमतुलसलाम दिल्ली मे बीमार है। वहा जाओ, तुमारे नये ज्ञानका प्रयोग करो और बाद मे जब आ सको वर्धा आ जाओ।

बापुके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

वर्धा १४को पहूंचेंगे।

बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृ० २५२ के सामने प्रकाशित प्रतिकृतिसे

१८. पत्र : अमतुस्सलामको

बगलोर सिटी
५ जून, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

तेरा खत मिला।

तेरे सामने मेरी कुछ चल सकती है? तबीयत खराब हो तो मेरे पास क्यो नही आती? वहां खराब तबीयतमे क्यो पड़ी है? शर्माको तो लिखा ही है; वह अब खुर्जा पहुँच गया है।[1]

वहाँकी खुराकके बारेमे समझा। फिलहाल तो सूचना करने लायक कुछ सूझता नही है। जो खाना चाहिए वह तू अगर नही खायेगी, तो मुझे बड़ा दु:ख होगा।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

वहाँ रहनेवाले लडकोसे एक बार खत लिखवा, फिर मैं लिखने लगूँगा। उनके नाम, ज्ञान वगैरह भी जानूँ तो अच्छा होगा।

सुकीर्ति कहाँ गई?

हम १४को वर्धा पहुँचेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१७) से।

१९. पत्र : राजेन्द्रप्रसादको

५ जून, १९३६

भाई राजेन्द्र बाबु,

साथ का खत पीयेर सेरेसोल्को[1] पहुंचा दो। तुमारा खत मैंने देखा था। जवाहरलाल के उत्तर की नकल तो मिली होगी। इस वखत हमारे बहुत-सी बाते और स्पष्ट करनी होगी।

तुमारा शरीर अच्छा रहता होगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९८७५) से; सौजन्य . राजेन्द्रप्रसाद

२०. कुष्ठ-रोगकी समस्या

वर्धा तहसीलमें काफी कुष्ठ-रोगी हैं। ग्राम-सेवकोंका बहुधा उनसे सम्पर्क पड़ता है। सेवकोका क्या कर्त्तव्य है? क्या वे बेखटके कुष्ठ-रोगियोसे मिले-जुले? वे कैसे इन अभागे लोगोकी सहायता करे? क्या इस रोगका कोई इलाज है? गम्भीर ग्राम-सेवकोके सामने इस प्रकारके रोजमर्राके प्रश्न उठते ही रहते हैं। इसलिए मैंने रेव० डोनाल्ड मिलरसे, जिन्हें मैं पुरुलिया कुष्ठाश्रमके कुष्ठ-रोगियोके बीच काम करनेवाले एक महान् कार्यकर्त्ताके रूपमें और वैसे भी वर्षोंसे जानता हूँ, सहायता माँगी और कहा कि वे ग्राम-सेवकोके लिए कुछ सरल निर्देश दे। उन्होने खुशीसे ऐसा करना स्वीकार कर लिया, और उसका परिणाम है एक पत्र-माला, जो उन्होंने एक

१. इंटरनेशनल वॉलंटरी सर्विसके अध्यक्ष और स्विस शान्तिवादी, जो बिहारमें सहायता-कार्य करने के उद्देश्यसे भारत आये थे।

काल्पनिक ग्रामसेवकके नाम लिखी है। इस पत्र-मालाका पहला पत्र नीचे दिया जा रहा है।[1]

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ६-६-१९३६

२१. झूठमूठका डर

जब मैंने अखबारमे एक खबर देखी — जो उस अखबारके ही अनुसार हालमे पण्डित जवाहरलाल नेहरूने बम्बईमे खादी-भण्डारका निरीक्षण करते समय खादीके बारेमें जो कहा था — उसका सक्षिप्त विवरण था, तो उसपर मै विश्वास नही कर सका। खादीके सम्बन्धमे उनकी जो पुख्ता राय मै समझता था, उससे तो उस विवरणमे कही बातें मुझे बिलकुल उलटी मालूम हुई। इसलिए मैंने वह कतरन पण्डितजी के पास भेज दी,[2] और, उन्होने फौरन उसका यह जवाब भेजा:

> बम्बईमें मैं दर्जनों सभाओंमें — मुझे संख्या याद नहीं — गया और वहाँ बोला था और मेरे पास भाषणोंकी रिपोर्टें देखनेका समय नहीं था। बेशक, मैं हिन्दुस्तानीमें ही बोला था, और उसकी रिपोर्ट लेना कोई आसान काम नहीं था। फिर, जो रिपोर्टें संक्षेपमें दी जाती हैं उनसे तो गलतफहमी पैदा होने की और भी गुंजाइश होती है। फिर भी खादी पर मैंने जो कहा था उसकी रिपोर्ट मुझे जब दिखाई गई, तब मैंने उसी दिन या दूसरे दिन इस भ्रमका निराकरण कर दिया। मैंने जो कहा था वह यह था कि आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि कई कारणोंसे हमारे आजके कार्यक्रममें खादी एक महत्त्वकी चीज है, और उसे जरूर प्रोत्साहन मिलना चाहिए। मगर मेरा खयाल यह नहीं है कि खादी हमारी गरीबीकी समस्याको अन्ततः हल कर सकेगी, खासकर अगर समाजका मौजूदा ढाँचा बना रहा। किसान जो भी सुधार करता है, जो भी अतिरिक्त पैसा कमाता है, वह सब इस प्रणालीकी बदौलत जमींदारके पास चला जाता है। मगर मैंने यह भी बता दिया था कि यह सैद्धान्तिक दलील आजकी हालत पर लागू नहीं होती। मैंने कहा था कि हालाँकि मैं बड़े-बड़े कल-कारखानोंके पक्षमें हूँ, तो भी मेरा विश्वास है कि औद्योगीकरणके विकासके साथ भी हिन्दुस्तानमें गृह-उद्योगोंके प्रसारके लिए काफी गुंजाइश रहेगी। इसमें तो शक नहीं कि आज अनेक दृष्टियोंसे इन गृह-उद्योगोंका और भी ज्यादा महत्त्व है।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। यह पत्र और इस पत्र-मालाके अगले चार पत्र हरिजनमें प्रकाशित हुए थे, और बादमें द लेप्रासी प्रॉब्लम (कुष्ठकी समस्या) शीर्षकसे एक पुस्तिकाके रूपमें भी प्रकाशित किये गये थे।

२. देखिए खण्ड ६२, पृ० ४५७-५८।

सम्भव है कि खादीके हकमे पूरा-पूरा संरक्षण चाहनेवालों को इससे सन्तोष न हो। पर अखबारोमें छपी उस गलत रिपोर्ट और इस स्पष्टीकरणमें बहुत अन्तर है। सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओके भाषणोंकी ऐसी गलत रिपोर्टें छपना तो उनके नसीबमें ही लिखा है—और खासकर हिन्दुस्तानमें, जहाँ कि उन्हे किसी ऐसी हिन्दुस्तानी जबानमें बोलना पड़ता है जिसे रिपोर्टर लोग हमेशा ठीक-ठीक समझ नहीं पाते और अखबारोमें तार द्वारा भेजने के लिए जिसका अनुवाद उन्हे हमेशा अंग्रेजीमें करना पड़ता है। इसका मतलब यह है कि महत्त्वपूर्ण मामलोंमे नेताओके इस तरहके तथाकथित वक्तव्यो पर सहसा विश्वास कर लेने के बजाय लोगोको प्रामाणिक सूचनाकी प्रतीक्षा करनी चाहिए।

इस सम्बन्धमे मेरे पास जो पत्र आये हैं, उनसे मालूम होता है कि इस रिपोर्टने कुछ खादी-कार्यकर्त्ताओमें भारी बेचैनी पैदा कर दी है। मै चाहता हूँ कि मै उन्हें सावधान कर दूँ। यह सौभाग्यकी बात है कि पण्डित जवाहरलाल ने दरअसल जो-कुछ कहा है वह तमाम व्यावहारिक प्रयोजनोके लिए सन्तोषजनक है। वे इतने भले हैं कि अगर किसी चीजमे उनका खुदका विश्वास नही होता तो किसीको खुश करने के लिए उसके पक्षमें वे एक शब्द भी नही कहते है। इसलिए उनके पत्रका जो उद्धरण मैंने ऊपर दिया है उसका वजन इस बातसे और भी बढ जाता है कि कांग्रेसके कर्णधारकी राय खादीके पक्षमें है। मगर खादी-कार्यकर्त्ताओको यह मालूम होना चाहिए कि कांग्रेसके बाहर ऐसे अनेक महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक कार्यकर्त्ता है, जो खादीकी बुराई करते है और उसे कभी छूने तकके लिए तैयार नही है। उन्हे इस बातका भी पता होना चाहिए कि खुद कांग्रेसमें भी कुछ ऐसे लोग है जिनका खादीमें विश्वास नही है, जो हमेशा उसका मजाक उड़ाते रहते हैं, और जबतक वे कांग्रेसके कार्यक्रममें से उसे निकाल देनेमे सफल नही होते तबतक वे उसका उपयोग महज अनुशासनकी दृष्टिसे कर रहे हैं। इन सब रुकावटोके होते हुए भी खादीने प्रगति की है। इसमे सन्देह नही कि अगर हमे ऐसे विरोधोका सामना न करना पड़ता तो खादीने इससे कही अधिक प्रगति की होती। यह बड़ी तसल्लीकी बात है कि पण्डित जवाहरलाल खादीमे इतना भी विश्वास रखते हैं। पर अगर वे खादीके बारेमे और अध्ययन करने पर यह कह देना जरूरी समझे कि वे खादीके विरुद्ध हैं, तो उस वक्त खादी-कार्यकर्त्ताओंको क्या करना चाहिए? मुझे आशा है कि इन १६ वर्षोंके खादीके अनुभव और उसकी सम्भावनाओके ज्ञानके बाद हमारे पास खादीमें दृढ़ विश्वास रखने-वाले ऐसे लोग काफी संख्यामें तैयार हो गये हैं जिनकी खादीके प्रति श्रद्धा खादीके अमलके उनके खुदके ज्ञान पर आधारित है। अगर अब भी उनकी श्रद्धा दूसरोंसे ग्रहण की हुई है, तो उस महान् पत्रकारकी भविष्यवाणी सच ही निकलेगी कि गांधीकी मृत्युके साथ ही खादीका भी खातमा हो जायेगा और ये चरखे मृत्युके उपरान्त तोड़फोड़ दिये जायेंगे, और वे उसकी मृत देहका अच्छी तरह दाह-संस्कार करने को काफी होंगे।

झूठमूठके डरसे पैदा हुई यह दिलकी कमजोरी अगर खादी-कार्यकर्त्ताओकी दुर्बल श्रद्धाका चिह्न है तो यह एक अपशकुन है। मैं तो उन्हें यह राय दूंगा कि वे अपनी

खुदकी स्थितिको जाँचे और अगर खादीके महान् आर्थिक महत्त्वके बारेमें उन्हे सन्देह हो तो अपने विचारोमे उचित संशोधन कर डाले। इस खयालसे कि उनकी इस जाँचमे कुछ मदद मिले, मै सोचता हूँ कि अगर हो सका तो अगले अंकमें[1] हिन्दुस्तानके लिए विभिन्न दृष्टिकोणोंसे खादीके महत्त्व पर मै अपने विचार प्रकट करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ६-६-१९३६

२२. गाँवमें भारतकी झलक

पूर्व खानदेशमें फैजपुर गाँवके पास खिरड़ी नामक एक अन्य गाँवमे कांग्रेसका आगामी अधिवेशन करने का महाराष्ट्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीने जो निश्चय किया है उसके लिए मैं उसे बधाई देता हूँ। योजना अगर ठीक तरहसे तैयार की गई और तैयारियाँ पहलेसे शुरू हो गईं तो हर साल इस राष्ट्रीय समारोहपर जितना पैसा खर्च होता है उससे कम ही खर्चमें स्वागत-समिति कांग्रेस-अधिवेशनको अधिक सुन्दर और शानदार बना सकेगी। इसके लिए जिन शर्तोका पालन जरूरी है वे स्पष्ट हैं। स्वागत-समितिका ध्येय गाँवमे शहर बसाने का नही होना चाहिए। ऐसा करना तो [देहातमे कांग्रेस अधिवेशन करने की] सारी कल्पनाके साथ हिंसा करना होगा। हमे यह आशा करनी चाहिए कि कांग्रेस-अधिवेशनमे वहाँ शहरोके हजारो आदमी इकट्ठे होगे। कोई आदर्श गाँव उनकी जिस प्रकारकी पहुनई कर सकता है उस प्रकारकी पहुनई करने का ध्येय होना चाहिए। इसे हम यों भी कह सकते है कि अगले दिसम्बरमे खिरडी गाँवमे ग्रामीण भारतका छोटा-सा रूप नजर आना चाहिए। अगर विचारपूर्वक योजना बनाई गई तो संयोजकगण देखेगे कि एक आदर्श गाँवमे आरोग्यतापूर्ण सुविधाएँ, उपयुक्त भोजन और सफाईकी ठीक व्यवस्था और कोई बीमार पड़े तो उसकी दवा-दारूका ठीक-ठीक इन्तजाम आदि बातोकी सचमुच कोई कमी नही हो सकती। ये सुविधाएँ आज सभी गाँवोमें नही मिल सकती। इसीसे मैंने यहाँ "आदर्श गाँव" शब्दोका प्रयोग किया है। आरोग्यपूर्ण जीवनके लिए जो बाते जरूरी है उनकी कमी आदर्श गाँवमे होनी ही नही चाहिए। मगर गाँवके अन्दर हरएक सुविधा गाँवके स्तरकी ही होनी है। गाँव की सुविधाका मतलब कभी भी घटियापन नही होता, लेकिन साथ ही उसमे तड़क-भड़क भी नही होनी चाहिए। रोशनीके लिए मैं बिजलीकी बत्तियोकी सलाह दूँगा, हालाँकि हमारे गाँवोमें बिजलीकी सुविधा होने मे अभी बहुत समय लगेगा। कुल मिलाकर सारा काम ऐसा होना चाहिए जिससे शहरके लोगो और देहातियो, दोनोको पदार्थ-पाठ मिले। कांग्रेसके अधिवेशनमे आकर्षणकी मुख्य चीज तो प्रदर्शनी ही होगी। लखनऊ-कांग्रेसमें जो प्रदर्शनी हुई थी वह निस्सन्देह अपनी तरहकी पहली ही प्रदर्शनी थी। इस बातको ध्यानमे रखते हुए मानना पडेगा कि वह निस्सन्देह

१. देखिए "क्या खादी आर्थिक दृष्टिसे टिक सकती है?", २०-६-१९३६।

काफी सफल रही। आगामी प्रदर्शनीमें उससे भी अधिक सफलता मिलनी चाहिए, फिर भी जहाँतक मैं सोच सकता हूँ, उसपर उतना पैसा खर्च करने की जरूरत नही जितना कि लखनऊकी प्रदर्शनीपर किया गया था। प्रदर्शनीको सफल बनाने के लिए कलाविदो, इंजीनियरो और इसी तरहके दूसरे पेशेवालोंको और भी बड़े पैमानेपर स्वेच्छासे अपनी सेवाएँ मुफ्त देनी होंगी। उन्हे इस कामके लिए, जो मेरी दृष्टिमें एक पवित्र काम है, ग्राम-मूलक दृष्टि लेकर आगे आना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ६-६-१९३६

२३. अप्रमाणित खादीके विक्रेताओंके लिए

दुर्भाग्यसे पता चला है कि अखिल भारतीय चरखा सघ द्वारा कतैयोके वेतनमे की गई वृद्धि और फलस्वरूप खादीके कुछ विशेष प्रकारके कपडोके मूल्यमें हुई मामूली वढोतरीके कारण कितने ही अनधिकारी खादी-विक्रेता अपनी खादीको अ० भा० च० स० द्वारा प्रमाणित जताकर बेच रहे है। उनमे से कुछ तो अपने इस राष्ट्र-विरोधी और अमानवीय कार्यको ठीक बताने में भी नही हिचकते और कहते है कि अ० भा० च० सं० कोई पंजीकृत संस्था नही है।[1] इस विषयमे वास्तविक कानूनी स्थिति क्या है, इसे जानने की गरजसे अपने पुराने कानूनी ज्ञानका भरोसा न करके श्री राजगोपालाचारीने एक अग्रगण्य वकीलसे सलाह माँगी। उन वकील महोदयने इस प्रश्नपर अपनी जो पुख्ता राय दी वह निम्न प्रकार है :

> मुझे कोई सन्देह नहीं है कि तिरुपुरके व्यापारीको कानूनके विषयमें गलत सलाह मिली है। ऐसे मामलेमें कानून अपंजीकृत संस्थाओका भी उतना ही संरक्षण करता है जितना पंजीकृत संस्थाओका। अपने को, जो नहीं है, वह बतानेके लिए किसी अपंजीकृत नामका उपयोग करना जनताके साथ उतना ही बड़ा धोखा है जितना पंजीकृत नामका अनधिकृत प्रयोग करना। यह सच है कि किसी कानूनके अन्तर्गत पंजीकरण कराने के कानूनी परिणाम होते है और कानूनी संरक्षण मिलता है; परन्तु जहाँतक जनताको धोखाधड़ीसे बचाने का सवाल है, कानूनकी निगाहमें पंजीकृत या अपंजीकृत नामोंमें कोई अन्तर नहीं है। यह तो प्रत्यक्षतः बड़ी बेतुकी दलील है कि चूँकि कोई नाम पंजीकृत नहीं है इसलिए कोई भी व्यक्ति उसी नामको धारण करके मालको अ० भा० च० सं० द्वारा प्रमाणित कहकर बाजारमें बेचे। निषेधाज्ञा और क्षतिपूर्तिके लिए मुकदमा दायर किया जा सकता है। निषेधाज्ञा तो मिल जायेगी, परन्तु क्षतिपूर्तिके लिए यह

१. देखिए खण्ड ६२, पृ० ३४१-४२।

सिद्ध करना होगा कि ग्राहकोंने सामानको ऐसा मानते हुए खरीदा कि वह अ० भा० च० सं० द्वारा तैयार या प्रमाणित किया गया है।

यदि प्रमाणों-सहित औपचारिक कानूनी सलाहकी आवश्यकता हो, तो मैं वह जल्दी ही तैयार करवा दूँगा।

(ह०) टी० आर० वी० शास्त्री

ऊटी, २३ मई, '३६

ये नामी वकील और कोई नहीं मद्रासके भूतपूर्व ऐडवोकेट-जनरल श्री टी० आर० वेंकटराम शास्त्रियार हैं। आशा करता हूँ, अ० भा० च० सं० द्वारा प्रमाणित बताकर वास्तवमें अनधिकृत तौरपर खादी बेंचनेवाले व्यापारी श्री शास्त्रियारकी इस रायको ध्यानमें रखते हुए अपने इस व्यापारको, जिसे धोखाधड़ी बताया गया है, बन्द कर देंगे। हालाँकि मैं अदालतोंमें जाने के विरुद्ध हूँ, लेकिन यदि बेचारी बेजबान कत्तिनोंके हितमें आवश्यक हुआ, तो मैं यह सलाह देने में नहीं हिचकूँगा कि गरीब बहनोंको जान-बूझकर हानि पहुँचानेवाले लोगोंके विरुद्ध कानूनी कार्रवाई की जाये।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ६-६-१९३६

२४. पत्र : लीलावती आसरको

[६][1] जून, १९३६

चि० लीलावती,

तेरा पत्र मिला। मीराबहनकी खूब सेवा करना। अगर तू प्रेमाबहनसे मिल आती, तो ठीक होता। शक्तिसे बाहर कुछ मत करना। बातें मत करना; काममें ही लगी रहना। बिना कामके कुछ मत बोलना। सेगाँव तो उतना ही सामान ले गई होगी जितनेकी जरूरत रही होगी।

आशा है, तेरा शरीर अच्छा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३४३) से। सी० डब्ल्यू० ६६१८ से भी; सौजन्य : लीलावती आसर

१. साधन-सूत्रमें अस्पष्ट है। जान पड़ता है कि यह वही पत्र है जिसका उल्लेख ६ जून, १९३६ को मीराबहनको लिखे पत्रमें किया गया है। देखिए अगला शीर्षक।

२५. पत्र : मीराबहनको

६ जून, १९३६

चि० मीरा,

मुझे एक ही डाकसे तुम्हारी तीन चिट्ठियाँ मिली।

देवकपास के बीज बंगाल और अन्य स्थानोंसे मँगवाये जा सकते है। मै सतीश बाबूको लिख रहा हूँ।

मुझे वर्धासे पाखानेकी तिपाई और पेशावका वर्तन या चौकी लाने का विचार पसन्द नही है। कमोडके बजाय एक तिपाईके बीचमें छेद करके आधा पीपा या बाल्टी या ऐसी ही और कोई चीज रख दी जाये। पेशावके लिए कोई बोतल या देहाती धातुका वर्तन काममें ले सकते है और चौकीके लिए कोई सेगाँवकी बनाई हुई बिलकुल सस्ती और कामचलाऊ चीज हो सकती है। इन चीजोंके बारेमें जल्दी करने की जरूरत नही है। मै जो चाहता हूँ वह अगर तुम्हारी समझमें अच्छी तरह न आया हो, तो मेरे लौटनेतक प्रतीक्षा कर सकती हो। लकड़ीकी खटिया लाई जा सकती है और लोटा भी। तिपाई वही कामचलाऊ ढंगसे बनवा ली जानी चाहिए। एक और गायकी जरूरत होगी। इस बारेमें छोटेलालकी सलाह लेना।

मैंने तुम्हे बतलाया था या नही कि प्रस्थानकी तारीख १३ नही, १२ है? अत. ईश्वरकी इच्छा रही तो हम लोग रविवार १४ तारीखको पहुँचेंगे।

यह पत्र तुम्हारे पास पहुँचेगा, उस बीच लीलावतीके वहाँ पहुँचने की आशा रख सकती हो। साथका पत्र उसके लिए है।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३४५) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९८११ से भी

२६. पत्र : एस० अम्बुजम्मालको

बंगलोर सिटी
६ जून, १९३६

चि० अम्बुजम,[1]

तुम्हारा पत्र मिला।

पद्मा इतनी अच्छी साबित हो रही है और सन्तोष दे रही है, यह जानकर बड़ी खुशी हुई। तुम किचीके[2] बारेमें जो-कुछ कह सकती हो, उसीसे तुम्हे बेटोंके बारेमे राय नही बनानी चाहिए। बेचारा किची! उसका विकास बहुत दुर्भाग्यपूर्ण ढगसे हुआ है। हमें आशा करनी चाहिए कि पद्माकी अच्छाईकी छूत किचीको भी लगेगी और वह अच्छा बन जायेगा।

तुम एस्थरसे मिलने गईं, यह जानकर खुशी हुई। अगर तुम्हें लगा हो कि तुमसे मिलकर वह प्रसन्न हुई तो मैं चाहूँगा कि तुम सुविधापूर्वक जितनी बार भी उसके पास जा सको, जाओ।

पिताजीकी लगातारकी बीमारीके बारेमें जानकर दु.ख हुआ। कितना अच्छा हो, अगर वे प्राकृतिक चिकित्सा करायें! मेरी ओरसे उनसे इसका जिक्र करना। मैं समझता हूँ, सही पथ्य तथा जल और धूपके उपचारसे उन्हें बीमारीसे छुटकारा पाकर पूर्ण स्वस्थ हो जाना चाहिए।

सस्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

१२ तक बंगलोर सिटीमे हूँ।

मूल अंग्रेजीसे : अम्बुजम्माल पेपर्स, सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. एस० श्रीनिवास अय्यंगारकी पुत्री। सम्बोधन मूलमें हिन्दीमें है।
२. एस० अम्बुजम्मालका पुत्र।

२७. पत्र : प्रभावतीको

६ जून, १९३६

चि० प्रभावती,

तेरा २९ का पत्र मिला। मैंने तुझे इसका जवाब एक बार लिख दिया है। वह पत्र अबतक मिल गया होगा। दूध फिरसे शुरू कर दिया, यह ठीक किया। चार रतल लेना। किसी प्रकारके फल भी मिलते हैं क्या? तू घूमने जाती है या नहीं? लगता है कि परिवारकी सेवामें संलग्न है। अपनी प्रार्थना आदिका कार्यक्रम कभी भंग मत होने देना। [लोगोंको] चरखा सिखा देना। वहाँ तो रामायण जाननेवाले बहुत लोग होंगे। उनसे रामायण पढ़नेका स्वर सीख लेना। जब तू व्यवस्थित हो जायेगी तब समय मिलने लगेगा। तू तो पाँच-पाँच मिनटका भी उपयोग करना सीख चुकी है। वहाँ 'हरिजनबन्धु' तो आता ही है न? जयप्रकाशकी चिट्ठी आये अथवा न आये, तू तो उसे लिखती ही रहना।

तुझे पीजना सीख लेना चाहिए।

मथुरादासको[1] मधुबनी, पोस्ट आफिस चम्पारनके पतेपर लिखेगी तो वह तुझे जो चाहिए सो भेज देगा।

बाहरकी चाहे जितनी चिन्ता क्यों न रहे, आन्तरिक शान्ति कभी मत छोड़ना।

मैंने हरिलालके विषयमें अखबारमें बहुत लिख दिया है, इसलिए यहाँ नहीं लिखता। अमतुस्सलामको पत्र दिल्ली लिखना। पता है: हरिजन-निवास, किंग्जवे, दिल्ली।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

१२ तक बंगलोर सिटीमें और १४ को वर्धा।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४७२) से।

१. मथुरादास आसर, आश्रमके एक खादी-विशेषज्ञ जो काम करने बिहार चले गये थे।

२८. पत्र : मीराबहनको

[६ जून, १९३६ के पश्चात्][1]

चि० मीरा,

तुम्हारा ३ तारीख का पत्र अभी मिला। हाँ, सजीलाके लिए अलग छप्पर होना चाहिए ताकि तुम्हारा बरामदा खाली रहे। इस विषयपर फिर सोचने के बाद लगता है कि यूरोपीय मेहमानोके लिए मगनवाडीसे कमोड और पॉट मँगवा लेना समझदारी होगी। अतः यह बात उस योजनाके अतिरिक्त है जो मैंने सुझाई है।

यदि तुम्हे मोर मिल सकें तो मुझे कोई आपत्ति नही है, वैसे मै उनकी आदतोसे बिलकुल अनभिज्ञ हूँ।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३४६) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९८१२ से भी

२९. पत्र : ख्वाजा अब्दुल मजीदको

स्थायी पता: वर्धा
७ जून, १९३६

कमाल है! एक दूसरे विषयपर आज मैं तुम्हें पत्र लिखने ही वाला था कि तुम्हारा सुखद पत्र मिला। तुम्हारा पत्र पाना तो किसी पुराने बिछुड़े हुए मित्र या कहना चाहो तो भाईसे मिलने के समान है; या दोनो ही समझ लो।

डॉ० अन्सारीकी मृत्युके अवसादमें मुझे तुम्हारा, शुएब तथा जाकिर हुसैनका ध्यान आया था। मैंने जाकिरको लम्बा पत्र[2] लिखनेका निश्चय किया। उसके उत्तरकी रोज प्रतीक्षा है।

आसफअलीने मुझे कोई स्मारक बनाने के विषयमें लिखा था। मैंने उनसे कहा कि राजनीतिक परिस्थितियोको देखते हुए इतने महान् पुरुषका राष्ट्रीय स्मारक बनाने का यह उपयुक्त समय नही है। मोतीलालजी के देहान्तपर भी मैंने यही राय दी

१. पत्र की विषयवस्तु से स्पष्ट है कि यह "पत्र: मीराबहनको", ६-६-१९३६ के बाद लिखा गया होगा।

२. देखिए खण्ड ६२, पृ० ४७५-७६।

थी। मेरे ध्यानमें धनकी समस्या नही, राजनीतिक स्थिति है। यदि लोग सहज प्रेरणासे पैसा भेजें और हमारे पास काफी धन एकत्रित हो जाये तो व्यक्तिगत प्रशसको और उपकारियों (कोई ठीक शब्द अभी नही सूझता) की ओरसे एक स्मारक बनवानेके लिए हम उसका उपयोग कर सकते हैं। खैर, जबतक तुम्हारा उत्तर न आये या तुम स्वय न मिलो तबतक यह चेक[1] सहेज रखता हूँ।

तुम्हारी राजनीतिकी व्याख्या बडी रोचक है। "ब्रूट्स, तू भी!"—इस वाक्यको बिलकुल शब्दशः लागू न मान लेना। बड़े-बडोका कैसा पतन हुआ है? तुम्हें याद है, तुमने अन्सारी होटलमे क्या कहा था? परन्तु मै तुम्हें दोष नही देता। तुम्हारी विशुद्ध ईमानदारीके लिए मेरे पास केवल प्रशसा है। हाँ, हमारी मुलाकात अवश्य होनी चाहिए। १६ जूनके बाद किसी भी दिन वर्धा आ जाओ। तुम्हे पता होगा कि इस मासके अन्तमे समूची कार्य-समिति वहाँ होगी। पर मै जानता हूँ, तुम इस विषयपर पहले मेरे साथ चर्चा करना चाहते हो। इस कारण तुम जितनी जल्दी आओ उतना ही अच्छा।

अच्छा, अब मै उस विषयपर आता हूँ जिसके बारेमे लिखनेवाला था। हो सकता है, तुमने मेरे ज्येष्ठ पुत्र हरिलालके तथाकथित धर्मान्तरण पर मेरा लिखा हुआ पत्र नही पढ़ा हो, ऐसा सोचकर मै इसके साथ उसकी कतरन भेजता हूँ। पढ़ो और अपने विचार मुझे बताओ। क्या ऐसा धर्म-परिवर्तन धर्म-सम्मत और सही है? उस-जैसे नैतिक दृष्टिसे खोखले और लम्पट मनुष्यकी जो तारीफ की जा रही है, क्या वह उचित है? मुझे हरिलाल पर कोई क्रोध नही है। वह जो-कुछ करता है उसके लिए वह जिम्मेदार नही है। पिछले तीन महीनोमें उसके जीवनमे बड़ी उथल-पुथल हुई है। तुम्हे ज्ञात होना चाहिए कि जो-कुछ हुआ है, और हो रहा है, वह आवारा लोगोंका काम नही है। समाजमें जिम्मेदार मुसलमान समझे जानेवाले लोग यह सब कर रहे है। धर्म और इस दुखी देशकी खातिर इस विचित्र स्थितिपर तुम गौर करो, उसमे रुचि लो। यदि तुम इस घटनाका कुछ और अर्थ लगाते हो तो मुझे स्पष्ट बताने में सकोच मत करना।

[अग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य: नारायण देसाई

१. ख्वाजा अब्दुल मजीदने डॉ० अन्सारीके स्मारकके निमित्त १,००० रु० का एक चेक भेजा था।

३०. पत्र : अमृतकौरको

७ जून, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

तुम्हे भेजे गये सामानके घटे मूल्योको देखकर घबराना मत। दाम घटाने का मैंने ही आग्रह किया है, क्योकि तुम्हे ये चीजे स्वदेशी-प्रचारके लिए बेचनी है और यदि सारा सामान बेच न पाओ तो तुम्हे भी घाटा उठाना पड़ सकता है। इससे अपने राजसी गर्वको ठेस न पहुँचने देना। तुम्हे पूरा विक्रय-मूल्य और डाकखर्च इत्यादि लेना चाहिए; व्यापारके मामलेमे बेवकूफी नही चलेगी। ऐसे कामोमे तुम राजकुमारी नही, बल्कि साधारण सेविका और न्यासी हो। तुम्हे जो पत्र और बिल भेजा गया है उसकी प्रति मेरे पास है।

आशा है, तुम अब बिलकुल स्वस्थ हो गई होगी।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५७८) से, सौजन्य. अमृतकौर। जी० एन० ६३८७ से भी

३१. पत्र : एफ० मेरी बारको

७ जून, १९३६

चि० मेरी,

तुम्हारे भेजे कागजोमे से हरिद्वारसे आया पत्र वापस करता हूँ। बाकी सब रखूँगा।

तुम्हारे पत्र और मेरे पत्रोंके गुरुकुल पहुँचने से पहले ही सुमित्रा नागपुरके लिए रवाना हो चुकी थी। अब वे सब तुमको भेजता हूँ। यदि गोपाल वहाँ है तो उसको सम्भवतः उसका पता मालूम होगा।

जबतक हमें पता नही चलता कि ताराके[1] वसीयतनामेका[2] क्या करना है तबतक उसका अन्य सामान और दूसरे कागज-पत्र ज्यों-के-त्यो रहने देने चाहिए।

१. मेरी चेजली, जो बद्री-केदार जाते हुए रास्तेमें निमोनियासे बीमार होकर स्वर्गवासिनी हो गई थीं; देखिए खण्ड ६२, पृ० ४६६-६७।

२. देखिए खण्ड ६२, पृ० ४७०।

हमें पहले तो उसके सम्बन्धियोंका पता लगाना है, जिनको सम्भवतः उसके सामानमें रुचि हो। साइकिल तो बेशक गोपाल इस्तेमाल करे। ऐसे ही तुम सितार उपयोगमें ला सकती हो।

मुझे भय है कि हमें डाक्टर नूरजहाँसे कहना पड़ेगा कि फिलहाल वह उसका [तारावहनका] अंग्रेजी सामान अपने पास ही रखें। हम वर्धा [१४ तारीख][1] को पहुँचेंगे।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०६२) से। सी० डब्ल्यू० ३३९२ से भी; सौजन्य : एफ० मेरी बार

३२. पत्र : गोविन्द वी० गुरजलेको

७ जून, १९३६

प्रिय गोविन्दराव,

तुमने अपनी प्रवृत्तियोंकी कुछ रोचक खबरें दी हैं। ईश्वर करे, वे फूलें-फलें। अपनी चादर देखकर पाँव पसारने के सुनहरे नियमसे कभी विचलित न होना, कर्ज बिलकुल न लेना।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

१२ तारीख तक बंगलोर सिटीमें रहूँगा।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४००) से।

१. साधन-सूत्रमें यह स्पष्ट नहीं है।

३३. पत्र : अमतुस्सलामको

७ जून, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

तेरा पत्र मिला। प्रकाशमणिके अकस्मात् अवसानसे दु:ख हुआ। उनका कोई वहाँ हो तो मेरी समवेदना जताना।

सुकीर्ति कहाँ गई?

लड़कोंकी सँभाल रखते हुए अगर तू अच्छी हो जाये, तो उससे अच्छा क्या हो सकता है? रुक्मिणीका बरताव अब कैसा है? तू डॉ० अन्सारीके यहाँ जाती है क्या?

शर्माको वहाँ बुलाना। मैंने उसे लिखा है।[1]

पापरम्मा[2] और सरस्वती[3] कल सुबह यहाँ आ जायेंगी। अब कान्तिके लिए हरिलालके पास जानेकी बात कहाँ रही? वह शान्त है। हरिलालके बारेमें मैंने लिखा है, सो पढ़ा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१६) से।

३४. पत्र : जानकी अम्माल नायडूको

[स्थायी पता:] वर्धा
८ जून, १९३६

प्रिय जानकी,

तुम्हारा पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। खुशीकी बात है कि पिताजी भारत आ रहे हैं। मैं तो चाहता हूँ तुम भी आती। हाँ, नेटालके शानदार जीवनके बाद शायद तुम्हें यहाँके सीधे-सादे जीवनमें मजा नहीं आयेगा। और यहाँ गाँवोंकी भयानक दरिद्रता देखकर तुम दहल उठोगी। वह अनुभव तुम्हे संयत कर देगा। खैर, पिताजी लौटकर तुम्हे भारतकी दशा बतायेंगे।

१. देखिए "पत्र: हीरालाल शर्माको", ५-६-१९३६।
२. जी० रामचन्द्रनकी बहन।
३. पापरम्माकी कन्या।

हाँ, फीनिक्सवाले सब साथी अच्छी तरह है।

सप्रेम,

बापू[1]

[पुनश्च :]

पता : मो० क० गांधी
वर्धा
भारत

श्री जानकी अम्माल नायडू
३७, मैलिन्सन रोड, सिडेनहम
डर्बन, नेटाल

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४६३) से।

३५. पत्र : एफ० मेरी बारको

८ जून, १९३६

चि० मेरी,

मुझे कोई जल्दी नही है। अपनी पूनियाँ और दूसरे आवश्यक काम निपटा कर ही ताराका सन्दूक देखना। सुमित्राबहनको लिखा तुम्हारा पत्र लौटाते हुए मैंने कल या परसो तुम्हे पत्र[2] लिखा था।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०६३) से। सी० डब्ल्यू० ३३९३ से भी; सौजन्य : एफ० मेरी बार

१. यह तमिल लिपिमें है।

२. देखिए "पत्र : एफ० मेरी बारको", ७-६-१९३६।

३६. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

बगलोर
८ जून, १९३६

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम दोनोके पत्र मिले। हरिलालकी करतूतोके विषयमें तो पढ ही लिया होगा। वहाँ मेरा लेख पहुँच चुका होगा। अनेक अखबारोमे प्रकाशित हुआ है; इसलिए अलगसे नहीं भेज रहा हूँ। इसमे मैने बहुत-कुछ कह दिया है, इसलिए पत्रमें कुछ भी नही लिख रहा हूँ। बा दुखी हो गई है, किन्तु बडे धीरजसे सहन कर रही है। कान्ति स्वस्थ है। यदि वह अब भी सुधर जाये तो मै न कोई चिन्ता करूँ, न कोई आपत्ति मानूँ।

हम १४ तारीखको वर्धा पहुँच जायेगे। तारी का रोग अभीतक गया नही है। किन्तु यदि धीरज रखकर मेरा उपचार करती रहेगी तो जरूर अच्छी हो जायेगी। अभी तो सभी भाई-बहन इस राज्यके दृश्य देखने मे लगे है।

लक्ष्मी बीमार पड़ती ही रहती है। देवदास जब यहाँ रवाना होनेवाला था, वह बम्बईमे बीमार पड गई।

रामदास अपना एजेंसीका काम सन्तोषजनक ढगसे कर रहा है।

सुशीलाका शहरमे रहने के लिए जाना मुझे बिलकुल नही खटका। बच्चोके विचारसे त्याग तो करना ही पडता है। इसके बिना उनका लालन-पालन नही हो पाता। दोनो तुम्हारे पास है, यह ठीक है। उन्हे विलायती मत बना देना। धर्मके सस्कार डालना, मातृभाषा मत भूलने देना, हिन्दीका ज्ञान देना। यदि इतना किया तो मुझे सन्तोष हो जायेगा। वहाँ हो, इसलिए यदि उन्हे तमिलका ज्ञान मिले तो मुझे अच्छा लगेगा। तुम्हारे किसी कामसे उनके मनमें अग्रेजीका मोह उत्पन्न न हो तो अच्छा हो। अग्रेजीका सामान्य ज्ञान तो उन्हे मिलेगा ही। यदि समस्त ज्ञान उन्हे अपनी भाषाके मार्फत मिले तो बडी बात समझो। वे उसे अधिक आत्मसात् कर सकेगे और जीवनमे उसका अधिक उपयोग भी करेगे। किन्तु यह तो मेरी दृष्टिसे हुआ, ठीक तो वही है जो तुम दोनोको रुचे। मुझे खुश रखने के लिए कुछ भी करना जरूरी नही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८५२) से।

३७. पत्र : अमृतकौरको

बंगलोर
९ जून, १९३६

प्रिय मूर्खा,

घरेलू इस्तेमालकी चप्पले पहने निकल पड़ने, रास्ता भूल जाने और बेदम होने तक चलते रहने की तुम्हारी बहादुरी तो मूर्खोंके योग्य ही थी। तुमने तो अपनी उपाधिके लिए जितनी अपेक्षित है, उससे भी अधिक योग्यता सिद्ध कर दी!

यह बंगलोरसे लिखा शायद अन्तिम पत्र ही होगा। हम यहाँसे १२ तारीखको रवाना हो कर १४को वर्धा पहुँचेंगे।

हाँ, मीरा बिलकुल ठीक है और मेरी झोपड़ी बनवाने मे यथाशक्य अधिकसे-अधिक परिश्रम कर रही है। 'विद्या हि सेवा' काफी अच्छा है, परन्तु 'सेवा हि विद्या' उससे भी अच्छा होगा। क्यो न 'विद्या सेवायै' रखें, जिसका अर्थ होगा सेवाके निमित्त ज्ञान? मैं समझता हूँ तुम उसे कुछ ऐसे बनवाओगी[१]

जितने कलात्मक रूपसे मेरे लिए संभव था मैंने यह चित्र खीचा है, परन्तु तुम मेरा तात्पर्य तो समझ ही जाओगी।

सप्रेम,

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७३०) से; सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ६८८६ से भी

१. दिल्ली-स्थित लेडी इर्विन कॉलिजके प्रतीकके लिए एक सिद्धान्त-वाक्यकी आवश्यकता थी। गांधीजी ने उसके लिए अपने सुझाव दिये थे।

३८. पत्र : मीराबहनको

९ जून, १९३६

चि० मीरा,

यहाँसे शायद यह मेरा आखिरी पत्र होगा। आशा है, इस महीनेकी १४ तारीखको हम वर्धा पहुँच जायेंगे।

यहाँ गाडीवाले मजेमे मालूम होते है। एक ही काममे ५० गाडियोका एक-साथ लगे रहना सेगाँवके लिए अवश्य नई बात होगी। आशा है, वे सब वही की होगी। तुम्हे स्वस्थ-प्रसन्न देखने की उम्मीद रखता हूँ।

स्पष्ट है कि बलवन्तसिंह और मुन्नालाल तुम्हारे लिए ईश्वरकी देन साबित हुए। जब मुन्नालालका प्रस्ताव मानने को मेरा जी हुआ और बलवन्तसिंहको मैंने सुझाया कि तुम्हारा सतत सत्सग प्राप्त करे, तब मुझे यह कल्पना नही थी कि तुम उन्हे लगभग ऐसा पाओगी जिनके बिना तुम्हारा काम ही नही चल सकता। खैर, तुम्हारी बीमारी और स्वास्थ्य-लाभके दौरान उनके तुम्हारे साथ होने से मुझे बडा सन्तोष रहा।

मद्रासके टोकरेमे सेब थे। तुम्हे मिले? सब जानम्मालके भेजे हुए थे।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३४७) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९८१३ से भी

३९. पत्र : नारणदास गांधीको

९ जून, १९३६

चि० नारणदास,

मैंने कनुके बारेमें पत्र लिखा था,[1] मिल गया होगा। वे लोग दर्शनीय स्थान देखने में लगे हैं। उनकी खबर मिलती रहती है। बीचमें वे एक दिन आ भी गये थे। इसके साथ प्रेमाका दूसरा पत्र है। एक भेजा था, वह मिला होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८४९३ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

४०. पत्र : अमृतलाल ठा० नानावटीको

९ जून, १९३६

चि० अमृतलाल,

हम वहाँ १४ की सुबह पहुँचनेकी आशा करते हैं। संलग्न पत्रोंकी व्यवस्था करना। तुम्हारा शरीर अच्छा होगा। भणसालीकी तपस्या मर्यादित ही चल रही होगी। दूसरे लोग मेरे मनमें तो रहते ही हैं, किन्तु वक्त बचानेके लिए उनके बारेमें नहीं लिखा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७१६) से।

१. देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", ५-६-१९३६।

४१. तार : रेहाना तैयबजीको[1]

बंगलोर

१० जून, १९३६

मेरा एक सबसे पक्का मित्र चला गया।[2] इस क्षतिमे मै माताजीका और तुम्हारा बराबर का सहभागी हूँ। तुम्हारे पिता वास्तवमें गुजरातके पितामह और देश के वफादार सेवक थे जिन्होंने कभी हिन्दू-मुसलमान मे भेद नही माना। सरदार और अन्य लोग इस शोकमे शामिल है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ११-६-१९३६

४२. सन्देश : मंजुला एम० मेहताको

१० जून, १९३६

अपनी निर्मलता, कोमलता, प्रेमलता और आरोग्य और सयममे वृद्धि करके वापस लौटना। तुम दोनोसे मैंने बडी-बड़ी आशाएँ बाँध रखी है। तुम डॉक्टरके[3] सच्चे वारिस बनो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० १६०२) से।

१. लगभग इसी प्रकारका दूसरा तार अब्बास तैयबजीके दामाद, मुहम्मद हबीबको भेजा गया था।

२. रेहाना तैयबजीके पिता अब्बास तैयबजीकी मृत्यु ९ जून, १९३६ को हुई थी।

३. मजुला एम० मेहताके ससुर डॉ० प्राणजीवन मेहता।

४३. भेंट : आदि-कर्नाटक संघके शिष्टमण्डलको[1]

१० जून, १९३६

महात्मा गांधीने कहा कि मैं इस विचारसे पूर्णतः सहमत हूँ कि हरिजनोंके सहयोगके बिना हरिजनोद्धारका कोई भी काम सन्तोषजनक रूपसे नहीं हो सकता। इस बातपर मुझसे ज्यादा जोर किसीने नहीं दिया है कि हरिजनोंको सामाजिक और अन्य प्रकारके अधिकार दिलाने का जो सेवाव्रत हमने लिया है वह तो केवल ऋणकी अदायगी-मात्र है, क्योंकि हमारे पापोंके फलस्वरूप ही हरिजनोंको सामाजिक और दूसरे कष्ट भोगने पड़े हैं।[2]

उन्होंने कहा कि कंगेरी-गुरुकुल हरिजन सेवक संघका नहीं है; रही हरिजनोंको वहाँ दाखिला न देनेकी बात, तो वह सच नहीं है। गुरुकुल तो हरिजनोंकी प्रत्यक्ष सेवा कर रहा है, और हरिजनोंको तो जब भी वे आयें वह हमेशा ही दाखिल करता है।

दूसरी महत्त्वकी चीज यह है कि आगामी सम्मेलन सवर्ण हिन्दू-कार्यकर्त्ताओंका ही है, जो वहाँ एक-दूसरेके साथ विचार-विनिमय और अपनी कठिनाइयोंके बारेमें चर्चा करने, अपनी कमजोरियोंका पता लगाने, और अपने कामको और भी अच्छी तरहसे व्यवस्थित करने की दृष्टिसे एकत्र हो रहे हैं। यह सम्मेलन तो पुश्तैनी पापियोंका सम्मेलन है, जो अब ऐसे उपाय और साधन ढूँढ़ निकालना चाहते हैं, जिनसे वे हरिजनोंके ऋणसे मुक्त हो सकें। तब इस सम्मेलनमें हरिजन किस तरह योग दे सकते हैं? सभामें भले बड़ी खुशीसे आयें, पर वहाँ जिन बातोंपर चर्चा होनेवाली है उसमें वे किस तरह मदद देंगे?

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। मण्डलके नेता श्री पी० जी० डिसूजाने और बातोंके साथ यह भी कहा था कि बहुत-से हरिजन-कार्यकर्ता हैं जो हरिजनोद्धारका काम कर रहे हैं और चाहते हैं कि इस कार्यके लिए उन्हें हरिजन सेवक संघके कोषसे आर्थिक सहायता दी जाये; लेकिन संघ उनके कार्यकी कोई गिनती ही नहीं करता। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि यदि हरिजनोंके विरुद्ध हिन्दुओंका मौजूदा रवैया जारी रहा तो ईसाई मिशनरी हरिजनों और सवर्ण हिन्दुओंके बीच द्वेषभाव बढ़ानेका प्रयत्न तेज कर देंगे। उन्होंने बताया कि हरिजनोंको कंगेरीके गुरुकुल आश्रममें भरती नहीं किया जाता। श्री डिसूजाने यह भी कहा कि जब हरिजनोंकी आर्थिक और सामाजिक दशामें सुधार करने की आवश्यकता है तब केवल मन्दिर-प्रवेश पर जोर देनेका कोई लाभ नहीं। उन्होंने इस बातपर भी आपत्ति प्रकट की कि आगामी हरिजन-सम्मेलनमें हरिजनोंको नहीं बुलाया गया है।

२. यह अनुच्छेद हिन्दूसे लिया गया है।

डिसूजा: आप लोग अपनेको भले ऋणी कहें, पर आप जो-कुछ कर रहे हैं उसमें हरिजन आपपर श्रेष्ठताकी भावनासे प्रेरित होनेका सन्देह किये बिना नहीं रह सकते, और आप अपने मौजूदा रवैयेसे अपने बारेमें यह सन्देह किये जानेकी गुंजाइश भी छोड़ेंगे कि आप उन्हें सहायता देनेके उपाय निकालने के बदले दबाये रखने के नये-नये उपाय सोच रहे हैं।

गाधीजी . यदि सन्देह निराधार हो तो मै उस सन्देहकी परवाह नही करता। सवर्ण हिन्दुओका काम सच्चा होगा तो वह खुद उस सन्देहको दूर कर देगा। मै हरिजनोको दोष नही देता, क्योकि उन बेचारोको तो इसके अलावा कुछ देखने-भोगनेको मिला ही नही।

एक हरिजन: सन्देहकी तो ऐसी कोई बात नहीं है। हम तो केवल अपनी मुसीबतें सुनाना चाहते हैं।

गाधीजी · क्या मुझे मुसीबते सुनाने की कोई जरूरत है? क्या मै जानता नही हूँ? क्या मै हाथ उठाकर डंकेकी चोट नही कह रहा हूँ कि आप सबकी सर्वांगीण उन्नति होनी चाहिए? मै आपको यह समझाना चाहता हूँ कि यह सच्चे दिलसे पश्चात्ताप करनेवाले पापियोका सम्मेलन है। आप लोग इसमे भले पधारें। आपका स्वागत है, पर वहाँ आप देखेंगे कि वह सम्मेलन आपकी आशासे भिन्न प्रकारका होगा। हम सब देनदार है, हम जानते है कि हम छोटी-छोटी किस्तोंमें ही ऋण चुका सकते है, और हमारे लेनदार इतने क्रोधित हो सकते है कि उन किस्तोको ठुकरा दे और हम देनदारो को भी लतिया दें। पर यदि हमारे भाग्यमें यह लिखा हो तो हमें यह भी बर्दाश्त करना पडेगा, क्योकि मूलको सूद-सहित चुका देना ही हमारा उद्देश्य है। जब डॉ० अम्बेडकर हमे गालियाँ देते है, तब मै कहता हूँ कि हम इसीके लायक है। फिर, लेनदार कभी-कभी इतना महान् बन जाता है कि वह कर्ज या कर्जदारका ध्यान ही नही रखता। तो भी हमे सब-कुछ भूलकर सारा ध्यान अपने कर्जको चुकानेपर ही केन्द्रित करना है। शास्त्रोमे लिखा है कि जब किसी जातिके अन्यायोका घड़ा भर जाता है तब उसका विनाश हो जाता है। हिन्दू-धर्मने अगर अपने शरीरपर से अस्पृश्यताका यह कलक दूर न किया तो वह अवश्यम्भावी रूपसे नाशको प्राप्त होगा — भले अम्बेडकर कुछ करे या न करें। हमारा प्रयत्न अगर सच्चा है, तो मै मानता हूँ कि सुधारकोमे कोई श्रेष्ठताकी भावना आप नही देखेंगे। मै स्वीकार करता हूँ कि जिस रूपमें मै हिन्दू-धर्मको आज देखता हूँ, उसमे अनेक सवर्णों पर अज्ञान-तिमिरका आवरण पड़ा हुआ है। वे अधर्मको धर्म कहते है। अब ऐसे दोषियोका एक वर्ग, जिनमे बहुत-से दोष आज भी शेष है, इसी तिमिरको भेदकर निकलनेका प्रयास कर रहा है। जहाँतक हरिजनोंकी मौजूदा हालतका सवाल है, उसके बारेमें मै सवर्णोको हमेशा याद दिलाता रहता हूँ कि कुछ हरिजनोकी गन्दी आदतोके जिम्मेदार तो असलमे सवर्ण ही है। उनसे मै यह कहता रहता हूँ कि जबतक हरिजनोको वही दर्जा नही मिल जाता जो

दूसरे हिन्दुओंको हासिल है, तबतक हरिजनोंसे साफ-सुथरे रहनेका आग्रह रखना ही गलत है। पहले हमें जिस हालत में वे हैं उसी हालतमें उन्हें अपनाना होगा, और उसके बाद उन्हें साफ-सुथरा बनाना होगा। आप लोगोंके कष्टों और आपके मकानोंकी हालतके सम्बन्धमें मैं राज्यसे पैरवी कर रहा हूँ। कृपाकर आप लोग थोड़ा धीरज रखिए। हम आपका काम उतनी जल्दी भले ही न करा सकें जितनी जल्दी कि आप चाहते हैं, पर आप हमारे इरादों पर सन्देह न करें!

डिसूजा: आपने हमें जो इत्मीनान दिलाया है उसके लिए हम आपके आभारी हैं। हम चाहते हैं कि आप हरिजनोंकी तरफ भाईचारेका हाथ बढ़ायें। गुनहगार इस तरहका बरताव न करे, मानों वह अपने पापोंका प्रायश्चित्त करके ईश्वरकी कोई सेवा कर रहा है। मैं यह चाहता हूँ कि हरिजनोंको आप उनकी जन-संख्याके हिसाबसे मैसूरकी विधान-सभामें सीधा प्रतिनिधित्व दिला दें। उनके बारेमें यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि उन्होंने मनुष्यका दर्जा हासिल कर लिया है।

गांधीजी: इसके लिए मैं आपको यह राय दूँगा कि वर्तमान महाराजको हटाकर एक हफ्तेके लिए आप मुझे उनकी जगह पर बिठा दें।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २७-६-१९३६, और हिन्दू, ११-६-१९३६

४४. भाषण: हरिजन-सेवक सम्मेलन, कंगेरीमें[1]

१० जून, १९३६[2]

इस सम्मेलनकी कल्पना जिसकी भी हो, है सुन्दर कल्पना, और हमें अब चाहिए यह कि इस सभाका अच्छा उपयोग कर लें। इस सम्मेलनमें दक्षिण भारतके सभी भागोंके प्रतिनिधि आये हैं; लेकिन उनके अलावा यहाँ और भी लोग आये हुए हैं, इसलिए मैं केवल प्रतिनिधियोंके वास्तविक कामकी बातोंपर बोलनेके बजाय अस्पृश्यता-निवारण-आन्दोलनके विषयमें अपने कुछ सामान्य विचार प्रकट करूँगा।

और ये सामान्य विचार मैं सवर्ण हिन्दुओंके सोचने-समझनेके लिए व्यक्त करूँगा। उन्हें समझ लेना चाहिए कि यह अस्पृश्यता-निवारण-आन्दोलन भारतके अन्य वर्तमान आन्दोलनोंसे बिलकुल भिन्न है। जहाँतक मेरा और हरिजन सेवक-संघका सम्बन्ध है, मैं यह कह सकता हूँ कि यह अस्पृश्यता-निवारण-आन्दोलन कोई राजनीतिक आन्दोलन नहीं है। इसी तरह हरिजनोंकी मात्र आर्थिक स्थिति सुधारना भी इसका उद्देश्य नहीं है, और न केवल उनका सामाजिक पुनरुत्थान ही। पर इसका मतलब यह नहीं

१. यह हरिजनमें "द इनवार्डनेस ऑफ हरिजन मूवमेंट" (हरिजन-आन्दोलनकी आध्यात्मिकता) शीर्षकसे छपा था।
२. तारीख हिन्दूसे ली गई है।

कि हरिजनोकी सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक उन्नति हमारा लक्ष्य नही है। हम उनकी सब प्रकारकी उन्नति चाहते है। अगर हम सचाई और ईमानदारीसे काम करेगे, तो हमारे प्रयत्नोके फलस्वरूप इन दिशाओमें तो उनकी उन्नति होना निश्चित है।

पर हमारा उद्देश्य इन सबसे, जिनके विषयमे मैने आपसे अभी कहा है, बिलकुल ही भिन्न है। वह यह है: अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म पर लगा हुआ एक कलक है। जिस तरह भी हो हमें इसे मिटाना ही चाहिए। अस्पृश्यता वह घातक जहर है जिसे अगर समय रहते हमने नष्ट न कर दिया, तो यह हिन्दू-धर्म का नाश कर देगा।

मै जानता हूँ कि आप उपस्थित जनोमे से जो लोग हरिजन-सेवक और प्रतिनिधि नही है वे -- बल्कि कुछ सेवको और प्रतिनिधियोको भी मै इसमे शामिल कर लेता हूँ -- मेरी बातके असली मर्मको नही समझते। पर आप मर्मको समझें या न समझे, मै तो अपने विचारोको, जिनपर मेरा प्रबल आग्रह है, जरूर प्रकट करता रहूँगा।

मुझे यह दिखाई दे रहा है कि अगर अस्पृश्यता इसी तरह बनी रही तो हिन्दू-धर्म धीरे-धीरे नष्ट होता जायेगा, और मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अगर मेरी ही तरह आप लोग भी ध्यानसे देखें, तो आप पायेंगे कि हिन्दू-धर्मका शरीर जो धीरे-धीरे छीज रहा है, वह इतनी तेजीसे छीजने लगेगा कि फिर उसका इलाज करना कार्यकर्त्ताओके लिए अशक्य हो जायेगा।

मै यह क्यो कहता हूँ कि अस्पृश्यता वह अभिशाप है, वह कलक है और वह तेज जहर है जो हिन्दू-धर्मका नाश करके रहेगा? किसी एक मनुष्यको भी जन्मना अस्पृश्य समझना हमारी मानवताकी भावनाके विपरीत है। आप अगर दुनियाके धर्म-ग्रन्थोका मनन करें और हिन्दुओको छोडकर दुनियाकी दूसरी जातियोके आचरणको जाँचे, तो मैने जिस अस्पृश्यताकी तरफ अभी आपका ध्यान खीचा है उसकी मिसाल आपको कही भी नही मिलेगी। मै किसी आदमीका उस हालतमे अस्पृश्य होना तो समझ सकता हूँ जब वह कोई ऐसा काम कर रहा हो जिसके कारण वह खुद ही अपनेको अस्पृश्य महसूस करता हो। किसी नर्सको ले लीजिए। वह एक ऐसे रोगीकी सेवा-शुश्रूषा कर रही है, जो असहाय है, जिसके शरीरसे खून बह रहा है, जिसके कपडे-लत्ते खराब हो रहे है, और जिसे ऐसी बीमारी है कि उसके शरीरसे बदबू आ रही है। वह नर्स जबतक ऐसे किसी रोगीकी सेवा-शुश्रूषामें लगी हुई है तबतक वह अस्पृश्य है। पर नहा-धो लेने के बाद वह हमारी ही तरह स्पृश्य हो जाती है। वह समाजमे सबसे मिलने-जुलने योग्य ही नही, बल्कि जो धन्धा वह करती है उसके कारण समाजके लिए आदरणीय और पूजनीय भी है। वह हमारे सम्मानकी पात्र है और जबतक हमारे समाजमे कुछ भी श्रेणियाँ है, वह बहुत ऊँचे स्थानकी अधिकारिणी है।

अब चित्रकी उलटी तरफ देखिए। उदाहरणके लिए, डॉ० अम्बेडकरको ले ले। वे दलित जातिके कहे जाते है और उन्हे अस्पृश्य माना जाता है। बुद्धिमे वे हजारो

बुद्धिमान और सुशिक्षित सवर्ण हिन्दुओसे कही ऊँचे है। वे हममें से किसीसे भी कम स्वच्छ नही रहते। आज वे कानूनके विख्यात व्याख्याता है। हो सकता है कि कल आप उन्हे उच्च न्यायालयके न्यायाधीशके पद पर देखे। दूसरे शब्दोमें यो कहा जा सकता है कि ऐसा कोई भी सरकारी ओहदा इस देशमें नही है जिसे एक सनातनी ब्राह्मण हासिल कर सकता हो और डॉ० अम्बेडकर चाहे तो उसे न पा सकें। पर किसी कट्टर ब्राह्मणको अगर डॉ० अम्बेडकर छू ले तो वह उनके स्पर्शसे अपवित्र हो जायेगा। उनका अक्षम्य अपराध यही है कि उन्होने एक महार (अस्पृश्य) परिवारमें जन्म लिया है!

अगर हम यह मानने के आदी न होते कि जन्मना अस्पृश्यता भी हिन्दू-धर्मका एक अभिन्न अंग है, तो हम अपने ही समाजके मानवोके साथ वैसा बरताव न करते जैसा आज भी हममे से अनेक लोग उनके साथ कर रहे है।

मुझे मालूम है कि आज मैंने अपने इस भाषणमे आपको कोई नई बात नही बताई है। मै यह भी जानता हूँ कि मैंने बिलकुल यही बात आज की अपेक्षा कही अधिक जोशीले शब्दोमें पहले कही है। तो भी मैंने जो कहा है वह तबतक व्यर्थ नही है और न होगा, जबतक कि अस्पृश्यता-निवारणकी आवश्यकताकी सीधी-सादी-सी बातका आपकी समझ या आचरण पर असर नही पड़ता।

अस्पृश्यताकी प्रथा सिर्फ हिन्दू-धर्ममे ही है। न तो इसका बुद्धिसे कोई सम्बन्ध है और न शास्त्रोमें ही इसके लिए कोई प्रमाण है। शास्त्रोका जो थोडा-सा अध्ययन मैंने किया है, और शास्त्रोंका गहरा अनुशीलन करनेवालों ने मुझे जो बतलाया है, उस सबसे मालूम होता है कि हिन्दू-धर्ममें जन्मना अस्पृश्यताके लिए कोई आधार या प्रमाण नही है। शास्त्र क्या कहते है और क्या नही, इस चर्चाके लिए अब मेरे पास समय नही है। और अपने कथनकी पुष्टिमें आपके सामने शास्त्रोके प्रमाण पेश करूँ, यह भी अब मेरे लिए जरूरी नहीं है। अब जरूरी यह है कि अगर आपको विश्वास हो कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म पर लगी हुई कलक-कालिमा है और इससे हिन्दू-धर्मके नष्ट हो जानेका खतरा है तो अस्पृश्यताको हटाने का काम हर हालतमे शुरू कर दीजिए।

आप इसे हटाने के लिए क्या करेंगे? अगर आप सब लोग यह घोषणा करके कि अस्पृश्यता हिन्दू-धर्म पर लगी हुई कलक-कालिमा है, यह समझें कि हमने अपना फर्ज अदा कर दिया, तो उसे तो मै एक विडम्बना ही कहूँगा। जोशमें आकर आप किसी हरिजनके पास जाकर उसे छू लें और गले भी लगा ले, और बादमें उसे बिलकुल भूल जाये तो यह भी काफी नही होगा। आप नित्य हरिजन-बस्तियोमें जायें और अपने विश्वासके प्रमाण-स्वरूप वहाँ कुछ हरिजनोको छू लिया करे — इससे भी काम नही चलेगा।

आपको चाहिए तो यह कि अपने दैनिक आचरणको आप ऐसे ढाँचेमें ढाल ले जिससे जिन हरिजनोके सम्पर्कमे आप आयें, उनपर यह स्पष्ट हो जाये कि अब उन सबके अच्छे दिन आ गये है।

आरम्भ इस तरह कीजिए। अगर आप किसी मन्दिरमें जाने के अभ्यस्त हों तो अपने साथ हरिजनोंको भी ले जायें। पर अगर आप यह देखें कि आपको हरिजन भाइयोंके साथ मन्दिरमें नहीं घुसने दिया जाता और यदि मेरी ही तरह आपका इस बातमें जीवन्त विश्वास हो कि अस्पृश्यता अधर्म है तो उस मन्दिरसे आप उसी तरह दूर रहें जिस तरह आप बिच्छू या आगसे बचते हैं। तब आप मेरी ही तरह विश्वास करेंगे कि ऐसे मन्दिरोंमें भगवान्‌का वास नहीं है। जगद्विख्यात काशी-विश्वनाथके मन्दिरको मैं उदाहरणके रूपमें लेता हूँ। वह मन्दिर भगवान् विश्वनाथका, अर्थात् जगत्‌के नाथका है, ऐसा मानते हैं। और फिर भी उन्हीं भगवान् विश्वनाथके नामपर आज ये सवर्ण हिन्दू धृष्टतापूर्वक हरिजनोंसे कहते हैं कि "इस मन्दिरमें तुम लोग प्रवेश नहीं कर सकते!"

मैं दावा करता हूँ कि मैं किसी कट्टर सनातनी हिन्दूसे कम अच्छा हिन्दू नहीं हूँ। हिन्दू-धर्मके तमाम अनुशासनोंको अपने जीवनमें उतारने का मैंने अपनी क्षमता-भर प्रयत्न किया है। मैं मानता हूँ कि मेरी क्षमता अल्प है। लेकिन इसीसे हिन्दू-धर्मके प्रति मेरे हृदयमें जो भाव और भक्ति है उसमें कोई कमी नहीं आ जाती। हिन्दू-धर्मके प्रति उस पूरे भक्ति-भावके होते हुए भी मैं पूरी जिम्मेदारीके साथ आपसे यह कहता हूँ कि जबतक एक भी हरिजनके लिए काशीके उस मन्दिरके द्वार बन्द हैं, तबतक उसके अन्दर भगवान् विश्वनाथका वास नहीं है, और मैं इस विश्वासके साथ उस मन्दिरमें नहीं जा सकता कि वह मन्दिर पुनीत है और न यह आस्था ही मेरे मनमें होगी कि वहाँ भगवान्‌की पूजा-अर्चना करने से मेरे पाप धुल जायेंगे। ऐसे मन्दिरके लिए मेरे हृदयमें पवित्रताकी कोई भावना नहीं हो सकती। और जो बात मैंने काशी-विश्वनाथके मन्दिरके सम्बन्धमें कही है वही बात भारतवर्षके उन तमाम मन्दिरोंपर भी लागू होती है जिनके द्वार हरिजनोंके लिए बन्द हैं। कहने की जरूरत नहीं कि दक्षिण भारतके मन्दिरों पर भी यह बात लागू होती है, जिनमें गुरुवायूरका मन्दिर भी शामिल है।

यह तो ईश्वरकी कृपा ही है कि गुरुवायूर-मन्दिरके द्वार मेरे लिए बन्द हैं। पर यदि मान लिया जाये कि उस मन्दिरके ट्रस्टी या जो भी वहाँके अधिकारी हों, वे मुझे मन्दिरके अन्दर जाने की इजाजत दे दें तो भी जबतक उसके द्वार हरिजनोंके लिए बन्द हैं, मैं उसके अन्दर नहीं जाऊँगा। जबतक आपमें से हरएक व्यक्ति अस्पृश्यता-निवारणके कार्यका इस तरह आरम्भ नहीं कर देता, तबतक हम यह नहीं कह सकते कि उसने हृदयसे अस्पृश्यताको दूर कर दिया है।

यह जो कहा जाता है कि हरिजनोंकी बहुत बड़ी संख्याको हमारे मन्दिर-प्रवेश-आन्दोलनमें कोई रुचि नहीं है, इसका कोई महत्त्व नहीं है। आज सवेरेकी ही बात है, श्री डिसूजा हरिजनोंका एक शिष्टमण्डल लेकर आये थे।[1] उन्होंने मुझसे कहा कि हरिजनोंको इस मन्दिर-प्रवेश-आन्दोलनमें उतनी दिलचस्पी नहीं है जितनी अपने

१. देखिए पिछला शीर्षक।

राजनीतिक और आर्थिक सुधारकी बातोंमें और शायद अपने सामाजिक दर्जेकी उन्नतिमें है। स्वभावत वे कुछ और सोच नही सकते। हमारे साथ मिलने-जुलने, और हमारे मन्दिरोमें साथ-साथ पूजा-अर्चना करने की उनकी इच्छा मर गई है, तो उसकी जवाबदेही हमारे ही ऊपर है।

इसीसे मै कहता हूँ कि हिन्दू-धर्मका ईश्वर उनके लिए सचमुच कोई अस्तित्व नही रखता। यह सही है कि हिन्दू-धर्मका ईश्वर इस्लाम या ईसाई धर्मके ईश्वरसे भिन्न नही है। केवल हरएक धर्मकी पूजा-उपासनाकी पद्धति जुदा-जुदा है। अगर हरिजनोको यह सिखाया गया है कि जिन मन्दिरोमें सवर्ण जाते है वे उनके लिए नही है, तो आप उनकी इस उपेक्षाके लिए उन्हे दोष नही दे सकते। उनकी इस उपेक्षाका कारण हमारा ही पाप है, हमारा ही वह अक्षम्य दुर्व्यवहार है, जो हमने उनके साथ किया है। मन्दिरोके प्रति उपेक्षाका भाव रखने की तो उन्हे आदत डलवाई गई है। त्रावणकोर और हिन्दुस्तानके दूसरे भागोके हरिजनोमें अब भी मन्दिरोके अन्दर प्रवेश करने की जो इच्छा बनी हुई है और दूसरे हिन्दुओके साथ समानाधिकारका जो दावा वे कर रहे है, यह एक अच्छी और सुखकर बात है, पर मेरी इस दलीलपर उसका कोई असर नही पडता।

हरिजनोके लिए मन्दिर खोल देनेका एक और पक्ष भी है। वह आपको जरूर समझ लेना चाहिए। अगर हरिजनोके लिए आप इस वजहसे अपने मन्दिर खोल रहे है कि उन्हे खुलवानेकी हरिजनो की माँग है, तो आप कोई बडे महत्त्वका काम नही कर रहे है। पर अगर आप यह समझकर मन्दिर खोल रहे है कि हरिजनोके लिए मन्दिर बन्द रखकर हमने पाप किया है, तब जरूर वह एक धार्मिक कृत्य हो जाता है। हिन्दुस्तान-भरके हरिजन यदि अन्य धर्मोको स्वीकार कर ले, और केवल एक हरिजन हिन्दू-समाजके अन्दर रह जाये, तब भी मेरा यह आग्रह रहेगा कि हरिजनोके लिए सवर्ण हिन्दुओको मन्दिरके द्वार खोल देने चाहिए। यह धार्मिक दृष्टि ही हरिजनोके प्रश्नको दूसरे तमाम प्रश्नोसे एक बिलकुल भिन्न रूप और एक खास महत्त्व दे देती है। अगर हमारा मौजूदा कार्यक्रम महज नीतिज्ञता या राजनीतिक उपयोगितासे प्रेरित होता, तो उसमें वह धार्मिक महत्त्व या अभिप्राय न रहता, जो उसका मेरे लिए है। यदि मुझपर सन्तोषजनक रूपसे यह प्रकट हो जाये कि हरिजनोका राजनीतिक या आर्थिक उद्धार होने-भरसे वे हिन्दू-समाजमे बने रहेगे, तब भी मै चाहूँगा कि मन्दिर तो उनके लिए खोल ही देने चाहिए, और असमानताका नाम-निशान तक मिटा देना चाहिए। क्योकि मेरे लिए तो यह प्रायश्चित और उस अन्यायके प्रतिकारका प्रश्न है, जो हमने अपने ही बन्धुओके साथ किया है।

इस प्रकार हरिजनोके दूसरे धर्मोमे चले जाने की धमकीसे बहुतेरे हिन्दुओमे जो खलबली-सी मच गई है उसका हरिजनो के प्रति हमारे कर्त्तव्यसे कोई सम्बन्ध नही है। अगर हम उनकी धर्म-परिवर्तनकी धमकीसे डरकर अपने कार्यकी रफ्तार बढा देगे, तो मन्दिरोके खोले जाने का वह अर्थ नही रहेगा, जो मैंने अभी बतलाया है। यकीन रखिए, इस प्रकारके उपायोसे हिन्दू-धर्मकी रक्षा होनेवाली नही है।

हरिजनोसे किसी भी प्रकारके प्रत्युपकारकी आशा किये विना, हम अपने कर्त्तव्य-पालनके द्वारा जबतक हिन्दू-धर्मकी शुद्धि नही करेंगे तबतक हम उसकी रक्षा कर ही नही सकते। हिन्दू-धर्मकी रक्षाका बस यही एकमात्र उपाय है। हरिजनोके लिए अगर आप उपयोगिता या राजनीतिक चालके तौरपर कुछ कर देते है तो इससे यह नही कहा जा सकता कि अस्पृश्यताको आपने अपने दिलसे निकाल बाहर कर दिया है। आगे ऐसे अनेक अवसर आ सकते है जब यह घातक जहर हिन्दुओके सामाजिक ढाँचेमें फैलकर इस वेगसे फूट पडे कि हम किंकर्तव्य-विमूढ़ रह जायें। यदि अस्पृश्यतापर हमे लज्जा आती है तो हमे उसे दूर कर ही देना चाहिए, चाहे उसका कोई परिणाम हो या न हो।

जब सवर्ण हिन्दू अपनी उच्चता और श्रेष्ठताके अभिमानमे यह कहते है कि जब हरिजन शराब पीने, मुर्दार मास खाने, गन्दे रहने वगैरहकी बुरी आदतें छोड देगे तब हम अस्पृश्यता दूर कर देगे, तब मै अधीर हो उठता हूँ। मान लीजिए कि मेरे पिता या माता, या पुत्र या पुत्री कोढी है, तो क्या मै यह कह सकता हूँ कि जब वे कुष्ठसे मुक्ति पा जायेंगे, तभी मै उनका स्पर्श करूँगा? अगर मै जरूरतके वक्त उनकी सेवा नही करता, तो मै अपने और उनके पवित्र पारस्परिक सम्बन्धको झुठलाता हूँ। हरिजनोकी स्थिति इतनी बदतर है कि जिसका कोई हिसाब नही है, और उनकी इस दुर्गतिके जिम्मेवार खुद हम है। शराब पीने, मुर्दार मास खाने और उनकी दूसरी गन्दी आदतोकी सीधी जवाबदेही हमारे ही ऊपर है। इसलिए, अगर हम सच्चे है तो हमें अपने हरिजन भाइयोको, बावजूद उनकी त्रुटियोके, गले लगाना ही होगा। और मुझे आशा है—और यह आशा निराधार नही है—कि हरिजनोको आप जब अपना भाई-बन्धु मानने का रुख अख्तियार कर लेगे, तो उसी दिन वे अपनी गन्दी आदते छोड देंगे। इस दिशामे जिन लोगोको अनुभव है, वे मेरे इस कथनकी पुष्टि कर सकते है। इसलिए यह पहली आवश्यकता है कि सवर्ण हिन्दू अपने हृदयको शुद्ध करे और हरिजनोके प्रति उनका जो रुख चला आ रहा है, उसे बदले।

कृपाकर मेरे सामने ऐसे निराशा-भरे मामले पेश न कीजिएगा जब आपने तो हरिजनोको अपनाया हो और उन्होने सुधरने से इनकार कर दिया हो।

पर यह एक चेतावनी देने के बाद अब मै खुद अपनी साक्षी देना चाहता हूँ। मै ऐसे एक भी हरिजनको नही जानता जिसे किसी सवर्ण हिन्दूने अपना लिया हो और उसने अपने-आपको न सुधारा हो। सचमुच, अन्यथा हो ही नही सकता। उस हरिजनको तो परिवर्तन इतना अच्छा लगेगा कि उसकी सचाईमे भी उसे सन्देह होगा। पहलेसे अच्छे वातावरणमे रहने का उसका अपूर्व अनुभव उसकी शराब पीने या मुर्दार मास खाने की तलबको छुड़ा देगा। और जहाँतक सफाईका सवाल है, जितनी सुविधाएँ मिलेगी, उतना ही वह सफाईसे रहने लगेगा। यह तो सवर्ण हिन्दुओका निरा दुराग्रह है कि वे हरिजनोकी गन्दगीकी दलीले देते रहते है, ताकि खुद उन्हें सही रास्तेपर न चलना पडे।

मै अब अपना भाषण आर्थिक पहलूकी बात लेकर समाप्त करता हूँ। हरिजनोके प्रति हरएक सवर्ण हिन्दूका क्या कर्त्तव्य है, इस सम्बन्धमे अपने विचार मैंने आप

लोगोंके सामने ठीक-ठीक रख दिये है। इसके अलावा और भी बहुत-कुछ है जिसे सवर्ण हिन्दू अपने निजी आचरणमें उतार सकते है।

लेकिन मै यह जानता हूँ कि यहाँ एकत्रित हुए सदस्यो या प्रतिनिधियोमें आपसमें यह चर्चा होगी कि हरजिन् सेवक सघोका काम बगैर रुपये-पैसेके कैसे चलाया जाये। ऐसे प्रतिनिधियोको मै बता दूँ कि इस आशकाका कारण उनमे श्रद्धाकी कमी है। हमें दस-पाँच सवर्ण हिन्दुओके हृदयको नही, बल्कि लाखो-करोडो सवर्णोके हृदयको पिघलाना है। हालाँकि हम कगाल है, तो भी हमने यह कभी नही देखा कि कोई हिन्दू-मन्दिर पैसेकी कमीके कारण बन्द हो गया हो। मै चाहता हूँ कि आप लोग इस रहस्यको जरा समझिए। इस मिथ्या विचारमें मत रहिए कि लाखो-करोडो हिन्दू अपने मन्दिरोको केवल अन्ध-विश्वासके कारण पैसा देते है। इस बातमें आशिक सत्य हो सकता है। पर वह आशिक सत्य ही होगा। अधिक सत्य तो यह है कि जो लोग इन मन्दिरोमे रुपया-पैसा, चावल, नारियल, सुपारी आदि चढाते है वे इस श्रद्धाके कारण ही ऐसा करते है कि वे एक पुण्य-कार्य कर रहे है। वह श्रद्धा कैसी है उसे शब्दोमे नही समझाया जा सकता। और अगर आप इस आचरणको मूढ-विश्वास कहे तो मै आपको बतला दूँ कि न तो आप खुद अपने प्रति, न हिन्दुस्तानके प्रति और न मनुष्य-जातिके ही प्रति न्याय कर रहे होंगे। मै जानता हूँ कि मूढ-श्रद्धा बहुत पुरानी चीज हो गई है। इस अन्ध-विश्वासके बहुत-से दानवी रूपोको ईश्वरने बहुत समयतक ढील दी है, पर कितनी ही लम्बी उनकी आयु क्यो न हो, काल-चक्रके सामने तो वह कुछ भी नही है। बडा सत्य तो यह है कि जो श्रद्धा लाखो मनुष्योको प्रेरित करके मन्दिरोमें ले जाती है, उसमें नि सन्देह कुछ-न-कुछ पवित्रता और सचाईका अश अवश्य है। अगर आपको उन मूक मानवोकी पवित्र भावनामें विश्वास है जो इन मन्दिरोका पोषण करते है, और यदि आपको अपने उद्देश्यमें विश्वास है, तो आपमें से हरएक व्यक्ति छोटा-छोटा मन्दिर बन जाये, और जनतासे पैसा या चावल इकट्ठा करे।

अगर आप लोग निश्चिंत होकर इस धोखेमें बैठे रहेगे कि घनश्यामदास बिड़ला-जैसे चन्द करोड़पति हमेशा हमारे कामके लिए रुपया भेजते रहेगे, तो मै आपको यकीन दिलाता हूँ कि आपका यह आन्दोलन निश्चय ही असफल हो जायेगा। आप लोग तबतक इस आन्दोलनको सफल नही बना सकेंगे, जबतक आप लाखो-करोडो मूक भाइयोके पास जाकर उनसे एक-एक पैसा या एक-एक मुट्ठी चावल उनके इस विश्वासके चिह्नस्वरूप, कि अस्पृश्यताके पापसे उन्हे मुक्त हो ही जाना चाहिए, माँग-माँगकर इकट्ठा करने की जरूरत महसूस नही करेगे।

अगर सफलता आपको देरसे मिले तो कोई परवाह नही। चाहे इस कामके सफल होने में कुछ वर्ष लगें या चाहे युगो लग जाये, आपको इस बातमे तो असीम श्रद्धा रखनी ही चाहिए कि सवर्ण हिन्दुओका हृदय बदलने और हिन्दुओके घर-घर अस्पृश्यता-निवारणका सन्देश पहुँचाने का यही एकमात्र मार्ग है। आप यह जान ले कि समय कभी भी सत्यके मार्गमे बाधक नही होता। और यह बिलकुल पूर्ण सत्य है कि

आपको अस्पृश्यतासे छुटकारा पाना ही होगा, नही तो नाश अवश्यम्भावी है। अधीर सिर्फ वे ही लोग हुआ करते हैं जो एक ऐसे कामको सहारा देते हैं जिसकी सत्यतामे उन्हे सन्देह होता है। आप तो यह आस्था रखिए कि जिन तमाम प्रबल शक्तियोने हमारे विरुद्ध व्यूह बना रखा है, वे नष्ट हो जायेंगी, और हमारा यह आन्दोलन हिन्दू-धर्मको शुद्ध करता रहेगा। अगर आप आशा, साहस और श्रद्धा छोड बैठेंगे तथा सतत जाग्रत न रहेंगे तो लोगोको आप यह दोष नही दे सकते कि वे आपको पैसा नही दे रहे हैं। इस आन्दोलनका अन्त बाहरी शक्तियोके कारण नही, किन्तु उसकी भीतरी कमजोरियोसे ही होगा। हरएक कार्यकर्त्ता इस प्रश्नको इसी दृष्टिसे देखे, यही मेरी प्रार्थना है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २०-६-१९३६

४५. पत्र : बालकृष्ण भावेको

बंगलोर
११ जून, १९३६

चि० बालकृष्ण,

जब तुम आबोहवा बदलने के लिए जाते हो या अन्य उपचार कराते हो तो मुझे स्वप्नमें भी यह विचार नही आता कि तुम्हे जीनेका मोह है। शरीर धर्मक्षेत्र है और समुचित प्रयत्न करके उसे बनाये रखना हमारा कर्त्तव्य है और इसीलिए ये सब उपचार करने चाहिए। तुम्हे भटकाने का एक कारण यह भी है कि मुझे तुमसे प्रभूत सेवा लेनेका लोभ है। जबतक कमजोरी बनी हुई है तबतक जहाँ भी रहोगे तुम्हे दूसरोकी सेवा लेनी ही पड़ेगी। यह सब नम्रतापूर्वक भगवान्के नामपर होने देने मे मुझे कहीं कोई दोष नजर नही आता। इसके पीछे भी यही तो भावना है न कि यदि भगवान् तुम्हे स्वास्थ्य देगा तो उसका उपयोग सेवाके लिए ही किया जायेगा। इसलिए मेरी सलाह है कि तुम्हे किसी भी तरहकी चिन्ता करके अपने स्वास्थ्य-सुधारमे बाधक नहीं बनना चाहिए।

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल

४६. पत्र : वल्लभको

११ जून, १९३६

चि० वल्लभ,

महादेव कल तेरे दो पत्रोका उत्तर तो संक्षेपमें दे ही चुके है। वल्लभ नाम अच्छा है। यदि इसके साथ कुछ जोड़ना हो तो मै दास जोड़ता ही हूँ। एक तो यह प्रत्यय है और दूसरे हमने स्वेच्छासे सेवाधर्म स्वीकार किया है और साथ ही वर्ण विलुप्त हो चुके है, इसलिए हम शूद्र है। इसके अतिरिक्त वल्लभदास साधुका नाम होता है। फिर आश्रममें सब लोग परिहासपूर्वक तुझे स्वामी कहकर भले गाली दें, किन्तु बाहर तो केवल वल्लभ या वल्लभदास ही उचित होगा। तू 'भाई' नही होना चाहता, अत सरदारसे -तेरी आधी प्रतिद्वन्द्विता है। तुम दोनो सेवक तो हो ही। वे भले सरदार रहे और तू सदा दास बना रहे।

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

४७. पत्र : रेहाना तैयबजीको

११ जून, १९३६

बेटी रेहाना,

तुमने तार करके बहुत अच्छा किया। हमारे लेखे तो अब्बा जान सदा जीवित है। यह देह तो 'चन्द रोज'[1] का तमाशा है। किन्तु उसमें रहनेवाली आत्मा तो अमर है। उनकी देहको तो हमने कब्रमे रख दिया। उसके साथ क्षणिक सम्बन्ध था। उसमें निवास करनेवाला देहधारी, जिसे हम अपना मानकर प्यार करते थे, आज भी हमारी निगहबानी कर ही रहा है। वह सदा हमारे सारे कामोंका साक्षी रहे। उसकी साक्षी हमें अयोग्य कामोको करनेसे बचाये।

अच्छा हुआ कि लगभग सारा कुटुम्ब वहाँ था।

सबको मेरी ओरसे आश्वासन देना। मुझे कौन आश्वासन देगा? हम दोनोंके बीचका बन्धन तो तू जानती है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य : नारायण देसाई

१. नजीर अकबराबादीकी प्रसिद्ध गजलकी ओर इशारा है।

४८. भेंट : एम० वी० जम्बुनाथन्‌को

११ जून, १९३६

गांधीजी ने श्री जम्बुनाथन्‌के[1] उर्दू-हिन्दी शब्द-कोष बनाने के प्रयासकी सराहना की और इस ग्रन्थको और विस्तृत और सम्पूर्ण बनाने के लिए उनको कुछ सुझाव दिये।

उर्दू-हिन्दी-विवादकी चर्चा करते हुए गांधीजी ने कहा कि यह विवाद इन दोनों लिपियोके भेदके कारण नहीं है, बल्कि मौजूदा पीढ़ीके हिन्दुओं और मुसलमानोंकी मनोवृत्तियाँ इसका कारण हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १३-६-१९३६

४९. प्रश्नोत्तर : हरिजन-कार्यकर्त्ता सम्मेलन, कंगेरीमें[2]

[११ जून, १९३६][3]

प्रश्न : आप अपने भाषणमें[4] मन्दिरोंके बारेमें शायद कुछ ज्यादा सख्त बोल गये हैं। कट्टर सवर्णोंको लगता है कि उनके मन्दिरों पर हम लोगोंकी श्रद्धा नहीं है, और अपने भाषणमें आपने जो विचार प्रकट किये हैं उनसे उनकी इस धारणाको समर्थन ही मिलेगा।

उत्तर : सवर्णोको लगता है कि उनके मन्दिरों पर हमारी श्रद्धा नही है, ऐसा कहकर तो आप उसी बातको स्वीकार कर रहे हैं जिसका खण्डन करना चाहते हैं। वे मन्दिर जैसे उनके हैं, वैसे ही हमारे हैं। मैंने तो अपने विचार उन लोगोके लिए प्रकट किये थे जिनकी मन्दिरो पर श्रद्धा है। यह कहकर कि जिन मन्दिरोके द्वार हरिजनोंके लिए बन्द हैं, उनका ईश्वरने परित्याग कर दिया है, हम सवर्णोमें कोई बैरकी भावना पैदा नही कर रहे हैं। क्योकि वहाँ जो ईश्वर है वह तो हमारा बनाया हुआ ईश्वर है। अगर वहाँ स्वयं ईश्वर हो तो वह यह कहेगा : "मूर्खो, क्या तुम मुझे घट-घटमें समाया हुआ नही देखते ?" किन्तु ईश्वर तो इतना कृपालु है

१. मैसूर विश्वविद्यालयके
२. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।
३. महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
४. देखिए "भाषण : हरिजन-सेवक सम्मेलन, कगेरीमें", १०-६-१९३६।

कि वह यह भूल जाता है कि हम मूर्ख हैं, और सोचता है कि हम लोगोंने अपने अन्तरके पापोको मिटाने के लिए ही मन्दिरोमे उसकी प्रतिष्ठा की है। पर जब हम देखते है कि अपने मन्दिरोंमें हमने जिस ईश्वरको प्रतिष्ठित किया वह अपने भक्तोंके एक वर्गको अस्पृश्य मानने-देता है तव तो हम यही कहेंगे कि उसने ऐसे मन्दिरोंका परित्याग कर दिया है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि हमें उन मन्दिरोमें जाना ही नही चाहिए जिनमें हरिजन प्रवेश न कर सकते हों। पहले हम अपने कुटुम्बके लोगोंको समझायें, और इसके बाद दूसरोंको भी यही सलाह दें।

प्र० : क्या हरिजन-सेवक संघ वर्तमान जात-पाँतके खिलाफ लड़ सकता है? कारण, जबतक यह जात-पाँत नष्ट नहीं हो जाती, तबतक अस्पृश्यताका दूर होना असम्भव है।

उ० : अस्पृश्यता तो सम्पूर्ण रूपसे नष्ट होनी ही चाहिए, पर जहाँतक संघका एक संस्थाके रूपमें सम्बन्ध है, हमने उसका काम केवल इतना ही रखा है कि वह उग्र ढंगकी अस्पृश्यताको दूर करने के लिए प्रयत्न करे। इसलिए हम अभी शुरूमें जात-पाँतसे जूझना नहीं चाहते, हालाँकि संघके अधिकांश सदस्य व्यक्तिगत रूपसे रोटी-बेटी व्यवहार-सम्बन्धी जात-पाँतकी रुकावटोंमे विश्वास नही करते और ऐसे तमाम प्रतिबन्धोंको उन्होंने खुद तोड़ डाला है।

प्र० : क्या कभी किसी समय हमें जात-पाँत पर हमला करना होगा?

उ० : क्यों नहीं? हम अपनी मर्यादाएँ स्वीकार करते हैं और इस तरह अपनी प्रगतिके वेगको हमने खुद ही रोक रखा है। जब हममें विश्वास आ जायेगा तब हम संघके सिद्धान्तमें हेरफेर कर सकते हैं, और एक कदम और आगे बढ़ सकते हैं। जैसा मैंने कहा है, लोग व्यक्तिगत रूपसे तो आगे बढ़ ही चुके हैं। जहाँतक रोटी-बेटी व्यवहार-सम्बन्धी प्रतिबन्धोंका सवाल है, वे वर्णाश्रम धर्मके अंग नहीं हैं। रोटी-बेटीका व्यवहार तो व्यक्तिगत चीज है। किन्हीं खास व्यक्तियोंके साथ भोजन या विवाह करने या न करने के लिए कोई शास्त्र मुझे बाध्य नहीं कर सकता। आपसे तो मेरा यह आग्रह है कि हमारे निजी आचरण और संघकी नीति (जो उसके विधानके अनुसार ही बदली जा सकती है) के बीच जो मौलिक भेद हो, उसे आप समझ लें।

प्र० : वर्तमान जागृतिके फलस्वरूप, कई जगह हरिजनोंने मुर्दा जानवरोंको उठाने-फेंकनेका काम छोड़ दिया है, और कई जगह तो हरिजन-सुधारकोंको अपने हरिजन भाइयोंसे यह काम केवल इसलिए छोड़ने के लिए कहना पड़ा है कि मुर्दार मांस खानेकी उनकी आदत छुड़वाई जा सके। इसपर कई जगह उन्हें सवर्ण हिन्दुओंके क्रोधका शिकार भी होना पड़ा है, जिन्होंने उनके बहिष्कारकी घोषणा करके उनकी तमाम सामाजिक सुविधाओंको रोक दिया है। गांधीजी से पूछा गया कि ऐसी हालतमें हरिजन-सेवक क्या करें?

उ० : जहाँ-कही भी ऐसा हो, हरिजनोकी रक्षा करना हमारा फर्ज है; और अगर उनकी जिन्दगी दूभर बना दी जाये, तो किसी ऐसे स्थानपर जा बसने मे हमें उनकी मदद करनी चाहिए, जहाँके लोग अधिक उदार हो। लेकिन हरिजन-सेवकोके लिए सबसे अच्छा तो यही है कि वे सुधारवादी विचार रखनेवाले सवर्णोमे ही, जिनमें वे स्वय भी शामिल है, ऐसे व्यक्ति खोज निकाले जो खाल साफ करने और चमड़ा कमाने का काम करने को तैयार हो। ऐसे चर्मालय तो मौजूद है ही जहाँ मुर्दा जानवरकी खाल उतारने से लेकर चमडा कमानेतक की सब क्रियाएँ सिखाई जाती है। अगर अनेक सवर्ण यह काम करने के लिए तैयार हो जाये, तो फिर जाग्रत हरिजन इस काममे सकोच न करेगे। लेकिन अगर वे इस कामको छोड़कर कोई और काम करना चाहे, तो इसका उन्हे हर प्रकारसे अधिकार है। अत. जहाँ कहीं वे इस कामको न करना चाहे वहाँ खुद हमे ही इसे करने का जिम्मा ले लेना चाहिए। इस काममें प्रतिदिन धनकी कितनी भीषण बर्बादी हो रही है, यह हमे सर्व-साधारणको महसूस कराना चाहिए। अगर हम मुर्दा जानवरकी खाल उतारने आदिका तरीका जानते, तो हमे मालूम होता कि जर्जर और भूखो मरते हुए जानवरके जिन्दा रहते हमे जो आमदनी होती है, उसकी बनिस्वत मुर्दा जानवरसे प्राय. ज्यादा ही आमदनी हो जाती है। क्योकि मुर्दा जानवरके माससे उम्दा खाद बन सकती है, उसकी हड्डियोको सिर्फ जलाकर बढ़िया खाद बनाई जा सकती है; तथा उनसे बटन, मूठ आदि भी बनाई जाती है, उसकी चर्बी, जो आसानीसे सुरक्षित रखी जा सकती है, कई कामोमे उपयोगी होती है, और उसकी आँते धुनकी तथा वाद्य-यन्त्रोके लिए ताँत बनाने के काम आती है।

प्र० : लेकिन, हमारे यहाँ तो एक विचित्र स्थिति पैदा हो गई है। हमारे यहाँ हरिजनोंका जोर है और उन्होंने सामाजिक बहिष्कारतक का मुकाबला करने का निश्चय कर लिया है। ऐसे हरिजन बहुत थोड़े है जो जानवरोंकी लाशोंको ठिकाने लगाने आदिके काम जारी रखने के पक्षमें है। बताइए, मै उन्हें क्या सलाह दूं?

उ० निःसन्देह उन्हे अपना धन्धा जारी रखने की स्वतन्त्रता रहनी चाहिए।

प्र० : खुद अपनी ही जातिवालों से बहिष्कारका खतरा हो तो भी?

उ० . नही। हमे जातिमे फूट नही पडने देनी चाहिए।

प्र० : क्या हमने मन्दिर-प्रवेश विधेयकको छोड़ दिया है? क्या हम उसे फिर नहीं उठा सकते?

उ० : हमने उसे छोडा नही है। जैसे ही परिस्थिति उसके अनुकूल होगी वैसे ही उसे फिर उठाया जायेगा।

प्र० : प्रचारके लिए क्या बजटमें और गुंजाइश नहीं रखी जा सकती?

उ० : नही। मेरा बस चले तो बजटकी ५ प्रतिशत रकम भी प्रचारके लिए खर्च करने की इजाजत न दूं। लेकिन आपको अगर प्रचार-कार्यपर रकम खर्च करनी ही हो, तो आपको खास तौरसे उसीके लिए अलगसे रुपया एकत्र करना चाहिए। मगर तब भी संघ आपसे उस खर्चका पाई-पाईका हिसाब माँगेगा ही।

प्र० : खुद हरिजनोंमें ही जो उप-जातियाँ है और छुआछूत है, उससे हमारे काममें बड़ी भारी रुकावट पड़ती है। इस बाधाको हम कैसे दूर करे?

उ० : खुद हमारे अन्दर जो उप-जातियाँ और छुआछूत मौजूद है उसको दूर करके। हरिजन तो अपने मालिकोकी नकल-भर कर रहे है। हमने उन्हे गुलाम-जैसा बनाकर रखा है और अपनी नकल करना सिखाया है। और यह तो आप जानते ही है कि नकल करनेवाला असलसे भी बढ जाता है—अर्थात्, उसे विकृत बना देता है।

प्र० : क्या आप यह खयाल नहीं करते कि विश्लेषण किया जाये तो सारी हरिजन-समस्या आखिर एक आर्थिक समस्या ही है, और ज्यों ही आप हरिजनोंकी आर्थिक स्थिति सुधार देंगे त्यों ही यह समस्या अपने-आप हल हो जायेगी?

उ० नही। आप आर्थिक समस्याको हल कर भी दे तो भी उससे हरिजन-समस्या हल नही होगी। हरिजन-समस्या तो हिन्दू-धर्ममें मौजूद एक रोगको दूर करने की समस्या है, और वह आर्थिक हलसे दूर नही होगा। डॉ० अम्बेडकरको ही लीजिए। आर्थिक दृष्टिसे वे हममे से अधिकाशसे अच्छे है, फिर भी माने तो अछूत ही जाते है।

एक कार्यकर्त्ता, जो मूर्तिभंजक मालूम पड़ते थे, हरिजनोंमें प्रचलित कुछ पूजा-विधियों—यहाँतक कि राम और कृष्णकी भी पूजा—के बहुत खिलाफ मालूम पड़े। बड़े भोलेपनसे उन्होंने कहा: "मै जानता हूँ कि और तो और, जब वे राम और कृष्णकी पूजाका नाम लेते है तब भी वे पेड़-पत्थरों-जैसी जड़ वस्तुओकी ही पूजा करते है। और राम या कृष्णकी पूजा भी मुझे स्पन्दित नहीं करती, चाहे वे कितने ही महान् रहे हों। क्या मै हरिजनोंसे यह न कहूँ कि मेरी तरह वे भी आपको ही अवतार मानें और आपकी ही पूजा करें?"

जो लोग वहाँ मौजूद थे उन सबकी हँसीके बीच, गांधीजी ने शान्तिके साथ कहा:

यही कठिनाई तो मेरे सामने मौजूद है। तुम्हे जानना चाहिए कि मै तो एक मिट्टीका पुतला ही हूँ, और जिन महापुरुषोसे तुम्हे विरक्ति होती है वे ही मेरे लिए पूज्य आदर्श है। राम और कृष्णके नामसे ही मुझमें आशाका सचार हो उठता है। अत मै तुम्हे सलाह दूँगा कि तुम अपने अवतारको, अर्थात् मुझे टुकडे-टुकडे कर दो। राम और कृष्णकी निन्दा करने से तो यह कही अच्छा होगा, क्योकि उनकी निन्दा करना तो मानो हिन्दुत्व और धर्मपर आघात करना है।

"लेकिन राम और कृष्ण थे तो आखिर मनुष्य ही।" . . .

तुम समझते हो कि मै ऐसा बेवकूफ हूँ कि सदियो पहले हुए उन्ही राम और कृष्णकी पूजा करूँगा? मै तो उन राम और कृष्णकी पूजा करता हूँ जो आज मौजूद है, जो सदासे मौजूद रहे है, जो मेरे अन्तरतमके विचारोको जानते है और मेरी गलतियोंको हमेशा सुधारते रहते है। अगर मुझे इस बातका विश्वास

न होता कि मेरे अगल-बगल दोनो ओर राम और कृष्ण मौजूद हैं, तो श्री क, ख तथा तुम-जैसे प्रश्नकर्त्ताओके कारण मैं पागल न हो गया होता?

"लेकिन", श्री राजगोपालाचारीने कहा, "इस स्पष्टीकरणसे शायद ही काम चले। इस स्पष्टीकरणसे तो, सम्भव है, आपको अवतार मानने का उनका भाव और दृढ़ ही होगा।"

अच्छा, तब तो मेरे नौजवान भाई, मुझे तुम्हे यह याद दिलाना आवश्यक है कि अगर तुम्हारा पक्का विचार है कि मैं एक अवतार हूँ, तो मैं तो एक-न-एक दिन मरूँगा ही। तब, क्या तुम्हारे लिए ईश्वर भी नही रह जायेगा?

लेकिन ईसाई भी तो ईसामसीहकी पूजा करते हैं?

तुम्हे जानना चाहिए कि ईसाई लोग जिस ईसामसीहकी पूजा करते है उसका पुनर्जन्म हुआ था। इसी प्रकार राम और कृष्णकी पूजा करनेवाले उन्ही राम और कृष्णकी पूजा करते है जो तुम्हारी अपेक्षा, या कमसे-कम मेरी अपेक्षा तो निश्चय ही अधिक जीवन्त है। वे अब भी जीवित हैं, और अनन्त कालतक जीवित रहेगे। अगर राम और कृष्णकी पूजा तुम्हे न भाती हो, तो तुम्हे चाहिए कि हरिजनोको हिन्दू-धर्म छोड़ देने की सलाह दो, क्योकि मुझे इस बातका पक्का विश्वास है कि जो आदमी राम और कृष्णको ईश्वरके रूपमे नही मानता वह हिन्दू नही है। जो मुसलमान यह कहे कि कलमेमे मेरा यकीन नही है उसे मुसलमान अपने बीचसे भगा देगे। अत. मुझसे यह मत पूछो कि क्या मैं उन रामकी, जिन्होने शम्बूकका वध किया, और उन कृष्णकी, जिनके बारेमे तरह-तरहकी कथाएँ प्रचलित है, पूजा करता हूँ। मैं तो जीवन्त राम और कृष्णकी पूजा करता हूँ, जो सत्य, शिव और पूर्णताके अवतार हैं।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-७-१९३६

५०. बातचीत : एक हरिजन दम्पतिके साथ[1]

[१२ जून, १९३६ या उसके पूर्व][2]

गांधीजी को यह पता नहीं था कि वे हरिजन है, सो उनको देखकर उन्होंने पूछा :

तुम दोनो विवाह करके आ रहे हो? तो फिर मेरे लिए क्या लाये हो?

"हम आपके लिए ये फूल लाये है", दूल्हेने कहा।

लेकिन फूलोसे तो काम नही चलेगा। विवाह करके तुम लोग मुझे कोरे फूलोसे सन्तुष्ट करना चाहते हो?

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

२. साधन-सूत्रके अनुसार यह और इससे अगली बातचीत बंगलोरमें हुई थी, जहाँ गांधीजी १२ जून, १९३६ तक रहे थे।

महात्माजी, हम आपके लिए अंगूर भी तो लाये है।

अगूर तो खट्टे है, अत: न तो मै तुम्हारे ये अगूर स्वीकार कर सकता हूँ और न ये फूल। जाओ, तुम दोनो आपसमें सलाह करो और फिर मुझे बताओ कि गरीब हरिजनोके लिए तुम मुझे क्या देना चाहते हो।

"हम तो खुद ही हरिजन है महात्माजी", उन्होंने कहा, और श्री रामचन्द्रने उनकी तरफसे उनका परिचय देते हुए कहा: "बापूजी, यह हमारे दीवान बहादुर श्रीनिवासन्‌के पौत्र हैं।"

गांधीजी एक क्षणके लिए कुछ विचारमें पड़ गये। वे शायद यह भूल गये थे कि दीवान बहादुर हरिजन है। फिर उन्होंने कहा:

ठीक है, मै समझ गया। तब तो तुम्हे नही, बल्कि मुझे कोई चीज तुम्हे देनी चाहिए।

हमें आप अपना आशीर्वाद दीजिए।

सो तो मै देता ही हूँ। अब मुझे यह बताओ कि तुम हिन्दू-धर्मके अन्दर सुखी हो या इस कमबख्त धर्मको छोड दोगे?

हम इसमें पूरी तरहसे सुखी हैं, हम इसे कभी नहीं छोड़ेंगे।

तो मै यह घोषणा कर दूं कि दीवान बहादुर श्रीनिवासन्‌का पौत्र और पौत्र-वधू हिन्दू-धर्मके अन्दर सुखी और सन्तुष्ट है?

अवश्य कर दीजिए। हम लोग पूरी तरहसे सुखी हैं।

"हम आपके चरणोंका स्पर्श कर सकते हैं?" यह कहकर दोनोंने पैर छुए और गांधीजी ने खूब प्यारसे उनकी पीठ ठोकी — अपने अत्यन्त नजदीकियोंको आशीर्वाद देनेका उनका यही प्रिय तरीका है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २७-६-१९३६

५१. बातचीत: एक पोलिश छात्रसे[1]

[१२ जून, १९३६ या उसके पूर्व]

[छात्र:] ग्रामोद्धारमें मेरी गहरी दिलचस्पी है। . . .[2] में एक स्कूल है, जिसका संचालन कैथलिक पादरी करते है। इस फोटोकी[3] बिक्रीसे मिलनेवाले पैसेसे मैं उस स्कूलकी मदद करूँगा।

फोटो लौटाते हुए गांधीजी ने कहा:

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र)से उद्धृत।
२. साधन-सूत्रमें ही यहाँ छूट है।
३. जिसपर वह छात्र गांधीजी के हस्ताक्षर चाहता था।

अच्छा, यह तो बात ही बिलकुल अलग है। आप मुझसे यह अपेक्षा तो नही करते कि मैं धर्मान्तरणके काममे पादरियोका समर्थन करूँ? वे क्या करते है, यह तो आपको मालूम होगा?

और इसके बाद उन्होंने उसे तिरुचेनगोडुके पासके तथाकथित धर्मान्तरणका किस्सा बताते हुए कहा, वहाँके हिन्दू मन्दिरको भ्रष्ट किया गया, तोड़ा-फोड़ा गया, अन्तर्राष्ट्रीय धर्म-संघ (इन्टरनेशनल फेलोशिप ऑफ फेथ्स)के लोगोंने मुझसे अनुरोध किया कि इस घटनाके बारेमें मैं कुछ न लिखूँ, क्योंकि वे लोग बीच-बचाव करने की कोशिश कर रहे थे; अन्तमें मुख्यतः ईसाइयोंसे बनी उस संस्थाके बीच-बचाव करने का भी कोई नतीजा नहीं निकला और तब मुझे 'हरिजन' में उसपर लिखने की छूट दी गई। लेकिन मैंने जान-बूझकर उस विषयपर कुछ नहीं लिखा क्योंकि अगर लिखता तो उससे उत्तेजना फैलनेका डर था।

इसपर उस छात्रने कहा : "लेकिन मैंने जिन पादरियोंका उल्लेख किया है वे तो ऐसे लोगोंके बीच काम कर रहे हैं जो बहुत पहले ईसाई बन चुके हैं।

सो तो ठीक है, लेकिन वे लोग नयी-नयी खुराफाते करते रहते हैं। मेरी समझमे नही आता कि एक उदात्त धर्मके माननेवाले लोग एक ही धर्मके अनुयायियोके दो वर्गोंके बीच विनाशकारी झगडे खडे करनेमें मदद क्यो दे।

लेकिन मैंने तो खुद ही एक धर्मको छोड़कर ईसाई धर्मको अपनाया है। इस धर्मने मुझे कितना सुख और सन्तोष दिया है इसका मैं वर्णन नहीं कर सकता।

आपकी बात मैं समझता हूँ। आप एक ऐसे ईसाईकी भाषाका प्रयोग कर रहे है जिसने सच्चे मनसे ईसाई धर्मको ग्रहण किया है। आप एक हृदयवान व्यक्ति है, हृदयके मूल्यको समझते है। यदि भारतके हरिजन आपके जैसे बौद्धिक तथा आध्यात्मिक स्तरतक पहुँच जायें और उनको अपने मूल पापका वैसा ही बोध प्राप्त हो जाये जैसा आपको है तो मुझे इस बातसे बडी खुशी होगी कि वे स्वेच्छासे ईसाई धर्मको अपना ले। मेरे बेटेने जो तथाकथित धर्मान्तरण करके इस्लामको अपनाया है उसके बारेमें मैंने क्या लिखा है, वह आपने पढा है? अगर वह शुद्ध और पश्चात्ताप भरे हृदयसे मुसलमान बन जाता तो उससे मेरा कोई झगडा नही हो सकता। लेकिन जिन लोगोने इस्लामको ग्रहण करने में उसकी सहायता की और जो अब उसके स्वधर्म त्यागपर फूले नही समा रहे हैं, उन्होने सिर्फ उसकी कमजोरीका फायदा उठाया। वे इस्लामके सच्चे प्रतिनिधि नही है। मैं सच कहता हूँ कि मुसलमानोके नाम मैंने जो पत्र लिखा है वह मेरे हृदयरक्त-रूपी स्याहीमें डुबोई हुई कलमसे लिखा गया है। इसी प्रकार अभी मैंने तिरूचेनगोडुके जिस धर्मान्तरणका उल्लेख किया है, उसमे भी ऐसी कोई चीज नही है जो अन्धकारको तनिक भी कम करती हो।[1]

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २७-६-१९३६

१. इसके बाद महादेव देसाईने लिखा है: "गांधीजी कैसी गहरी व्यथासे यह सब बोल रहे थे, यह उस नौजवानके सामने स्पष्ट था। उसने गांधीजीसे हस्ताक्षर देनेका आग्रह नही किया और इजाजत लेकर चला गया।"

५२. सलाह: हिन्दी-कार्यकर्त्ताओंको[1]

बंगलोर
१२ जून, १९३६

गांधीजी ने सेवा-भावसे अनुप्राणित हिन्दी-प्रचारकोको सलाह दी कि वे बहुत-से क्षेत्रोंमें काम करने की कोशिश करके अपनी शक्तिको बर्बाद न करे, बल्कि जो एक काम उन्होंने हाथमें लिया है, उसीपर ध्यान दें।

गांधीजी ने कहा कि किसी भी मनुष्यका, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, केवल मातृभाषाके माध्यमसे ही पूर्ण मानसिक विकास सम्भव है और जो इस मतसे असहमत हों, उन्हें मैं मातृभाषाका द्रोही समझूँगा। यहाँतक कि यदि सर वेंकटरामन भी कहें कि वे अपनी शोधोंको मातृभाषामें समझानेमें असमर्थ हैं तो मैं उनसे कहूँगा कि आप अपना नोबल पुरस्कार और नाइटका खिताब अपने पास ही रखें।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १२-६-१९३६

५३. भाषण: हरिजन-कार्यकर्त्ता-सम्मेलन, कंगेरीमें[2]

१२ जून, १९३६

धर्म-परिवर्तनकी धमकीका खयाल करके हमें कुछ नही करना चाहिए, क्योकि सिर्फ धर्म-परिवर्तनको रोकने के खयाल से आप जो-कुछ करेंगे उसका कोई नतीजा न होगा, यह निश्चित है। धर्म-परिवर्तन हो या न हो, हमें तो हरिजन जो कठिनाइयाँ भुगत रहे हैं उन सबको दूर करने के अपने प्रयत्नोको दूना कर देना है। चूंकि हम भी मनुष्य ही हैं, इसलिए धर्म-परिवर्तनकी धमकीपर यह प्रतिक्रिया तो हमपर होगी ही कि इसे रोकने के लिए हम भी कुछ करें। अत हमे इस तथ्यको ध्यानमे तो रख लेना चाहिए, लेकिन इसके कारण कुछ करना नही चाहिए। क्योकि इसके कारण हम अपने प्रयत्न दूने करेंगे तो इस धमकीके पूरा होते ही, अथवा यह मालूम पड़ते ही कि यह कोरी धमकी ही है, हम अपने प्रयत्नोमे ढिलाई कर देंगे। और ढिलाई चाहे किसी भी तरह क्यो न हो, उससे हमारे उद्देश्यको हानि ही पहुँचेगी। हरिजन

१. लगभग ३० महिलाओं-सहित भारतके अनेक भागोंसे आये हुए १०० से अधिक हिन्दी-कार्यकर्ता प्रात काल गांधीजी से मिले थे।

२. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

भी यह समझने लगेंगे कि हमारा सारा आन्दोलन पानीका बुलबुला था और अब होना-जाना कुछ भी नही है। लेकिन यह बात नही है। हमारा आन्दोलन तो वास्तवमें धार्मिक आन्दोलन है और राजनीतिक उतार-चढावका उसपर कोई प्रभाव नहीं है। अतएव हमारी ओरसे तो अधिकाधिक समर्पण ही होना चाहिए। लेकिन जब हम यह देखे कि हमारे हजारों भाई इस विषयमे बिलकुल उदासीन है और कुछ प्रस्ताव पास कर देनेके सिवा और कुछ नही करते, तब हम-जैसे मुट्ठी-भर लोग भला इसके लिए क्या करेंगे? कारण चाहे जो भी हो, लेकिन वे महसूस नही करते कि ये प्रस्ताव व्यक्तिगत रूपसे उनके लिए भी लागू है। बरसो पहले स्वदेशीपर जोरदार भाषण दिये जाते थे, किन्तु भाषण देनेवाले यह महसूस नही करते थे कि अपने कहे पर उन्हे स्वय अमल करना चाहिए। वे लोग 'यथासम्भव' शब्दकी आड़ ले लेते थे। लेकिन अस्पृश्यताके मामलेमे 'यथासम्भव' की गुंजाइश नही है। अगर इसे हटाना है, तो यह पूरी तरह हटनी चाहिए — सब जगहोसे, और उसी तरह मन्दिरोसे भी। अत. जिन हजारो लोगोने त्रावणकोरमें प्रस्ताव पास किये उन्होंने यदि पूरी गम्भीरतासे ऐसा किया है, तो दुनियामे ऐसी कोई ताकत नही है जो हरिजनोको मन्दिरोमे जानेसे रोक सके। इसलिए हममें से जो अस्पृश्यता-निवारणका काम कर रहे है, उनके लिए हरिजनोको यह विश्वास करा देना जरूरी है कि हम अपने प्रयासमे बिलकुल सच्चे है। मगर मुझे सन्देह है कि यहाँ एकत्र होनेवाले सब लोग अपने आचरणमे उतने सच्चे नही है जितना उन्हे होना चाहिए। आपमे से अधिकांश लोग हरिजनोकी कठिनाइयोको अपनी कठिनाइयाँ नही मानते। आप कहेंगे, 'हम तो उसी हदतक अस्पृश्यता हटाने में विश्वास करते है जितना कि हरिजन-सेवक सघमें बताया गया है।' लेकिन यदि हरिजन-सेवक 'बस यहीतक, यहाँसे आगे नही' की ओट ले, तो उनके लिए हरिजानोको अपनी सचाईके बारेमे विश्वास दिलाना कठिन हो जायेगा। स्वभावत. हरिजन लोग नित्यप्रति होनेवाली प्रगतिका पक्का सबूत चाहते है। वे उस ऊँचेसे-ऊँचे दर्जेतक पहुँचना चाहते है जहाँतक कोई भी हिन्दू पहुँच सकता है। इसलिए मै आपसे कहता हूँ कि हमारे सामने जो कठिनाइयाँ है उनपर विचार किये बगैर आप इस सम्मेलनसे वापस न जाये। यदि हमारे सब कार्यकर्त्ता शत-प्रतिशत कर्त्तव्य-निर्वाह करने की, स्वेच्छापूर्वक शत-प्रतिशत हरिजन बनने की योग्यता रखें तभी हमारा कल्याण होगा।

किसीको दोष देने की मेरी इच्छा नही है। मै तो सिर्फ प्रकट चिन्तन कर रहा हूँ, और जब रामचन्द्रनने मुझसे यह बताने को कहा कि हमें क्या करना चाहिए तब मुझसे जितने स्पष्ट रूपसे बना, उतने स्पष्ट रूपसे मैंने वह बता दिया। यह तो अपने हृदयमे अनुभव करने की बात है लेकिन ऐसा तभी हो सकता है जब इसका पूर्ण विश्वास हो जाये कि अस्पृश्यताका नाश न हुआ तो हिन्दू-धर्म ही नही रहेगा। मै तो इससे भी एक कदम आगे बढकर कहूँगा: 'जो धर्म कुछ लोगोको इसलिए बुरा ठहराये कि एक खास वर्गमें उनका जन्म हुआ है, हे ईश्वर, उसको तू नष्ट कर दे।' और यदि आप भी मेरी ही तरह महसूस करते हो, तो मै आपसे भी

यही प्रार्थना करने को कहूँगा कि अगर मानवतापर लगा हुआ यह कलक दूर न हुआ तो इस धर्मको नष्ट ही हो जाना चाहिए। इससे यह सावित होता है कि हमें हर तरहसे हरिजन बन जाना चाहिए। लेकिन इसका मतलब यह नही कि हम मुर्दार मास खाने लगें या दारू पीने लगें अथवा गन्दे रहने लगें। नही, उनके दु खमें हमें भी दुखी होना चाहिए और जिन कारणोसे उन्हे दु ख हो उन्हे दूर करने का यत्न करना चाहिए। यह हम कभी न कहे कि उनका दु ख उनके कर्मोका फल है, बल्कि हम यह कहे कि उनके प्रति हमारा जो ऋण है, कमसे-कम कुछ अशमें उसे चुकाने का हमने निश्चय कर लिया है। रोज सुबह हम अपने-आपसे पूछें कि उस ऋणको चुकाने के लिए हमने कुछ किया या नही। जबतक हम ऐसा न करेगे, हमारे सब प्रस्ताव बेकार हैं।

प्रश्न : जो लोग हिन्दू-धर्ममें वापस आना चाहें उनके प्रति हमारा क्या रुख होना चाहिए?

उत्तर : उनसे हम बस यही कहेगे : 'आपका पूरा स्वागत है', परन्तु जिनके बारेमे हमें लगे कि प्रलोभन देनेपर वे वापस लौट आयेंगे, उन्हें हम कभी प्रलोभन न दें।

प्रश्न : यह बात नहीं। इसका तो सवाल ही नहीं उठता। मैं सोच रहा था कि आप किसी प्रकारका शुद्धि-संस्कार पसन्द करेंगे या नहीं।

उत्तर· शुद्धि-संस्कारकी कोई आवश्यकता नही है। जो अकारण ही धर्म-परिवर्त्तन कर बैठे थे वे खेदका अनुभव करते हुए ही वापस आयेंगे। और वैसी स्थितिमे जो लोग उन्हे वापस ले वे उनसे कुछ शुद्धि करने को कह सकते हैं। मैं तो उनसे केवल सौ बार राम-नाम लेने को कहूँगा।

प्रश्न : यदि कोई हरिजन-सेवक स्वेच्छासे होनेवाले ऐसे शुद्धि-संस्कारके समय उपस्थित रहे तो आपको कोई आपत्ति तो नहीं होगी?

उत्तर ऐसे संस्कारके समय उसकी उपस्थितिपर मुझे आपत्ति नही है, परन्तु उसको स्पष्ट कर देना चाहिए कि शुद्धि हरिजन सेवक सघके कार्यक्रमका अग नही है। उसको यह भी निश्चित रूपसे जान लेना चाहिए कि हिन्दू-धर्मकी पुनर्दीक्षा लेने-वाला व्यक्ति पूरी स्वेच्छासे ऐसा कर रहा है और उसे कोई प्रलोभन नहीं दिया गया है। असली प्रश्न तो यह है कि उसे विश्वास हो कि पुनर्दीक्षाका इच्छुक व्यक्ति पूर्ण रूपसे सच्चा भाव रखता है। यदि आपको ऐसा विश्वास हो, तो आपको उस व्यक्तिको अपना मित्र बनाने का हर तरह से प्रयत्न करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ४-७-१९३६

५४. दीक्षान्त भाषण: हिन्दी प्रचार सभाके समारोहमें[1]

[१२ जून, १९३६][2]

जब मैंने आज शामको यहाँ आध घटेके लिए आनेका वचन दिया तब मुझे अन्दाज नही था कि यह इतना लम्बा-चौडा समारोह होगा और मुझे आशासे अधिक समय देना पडेगा। यह नही कि मै अधिक समय देना नही चाहता था। यदि सम्भव होता तो मै आपको दो घटेका समय देता, हिन्दीमे आपकी कुछ परीक्षा लेता, और थोडी-बहुत कामकी बात भी कर लेता, यानी हिन्दी-प्रचारके लिए आपसे चन्दा और शायद गहने भी माँगता। परन्तु ऐसा होना नही था। दो घटेमें ही मुझे बगलोरसे रवाना हो जाना है। फिर भी इसका यह आशय नही कि चन्दा देनेके इच्छुक लोग मेरे जानेके बाद वैसा नही कर सकते।

आज जिन्हे उपाधि और प्रमाणपत्र मिले है, उन्हे मै बधाई देता हूँ, और आशा रखता हूँ कि वे रोज अपना अभ्यास चालू रखकर अपना ज्ञान बढाते रहेगे। साधारण स्कूलो और कॉलेजोमे लोग 'नौकरी' के खयालसे पढने जाते है, परीक्षाके लिए पढते है, और परीक्षा-भवनसे निकलते ही अपनी पुस्तकोको और उनसे प्राप्त ज्ञानको भूल जाते है। अधिकाश लोगोको ज्ञानकी अपेक्षा उपाधिकी चिन्ता विशेष होती है। किन्तु जिन्हे आज यहाँ उपाधियाँ मिली है, उन्होने उपाधिके लिए उपाधि नही ली है। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि हिन्दी प्रचार सभाका उद्देश्य नौकरी दिलाना नही है। आपको मिली हुई यह उपाधि उस ज्ञानका चिह्न-मात्र है, जो आपको अपने शिक्षकसे मिला है। अलबत्ता, यह हो सकता है कि आपमें से कुछ लोग अपने इस हिन्दी-ज्ञानकी मददसे थोडा कमा सके, किन्तु निश्चय ही हमारा उद्देश्य यह नही है।

मुझे यह देखकर खुशी होती है कि आजके सफल विद्यार्थियोमे अधिक सख्या बहनोकी है। यह भारतमाताके और हिन्दी-प्रचारके उज्ज्वल भविष्यकी निशानी है, क्योकि मेरा यह दृढ विश्वास है कि हिन्दुस्तानका उद्धार उसके स्त्री-समाजके त्याग और ज्ञानपर निर्भर है। स्त्रियोकी सभामे मै यह बात हमेशा जोर देकर कहता रहा हूँ कि जब हम अपने देवी और देवताओ या प्राचीन वीर स्त्री-पुरुषोके बारेमे कुछ कहते है, तो हम स्त्रीका नाम पहले लेते है — जैसे, सीताराम, राधाकृष्ण

१. यह हरिजनमें "द क्वेश्चन ऑफ हिन्दी" (हिन्दीका सवाल) शीर्षकसे छपा था। बगलोरमें हुए इस दीक्षान्त समारोह की अध्यक्षता गाधीजी ने की थी, और इसमें श्रीनिवास शास्त्री, च० राजगोपालाचारी तथा सत्यमूर्ति भी उपस्थित थे।

२. १३-६-१९३६ के हिन्दू से।

आदि। हम रामसीता या कृष्णराधा कभी नहीं कहते। यह प्रथा अर्थहीन नहीं है। हमारे यहाँ स्त्रीका आदर किया जाता था, और स्त्रियोंके कार्यो और उनकी योग्यताकी शान कद्र की जाती थी। हमें यह पुराना रिवाज अक्षरशः और अर्थतः जारी रखना चाहिए।

इस अवसरपर मैं आपको इस बातके कुछ स्पष्ट कारण समझाऊँगा कि हिन्दी या हिन्दुस्तानी ही राष्ट्रभाषा क्यों होनी चाहिए। जबतक आप कर्नाटकमें रहते हैं और कर्नाटकसे बाहर आपकी दृष्टि नहीं दौड़ती, तबतक आपके लिए कन्नड़का ज्ञान काफी है। लेकिन अगर आप अपने [देश के] किसी गाँवको देखेंगे, तो फौरन ही आपको पता चलेगा कि आपकी दृष्टि और आपके क्षितिजका विस्तार हुआ है, और अब आप कर्नाटक नहीं बल्कि हिन्दुस्तानकी दृष्टिसे सोचने लगे हैं। कर्नाटकके बाहरकी घटनाओंमें आपकी दिलचस्पी बढ़ी है। लेकिन अगर भाषाका कोई सर्वसाधारण माध्यम या वाहन न हो, तो आपकी यह दिलचस्पी बहुत आगे नहीं बढ़ सकती। कर्नाटकवाले सिन्ध या संयुक्त प्रान्तवालों के साथ किस तरह अपना सम्बन्ध कायम कर सकते हैं और यह सम्बन्ध जारी रख सकते हैं? हमारे कुछ लोग मानते थे, और शायद अब भी मानते होंगे, कि अंग्रेजी भाषा एक ऐसे माध्यम का काम दे सकती है। अगर यह सवाल हमारे कुछ हजार पढ़े-लिखे लोगोंका ही सवाल होता, तो जरूर ऐसा हो सकता था। लेकिन मुझे विश्वास है कि इससे आपमें से किसीको सन्तोष न होगा। हम और आप चाहते हैं कि करोड़ों लोग अन्तर्प्रान्तीय सम्बन्ध स्थापित करें। ऐसा सम्बन्ध कभी अंग्रेजी द्वारा स्थापित हो भी सके, तो भी स्पष्ट है कि अभी कई पीढ़ियोंतक वह मुमकिन नहीं है। कोई कारण नहीं कि वे सब अंग्रेजी ही सीखें। और, अंग्रेजी जीविका कमानेका अचूक और निश्चित साधन तो हरगिज नहीं है। और जैसे-जैसे अधिक संख्यामें लोग उसे सीखते जायेंगे वैसे-वैसे (नौकरीकी दृष्टिसे) उसकी कीमत कम होती जायेगी। फिर, अंग्रेजी सीखना जितना कठिन है, हिन्दी या हिन्दुस्तानी सीखना उतना कठिन नहीं है। अंग्रेजी सीखने में जितना समय लगेगा उतना हिन्दी-हिन्दुस्तानी सीखने में कभी नहीं लग सकता। हिसाब लगाया गया है कि हिन्दी-हिन्दुस्तानी बोलने और समझनेवाले हिन्दू-मुसलमानोंकी संख्या २० करोड़से ज्यादा है। क्या १ करोड़ १० लाख कर्नाटकी भाई-बहन अपने इन २० करोड़ भाई-बहनोंकी भाषा सीखना पसन्द नहीं करेंगे? और क्या वे उसे बहुत आसानीसे सीख नहीं सकते? अभी क्षण-भर पहले एक घटनाने विशेष रूपसे मेरा ध्यान खींचा है, उससे ही इस सवालका जवाब मिल जाता है। आपने अभी-अभी लेडी रामनके हिन्दी व्याख्यानका कन्नड़ अनुवाद सुना है। उसे सुनते समय इस बातकी तरफ आपका ध्यान अवश्य आकर्षित हुआ होगा कि लेडी रामनके बहुत-से हिन्दी शब्द भाषान्तरमें ज्यों-के-त्यों प्रयुक्त किये गये थे — जैसे, 'प्रेम', 'प्रेमी', 'संघ', 'सभा', 'अध्यक्ष', 'पद', 'अनन्त', 'भक्ति', 'स्वागत', 'अध्यक्षता', 'सम्मेलन' आदि। ये शब्द हिन्दी-कन्नड़, दोनोंमें प्रचलित है। अब मान लीजिए कि यदि कोई अंग्रेजीमें इस भाषणका अनुवाद करता, तो

क्या वह इनमे से एक भी शब्दका उपयोग कर सकता था? कभी नही। इनमें से हरएक शब्दका अंग्रेजी पर्याय श्रोताओके लिए बिलकुल नया होता। इसलिए जब हमारे कुछ कर्नाटकी मित्र कहते है कि हिन्दी उन्हे कठिन मालूम होती है तो मुझे हँसी आती है; साथ ही मै गुस्सा और अधीर भी हो जाता हूँ। मेरा यह विश्वास है कि रोज कुछ घटे लगनके साथ अध्ययन करने से एक महीनेमें हिन्दी सीखी जा सकती है। मै ६७ सालका हो चुका हूँ। और अब मुझे बहुत कालतक जीना नही है। लेकिन आप यह सच मानिए कि जिस समय मै कन्नड अनुवाद सुन रहा था, उस समय मैंने यह अनुभव किया कि अगर मै रोज कुछ घटे अभ्यास करूँ तो कन्नड सीखने मे मुझे आठ दिनसे ज्यादा समय नही लगेगा। माननीय श्रीनिवास शास्त्री और मुझ-जैसे दस-पाँच लोगोको छोडकर यहाँ बाकीके आप सब तो जवान ही है। क्या आपमे इतनी शक्ति नही कि हिन्दी सीखने के लिए केवल एक महीने तक प्रतिदिन चार घटे भी दे सके? अपने २० करोड देशबन्धुओके साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए क्या इतना समय देना आपको ज्यादा मालूम होता है? अब मान लीजिए कि आपमे से जो लोग अग्रेजी नही जानते, वे उसे सीखने का निश्चय करते है। तो क्या आप मानते है कि प्रतिदिन चार घटेकी मेहनतसे आप एक महीने मे अंग्रेजी सीख सकेगे? कभी नही। हिन्दी इतनी आसानीसे इसलिए सीखी जा सकती है कि भारतमे हिन्दू लोग जो भाषाएँ बोलते है, जिनमें दक्षिण भारतकी चार भाषाएँ भी शामिल है, उन सब मे संस्कृतके बहुत-से शब्द है। हमारा इतिहास कहता है कि पुराने जमानेमे उत्तर-दक्षिणका पारस्परिक व्यवहार सस्कृत द्वारा चलता था। आज भी दक्षिणके शास्त्री उत्तरके शास्त्रियोके साथ सस्कृतमे बातचीत करते है। विभिन्न भारतीय भाषाओमे मुख्य भेद व्याकरणका है। उत्तर भारतकी भाषाओका तो व्याकरण भी एक-सा है। अलबत्ता, दक्षिण भारतकी भाषाओका व्याकरण बहुत भिन्न है, और सस्कृतसे प्रभावित होनेसे पहले उनके शब्द भी भिन्न थे। लेकिन अब उन्होने भी बहुत-से सस्कृत शब्द ले लिये है, और वे इस हदतक लिये गये है कि जब मै दक्षिणमे घूमता हूँ तो यहाँकी चारो भाषाओमे जो-कुछ कहा जाता है, उसका सार समझ लेने मे मुझे कोई कठिनाई नही मालूम होती।

अब हमारे मुसलमान मित्रोकी बात लीजिए। वे अपने-अपने प्रान्तकी भाषा तो स्वभावतः जानते ही है; इसके अलावा वे उर्दू भी जानते हैं। हिन्दी और उर्दू या हिन्दुस्तानीमें कोई भी भेद नही है, दोनोका व्याकरण एक-सा है। लिपिके कारण दोनोमें जो फर्क है, सो है; और इसपर विचार करने से मालूम होता है कि हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू, ये तीनो शब्द एक ही भाषाके सूचक है। इन भाषाओके शब्द-कोषोको देखने से हमे पता चलता है कि इनके अधिकाश शब्द एक-से है। इसलिए एक लिपिके सवालको छोड़ दें, तो इसमे मुसलमानोको कोई कठिनाई नही हो सकती। और लिपिका सवाल तो अपने-आप हल हो जायेगा।

इसलिए फिर अपनी शुरूकी बातपर लौटकर मै कहता हूँ कि अगर आपकी दृष्टि उत्तरमें श्रीनगरसे दक्षिणमे कन्याकुमारी तक और पश्चिममे कराचीसे पूर्वमे

डिब्रूगढ़ तक पहुँचती हो — और इतनी वह पहुँचनी भी चाहिए — तो आपके पास हिन्दी सीखने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। मैं आपको समझा चुका हूँ कि अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती। अंग्रेजीसे मुझे कोई द्वेष नहीं है। कुछ विद्वानोंके लिए अंग्रेजीका ज्ञान आवश्यक है, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंके लिए, और पश्चिमी विज्ञानके ज्ञानके लिए उसकी जरूरत है। लेकिन जब अंग्रेजीको वह स्थान दिया जाता है, जिसके योग्य वह है ही नहीं, तो मुझे दुःख होता है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसा प्रयत्न निश्चय ही विफल होगा। अपनी-अपनी जगहपर ही सब शोभा पाते हैं।

आपके दिमागमें व्यर्थ ही जो एक डर घुस गया है, उसे मैं निकाल फेंकना चाहता हूँ। क्या हिन्दी कन्नडकी जगह सिखाई जायेगी? क्या वह कन्नड़को उसके स्थानसे हटा देगी? नहीं, उलटे मेरा दावा तो यह है कि जैसे-जैसे हम हिन्दीका अधिक प्रचार करेंगे, वैसे-वैसे हम अपनी प्रान्तीय भाषाओंके अध्ययनको न केवल विशेष प्रोत्साहन देंगे, बल्कि उनकी शक्ति भी बढ़ायेंगे। यह बात मैं भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके अपने अनुभवसे कहता हूँ।

मैं दो शब्द लिपिके बारेमें कहूँगा। जब मैं दक्षिण आफ्रिकामें था, तब भी मैं मानता था कि संस्कृतसे निकली हुई सभी भाषाओंकी लिपि देवनागरी होनी चाहिए; और मुझे विश्वास है कि देवनागरीके द्वारा द्रविड़ भाषाएँ भी आसानीसे सीखी जा सकती हैं। मैंने तमिल-तेलुगुको और कुछ दिनतक कन्नड़ व मलयालमको भी उनकी अपनी लिपियों द्वारा सीखने का प्रयत्न किया है। लेकिन जब मैंने देखा कि मुझे चार-चार लिपियाँ सीखनी होंगी तो मैं मारे डरके घबरा उठा। मैं आपसे कहता हूँ कि मुझे यह साफ दिखाई पड रहा था कि अगर इन चारों भाषाओंकी लिपि देवनागरी ही होती, तो मैं इन्हें थोड़े ही समयमें सीख सकता था। मेरी तरह जिसे चारों भाषाएँ सीखने का उत्साह है, उसके लिए यह कितना बड़ा बोझ है? और क्या यह समझाने के लिए भी किसी दलीलकी जरूरत है कि दक्षिणवालों के लिए अपनी मातृ-भाषाके सिवा दूसरी तीनों भाषाएँ सीखने के लिए देवनागरी लिपि अधिकसे-अधिक सुविधाजनक हो सकती है? राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रश्नके साथ लिपिका प्रश्न मिलाने की जरूरत नहीं है। मैंने यहाँ उसका उल्लेख केवल यह दिखाने के लिए किया है कि हिन्दुस्तानकी सभी भाषाएँ सीखनेवाले को लिपिके कारण कितनी कठिनाई होती है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २७-६-१९३६

५५. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

बंगलोर
१२ जून, १९३६

मुझे विश्वास है कि श्री कोदण्डराव ऐसा दावा कभी कर ही नही सकते कि वे काग्रेसके प्रतिनिधि या मेरे 'दूत' है।[१] मेरे मतमे वे इतने खरे व्यक्ति है कि ऐसा कोई दावा नहीं कर सकते।

मुझे उनके हिन्दी-विषयक विचारोका कोई ज्ञान नही है, परन्तु उनके मुँहमे रखकर उनसे जो यह कहलवाया गया है कि विदेशोमें रहनेवाले भारतीयोके लिए हिन्दी किसी काम की नही है, अथवा उनके बारेमे जो यह कहा गया है कि उन्होने वहाँके [त्रिनिडाड के] शिक्षण-अधिकारियोको सलाह दी है कि वे भारतीय प्रवासियोके ऐसे किसी दावेपर ध्यान न दे, उसमे विश्वास करने से इनकार करता हूँ। यह जानकर मुझे खेद होगा कि वास्तवमे उनके ऐसे विचार है, क्योकि मेरे विचारसे प्रवासी भारतीयोके लिए यह तो आवश्यक है ही कि वे अपनी मातृभाषाको भूले नही, साथ ही यह भी जरूरी है कि उनको हिन्दी साहित्य और उसके विकाससे परिचित रहना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १३-६-१९३६

५६. अमेरिकाकी साक्षी

मोण्टाना (अमेरिका)से कुमारी मेबेल ई० सिम्पसनने 'हरिजन' के सम्पादकको लिखा है :

> मै आपकी पत्रिकाकी प्रशंसा करती हूँ। यह ठीक है कि आकारमें यह पत्रिका बहुत बड़ी नहीं है, लेकिन इसमें जो-कुछ सामग्री रहती है वह पृष्ठोंकी कमीको पूरा कर देती है। श्री गांधीने सन्तति-निग्रहके विषयमें जो लेख लिखा है वह मुझे बहुत पसन्द आया। और वह किसी भी विषयमें श्री गांधीकी पैनी दृष्टिका द्योतक है। अगर वे बीस बरस पहले, जबकि सन्तति-निग्रहसे घृणा की जाती थी, और फिर अब जबकि इसका बहुत जोर है, अमेरिका जाते तो वह जान जाते कि नैतिक दृष्टिसे यह कितना पतनकारक है। लेकिन वह किसी

१. सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीके पी० कोदण्डराव उस समय त्रिनिडाड गये हुए थे।

को अब इस बातका विश्वास नहीं करा सकेंगे। कारण सन्तति-निग्रह मनुष्यको नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे भी वंचित कर देता है, जिससे इस पथपर चलनेवालों के लिए उच्च नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे सूक्ष्म विवेकपूर्वक किसी बातका निर्णय करना असम्भव हो जाता है। इस सम्बन्धमें हिन्दुस्तानने अगर पश्चिमका अनुकरण किया तो निश्चय ही वह अपने दो अत्यन्त अमूल्य और सुन्दर रत्नोको खो देगा: एक तो छोटे बच्चोके प्रति प्रेम-भाव, और दूसरा मातृ और पितृ-पदके प्रति सम्मानका भाव। अमेरिकाने इन दोनोको गँवा दिया है — और दुःखकी बात तो यह है कि इसका उसे ज्ञान ही नहीं है। क्या आप अपनी पत्रिकामें ब्रह्मचर्यके अर्थका स्पष्टीकरण कर सकते है? मुझसे इसके बारेमें पूछा गया है। हालाँकि मेरे मनमें इसकी कुछ कल्पना तो है, लेकिन वह इतनी निश्चित नहीं है कि मैं दूसरोंको समझानेका प्रयत्न करूँ। धन्यवाद।

पाठक और पाठिकाएँ इस साक्षीका जो-कुछ मूल्य आँके वह आँक सकते है। मगर मैं कहता हूँ कि सन्तति-निग्रहके कृत्रिम साधनोका प्रयोग करने के विरुद्ध ऐसी साक्षी उन लोगोकी साक्षीसे कही ज्यादा महत्त्वपूर्ण है जो इनके प्रयोगसे फायदा उठाने का दावा करते है। इसका कारण स्पष्ट है। इससे बच्चोकी उत्पत्ति रुकती है, इस रूपमे तो इसके फायदेसे कोई इनकार नही करता। हमारा कहना सिर्फ यह है कि इसके प्रयोगसे जो नैतिक हानि होती है वह बेहिसाब है। कुमारी सिम्पसनने हमे ऐसी हानिका अनुमान दिया है।

अब रही ब्रह्मचर्यके अर्थकी बात। सो उसका मूलार्थ इस प्रकार बताया जा सकता है. वह आचरण जिससे कोई व्यक्ति ब्रह्म या परमात्माके सम्पर्कमें आता है।

इस आचरणमे सब इन्द्रियोका सम्पूर्ण सयम शामिल है। इस शब्दका यही सच्चा और सुसगत अर्थ है।

वैसे आम तौरपर इसका अर्थ सिर्फ जननेन्द्रियका शारीरिक सयम ही लगाया जाने लगा है। इस सकीर्ण अर्थने ब्रह्मचर्यको हलका करके उसके आचरणको प्राय बिलकुल असम्भव कर दिया है। जननेन्द्रियपर तबतक सयम नही होता जबतक कि सभी इन्द्रियोपर समुचित सयम न हो, क्योकि वे सब अन्योन्याश्रित है। मन भी इन्द्रियोमें ही शामिल है। जबतक मनपर सयम न हो, खाली शारीरिक सयम चाहे कुछ समयके लिए प्राप्त भी हो जाये, पर वह व्यर्थ है, उससे कोई लाभ नही।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १३-६-१९३६

५७. जीवन्त ईश्वर कहाँ है?

बंगालसे एक सज्जन लिखते हैं :[1]

"एक युवककी कठिनाई" शीर्षकसे आपने सन्तति-निरोधके विषयमें जो लेख[2] लिखा है उसे मैंने पढ़ा।

आपके लेखके मुख्य विषयसे मैं पूरी तरह सहमत हूँ, लेकिन उस लेखमें आपने ईश्वर-सम्बन्धी अपनी भावना भी प्रकट की है। आपने कहा है कि आजकल यह फैशन-सा हो गया है कि नौजवान लोग ईश्वरको नहीं मानते और वे एक जीवन्त ईश्वरमें विश्वास नहीं रखते।

लेकिन, क्या मैं आपसे पूछूँ कि ईश्वरके अस्तित्वके विषयमें आप क्या प्रमाण (जो कि निश्चित और असंदिग्ध हो) पेश कर सकते हैं? हिन्दू दार्शनिकों अर्थात् हमारे प्राचीन ऋषियोंने ईश्वरके स्वरूपको बताने का प्रयत्न किया — और ऐसा करते हुए, मुझे लगता है, अन्तमें वे इस परिणामपर पहुँचे कि वह अनिर्वचनीय और मायापरिच्छन्न आदि है। संक्षेपमें कहें तो, उन्होंने ईश्वरको तमिस्राके अभेद्य आवरणमें लपेट दिया और इस प्रकार ईश्वरके पेचीदा प्रश्नको और भी पेचीदा बना दिया। अलबत्ता, इस बातसे मैं इनकार नहीं करता कि प्राचीन कालके शंकराचार्य और बुद्ध या आधुनिक कालके श्री अरविन्द और आप-जैसे सच्चे महात्मा ऐसे ईश्वरकी कल्पना और उसके अस्तित्वको अनुभव कर सकते हैं, किन्तु साधारण मानव-बुद्धिकी पहुँचसे तो वह बहुत परे है।

और हम साधारण लोग, जिनकी मन्द बुद्धि इतनी अगम्य गहराई तक कभी नही पहुँच सकती, जब अपने बीच उसके अस्तित्वका ही अनुभव नहीं कर सकते, तो फिर ऐसे ईश्वरका करें भी क्या? . . .

इसलिए आजकलके नवयुवक ईश्वरमें विश्वास नही करते तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। बात तो दरअसल यह है कि वे ईश्वरकी कोरी कल्पना नहीं करना चाहते। वे तो वास्तविक और प्रत्यक्ष ईश्वरको चाहते हैं। आपने अपने लेखमें जीवन्त ईश्वरमें जीवन्त विश्वास रखने की बात कही है। अगर आप ईश्वरके अस्तित्वके कुछ निश्चित और असन्दिग्ध प्रमाण प्रस्तुत करें, तो मैं बड़ा कृतज्ञ होऊँगा, और मैं समझता हूँ, ऐसा करके आप युवकोंका

१. यहाँ केवल कुछ अंश दिये गये हैं।
२. देखिए खण्ड ६२, पृ० ३७३-७५।

भारी हित करेंगे। मुझे विश्वास है कि इस समस्याको, जो पहले ही इतनी रहस्यमय है, आप और रहस्यपूर्ण नहीं बनायेंगे और इस विषयपर कुछ निश्चित प्रकाश डालेंगे।

मुझे इस बातका बहुत भय है कि मैं जो-कुछ लिखनेवाला हूँ, उससे वह रहस्यका आवरण दूर नही होगा, - जिसका उक्त पत्रमे जिक्र किया गया है।

पत्र-लेखकका खयाल है कि शायद मैंने जीवन्त ईश्वरके अस्तित्वका अनुभव कर लिया है। परन्तु मै ऐसा कोई दावा नहीं कर सकता। यह अवश्य है कि जैसे वैज्ञानिको द्वारा बताई हुई अनेक बातोमे मेरा जीवन्त विश्वास है उसी तरह ईश्वरमें भी मेरा सच्चा विश्वास है। यह कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक लोग जो बात कहते है उसके तो प्रमाण मौजूद रहते है, और उनकी बताई हुई विधिसे हर कोई उसकी परीक्षा कर सकता है। किन्तु ऋषि और पैगम्बर भी तो ठीक इसी तरहकी बात कहते है। वे कहते है कि जो कोई उनके बताये हुए मार्गपर चले वह ईश्वरको पा सकता है। लेकिन असलियत यह है कि हम उस रास्तेपर तो चलना नही चाहते और जो बात सचमुच जरूरी है उसके बारेमें प्रत्यक्षदर्शियोकी बात भी नही मानते। भौतिक विज्ञानकी सारी सफलताएँ एकसाथ रखी जायें, तो भी उस एक बातका मुकाबला नही कर सकती जिससे कि हममे ईश्वरके प्रति सच्ची श्रद्धा पैदा होती है। जो लोग ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास करना नही चाहते, वे अपने शरीरके सिवा और किसी वस्तुके अस्तित्वमें विश्वास नही करते। मानवताकी प्रगतिके लिए ऐसा विश्वास अनावश्यक है। आत्मा या परमात्माके अस्तित्वके प्रमाणरूप कितनी ही भारी दलील क्यो न हो, ऐसे मनुष्योके लिए वह व्यर्थ ही है। जिस मनुष्यने अपने कानोमें डाट लगा रखी हो उसे आप कितना ही बढिया सगीत क्यो न सुनाये, वह उसकी सराहना तो दूर, उसे सुन भी नही सकेगा। इसी तरह जो लोग विश्वास ही नही करना चाहते, उन्हे आप प्रत्यक्ष ईश्वरके अस्तित्वमे विश्वास करा ही नही सकते।

सौभाग्यसे सर्वसाधारणका विशाल बहुमत प्रत्यक्ष ईश्वरमे जीवन्त विश्वास रखता है। वे न तो उसके बारेमे कोई दलील कर सकते है और न करते ही है। उनके लिए तो "वह सचमुच है।" भला क्या दुनियाके सारे शास्त्र 'नानीकी कहानियाँ' ही है? ऋषि-पैगम्बरोकी बात क्या हम नही मानेंगे? चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहस, तुकाराम, ज्ञानदेव, रामदास, नानक, कबीर, तुलसीदासने जो बात कही क्या उसका कुछ भी मूल्य नही है? और, राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, विवेकानन्दके लिए आप क्या कहेगे? ये सब तो आधुनिक व्यक्ति है और वैसे ही सुशिक्षित थे जैसेकि आज हममें से बडेसे-बडा व्यक्ति हो सकता है। ऐसे जीवित व्यक्तियोके उदाहरण मै नही दे रहा हूँ, जिनकी साक्षी सर्वथा निर्दोष मानी जायेगी। ईश्वरमें यह विश्वास श्रद्धापर ही अवलम्बित है, जो बुद्धिसे परे की वस्तु है। इसमें शक नही कि जिसे हम अनुभूति कहते है, उसके मूलमें भी विश्वास ही होता है, जिसके बिना वह टिक ही नही सकता। स्थिति ही ऐसी है कि यही होना चाहिए। अपने

अस्तित्वकी मर्यादाओका भला कौन अतिक्रमण कर सकता है? मै तो यह मानता हूँ कि दैहिक जीवनमें ईश्वरकी सम्पूर्ण अनुभूति सम्भव ही नही है, न वह आवश्यक ही है। मनुष्योको आध्यात्मिकताकी पूरी ऊँचाईपर पहुँचने के लिए जिस वातकी जरूरत है वह तो ईश्वरमे जीवन्त और अटूट विश्वासका होना ही है। ईश्वर हमारे इस भू-मण्डलसे परे नही है। इसलिए वाहरका कोई प्रमाण हो भी, तो उसका कोई उपयोग नही है। अपनी इन्द्रियों (भावनाओ) द्वारा तो हम उसे कभी नही पा सकते, क्योकि वह उनसे परे है। अगर हम चाहे तो उसका अनुभव अवश्य कर सकते है, पर इसके लिए हमें इन्द्रियोसे ऊपर उठना होगा। दैवी सगीत हमारे अन्दर हमेशा गूँजता रहा है। इन्द्रियोसे हम जो-कुछ समझ या सुन सकते है उससे वह भिन्न और निश्चित रूपसे ऊँचे दर्जेका है, परन्तु इन्द्रियोके कोलाहल और हलचलमे वह नाजुक सगीत विलीन हो जाता है।

पत्र-लेखक यह जानना चाहते है कि ईश्वर यदि दया और न्यायका अधिष्ठाता है तो वह मनुष्योको उन सब दुखो और कष्टोका शिकार क्यो होने देता है, जिन्हे हम अपने चारो तरफ देखते है? मै इसका कोई सन्तोषजनक स्पष्टीकरण नही कर सकता। वे मुझमे पराजय और अपमान या निराशाकी भावना देखते है। परन्तु मुझमे पराजय, अपमान या निराशाकी ऐसी कोई भावना नही है। यह तो आत्मशुद्धि और अपनी तैयारीकी दिशामे प्रयत्न-मात्र है — न तो उससे अधिक और न कम। यह मै सिर्फ यह बताने के लिए कह रहा हूँ कि अकसर जो चीज हमे जैसी दिखती है, वह वैसी नही होती। जिन्हे हम गलतीसे शोक, अन्याय और ऐसी ही बातें मान रहे है, हो सकता है कि सचाईमे जानेपर वे वैसी न निकले। विश्वके सारे रहस्योको यदि हम सुलझा सके तो हम ईश्वरके समकक्ष ही न हो जायेंगे? समुद्रकी प्रतिष्ठामें उसकी प्रत्येक बूँद भागीदार है। परन्तु वह बूँद समुद्र नही है। अपने जीवनकी इस अल्पताका विचार करके ही हम अपनी प्रातःकालीन प्रार्थनाके अन्तमें नित्य यह श्लोक[1] दुहराते है जिसका अर्थ है कि तथाकथित विपदा वास्तवमे विपदा नही है, न सम्पदा सम्पदा ही है। ईश्वरको भूल जाना ही सच्ची विपदा है, और ईश्वरका स्मरण ही सच्ची सम्पदा है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १३-६-१९३६

१. विपदो नैव विपद· सपदो नैव संपदः।
विपद्विस्मरण विष्णोस्संपन्नारायणस्मृतिः॥

५८. पत्र : अगाथा हैरिसनको

[स्थायी पता :] वर्धा
१३ जून, १९३६

प्रिय अगाथा,

मुझे तुम्हारा प्रेम-पत्र और होरेसका[1] उससे कुछ विस्तृत पत्र भी मिला। यह पत्र तुम दोनोके लिए है। मेरा तात्पर्य यह नही था कि हमे अग्रेजोके विचार-परिवर्तनका प्रयत्न नही करना चाहिए। मेरा तात्पर्य तो यह था और अब भी है कि हमारा योगदान यही से होना चाहिए। हमे दिखा देना है कि इग्लैडके प्रति हमारी कोई दुर्भावना नही है। सन्देह हमारी योग्यताके बारेमें नही, बल्कि हमारी अनपकारिताके बारेमें किया जाता है, और ठीक ही किया जाता है। योग्यतम भारतीय प्रतिनिधि द्वारा इग्लैडमे प्रतिवाद करने से हमारी अनपकारिता सिद्ध नही हो सकती। वह तो यहाँ भारतमें हमारे सतत एकरूप आचरणसे ही सिद्ध हो सकती है। किन्तु हमारा आचरण किसी प्रकार भी एकरूप नही है। प्रत्येक भारतीय इग्लैड का हितैषी हो, ऐसी बात नही है। और अग्रेज लोग जिस अर्थमे चाहेगे उस अर्थमें तो हममे से अच्छेसे-अच्छा आदमी भी इग्लैडका हित-चिन्तन नही करता। अत. मेरे लिए लकाशायरके कर्मियोको यह विश्वास दिला सकना बडा कठिन हो गया कि मैं जो विदेशी कपडेके तत्काल बहिष्कारका उपदेश करता हूँ उसमे भी उनके प्रति सद्भाव और उनका हित-चिन्तन ही है।[2]

क्या तुम लोग समझ पा रहे हो कि अहिंसात्मक प्रणालीमे धैर्यकी आवश्यकता है और इसको अमलमें लानेका तरीका भी अपने ढगका अनोखा है?

इसका तात्पर्य यह नहीं कि भारतीयोको वहाँ जाना ही नही चाहिए। नि सन्देह श्रीमती हमीद अली-जैसी महिलाओ और भूलाभाई[3]-जैसे पुरुषोके सयोग-वशात् प्रवासका लाभ उठाना चाहिए। ऐसे मौके भी मेरी कल्पनामें असम्भव नही है कि जवाहरलाल-जैसे व्यक्तियोको विशेषरूपसे गलतफहमियाँ मिटाने के लिए जाना पडे। देखें, ऐसा अवसर कब आता है।

आशा है, सी० एफ० एन्ड्रयूज यहाँ १८ तारीखको आयेगे।

सप्रेम,

बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४९४) से।

१. होरेस अलेक्जेंडर।
२. गाधीजी २६/२७ सितम्बर, १९३१को लकाशायर गये थे, देखिए खण्ड ४८ पृ० ७३-७६ तथा ८४-८७।
३. भूलाभाई झ० देसाई, विधान-सभामें काग्रेस दल के नेता।

५९. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

[स्थायी पता :] सेगाँव
१३ जून, १९३६

भाई वल्लभभाई,

मद्रासमें थोडा समय मिला है। इस बीच मंगलदासको[१] पत्र लिख डाला है। समय होगा तो उसकी नकल महादेव इस पत्रके साथ रख देंगे। आशा है, सफरमें तुमको तकलीफ नही हुई होगी। काम निपटाकर जल्दी आओ। घूमने जानेका नियम अवश्य रखो।

बापूके आशीर्वाद

सरदार वल्लभभाई पटेल
८९, वार्डन रोड, बम्बई

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० १९५

६०. पत्र : मीराबहनको

१४ जून, १९३६

चि० मीरा,

हम यहाँ[२] रातके ८ बजे पहुँचे। गाड़ी लेट थी। तुम्हारा पत्र मिल गया। मेरा मन वहाँ है। मगर मेरे शरीरको 'हरिजन' की खातिर सोमवारतक यहीं रहना पडेगा। अगर मौसम अच्छा रहा तो आशा है, मैं मंगलवारको प्रात साढे ७ बजेके करीब तुमसे आ मिलूंगा। दूध रास्तेमें ले लूंगा। लीलावतीके बारेमें मैं समझता हूँ। पता नही कोई मेरे साथ होगा या नही, और होगा तो कौन होगा? देख लेंगे। चिन्ता न करना। मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि जबतक सारी योजना निश्चित रूप न ले लें, तबतक तुम्हें सेगाँवमें रहना पड़ेगा। किसी भी बातकी फिक्र न करना। अगर फाटकपर मुझे ठीक रास्ता बताने को कोई मिल जाये तो अच्छा हो।

१. श्री मंगलदास पकवासा, बम्बई कौंसिलके तत्कालीन अध्यक्ष।
२. वर्धामें।

गोविन्द या दशरथ कोई भी हो — उस दूसरे भाईका नाम यही है न? लेकिन अगर कोई न आ सके तो चिन्ता नही।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

कुछ फल इस पत्रके साथ पहुँचेंगे।...[1]

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३४८) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९८१४ से भी

६१. पत्र : नारणदास गांधीको

१४ जून, १९३६

चि० नारणदास,

कुसुम अबतक वहाँ पहुँच गई होगी। मैंने तुम्हे लिखा है कि नही यह याद नही पड़ता। उसकी इच्छा साबरमतीमें रहकर पण्डितजी से भली-भाँति संगीत सीखने की है। साथ-साथ कमा सके और कुछ और भी सीख सके ऐसा चाहती है या फिर कमाने का लोभ फिलहाल छोड़ देगी। इस विषयमें उससे बात करके मुझे लिखना। शिक्षण हो तो सकता है, किन्तु उसका उपयोग क्या है? कुसुमके स्वभावका विचार करके यह भी सोचना कि उसका कल्याण किस बातमें है। तदनुसार उसका मार्ग-दर्शन करना और मुझे लिखना। वह अपने नामके अनुरूप कोमल है। जिस दिन हम अलग हुए उस दिन एक क्षणमें मैंने उसे पूरी तरह समझ लिया।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८४९४ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. यहाँ लिखावट अस्पष्ट है।

६२. पत्र : अमृतकौरको

वर्धा

१५ जून, १९३६

प्रिय मूर्ख,

हम कल प्रात.काल यहाँ पहुँचे। मौसम बड़ा सुहावना है। दिन-भर बादल रहे और शीतल हवा चलती रही। वर्षा तो अभी नाम-मात्रको ही पड़ी है। मेरी कुटिया अभी पूरी तैयार नही है, फिर भी यदि कल सुबह वर्षा न हुई तो मैं सेगाँव जानेकी आशा रखता हूँ। गाँवमें सब काम धीरे-धीरे होते हैं। परन्तु मुझे पता है मेरे लिए एक सूखा कोना मिलने मे कोई झझट नही होगी।

रामेश्वरी नेहरू मेरे साथ ही हैं। हमारे साथ पूरे रास्ते उन्होने तीसरी श्रेणीमे ही सफर किया। यह अवश्य है कि हर स्टेशनपर जुटनेवाली भीडके अलावा मेरे साथ तीसरी श्रेणीके सफरमे कोई असुविधा नही है। उन्होने हमारे साथ ट्रेनमे दो रातें विताई। उनका त्रावणकोरका दौरा काफी सफल रहा। वे वर्धासे बुधवारको प्रस्थान करेगी।

कान्ति पूना चला गया, और शुक्रवारको लौटेगा। नवीन नक्काशीकी कला सीखने के लिए पीछे रह गया है। उसे आशा है कि जैसा हाथी-दाँतका सामान मैंने तुम्हे भेजा है वैसा ही वह तैयार कर सकेगा।

बा को किसीने चन्दनकी लकड़ीका एक डिब्बा भेजा था। उसके लिए वह बेकार था। मैंने सोचा है कि उसका सर्वोत्तम उपयोग यही होगा कि उसे तुम्हारे पास भेज दूँ—तुम चाहे उसे बेचो या खुद रखो। डाकसे भेजने के लिए उसे नवीनके पास ही छोड दिया है।

आशा है, तुम्हारा स्वास्थ्य कुछ ठीक होगा और मौसम भी सुधर गया होगा। गरमियाँ बिताने के लिए अब तुम्हे कोई और अच्छा स्थान ढूँढ़ना होगा। तुम्हारे बखानके अनुसार शिमला कुछ ठीक नही जँचता।

सप्रेम,

तानाशाह

[पुनश्च :]

बंगलोरसे रवाना होते समय मेरा वजन ११२ पौड था!!! रक्तचाप १५६/९० था। डाक्टरके अनुसार बिलकुल ठीक था।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७३१)से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६८८७ से भी

६३. पत्र : अमृतकौरको

१५ जून, १९३६

प्रिय मूर्खा,

विद्रोहीके लिए हार मान लेना बडी बात है। अन्तत तुम्हे मुझसे ढेरो पत्र मिल रहे है। मुझे बडा आनन्द है कि तुम्हे नीचा देखना पडा। परन्तु मेरे पत्रोके साथ होड़ा-होडीके प्रयासमें तुम्हे अपनेको बीमार नही करना है। याद रखो तुम्हारे पास शिमलामे कितने ही ऐसे काम है जिनके लिए तुम्हे समय देना पडता है, जब कि मै उनसे मुक्त हूँ।

अच्छा, अब विषय बदले। यदि तुम समझ जाती कि कमजोर पिनोवाले ब्रोच (जडाऊ पिन) मैंने क्यो पसन्द किये तो भला मूर्खा कैसे कहलाती। तुम्हारी मोटी बुद्धिमे नही घुसा कि शोषक-वर्गकी ग्राहक या ब्रोच पहननेवाली स्त्री कमजोर पिनकी जगह सोनेकी मजबूत पिन जडवा लेगी। प्रश्न तो यह है कि ब्रोचकी नक्काशी सुन्दर है या नही? क्या वह काफी नफीस है? उन दोनो ब्रोचोको छांटनेमें मैंने काफी समय लगाया। अधिकतर ब्रोच भडकीले-से थे। मैंने सोचा कि ये दो ब्रोच राजकुमारीजी की कसौटीपर खरे उतरेगे।

सप्रेम,

तानाशाह

[पुनश्च :]

इस समय वर्षा हो रही है।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५७९) से; सौजन्य. अमृतकौर। जी० एन० ६३८८ से भी

६४. पत्र : मीराबहनको

१५ जून, १९३६

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र मिला। यहाँ अच्छी वर्षा हो रही है। इसलिए आशा है कि मैं यहाँसे [नही] निकल सकूँगा।[1] हाँ, मैं भाजी लेता आऊँगा, वैसे उसके बिना भी कुछ समयतक मेरा काम चल जायेगा।

शेष मिलने पर।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३४९) से, सौजन्य मीराबहन। जी० एन० ९८१५ से भी

६५. पत्र : प्रभावतीको

१५ जून, १९३६

चि० प्रभा,

कान्ति आज यहाँ नही है। मैंने तेरा पत्र देखा और खोला। तूने उसमे कान्तिको भी पढ लेनेकी अनुमति दे दी है, इसलिए पत्र रख छोडा है। कान्ति और सरस्वती शुक्रवारको आ जायेंगे। तबतक पत्र नही फाडूँगा, किन्तु कोई और नही पढ पायेगा।

मुझे तो काशीका मोह नही है। मैंने यह सलाह इसलिए दी थी कि जयप्रकाशको ऐसी बातोंमे प्रसन्न रखना तेरा धर्म है। किन्तु जब हरसू बाबू ही 'इनकार' करते हैं तो तेरे वहाँ जानेका सवाल नही रहता और जयप्रकाश भी उनका मन नही दुखाना चाहता। अब सीताबदियारा ही तेरी काशी है। तू समझदारीके साथ वहाँ जो-कुछ करेगी वह विद्या-लाभ ही है। गाँवके लोगोसे पहचान करना। तू प्रार्थना अकेली करती है या दूसरी स्त्रियोको भी इकट्ठा कर लेती है? यह आश्चर्यकी बात है कि गाँवमें कोई 'रामायण' का सस्वर पाठ करनेवाला नही है।

१. सेगाँवके लिए।

मैं कल सेगाँव चला जाऊँगा। अभी झोपड़ी तैयार नहीं हुई है इसलिए शायद अकेला ही जाऊँ। शायद लीलावती मेरे साथ जाये।

बंगलोरमें मेरा वजन ११४ पौंड था। रक्तचाप १५६/११० था। यह ठीक माना जा सकता है। सरदार बम्बईमें है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४७४) से।

६६. पत्र : नारणदास गांधीको

१५ जून, १९३६

चि० नारणदास,

मैं अपने विचार थोड़ेमें लिख रहा हूँ। हमें शाला किसी धनिक व्यक्तिकी-सी दृष्टिसे नहीं चलानी चाहिए, जो सेवा-दृष्टिसे यह वृत्ति अपनाएँ उन्हींको शिक्षक रखे। जो पूरा समय दे और अधिकसे-अधिक पन्द्रह रुपया मासिक स्वीकार करे, उसे शिक्षककी तरह रखे। एक ही शिक्षक और एक ही विद्यार्थीसे काम शुरू किया जा सकता है। विद्यार्थी किसी भी आयुका हो सकता है। शिक्षक पाठ्य पुस्तक स्वयं बनाये और विद्यार्थी आँख और कानका उपयोग जानकारी देनेके लिए तथा हाथका उपयोग औजारसे काम लेकर चीजे बनवाने के लिए करे। जो सिखाये सो खुद करे। अच्छा हो कि पाठशाला गाँवमे हो। तुम्हे तो जहाँ हो वहीं आरम्भ करना चाहिए। शालाका श्रीगणेश तुम खुद ही कर सकते हो। मध्यम-वर्गके बच्चे यदि तुम्हारी शर्तो पर आते हैं, तो उन्हे ले सकते हो। वे शुल्क दें। काम शुल्ककी आशासे शुरू न किया जाये। यदि यह बात हृदयंगम कर सको तो तुम प्रयोग कर सकते हो। इन बातोंमें से जितना हजम हो सके उतना ही लेना।

अगर तुम यह बात समझ जाओ तो फिलहाल तो तुम्हे इसी प्रकार करना चाहिए। अपने मण्डलके सामने ये विचार रखो। आज जो पाठशाला चल रही है, यदि वह खर्च निकाल ले तो उसे चलाते रहना धर्म है। किन्तु समर्थ अभिभावकोसे तो पूरी फीस ली जानी चाहिए।

ये सभी विचार मैंने नानाभाईके[1] सामने रख दिये है। उन्होने इन्हे पसन्द किया है। किन्तु वे इतने आगे बढ़ चुके है कि मेरे द्वारा सूचित सुझाव उन्हे अपनी शक्तिसे बाहरके लगते है। दक्षिणामूर्तिके लिए मैं जो सहायता प्राप्त करा देता था, वह इन दिनो बन्द है।

१. नृसिंहप्रसाद कालिदास भट्ट, भावनगरकी शिक्षण-संस्था दक्षिणामूर्तिके संचालक।

तुम जो पूछना चाहो, वार-बार पूछना। कनुकी चिन्ता मैं करूँगा। वह सेगाँवमें रहे चाहे मगनवाडीमे, देखरेख मैं करूँगा। उसे सेगाँवमे रहने की अनुमति दे रखी है। इसलिए अगर वह मगनवाडीमे रहेगा तो अपनी इच्छासे। कान्ति काकाकी सेवाके लिए चला गया है इसलिए महादेव अकेला पड़ जायेगा। कनुका इस दृष्टिसे महादेवके पास रहना जरूरी लग सकता है; किन्तु यह भी उसकी इच्छापर निर्भर करेगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैं कनुको कुछ नही देता हूँ।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८४९५ से भी, सौजन्य नारणदास गाधी

६७. सन्देश : राजपूताना हरिजन-सेवक सम्मेलनको

[१६ जून, १९३६ के पूर्व][1]

इस समय हिंदू-धर्मकी परीक्षा हो रही है। वे ही सच्चे सेवक हो सकते है जिनमे धर्मके प्रति श्रद्धा है, हरिजनोके प्रति प्रेम है, और जो अपनेको हरिजन-सेवाके लिए समर्पित करने को तैयार है।

गांधीजी और राजस्थान, पृ० १९७

६८. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

१६ जून, १९३६

चि० रामेश्वरदास,

मेरी इच्छा है कि पारनेरकर दिल्ली और पिलानीके दुग्धालयोके लिये जाय। धुलीयाका प्रबंध तो करता ही जायेगा। वहाँका काम तो सुव्यवस्थित है ही। हमारे तो गोसेवा करना है। पारनेरकरके दिल्ली-पिलानी जानेसे ज्यादा हो सके तो करनेका हमारा धर्म हो जाता है इसलिये पारनेरकरको छुटी दे देना। बाकी सब पारनेरकर समजावेगे।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २११) से।

१. यह सम्मेलन १६-१७ जून, १९३६ को अजमेरके पास नारेली नामक स्थानमें हुआ था।

६९. पत्र: जे० के० शर्माको

वर्धा
१७ जून, १९३६

भाई शर्मा,

तुम उतावले हो रहे हो। तुम्हारा काम है बहुतोंको अपने मतका समर्थक बनाना। मैं इस बातको आगे बढ़ा रहा हूँ। अबतक आये हुए पत्रोंसे प्रकट होता है कि प्रतिबन्ध लाभदायक और आवश्यक है। वे कहते हैं कि मिलके कपड़ेके साथ खादीको प्रदर्शित करनेसे कोई लाभ नहीं होता। खादीका ध्येय मिलके कपड़ेका पूरक होना नहीं बल्कि उसका स्थान ले लेना है। खादीका अपना एक अलग उद्देश्य है। खादी राष्ट्रीय शिक्षणका अंग है और कम-से-कम भारतकी हदतक नयी तथा सच्ची अर्थ-व्यवस्थाकी प्रतीक है।

खादी-कार्यकर्त्ताओंकी आलोचनामें तुमने जल्दबाजीसे काम लिया है। वे अपने अनुभवके प्रकाशमें कार्य कर रहे हैं और केवल निर्धनोंके हितके निमित्त। तुम्हें उनका दृष्टिकोण और कठिनाइयाँ समझकर ही कुछ टीका करनी चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८८) से।

७०. पत्रका अंश[1]

१७ जून, १९३६

मेरे लिए समस्त दर्शनका निचोड़ सत्यमें है, फिर भले ही सत्यके लिए कोई भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य: नारायण देसाई

१. साधन-सूत्रके अनुसार यह पत्र एक अमेरिकी महिलाको लिखा गया था।

७१. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१७ जून, १९३६

भाई ठक्कर बापा,

'पालमपुरसे आमन्त्रण आया है।

वालुंजकरको अभी २,००० रुपये मिले नहीं हैं, तुरन्त इतना रुपया भेज देना। इससे जो हिसाव आदि लेना हो सो लेते रहना। उसका काम मत रुकने देना।

भड़ौंचका तकाजा पूरा कर दिया होगा? करसनदासने विलेपार्लेके मकानकी जवाबदारी मेरे ऊपर डाल दी है। ट्रस्टियोंकी बैठक बुलाई जानी चाहिए। किशोर-लालने उन्हें लिखा होगा। अनुकूल तिथि सूचित करो तो बैठक बुलायें।

मैं सेगाँवमें बैठ गया हूँ। बैठक आदिके लिए तो वर्धा जाता रहूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११५९) से।

७२. पत्र : विजया एन० पटेलको

१७ जून, १९३६

चि० विजया,

मैं तो सेगाँवमें बैठा हूँ। अभी रहने की सुविधा नहीं हुई है। बरसातके कारण पूरा काम नहीं हो सकता। अगर तू आती है तो मैं तुझे मगनवाड़ीमें या महिला आश्रममें रखने को तैयार हूँ। वहाँसे मेरे पास आती रह सकती है। अभी तो बा भी मेरे साथ नहीं है। मेरे साथ ही रहना हो तो तुझे प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७०६१) से। सी० डब्ल्यू० ४५५३ से भी, सौजन्य : विजयाबहन एम० पंचोली

७३. पत्र : हीरालाल शर्माको

१७ जून, १९३६

चि० शर्मा,

तुमारे दो खत आये है। घरके हाल सुनकर दुख होता है।[1] अगर उपचारके बारेमे आत्मविश्वास आ गया है तो मरीजोका उपचार करो। अथवा उनको छोड़ दो। मामूली उपचार करते रहेगे।

तुमारे क्या करना, द्रौपदीको[2] क्या करना यह सब बाते करने के लिये आ जाओ। मैं तो सेगाँवमे पडा हूँ। यह कोई बात नही है। मगनवाडीसे नित्य आ जा सकते है। यहा हवा बहुत ठंडी है बारिश काफी पडा है। अब भी पड रहा है। सफरमे सब मिलाकर कितना खर्च हुआ? जो पाना था सो पाया? वहासे सीखने का कुछ बाकी रहा? शरीरशास्त्रका ज्ञान पर्याप्त पाया।

बापुके आशीर्वाद

बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृ० २५३

७४. एक संदेश

१७ जून, १९३६

हिंदुधर्मीओ की प्रत्येक सभा पाच काम आसानी से कर सकती है . .

(१) अस्पृश्यता को पाप समजकर निकाले।

(२) अज्ञानपूर्वक जो शिथिल गोसेवा हो रही है उसे शुद्ध ज्ञानसे करे।

(३) खादी को अपनाकर दरिद्रनारायण की यतकिंचित सेवा करे।

(४) देहातीओ का माल लेकर उनकी सेवा करे।

(५) धर्मनाशक ज्ञाति बधनों को काटे।

मो० क० गांधी

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे, सौजन्य . नारायण देसाई

१. हीरालालके बड़े भाईके इकलौते पुत्रकी मृत्यु हो गई थी।

२. हीरालालकी पत्नी।

७५. पत्र : अगाथा हैरिसनको

सेगाँव, वर्धा
१८ जून, १९३६

प्रिय अगाथा,

यह मैं अपने नये आवाससे लिख रहा हूँ, जो सही अर्थोमें ठेठ देहातमें है — यानी, वहाँ जहाँ न डाकघर है, न अच्छी भोजन-सामग्रीका भडार, न चिकित्सा-सुविधा, और जहाँ वर्षा-कालमे पहुँच सकना अत्यन्त कठिन है। मैं और भी कितने ही विशेषण लगा सकता हूँ, पर फिलहाल तो इतने ही पर्याप्त होगे। इसका यह मतलब नही कि मुझे कोई असुविधा उठानी पड़ रही है। यह सब तो मैंने अपने आगामी कार्यका कुछ अन्दाज देनेको तुम्हे बताया है।

खबरोके बारेमे तुम्हारा कहा मैं समझता हूँ। जवाहरलाल इस समस्यासे सुलटनेका प्रयास कर रहे है। देखे, आगामी छह मास हमे क्या दिखाते हैं।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नक़ल (जी० एन० १४९५) से।

७६. पत्र : म्यूरियल लेस्टरको

१८ जून, १९३६

प्रिय म्यूरियल,

तुमने तो मुझसे बाजी मार ली। जब कालेलकरने तुम्हारे साथ भेटका वृत्तान्त लिखा और बताया कि तुम्हे मलेरियाने जकड रखा है और आग्रह किया कि मैं तुमसे अपना ठीक उपचार करने का आग्रह करूँ, तब मैं तुम्हे फौरन ही लिखना चाहता था। और देखो तो, तुम्हारा ही पत्र आ पहुँचा, फिर डोरोथीके पत्रके साथ दूसरा भी आ गया।

मुझे तुम्हारा हमेशा ध्यान रहता है और बातचीतमे भी बहुधा तुम्हारी चर्चा होती है, परन्तु कामकी भीड़के कारण भारतसे दूरके मित्रो और सहयोगियोको जितनी बार मन चाहे, उतनी बार लिख नही पाता।

मैं भला किस तरह तुमसे आग्रह करूँ कि तुम अपनी ठीक देखभाल करो? यदि तुम्हारा शरीर चोरोका डेरा नही बल्कि पवित्रात्माका निवास है तो शरीरको

आवश्यकता होनेपर आराम देना ही चाहिए। "किसी बातकी चिन्ता न करो", यह बडी उत्तम सीख है। यदि अपने दैनिक जीवनमे हम इसपर अमल करे तो फल-प्राप्तिकी उतावलीमे अपने शरीरकी ऐसी उपेक्षा नही करेगे कि आगे काम करने लायक ही न रह जायें। इग्लैंडमे तुम्हारे मलेरियासे पीड़ित होनेकी क्या तुक है? भगवान् तुम्हारी रक्षा करे।

अन्तत मै जमनालालजी द्वारा बनवाई अपनी सेगाँवकी कुटिया में आ ही गया हूँ। भविष्यके गर्भमें मेरे लिए क्या है सो तो पता नही, परन्तु फिलहाल मेरा अड्डा सेगाँवमे ही है। डाकका पता वर्धा ही रहेगा, क्योकि यहाँ कोई डाकघर नही है। कितनी ही और चीजोकी तरह यहाँ डाक-टिकट भी नही मिलते।

डोरोथीको अलगसे पत्र नही लिख सकूँगा। समय ही नही है।

तुमको, उसको और परिवारके अन्य सदस्योको मेरा प्यार।

जमनालालजी का पुत्र कमलनयन जल्दी ही तुम्हारे पास पहुँचेगा। उसकी खूब देख-रेख करना और ऐसी जगह टिकाना जहाँ उसकी अच्छी देखभाल हो।

तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च :]

तुम्हारे लेखपर[1] फौरन ध्यान दिया जायेगा।

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८०७) से

७७. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
१९ जून, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

मेरी धुंधली लिखावटके बारेमें तुम्हारी शिकायत उचित है। केवल तुमने ही शिकायत की हो ऐसी बात नही। इस देहाती स्याहीमें सुधार करना ही होगा। देहाती स्याही और देहाती कागज, दोनो अभी विज्ञापित किये जाने योग्य नही हैं। फिर भी तुम्हे मानना पडेगा कि यदि मै हार मान लूं तो सुधार असम्भव हो जा सकता है। तुम्हारे-जैसे विद्रोहियोको विद्रोह करने की अपनी आदतसे बाज नही आना चाहिए और शीघ्र ही तुम देखोगी कि तानाशाहको भी अपने तौर-तरीकोमें सुधार करना पडेगा। सम्भव है, मुझे इस महीन कागजका उपयोग छोड़ना पडे। बताना कि बगैर आतशी शीशेके तुम इस पत्रको पढ सकी या नही।

१. म्यूरियल लेस्टर और डोरोथी हॉग द्वारा लिखा गया "टिर्सिंगटन वेल-ड्रेसिंग" शीर्षक लेख ५-९-१९३६ के हरिजनमें प्रकाशित हुआ था।

तुमने निस्सन्देह बड़ी अच्छी विक्री की। ग्रोचोकी घटिया पिनोके बारेमे तुम्हारी शिकायतकी मैंने सफाई दे दी है।[1] यदि तुम्हे इतने पर भी सन्तोप न हो तो मुझे विश्वास है वे लोग उतने ही मूल्यकी तुम्हारी मनपसन्द कोई और वस्तु बदलेमे भेज देंगे।

आशा है, जो चन्दनकी लकड़ीका डिब्बा तुम्हे अलगसे भेजा गया था वह मिल गया होगा। हमेशा सामर्थ्यसे बाहर काम करने का ढग तुम्हे छोड़ना पडेगा, चाहे इसकी खातिर तुम्हे सेगॉवमे ही क्यो न रहना पडे। तुम्हारे लिए तुम्हारी योजनाके अनुरूप एक कुटिया बनवा सकता हूँ। तुम मोटरमे स्टेशनसे सीधे सेगाँव आ सकती हो, अधिकसे-अधिक डेढ घटा लगेगा, वैसे एक घटेमें पहुँच सकती हो। परन्तु मोटरमे वर्षाके बीच या अगर भारी वर्षा हुई हो तो फौरन बाद यहाँ मत आना, रुककर आना।

मेरी कुटियामे मिट्टीकी मोटी दीवारे है——साधारण ईंटकी दीवारसे दूनी चौडी। इस मिट्टीपर वर्षाका कोई असर नही होता। मेरे खयालमे कुटिया और आसपासका वातावरण तुम्हे बहुत प्रिय लगेगा।

मीरा बिलकुल ठीक है।

सप्रेम,

तानाशाह

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७३२) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६८८८ से भी

७८. पत्र : एस्थर मेननको

१९ [जून][2] १९३६

रानी बिटिया,

तुम बहुत नटखट हो। पत्रके हाशियेपर ऊपर-नीचे सब जगह बिना यह जताये लिख डालती हो कि आरम्भ कहाँसे किया। भला एक पन्ना और क्यों नही ले लेती? अच्छा, अब और शिकायत नही करता। मैंने सरस्वती और कान्तिको तुम्हारे पास भेजा था, क्योकि मैंने सोचा कि उनसे मिलना तुम्हे अच्छा लगेगा।

आश्चर्य! मुझे इस सप्ताह मेरीका[3] एक पत्र मिला है। उसने तुम्हारे लिए काफी चिन्ता व्यक्त की है।

१. १५ जूनके पत्रमें।

२. पत्रकी विषय-वस्तुसे प्रकट होता है कि यह एस्थर मेननको लिखे गये १८ मई, १९३६ के पत्रके बाद लिखा गया होगा, देखिए खण्ड ६२, पृ० ४४८। १९ जून, १९३६ को गांधीजी वर्धामें थे।

३. पत्नी मेरी पीटर्सन।

क० को तो भारी सन्ताप होता होगा कि धनाभावके कारण उसे जो चीज सबसे ठीक लगती है, उसे नही कर पा रहा है। खैर, हमे इस बातसे सन्तोष करना होगा कि भगवान् हमे हमेशा वह चीज नही करने देता जो हमारे विचारसे सर्वोत्तम है। शायद हमें हमेशा पता नही होता कि सबसे अच्छा क्या है।

बच्चोसे हठपूर्वक पत्र मत लिखवाओ। जब वे स्वेच्छासे मुझे पत्र भेजना चाहे तब लिखे।

आशा है, बीमारीके बाद तुम अब बिलकुल स्वस्थ हो गई होगी। हमारी पहली भेटके समय तुम जैसी स्वस्थ और प्रसन्न थी वैसी ही तुमको देखना मुझे बडा प्रिय लगेगा। तुम तो स्वास्थ्यकी ऐसी आदर्श प्रतिमूर्ति थी कि मै सोचता था कि तुम बीमार पड़ ही नही सकती।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (संख्या १३८) से, सौजन्य: राष्ट्रीय अभिलेखागार

७९. पत्र: जवाहरलाल नेहरूको

१९ जून, १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

मै तुम्हारी जानकारीके लिए साथका पत्र[1] भेजनेवाला था कि कल तुम्हारा पत्र मिला।

यह जानकर खुशी हुई कि रणजीत पहलेसे अच्छे है। उन्हे अपना खयाल रखना चाहिए।

मै नही चाहता कि तुम अपनी कार्य-समितिमे किसी स्त्रीको न रखने के बारेमें कोई खास बयान जारी करो।[2] मेरे खयालसे स्त्रीको न रखने की बातका वही महत्त्व नही है, जो दूसरोको रखने या न रखने का है। हममें से किसीकी भी कार्य-समितिमें से स्त्री-मात्रको अलग रखने की न हिम्मत थी और न इच्छा। यदि तुम्हारे रवैयेका यह ठीक-ठीक अर्थ है तो अवसर उपस्थित होनेपर इसका स्पष्टीकरण कर दिया जाना चाहिए।

जहाँतक दूसरोका सवाल है, मुझे अफसोस है कि जो-कुछ हुआ, तुम अभी तक उसपर खिन्न हो। ध्येयके हितमे भूलाभाईवाली कड़वी घूंट पी लो। और पहली ही चर्चामे, तुम्हारे जिक्र करने से पहले, मैंने निश्चित रूपसे कह दिया था कि कार्य-समितिमे समाजवादी होने ही चाहिए। मैने नामोका भी जिक्र किया

१. उपलब्ध नहीं है।
२. देखिए खण्ड ६२, पृ० ४८९-९०।

था। लेकिन मैं जिस बातपर जोर देना चाहता हूँ वह यह नही है कि किसने किसका नाम लिया, बल्कि यह है कि सब लोग समान ध्येयकी सिद्धिके इरादे से ही काम कर रहे थे।

जहाँतक मुझे याद है, तुम्हारी भेजी हुई चीज वह नही है, जो मैंने देखी थी। तुम्हारी भेजी हुई चीज तो शायद मैं पहली ही बार देख रहा हूँ। डॉ० हार्डीकर से पूछ लो कि उन्होंने कोई और बयान जारी किया था क्या। जो चीज तुमने मेरे पास भेजी है वह भी, जो-कुछ डॉक्टर [हार्डीकर] मुझे बताया करते थे, उससे भिन्न है। उनके विचार मेरी रायमे दोषपूर्ण तो है, लेकिन उनके प्रकट किये जाने पर मुझे कोई एतराज नही है। मेरी शिकायत यह है कि उन्होने मुझसे एक बात कही और प्रकाशित दूसरी बात कराई। तुम यह पत्र डॉ० हार्डीकरको दिखा सकते हो।

आशा है, तुम अच्छे होगे। तुम्हारे पजाबके तूफानी दौरेका हाल मैं चिंतित होकर पढता रहा।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

अगर लिखावट इतनी धुँधली हो कि पढ न सको तो इस पत्रको फेंक देना।[1]

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३६; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय। ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स, पृ० १७८-७९ से भी

८०. पत्र : नारणदास गांधीको

१९ जून, १९३६

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। शालाके बारेमे तुम्हे जो ठीक लगे वही करना। मुझे कोई उतावली नही है। हमारे कर्त्तव्यके विषयमें मुझे शंका नही है किन्तु कर्त्तव्यके अनुसार करने मे कठिनाइयाँ आती है।

अब मेरे अक्षर साफ-साफ पढ लेते हो या नही, लिखना।

इसके साथ दो पत्र है। कनु लगभग रोज आता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८४९६ से भी, सौजन्य : नारणदास गांधी

१. मूलमें यह अंश पत्रके शीर्ष भागपर लिखा हुआ है।

८१. पत्र : अमतुस्सलामको

१९ जून, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

शर्माको मैंने तेरे पास भेजा, इसलिए तेरी डाँट मेरे सिर-आँखो पर। मुझे माफ करना। अब फिरसे ऐसा गुनाह नही करूँगा। तू किसकी बात मानती है जो शर्माकी मानेगी? एक जमाना था जब तू उनको पूजती थी, उनकी सलाह तू मानती थी और उनका कहा मानने से फायदा हुआ है, ऐसा भी कहती थी। अब उनकी सलाह तुझे नही भाती, यह जमाने की तासीर है।

कान्तिको काका साहबके पास जानेकी प्रेरणा मैंने नही दी। लेकिन काका साहबको उसकी सेवा और मददकी जरूरत है। ऐसा उसे मालूम हुआ, इसलिए वह सेवाके लिए तैयार हो गया। मुझे उसकी तैयारी अच्छी लगी। उससे उसे फायदा ही होगा। काका साहबका काम पूरा हो जानेपर या जब कान्तिकी इच्छा होगी तब वह मेरे पास लौटेगा।

तूने भाइयोको, भाभीको लिख डाला सो जाना। जो लिखा, उसमें मैं अदब नही देखता। उसमे मैं स्वच्छन्दता देखता हूँ। लेकिन तुझे समझानेमे कौन समर्थ है? जो तू करे वह मेरे-जैसेको देखते रहना होगा। छुट्टियाँ शुरू होनेपर जरूर आना।

मेरी तबीयत ठीक है। सेगाँवमें हूँ। आज सरस्वती आई होगी। लड़कोके लिए खत[1] साथमें है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३३८) से।

१. देखिए अगला शीर्षक।

८२. पत्र : मंगलप्रसाद और अन्य लोगोंको

१९ जून, १९३६

चि० मंगलप्रसाद, जोगीराम, वनवारीलाल,

तुमारे खत पढकर मुझे आनद हुआ।

मंगलप्रसादने शब्दोको अलग-अलग नही लिखे है, अक्षर सुधर सकते है। जोगीरामके कच्चे है, वनवारीलालके अच्छे हैं। मंगलप्रसाद और जोगीराम अच्छे लिखें।

तीनों ध्यानमे पढ़ो। एक-एक मिनिटका हिसाव रखो। एक-दूसरोसे प्रेमसे रहो। सादगीसे रहो।

वापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०८५) से।

८३. पत्र : लीलावती आसरको

१९ जून, १९३६

चि० लीलावती,

तू उतावली मत कर। महादेवने खुद देख लिया है कि फिलहाल यहाँ किसीको भी रखना कितना कठिन है। स्नानघर और शौचगृह तो ठीक होना ही चाहिए न? यह अभी है ही नही। वर्षा होती रहती है, कारीगर जैसे आने चाहिए, नही आते। मिस्तरी भी नहीं आता। इसलिए पानीकी निकासीके लिए पुलिया भी नही वनी है। दूसरे महीनेमें भी सव ठीक हो पाता है या नहीं, कह नहीं सकते। इसके सिवा तेरी खाँसी अभी अच्छी नहीं हुई है। यह ठीक वात नहीं है। मिर्च और तेलका स्वाद तो नहीं लेती न? मैंने तेरे स्वादके विषयमें वहुत वातें सुनी है। यहाँ भी तू तेल और मिर्चके विना परेशान होती थी। ठीक है न? इस कमजोरीको जीत ले। यहाँ वड़ी कठिनाइयाँ हैं। ऐसी वातोंमें वा का उदाहरण नही गिनाना चाहिए। किन्तु यह तो एक अलग वात हुई। गर्म पानीमें नमक आदि पीकर खाँसी अच्छी कर ले।

वापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९५७७) से। सी० डब्ल्यू० ६५४९ से भी; सौजन्य : लीलावती आसर

८४. गुजरातके पितामह

सबसे पहले १९१५मे मै अब्बास तैयबजीसे मिला था। जहाँ-कही मै गया, वहाँ अगर तैयबजी-परिवारका कोई सदस्य हुआ तो, स्त्री हो अथवा पुरुष, वह मुझसे आकर जरूर मिला, मानो मै उस महान् और चारो तरफ फैले हुए परिवारका एक सदस्य ही होऊँ। हमारे बीच इस अटूट सम्बन्धका सिवाय इसके और कोई खास कारण मुझे नही मालूम कि जिस सुप्रतिष्ठित न्यायाधीशके कारण यह खानदान प्रसिद्ध है उससे १८९०[१] में मेरी मित्रता हो गई थी। यह वह समय था जब मै दक्षिण आफ्रिकासे हिन्दुस्तान वापस आया था और यहाँ बिलकुल अनजाना था। कुछ लोगोका खयाल तो सम्भवत. यह भी था कि मै अपना भाग्य आजमाने और अपने लिए कोई ठीक जगह बनाने के लिए यहाँ-वहाँ भटक रहा हूँ। लेकिन बदरुद्दीन तैयबजी और कुछ अन्य व्यक्ति ऐसे भी थे जिनका ऐसा खयाल नही था।

मगर मुझे तो बडौदाके अब्बास मियाँके विषयपर ही आना चाहिए। जब हम एक-दूसरेसे मिले और मैंने उनके चेहरेको ताका तो मुझे स्व० न्यायमूर्ति बदरुद्दीन तैयबजीका स्मरण हो आया। हमारी उस मुलाकातसे हमारे बीच जन्म-भरके लिए मित्रताकी गाँठ बँध गई। मैने उन्हे हरिजनोका मित्र ही नही बल्कि उन्हीमे से एक पाया। एकबार बहुत पहले[२] गोधरामे जब मैने लोगोको अस्पृश्यता-विरोधी सम्मेलनके लिए सायकाल वहाँकी एक हरिजन बस्तीमे बुलाया तो उन्हे बडा आश्चर्य हुआ, लेकिन अब्बास मियाँ वहाँ भी हरिजनोके काममें उसी उत्साहसे भाग लेते देखे गये जैसे कोई कट्टर हिन्दू ले सकता है। तथापि वे कोई साधारण मुसलमान नही थे। इस्लामके लिए उन्होने मुक्त हस्तसे दान दिया और कई मुस्लिम सस्थाओको वे सहायता देते रहते थे। मगर हरिजनोको मुसलमान बनाने-जैसा कोई विचार उनके मनमें कभी नही उठा। उनके इस्लाममें भू-मण्डलके तमाम महान् धर्मोके लिए गुजाइश थी। इसीलिए अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनमे वे हिन्दुओकी ही तरह उत्साहपूर्वक भाग लेते थे, और मै जानता हूँ कि जबतक वे जिन्दा रहे तबतक उनका यह उत्साह बराबर वैसा ही बना रहा।

असल बात यह है कि उन्होने अधूरे मनसे कभी कोई काम नही किया। अब्बास तैयबजी अपने मनमें कोई बात छिपाकर नही रखते थे। पजाबकी पुकारका उन्होने तत्क्षण जवाब दिया।[३] उनकी उम्रके किसी ऐसे अन्य व्यक्तिके लिए, जिसने

१. वस्तुतः १८९६ में; देखिए खण्ड २, पृ० ४१२।

२. नवम्बर, १९१७ में।

३. अप्रैल, १९१९ में पजाबके उपद्रवोंकी जाँच और उनकी रिपोर्ट तैयार करने के लिए कांग्रेसकी उप-समितिने जो पाँच कमिश्नर नियुक्त किये थे, अब्बास तैयबजी उनमें से एक थे।

जीवन मे कभी कोई कठिनाई नही झेली, जेलोकी सख्तियाँ बर्दाश्त करना कोई मजाक नही था। लेकिन उनकी श्रद्धाने हर कठिनाईको जीत लिया। दूसरोके चेहरोको भी खिला देनेवाली मुस्कराहटके साथ खेडाके किसानोकी तरह ही सादा जीवन व्यतीत करने, उन्हीका-सा खाना खाने और सब मौसमोमे उन्हीकी तकलीफ-देह, भद्दी बैलगाडियोमें सफर करनेकी उनकी क्षमता देखकर अनेक नौजवानोको उनके सामने शर्मिन्दा होना पडता था। ऐसी असुविधाओके बारेमें भी, जिनसे बचा जा सकता था, मैंने उन्हे कभी शिकायत करते हुए नही सुना। "ऐसा क्यो, उनके हिस्से यह सोचना नही था, उनके हिस्से तो सिर्फ करना या मरना था।" हालाँकि एक समय मुख्य न्यायाधीशकी हैसियत से उन्हे किसीको मृत्यु-दण्ड देने और अपनी आज्ञाका पालन कराने की सत्ता प्राप्त थी, फिर भी बिना किसी उज्रके अनुशासनका पालन करने की आश्चर्यजनक क्षमता उन्होने प्रदर्शित की। वे मनुष्य-जातिके विरले सेवकोमे से थे। भारत-सेवक भी वे इसीलिए थे कि वे मनुष्य-जातिके सेवक थे। ईश्वरको वे दरिद्रनारायणके रूपमें मानते थे। उनका विश्वास था कि परमेश्वर दीन-दुखियो और तिरस्कृतोके बीच ही रहता है। अब्बास मियाँका शरीर यद्यपि इस समय कब्रमे विश्राम कर रहा है, पर वे मरे नही हैं। उनका जीवन हम सबके लिए एक प्रेरणा है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २०-६-१९३६

८५. क्या खादी आर्थिक दृष्टिसे टिक सकती है?

अगर इस प्रश्नसे अभिप्राय यह हो कि कीमतके लिहाजसे जापानी छीटके टुकड़ों या हिन्दुस्तानी मिलोमे बने हुए कपडेसे भी खादी प्रतियोगिता कर सकती है या नही, तो इसका जवाब एकदम 'न' ही होगा। लेकिन ऐसा नकारात्मक उत्तर तो लगभग ऐसी हरएक चीजके लिए दिया जायेगा जो श्रम बचानेवाली शक्ति (मशीनो) के मुकाबले मनुष्यकी शारीरिक शक्तिसे तैयार हो। यहाँतक कि भारतीय कल-कारखानोमे बननेवाले मालका भी यही हाल होगा। कल-कारखानोमें तैयार होनेवाला कपड़ा, लोहा, शक्कर आदि विदेशी प्रतियोगिताके मुकाबलेमे टिक सके, इसके लिए किसी-न-किसी रूपमे उन्हे सरकारी सहायताकी आवश्यकता पडती ही है। अत इस रूपमे इस प्रश्नको रखना बिलकुल गलत है। खुले बाजारमें तो एक ज्यादा सगठित उद्योग सदा ही अपनेसे कम संगठित उद्योगको खत्म कर सकता है—खासकर तब, जब उसे सरकारी सरक्षण प्राप्त हो और यथेष्ट पूँजी भी लगाने के लिए मिल सकती हो, और वह कुछ समयके लिए घाटे पर भी अपना माल बेच सकता हो। हमारे देशमे अनेक उद्योगोका इसी तरह दु.खद अन्त हुआ है।

कोई भी ऐसा देश, जहाँ अमर्यादित विदेशी प्रतियोगिताकी छूट हो, भुखमरीकी हालतमे पहुँच सकता है और यदि विदेशी लोग चाहे तो वह गुलामीमें भी पड़

सकता है। इसी को शान्तिमय प्रवेश कहते हैं। हाथसे बननेवाले माल और मशीनोसे तैयार होनेवाले मालके बीच प्रतियोगिताका भी यही परिणाम होता है, यह समझने के लिए एक ही कदम आगे जाने की जरूरत है। हम इस प्रक्रियाको अपनी आँखोके सामने घटित होते देख रहे है। आटेकी छोटो-छोटी मिले हाथकी चक्कियोको, तेलकी मिले गाँवकी घानीको, चावलकी मिले गाँवकी ढेकीको, और चीनीकी मिले गुड बनाने के ग्रामीण साधनो आदिको विलुप्त करती जा रही है। ग्रामीण धन्धोके नाश से गाँववाले गरीब होते जा रहे है, और धनवान लोग और मालदार बन रहे है। अगर काफी लम्बे अर्सेतक यही क्रम चलता रहा तो और किसी प्रयत्नके बगैर ही गाँवोका नाश हो जायेगा। गाँवोको तबाह करने का इससे अधिक चतुराई-भरा और लाभप्रद उपाय तो कोई चगेजखाँ भी नही निकाल सकता। और दुखद बात तो यह है कि अनजाने, पर निश्चित रूपसे, गाँववाले स्वयं भी अपने इस विनाशमे साझीदार हो रहे है। उनके दुखोको पूरी तरह समझने के लिए पाठको को जानना चाहिए कि उनके लिए खेती करना भी लाभप्रद नही रहा है। कुछ फसलोमें तो गाँववालो को बीजके दाम निकालने-जितनी भी आमदनी नही होती।

इन सब बातोके बावजूद मै जो कहता हूँ कि मौजूदा हालतमें खादी ही ऐसी चीज है जो आर्थिक दृष्टिसे टिक सकती है, उसका क्या मतलब है? इस बातको स्पष्टताके साथ मै इस तरह कहूँगा "करोडो ग्रामवासियोके लिए खादी ही ऐसी चीज है जो आर्थिक दृष्टिसे उस समयतक टिक सकती है जबतक कि हिन्दुस्तानके हरएक गाँवमें खेतो, घरो या कारखानोमें काम करनेवाले हरएक स्त्री-पुरुषके लिए, जिसकी उम्र १६ से ऊपर हो और जिसका शरीर काम कर सकने लायक हो, काम और पर्याप्त मजदूरी दिलानेवाली, सम्भव हो तो, इससे कोई अच्छी पद्धति नही मिल जाती, अथवा, जबतक इतने काफी शहर नही बन जाते कि वे इस प्रकारके गाँवोका स्थान ले ले, ताकि सुव्यवस्थित जीवनके लिए जिन सुविधाओ और आरामकी जरूरत है और जिन्हे पानेका सबको हक है, वे सब उनके द्वारा गाँववालो को मिलने लगे।" यह सब इतनी स्पष्टतासे कहनेके पीछे मेरा उद्देश्य यह बताना है कि अभी तो, भविष्यके बारेमे जितनी दूरतक हम सोच सकते है, खादीकी ही प्रधानता रहेगी।

इस समयकी जरूरी समस्या तो उन करोड़ो ग्रामवासियोके लिए काम और मजदूरीकी व्यवस्था करने की है जो क्रमश कगाल बनते जा रहे है। कोई भी व्यक्ति गाँवोमे जाकर स्वय इस बातको देख सकता है और समकालीन विशेषज्ञोके साक्ष्योसे भी यह बात सिद्ध होती है कि गाँववाले आर्थिक, मानसिक और नैतिक दृष्टिसे उत्तरोत्तर अधिकाधिक गरीब होते जा रहे है। उनके अन्दर कोई काम करने का, सोचने का, बल्कि जिन्दा रहनेतक का उत्साह तेजीसे नष्ट होता चला जा रहा है। जिन्दा होते हुए भी वे मानो मृत है।

खादीसे उन्हे काम, औजार और अपने मालके लिए तैयार बाजार मिलता है। जहाँ अभी कलतक घोर निराशा थी वहाँ खादी आशाका सचार करती है।

शकालु लोग पूछेंगे, "अगर खादी इतनी आशाप्रद चीज है तो अभी इसमें इतनी कम प्रगति क्यो हुई है?" इसके जवावमे यह कहा जा सकता है कि करोड़ो वेरोजगार लोगोको देखते हुए यद्यपि खादीकी प्रगति अपने-आपमें कम हुई है फिर भी तुलनात्मक दृष्टिसे देखे तो अलग-अलग अन्य किसी भी उद्योगसे उसने अधिक प्रगतिकी है। इस उद्योगकी वदौलत हर साल ग्रामीण मजदूरोकी सवसे बड़ी सख्याको मजदूरीके तौरपर सबसे ज्यादा रकम मिलती है, और साथ ही व्यवस्था आदिका ऊपरी खर्च इसमे वहुत कम होता है और इसका लगभग एक-एक पैसा जन-साधारणके ही पास पहुँचता है। अखिल भारतीय चरखा सघने इस सम्वन्धमे जो आँकडे प्रकाशित किये है उनका अध्ययन करके कोई भी व्यक्ति इस वातको जान सकता है।

खादीकी उन्नतिमें अनेक बाधाएँ है। गाँववालो के अपने कुछ पूर्वग्रह है, इसे विना सरकारी सहायताके हर तरहकी अनैतिक प्रतियोगिताका मुकावला करना पडता है, तथाकथित अर्थशास्त्रियोकी प्रचलित सम्मतियोका विरोध सहना पडता है, और खादी पहननेवालो की निरन्तर सस्ती खादी मिलने की माँगका भी मुकाबला करना पडता है। इस तरह यहाँ मुख्य सवाल यह है कि देहातियो और शहरियोको दैन्य, दुख और आँसुओके इस देशके योग्य सच्चा अर्थशास्त्र कैसे सिखाया जाये। दुख और गरीवी धर्मोका विचार नही करते। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई जो लोग भी गाँवोमे रहते है वे सव एक ही रोग—दरिद्रता और अभाव—से पीड़ित है। अगर इनमें कोई फर्क है तो केवल मात्राका है।

इसलिए मेरी मान्यता है कि चाहे एक गज खादी मिल के बने एक गज कपडेसे महँगी हो, मगर कुल मिलाकर और गाँववालो की दृष्टिसे तो वह सबसे लाभकारी और व्यावहारिक वस्तु है, जिसके मुकाबलेकी दूसरी चीज नही है। इस कथन पर पूरा विचार करने के लिए खादीकी व्याख्यामें दूसरे ग्रामीण धन्धे शामिल किये जा सकते है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २०-६-१९३६

८६. पत्र : एस० अम्बुजम्मालको

२० जून, १९३६

चि० अम्बुजम,

तुम्हारा पत्र और फल मिल गये। जव तुम्हारे यहाँसे फल मँगवाने की जरूरत होगी, अवश्य लिखूंगा। यो तो वम्वई पास पडता है, परन्तु कभी-कभी जव वहाँ सतरे लगभग अप्राप्य होते है तब दक्षिणके मीठे नीवू मिलने पर वडी खुशी होती है।

मुझे खुशी है कि पिताजी की तबीयत कुछ सुधरी है।

मुझे पता है कि . .[1] को कटि-स्नान और घर्षण-स्नानकी आवश्यकता है। घर्षण-स्नान पुरुषोकी अपेक्षा स्त्रियोके लिए अधिक लाभकारी है।

मै चाहता हूँ तुम दोनो कोडम्बक्कम् समितिमे शामिल हो जाओ। मै चाहता हूँ, विशेष रूपसे तुम जब मद्रासमे रहो तो सस्थाको देखने सप्ताहमे कमसे-कम एक बार जरूर जाओ, वहाँका कार्य देखो और उसकी रिपोर्ट तैयार करो। तुम्हे उस आश्रममें रहनेवालो से भी मिलना-जुलना चाहिए।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६०८)से, सौजन्य: एस० अम्बुजम्माल

८७. पत्र : ना० र० मलकानीको

सेगाँव, वर्धा
२० जून, १९३६

प्रिय मलकानी,

मुझे कुछ ऐसा लगता है कि तुम्हारा पत्र बहुत समयसे नही आया।

पाठशाला कैसी चल रही है? रुक्मिणी कुछ और बखेडा तो नही करती?

साथका कागज[2] थडानीको दे दो। इस लेखमें वेदो की व्याख्या करने की एक दूसरी विधि बताई गई है। उसका सिद्धान्त कुछ प्रगति कर रहा है क्या?

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१८) से।

१. यहाँ साधन-सूत्रमें दो शब्द धुँधले पड जाने के कारण पढ़े नहीं जा सके।
२. उपलब्ध नहीं है।

८८. पत्र : अमतुस्सलामको

२० जून, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

तेरा खत मिला। जो आदमी तर्कके घोड़े दौड़ाये उसका क्या करे? सरस्वतीसे मिलने की इच्छा तुझे होगी ही; इसीलिए तो मैंने तुझे लिखा था। उसमें न तेरी परीक्षा थी, और न किसी प्रकारका प्रलोभन। सरस्वतीको वहाँ नही भेजा जा सकता। बहुत खर्च होगा। इसे मैं मोह ही कहूँगा।

तू वर्धा आये, इसमे तो अर्थ है। सरस्वती वहाँ जाये, इसमे अनर्थ है। उसे यहाँ अच्छा लगेगा तो बहुत समयतक रहेगी।

जो हरिजन बालक उर्दू लिपि जानते है, उनका यह अभ्यास बनाये रखना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३३७) से।

८९. पत्र : लीलावती आसरको

२० जून, १९३६

चि० लीलावती,

मिर्च न खाने का व्रत लेना बिलकुल जरूरी नही था। मगर ले लिया है तो पालन करना। तुझे अपनी भाषा सुधारनी चाहिए। बिना विचारे बोलने की तुझे आदत पड़ गई है। यह ठीक नही है। हमारी बातका जो अर्थ सुननेवाला लगाता है, उसीको ठीक मानने में लाभ है। इससे हमें कम बोलने और जो बोलते है सो विचार करने की आदत पड़ती है। तुझे यहाँ बुलाने के लिए मैं उत्सुक हूँ। किन्तु यह नही चाहता कि बुलाकर तुझे असुविधामे डालूँ। २४-२५ तारीखको बुला लूँ और २७ को तुझे यहाँ छोडकर चल दूँ तो तुझे सेगाँवमे मेरे बिना पूरा हफ्ता निकालना पसन्द नही आयेगा। यह भी सोचता हूँ कि तू वहाँ बा की सेवा तो कर ही रही है। बातचीत कम करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९५७८)से। सी० डब्ल्यू० ६५५० से भी; सौजन्य : लीलावती आसर

९०. पत्र : अमृतलाल ठा० नानावटीको

२० जून, १९३६

चि० अमृतलाल,

तुम्हारे पत्रमे लिखे कामके बारेमे जबानी तो कह ही दिया था।

सम्भव है, रसोईघरमे बहुत लोग हस्तक्षेप करे। धीरजके साथ तुम सब-कुछ हल कर पाओगे।

मसालेदार भोजन करनेवाले लोगोकी सख्या बढती हो, तो बढ़ने देना। किसीसे कुछ न कहना।

जितनी खादीकी जरूरत हो मँगवाकर सिलवा लेना।

मनुके लिए समय न दिया जा सके तो उससे 'ना' कह देना। वह सितार ही सीखती रहे, यही ठीक है।

भारतन [कुमारप्पा] की खुराकके बारेमे ठीक तरहसे देखना।

तुम्हारे लिए जो खुराक उपयुक्त हो, वह लेना और शरीरको चगा बना लेना।

गजानन अच्छा हो गया न? उससे मुझे लिखने के लिए कहना। तबीयतके बारेमे भी और सिन्दी [गाँव] के कामके बारेमें भी।

भानु बापासे कहना कि मेरे कारण नासिकके काममे एक दिनकी भी देरी न हो। सरकारी दफ्तर भी इस कामके आडे आ गया, यह नई घटना हुई।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७१७) से।

९१. पत्र : अतरसिंह और अन्य लोगोंको

२० जून, १९३६

चि० अतरसिंह, प्रभुदयाल और जयकरण,

तुमारे खत पाकर खुश हुआ। अक्षर सब अच्छे लिखो। खूब मेहनत करो और उद्योग में हुशियार बनो।

अतरसिंह मौन के लाभ पूछते हैं। शांति रहती, शक्ति बचती है, ईश्वर-चिंतन का समय मिलता है।

बापुके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

जो लडके उर्दू हरफ जानते है वे उसे भूल ना जाय।

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०८३) से।

९२. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
२२ जून, १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

ये कुछ और कतरने[1] है, जो सम्भवत मुझसे अधिक तुम्हारे लिए महत्त्वपूर्ण है। मै दाहिने हाथको आराम दे रहा हूँ।

और नही लिखता, क्योकि जल्दी ही मिलेगे।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]

गाधी-नेहरू पेपर्स, १९३६, सौजन्य नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय

९३. पत्र : अमृतकौरको

२२ जून, १९३६

मूर्खा रानी,

तीन रुपये चुका दिये गये है। सेगाँवसे तुम्हे कई पत्र लिख चुका हूँ। कई बैठकोमे शामिल होने के लिए यहाँसे २७ तारीखको एक सप्ताहके लिए वर्धा जाऊँगा।

रोज ही कभी-कभी वर्षा होती रही है, पर कुछ ज्यादा नही। यहाँ कुछ भी नुकसान नही हुआ, कमसे-कम गिनने लायक नही है।

केवल कोई मूर्खा ही आशा करेगी कि ग्राहक क्रयकी हुई अपनी वस्तुके दोषोको स्वय सुधारे। मैने तो यही सोचा था कि ब्रोच इस तरह सुधार लिये जायेगे कि राज-वर्गको भी वे स्वीकार्य हो, और लागत-खर्चको मूल्यमें जोड दिया जायेगा। खैर इतना भी काफी है कि तुमने अन्तत ठीक तरीका सोच लिया।

१. ये उपलब्ध नही है।

मेरी समझमे तो कोई हर्ज नही कि तुम अपने ज्ञान और अनुभवका अर्जुनको अधिकतम लाभ देनेका प्रयास करो। बा को चन्दनका डिब्बा नही चाहिए था। अच्छा, अब मैं लम्बी-चौड़ी क्षमायाचनाकी आशा रखूँ।

सप्रेम,

तानाशाह

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७३३) से; सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ६८८९ से भी-

९४. पत्र : पट्टाभि सीतारामय्याको

२२ जून, १९३६

प्रिय डॉ० पट्टाभि,

आपका लडका बडा मेधावी है—ठीक अपने बापकी तरह। लेकिन लगता है उसने वह पूरा विनोद आपको नही सुनाया। जब मैंने श्रीमती पी० को अक्षरश. नखसे शिखतक अलकृत देखा तब कहा. "अब समझा कि तुम्हारे पिताजी बगलोर आने से क्यो डरते है।[1] क्योकि इस क्रूरताका दायित्व तुम्हारी माताजी की अपेक्षा तुम्हारे पिताजी पर अधिक है।" अब आप इस विनोदको जैसी गम्भीरतासे भी ग्रहण करना चाहे, करे। मै आपके विचारसे सहमत हूँ कि पत्नियो और वयस्क बच्चोको पतियो और माता-पिताओसे कभी-कभी छुटकारा मिलना चाहिए।

स्नेह।

मो० क० गाधी

[अग्रेजीसे]
इन्सिडेन्ट्स ऑफ गांधीजीज लाइफ, पृ० २२६

१. कुछ दिन पहले गाधीजी और वल्लभभाई पटेल बगलोरमें थे और उन्होंने पट्टाभि सीतारामय्यासे वहाँ आनेको कहा था, लेकिन वे जा नहीं पाये थे।

९५. पत्र : क० मा० मुंशीको

२२ जून, १९३६

भाई मुंशी,

तुम्हारे दोनों पत्र मिले। अभी लेख पढ नहीं पाया हूँ। जो तुमने वापस माँगा है, उसमें कुछ फेरफार करने के बाद वापस कर रहा हूँ। दफ्तरके बारेमें मेरा खयाल कुछ भिन्न लगता है। तुम्हारा भी वैसा ही बने तो ठीक। यदि तुम्हारे लेखको बदलने लगूं तो भाषा बदल जाये और लेख नया ही रूप ले ले। यह आवश्यक नहीं जान पड़ता। तुम अपने ही विचारको और विस्तृत कर सकते हो। मैं अपना लेख लिख रहा हूँ। शायद मंगलवारको तैयार हो जायेगा। तबतक तुम अपना उक्त लेख रोकना चाहो तो रोक लेना। मेरा लेख देखकर कुछ सुधार करना हो तो सुधार कर लेना। किन्तु मुझे इसकी कोई आवश्यकता नहीं लगती। फिर भी तुमको जो ठीक लगे, वही करना। सरदारसे पूछना चाहो तो पूछना।

प्रेमचन्दजी[1] के बारेमें तुम्हारी बात समझमें आई।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७६०२) से, सौजन्य : क० मा० मुंशी

९६. पत्र : प्रभावतीको

२२ जून, १९३६

चि० प्रभा,

तेरा पत्र अभी-अभी मिला। तू तो बड़ी चालाक है। अभी तो तेरे आने का कोई ठिकाना ही नहीं है और तू मुझसे सेगाँवके बारेमें पूछने लगी। जब तुझे इजाजत मिल जाये, तब तार देकर पूछ लेना। और धीरज न छोड़ा हो तो आनेपर मुझसे ही पूछ लेना।

यह ठीक नहीं है कि तेरी तबीयत बिगड़ती रहती है। पिताजीवाला रोग तो तुझे कदापि नहीं होगा। अलबत्ता, तुझे दूध और फल बराबर लेते रहना चाहिए, सब्जीमें दही मिलाना चाहिए, नियमसे कसरत करनी चाहिए और कटि-स्नान और घर्षण-स्नान करना चाहिए। इतना करेगी तो तबीयत बिलकुल नहीं बिगड़ेगी।

१. प्रसिद्ध हिन्दी उपन्यासकार मुन्शी प्रेमचंद।

एक दिन बादकी मुहरका अर्थ यह हुआ कि मैंने डाकका वक्त निकल जानेके बाद पत्र लिखा; इसलिए मुहर दूसरे दिनकी पड़ी।

मेरी तबीयत अच्छी है। खुराक पहले-जैसी ही है। जब बंगलोर छोडा था, तब वजन ११२ पौण्ड था।

२७ को एक हफ्तेके लिए मगनवाडी जाऊँगा।

सेगाँवमे डाक ७ दिनमे एक बार आती है, इसलिए तुझे तो मगनवाडी, वर्धा के पतेपर ही लिखना है। वहाँसे डाक रोज मेरे पास आ जाती है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मीराबहन मजेमे है। मेरे साथ बलवन्तसिह और मुन्नालाल है। बा मगनवाडीमें है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४७५) से।

९७. पत्र : जयन्त ई० पटेलको

२२ जून, १९३६

भाई जयन्तभाई,

यदि तुम अपनी पत्नीको नही छोड सकते और तुम सचमुच निर्विकार हो तो अपनी पत्नीके सच्चे शिक्षक बन सकते हो और उसे विदुषी बना सकते हो। यदि तुम्हारा ब्रह्मचर्य केवल सैद्धान्तिक हो तो उसे छोड देना ही उचित होगा।

इससे ज्यादा पथ-प्रदर्शन मै नही कर सकता।

जयन्तभाई ई० पटेल
चम्पकलाल ब्रदर्स
१४३, प्रिंसेस स्ट्रीट
साई भुवन, बम्बई

गुजरातीकी नकलसे. प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य · प्यारेलाल

९८. पत्र : सुरेन्द्रको

२२ जून, १९३६

चि० सुरेन्द्र,

तुम्हारे किस प्रश्नका उत्तर नही दिया गया? मुझे तो लगता है कि मैंने कुछ छोडा नही था। हो सकता है लिखते समय तुम्हारा पत्र मेरे सामने न होने से कुछ छूट गया होगा। यदि ऐसा हो जाये तो फिर लिखना चाहिए। तुम्हारा पहला पत्र मेरे पास नहीं है।

अब मैंने नेपाली कागजका प्रयोग बन्द कर दिया है। स्याहीका प्रश्न हल करना बाकी है। जब मेरे अक्षर पढे न जाये तब मुझे अवश्य लिखना चाहिए।

खाने के बारेमें तुम्हे इस नियमका पालन करना चाहिए। जब शरीर कोई चीज माँगे तो वह चीज उसे औषधके रूपमें देनी चाहिए। उस समय तुम्हे आने-पाईका हिसाब नही लगाना चाहिए। दूधको तो अनिवार्य ही मान लेना चाहिए।

बलवन्तसिंहने सेगाँवमे रहने का निश्चय किया है। मै उसे कही भेजूंगा तो वह चला जायेगा। अब देखे कि वह यहाँ जम पाता है या नही। मुझे तो आशा है।

आज मेरा यहाँ पहला सप्ताह पूरा हो रहा है। अच्छा न लगने का तो प्रश्न ही नही है, क्योकि मेरा मन यही था।

पतेमें [नामके आगे] क्या लिखा जाये? 'मि०' मै नही लिख सकता। 'श्री' तो सभी सुरेन्द्र हो सकते है। 'महाराज' विनोदपूर्ण तो था ही किन्तु इस विशेषणका प्रयोग तो वहाँ भी किया जाता है न? साधु सुरेन्द्र अच्छा लगता है। ब्रह्मचारी भी अच्छा है। अब तुम पसन्द करो। मीराबहन बुधवारको अपने पसन्द किये हुए गाँव बरोडामे रहने जायेगी।

गुजरातीकी नकलसे प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल

९९. पत्र : शोभालाल गुप्ताको

२२ जून, १९३६

भाई शोभालाल,

हिन्दुधर्मकी जो परीक्षा इस समय हो रही है . . .[1] वही सच्चे सेवक हो सकते है, जिनमें धर्मप्रति श्रद्धा है, हरिजनो प्रति पूर्ण प्रेम है और जो अपनेको हरिजन सेवामे समर्पण करने के लिए तैयार हो।

शोभालाल गुप्ता
मार्फत ह० से० संघ
अजमेर

पत्रकी नकलसे . प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य . प्यारेलाल

१००. पत्र : कृष्णचन्द्रको

२२ जून, १९३६

चि० कृष्णचन्द्र,

नैसर्गिक उपाय सब बीमारियो के लिये पर्याप्त नही है ऐसा सब चिकित्सक स्वीकार करते है।

हल्दी इत्यादि को बिना कारण खाने देनें की आवश्यकता मै महसुस नही करता। औषध-रूप में हर कोई ले सकते है।

कच्चा दूध म्युकस [आँव] का कारण हो नही सकता। हां, नीम शरू करो। लसून खाकर भी देखो। हिपवाथ अच्छी चीज है ही। खानेके पहले प्रात काल में लो। बाद घूमो। एक घण्टा पीछे दूध पीओ।

शर्माकी किताब सब की सब विश्वासपात्र नही है।

विलायत जाने से अगर तुमारा शरीर अच्छा हो सकता है तो अवश्य जाओ। और कोई लालच मेरे लिये तो नही है। लेकिन तुमारा अन्तरात्मा कहे वही करो। मेरे विचार का ख्याल मत करो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२८६) से।

१. साधन-सूत्रमें यहाँ कुछ अंश छोड दिया गया है।

१०१. पत्र : रामेश्वरी नेहरूको

२२ जून, १९३६

प्रिय भगिनि,

तुमारे खत की राह मैं देख रहा था। यद्यपि सेगाँव आने में तुमको तकलीफ तो हुई लेकिन अंत की बाते तो जरूरी थी ही। ईश्वर तुम को कर्तव्यपालन का बल देगा। मुझे लिखा करो।

तुम जानकर खुश होगी कि घनश्यामदास का तार है कि उनकी मुलाकात महाराजासे[1] सतोषजनक हुई। देखे क्या होता है।-

.[2] तो खूब खुश होगी।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७९८३) से। सी० डब्ल्यू० ३०७९ से भी; सौजन्य : रामेश्वरी नेहरू

१०२. तार : घनश्यामदास बिड़लाको

वर्धागंज
२३ जून, १९३६

घनश्यामदास बिड़ला
गेस्ट हाउस
त्रिवेन्द्रम्

प्राप्त हुआ। भगावन् तुम पर कृपा रखे।[3]

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ७९७५) सें; सौजन्य · घनश्यामदास बिड़ला

१. त्रावणकोरके।

२. यहाँ एक शब्द अस्पष्ट है।

३. यह तार बिड़लाके उस तारके उत्तरमें था जिसमें उन्होंने कहा था : "...महाराजाके साथ दो मुलाकातें हुईं। उन्होंने अगले जन्म-दिवसतक सन्तोषजनक परिणामोंका आश्वासन दिया।" देखिए पिछला शीर्षक भी।

१०३. पत्र : जी० एन० कानिटकरको

२३ जून, १९३६

प्रिय बालूकाका,

तुमने अच्छा किया कि मुझे पत्र लिखा। मैं तेलके लैम्पो और मशालके भी गुण-दोषोको जानता हूँ। परन्तु मैंने सोचा था कि शायद कोई देशभक्त पेढी मुफ्तमें या नाममात्र मूल्यपर वहाँ डायनमोकी बत्ती लगा दे। यदि मेरी शर्तोंपर बिजली की बत्तियाँ लगे तो मैं उसका समर्थन करूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गाधी

श्री सेवानन्दजी
३४१, सदाशिव
पूना सिटी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६७) से, सौजन्य जी० एन० कानिटकर

१०४. पत्र : राजेन्द्रप्रसादको

२३ जून, १९३६

भाई राजेंद्र बाबु,

तुमारे खतका उत्तर सेरेसोलके आनेतक मैंने मोकूफ रखा। सेरेसोल ने मुझे खबर दी कि सब मुसीबते मुक्त हो गई है। इसलिये मैंने जल्दी नही की। यदि कुछ बाकी है तो यहा आओगे तब मुझे बताओगे। मैं २७ को चला जाऊगा। दाहने हाथ से बहुत काम लिये इसलिये अब बाय हाथ से काम लेता हू।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९८७५) से, सौजन्य राजेन्द्रप्रसाद

१०५. बातचीत : पियरे सेरेसोल और ईसाई मिशनरियोंके साथ[1]

[२३ जून, १९३६ के आसपास][2]

[पियरे सेरेसोल :] धर्म तो हमें प्रेमसूत्रमें बाँधने के बदले विभक्त कर रहा है। क्या यह दुःखद दृश्य नही है कि विभिन्न धर्मोके लोगोंको सारे दिन मिल-जुल कर एक साथ काम करने में कोई कठिनाई मालूम नही पड़ती, वे हार्दिक सहयोगसे सारे दिन काम करते हैं, पर प्रार्थनाका समय आते ही वे सब अलग-अलग हो जाते हैं? तो क्या धर्मका उद्देश्य हमें विभाजित कर देना है?

तो क्या धर्मको सेवा-अभिलाषाका द्योतक बनाने के बदले, दम्भका द्योतक ही बना रहने दें? मै भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियोके बीच किसी तरहका धार्मिक आत्मैक्य चाहता हूँ।

[गाधीजी] यह तो सर्वथा सम्भव है, बशर्ते कि मनमे कोई दुराव न हो।

[पि० से० :] लेकिन मेरे एक मित्रका, जो मानव-जातिके एक महान् सेवक हैं, यह विश्वास है कि उनकी सेवाके पीछे प्रेरणा ही यह है कि वे इसके जरिये ईसाई धर्मका प्रचार कर सकेंगे। उनका कहना है कि ईसाके साथ तादात्म्य होने से ही उन्हें जीवन-शक्ति मिलती रहती है, क्योंकि ईसा सदैव परमेश्वरके सम्पर्कमें रहते हैं।

[गा० .] हमारी सबसे बड़ी कठिनाई यह नही है कि ईसाई मिशनरी अपने खुदके अनुभवपर निर्भर करें, बल्कि यह है कि वे हिन्दू भगवद्भक्तोकी साक्षी पर शका करते है। उन्हे यह समझना चाहिए कि जिस तरह उन्हे आध्यात्मिक अनुभव और तादात्म्यका आनन्द प्राप्त होता है, उसी तरह हिन्दुओको भी होता है।

ऐसा मालूम हुआ कि डॉ० सेरेसोलको इस विषयमें कोई शंका नहीं थी। उन्होंने कहा कि मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि फ्रैंक लेनवुडने, जिनकी 'जीसस, लॉर्ड ऑर लीडर' नामकी पुस्तकका जितना हुआ है उससे कहीं अधिक प्रचार होना चाहिए, ईसाई धर्मको उदात्ततम रूपमें हमारे सामने रखा है। उन्होंने कहा है कि "ईसाके व्यक्तित्वके प्रति मेरे हृदयमें अधिकसे-अधिक आदर है, पर मेरा खयाल है कि मैं ईसाकी आदरपूर्वक आलोचना कर सकता हूँ।"

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। सर्विस सिविल इंटरनेशनल नामक संस्थाके संस्थापक पियरे सेरेसोल दो महिला मिशनरियोंके साथ सेगाँवमें गांधीजी से मिले थे।
२. सेरेसोल अनुमानतः २३-६-१९३६ को वर्धा पहुँचे थे, देखिए पिछला शीर्षक।

[मिशनरी महिला :] लोगोंको ईसाई बनाने के लिए न तो मेरे पास समय रहा है, और न कभी मेरी ऐसी इच्छा ही रही है। अगर हमारे अस्पतालोंके जरिये ईसाइयतकी ओर अधिक लोग चले जायें, तो हमारे देशके चर्चको उससे प्रसन्नता अवश्य होगी।

[गां०] पर जहाँ आप लोग दवा-दारूकी सहायता देते है, वहाँ इस रूपमें प्रतिफलकी भी आशा करते है कि आपके मरीज ईसाई बन जाये।

[मि० म० :] हाँ, प्रतिफलकी आशा हम जरूर रखते है। नहीं तो दुनियामें ऐसी कितनी ही जगहें पड़ी हुई है, जहाँ लोगोंको हमारी सेवाकी जरूरत है। पर वहाँ जाने के बजाय हम लोग यहाँ [हिन्दुस्तानमें] आते है।

[गां०] यही तो विकृति है। आप लोगोके मनमें निष्काम सेवा नही है, बल्कि सेवाका फल आप इस रूपमें चाहते है कि बहुत-से लोग ईसाई धर्ममे आ जाये।

[मि० म० :] मेरे अपने काममें कोई छिपा हेतु नहीं है। मै लोगोकी सार-सँभाल करती हूँ, दुःख-दर्दका इलाज करती हूँ, क्योंकि इसके सिवा मै और कुछ कर ही नहीं सकती। इसका मूल है उस ईसाके प्रति मेरी दृढ़ भक्ति जिसने पीड़ित मानव-जातिकी सेवा की। मै यह स्वीकार करती हूँ कि मेरे मनमें जरूर यह इच्छा है कि ईसाकी भक्तिमें जो आनन्द मुझे मिलता है वही आनन्द दूसरे लोगोंको मिले। इसमें विकृतिकी बात कहाँ है?

[गा० :] विकृति तो चर्चमें है, जिसका यह खयाल है कि कुछ ऐसे लोग है जिनमें कुछ चीजोकी कमी है और वे चीजें आप उन्हे जरूर देंगे, चाहे उन्हे उनकी जरूरत हो या न हो। अगर आप अपने मरीजोसे सिर्फ यह कहे कि 'मैंने तुम्हें जो दवा दी उसका तुमने सेवन किया है। ईश्वरकी कृपा है कि उसने तुम्हे चंगा कर दिया, अब यहाँ न आना', तो आपने अपना फर्ज अदा कर दिया। लेकिन इसके साथ अगर आप यह भी कहती है कि 'कितना अच्छा होता, अगर ईसाई धर्ममें आपकी वैसी ही श्रद्धा होती, जैसी कि मेरी है', तो आप अपनी ओषधियाँ निष्काम भावसे नही देती।

[मि० म० :] लेकिन अगर मुझे ऐसा लगता हो कि मेरे पास कुछ दवा-दारू तथा आध्यात्मिक वस्तु है जो मै दे सकती हूँ, तो मै उसे कैसे रोक सकती हूँ?

[गा० :] यह कठिनाई यो हल हो सकती है। आपको महसूस होना चाहिए कि जो अच्छी चीज आपके पास है उसे आपका मरीज भी प्राप्त कर सकता है, पर किसी और मार्गसे। आप अपने मनमें कहे कि 'मै इस मार्गसे आई हूँ, तुम किसी दूसरे मार्गसे आ सकते हो।' वह आपके ही विश्वविद्यालयसे पास हो, दूसरेसे नहीं, ऐसी इच्छा आप क्यो करती है?

[मि० म० :] क्योंकि अपने विश्वविद्यालयके लिए मेरे हृदयमें पक्षपात है।

[गा० :] यही मेरे लिए कठिनाई है। आप अपनी माताको पूजती है, इसलिए आप यह इच्छा नही कर सकती कि दूसरे लोग भी आपकी माताकी सन्तान हो जायें।

[मि० म० :] ऐसा होना तो भौतिक रूपसे असम्भव है।

[गा० :] तब यह भी एक आध्यात्मिक असम्भावना है। समस्त मानव एक ही सिरजनहारकी सन्तान हैं। फिर मैं कैसे अपनी छोटी-सी बुद्धिसे ईश्वरकी महिमाको मर्यादित कर दूँ, और यह कहूँ कि बस यही एकमात्र मार्ग है?

[मि० म० :] मैं यह नहीं कहती कि यही एकमात्र मार्ग है; सम्भव है, कोई बेहतर मार्ग भी हो।

[गा० :] अगर आप यह स्वीकार करती हैं कि कोई बेहतर मार्ग भी हो सकता है, तो आपकी दलील खत्म हो जाती है।

[मि० म० :] खैर, अगर आप कहते हैं कि मुझे अपना ठीक रास्ता मिल गया है, तो मुझे आपके बारेमें बहुत चिन्ता नहीं है। मैं किसी ऐसे मनुष्यके पास जाऊँगी जो दलदलमें फँसा हुआ है।

[गां० :] वह किस स्थिति में है, इसका फैसला क्या आप करेंगी? क्या आपके यहाँके लोग नहीं भटके हैं? अपनी ही छापका सत्य आप सबको क्यों देने जाती हैं?

[मि० म० :] जो दवा मुझे मालूम हो वह तो दूँगी ही।

[गां० :] तब आप उससे यह पूछेंगी कि 'क्या तुम अपने डाक्टरसे मिले हो?' आप उसे उसके डाक्टरके पास भेज देंगी, और डाक्टरसे उस मनुष्यकी सार-सँभाल करनेके लिए कहेंगी। आप शायद उस डाक्टरसे सलाह लेंगी, उससे निदानकी चर्चा करेंगी, और या तो उसे अपनी बातका कायल करेंगी या उसे स्वयंको कायल करने देंगी। पर वहाँ तो आप तुच्छ शारीरिक रोगका इलाज कर रही होंगी। यहाँ तो हम एक आध्यात्मिक वस्तुकी चर्चा कर रहे हैं, जिसमें आप ये सब आवश्यक जाँच-पडताल नहीं कर सकतीं। इसीसे मैं कहता हूँ कि आप दयावृत्तिसे काम लें। आप यह दावा तो करती नहीं कि ईसाई समाजमें दम्भ है ही नहीं?

डॉ० सेरेसोल: हममें से अधिकांश लोग अपने धर्मको सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। उन्हें इस बातकी जरा भी कल्पना नहीं होती कि दूसरे धर्मोंने अपने अनुयायियोंको क्या ज्ञान दिया है। डाक्टर . . .[1] ने हिन्दू-धर्मके शास्त्रोंका अच्छा अनुशीलन किया है, और उन्होंने यह समझ लिया है कि हिन्दू-धर्म हिन्दुओंको क्या देता है।

[गा० :] मैं तो यह कहता हूँ कि 'गीता' या 'कुरान' का पढना ही उनके लिए काफी नहीं है। जिस तरह वे यह आशा रखते होंगे कि मैं एक ईसाईकी दृष्टिसे 'बाइबिल' पढूँ, उसी तरह उन्हें 'कुरान' को मुसलमानकी दृष्टिसे और 'गीता' को हिन्दूकी दृष्टिसे पढना चाहिए। मैं उनसे पूछूँगा कि "जिस पूज्य भावसे मैंने 'गीता' को पढा है, बल्कि जिस पूज्य दृष्टिसे 'बाइबिल' का पाठ किया है उतने ही पूज्य भावसे आपने 'गीता' पढी है क्या?" मैं आपसे कहता हूँ कि

१. साधन-सूत्रमें नाम छोड़ दिया गया है।

मैंने ईसाई धर्मसे सम्बन्धित जितनी पुस्तकें पढ़ी हैं उतनी हिन्दू-धर्म-सम्बन्धी नहीं पढ़ीं। और फिर भी मैं इस परिणामपर नहीं पहुँचा कि ईसाई धर्म या हिन्दू-धर्म ही एकमात्र सच्चा मार्ग है।

इसके बाद गांधीजी ने मि० स्टोक्स (अब श्री सत्यानन्द)की चर्चा की। मि० स्टोक्स जब हिन्दुस्तान आये तो शुरू-शुरूमें पठानोंको ईसाई धर्मका उपदेश करते हुए उनके प्राण जाते-जाते बचे। पर उन्होंने एक सच्चे ईसाईकी भाँति अपने आक्रमणकारी को सजासे छुड़ा लिया। पीछे उन्होंने सोचा कि ईसा पर तो मेरी सदाकी ही भाँति अगाध श्रद्धा है, पर मैं स्वयं हिन्दू हुए बिना ईसाका सन्देश हिन्दुओं तक नहीं पहुँचा सकता। जबतक मैं हिन्दुओंको और भी अच्छे हिन्दू न बना दूँ, तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि मैं अपने प्रभुकी सच्ची सेवा कर रहा हूँ।[1]

इसपर उन मिशनरी महिलाओंने पूछा, तब मिशनरियोंका रुख क्या होना चाहिए?

[गां०] मेरा खयाल है कि यह मैं समझा चुका हूँ, पर इसे मैं फिरसे दूसरे शब्दोंमें कह देता हूँ: आप लोग यह भूल जायें कि हम धर्मशून्य नास्तिकोंके देशमें आये हैं, और ऐसा विचार रखें कि ये लोग भी हमारी ही तरह ईश्वरकी खोजमें हैं, आप यह महसूस करें कि हम इन लोगोंके देशमें अपने धर्मका दान करने नहीं जा रहे हैं, पर आपके पास सांसारिक सुख-सम्पत्तिका जो अच्छा खजाना है, उसमें आप इन्हें भी हिस्सा देंगे। तब आप अपने मनमें कोई दुराव रखे बगैर अपना काम करेंगे, और इस तरह आपके पास जो आध्यात्मिक धन होगा, उसमें भी आप इन लोगोंको हिस्सा देंगे।[2] आपके मनमें ऐसा दुराव है, इसी बातकी जानकारी आपके और मेरे बीच भेदकी दीवार खड़ी कर रही है।

[मि० म० :] आप जिसे मनका दुराव कहते हैं, आपके खयालसे, उसके कारण हमारा काम बिगड़ता है?

[गां० .] इस सम्बन्धमें मेरे मनमें तो सन्देह ही नहीं है। मनके इस दुरावके बिना आप जितना लाभ पहुँचा सकते हैं, उसके रहते आप उसका आधा भी लाभ नहीं पहुँचा सकेंगे। मनके इस दुरावका अर्थ यह है कि आप एक जुदा और ऊँची जातिके हैं, और इस तरह आप दूसरोंसे अलग हो जाते हैं।

[मि० म० :] हाँ, मेरा यह पश्चिमी रहन-सहन जरूर भेद-भाव खड़ा कर देता है।

[गां०] नहीं, यह भेदकी दीवार तो तुरन्त ढाई जा सकती है।

[मि० म० :] हम अपने घरमें ही रहें तो क्या आपको सचमुच खुशी होगी?

१. सत्यानन्द स्टोक्सने एक पत्र लिखकर अपनी स्थितिका स्पष्टीकरण किया था। यह पत्र १५-८-१९३६ के हरिजनमें "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) के अन्तर्गत छपा था।

२. साधन-सूत्रके अनुसार ही इन पंक्तियोंको रेखांकित किया गया है

[गा०] यह मैं नहीं कह सकता। पर इतना तो अवश्य कहता हूँ कि आप लोग अमेरिकाके बाहर क्यों जाती हैं, यह मैं कभी नहीं समझ पाया हूँ। वहाँ कोई काम करने को नहीं है क्या?

[मि० म० :] अमेरिकामें भी शिक्षा-कार्यके लिए काफी गुंजाइश है।

[गा० .] आपकी यह स्वीकृति एक घातक स्वीकृति है। यह बात नहीं कि आपकी वहाँ कोई जरूरत न हो। आपके धर्मसंघने जो विचित्र रुख अख्तियार कर रखा है, अगर वह न होता तो आप यहाँ न आती।

[मि० म० :] मैं यहाँ आई हूँ, इसका कारण यह है कि अमेरिकाकी स्त्रियोंकी अपेक्षा भारतीय स्त्रियोंको डाक्टरी सार-सँभालकी ज्यादा जरूरत है। पर इसके साथ ही, मेरी यह इच्छा भी है कि मुझे विरासतमें जो ईसाई धर्म मिला है उसमें से उन्हें भी हिस्सा दूँ।

[गा०] यही तो मेरा विरोध है। आप तो यह कह ही चुकी है कि शायद इससे कोई अच्छा रास्ता भी हो सकता है।

[मि० म० :] नहीं, मेरे कहने का मतलब तो यह था कि पचास बरस बाद शायद कोई अच्छा रास्ता निकल आये।

[गा० :] हम तो आजकी बात कर रहे थे, जिसमे आपने अभी कहा था कि इससे बेहतर रास्ता दूसरा हो सकता है।

[मि० म० :] नहीं, आज तो जिस मार्गका मैं अनुसरण कर रही हूँ उससे अच्छा मार्ग कोई भी नहीं है।

मैं कहता हूँ कि इसमें आप जरूरतसे ज्यादा मानकर चल रही है। आपने सब धर्मोके विश्वासोको तो परखा नही। और परखा हो, तो भी आप यह नही कह सकती कि आपसे गलती कभी होती ही नही। आपको तमाम लोगोका ज्ञान है, ऐसा आप मान लेती है। लेकिन यह आप तभी मान सकती है जब आप ईश्वर हों। मैं आपको यह समझा देना चाहता हूँ कि आप दोहरे भ्रममे पड़ी हुई है एक तो यह कि आप जिस चीजको सर्वश्रेष्ठ मानती है वह वास्तवमें वैसी है; और दूसरा यह कि आप जिसे अपने लिए सर्वश्रेष्ठ मानती है वह सारी दुनियाके लिए सर्वश्रेष्ठ है। इसके मूलमे तो आपका यह दावा है कि आप सर्वज्ञ है और कभी भूल कर ही नही सकती। मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि आप जरा नम्र बनें।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, १८-७-१९३६

१०६. सलाह: आगन्तुकोंको[1]

[२३ जून, १९३६ के पश्चात्][2]

पैदल चलनेसे जो-जो लाभ होते हैं उन्हें जाननेके लिए आपको थोरोकी पुस्तक पढ़नी चाहिए। मैंने तो यह नियम बना लिया है कि सिवाय बिलकुल असमर्थ लोगोंके कोई भी — यहाँतक कि स्थूलकाय जमनालालजी भी — बैलगाड़ीमें बैठकर यहाँ न आयें। मैंने उनसे कह भी दिया है कि अगर आपको अपनी यह मोटाई कम करनी है और अपनी आयुमें दस-पाँच बरस और बढ़ाने हैं तो इसका सबसे अच्छा इलाज यही है कि सेगाँव आप पैदल ही आया-जाया कीजिए। इसमें कोई घबराने की बात नहीं है, क्योंकि यूरोपीय महिलाएँ भी, जिन्हें शायद ही कभी ऐसे ऊबड़-खाबड़ रास्तोंपर चलनेका मौका आया हो, जूते और मोजे पहने हुए कीचड़में सनी हुई यहाँ आई हैं।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २५-७-१९३६

१०७. पत्र: एस० अम्बुजम्मालको

सेगाँव, वर्धा
२४ जून, १९३६

चि० अम्बुजम,

संलग्न पत्रमें जिन लोगोंके नाम दिये गये हैं उनसे माँगनेका काम शायद तुम्हारे लिए कठिन नहीं होगा। उन लोगोंको लिखनेको मेरा जी नहीं चाहता। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम संकोची हो। लेकिन यदि तुम सेवा करना चाहती हो जिसके लिए ईश्वरने तुम्हें बनाया है, तो तुम्हें अपना संकोच छोड़ना ही होगा। तुम चाहो तो जानम्मालको[3] साथ ले सकती हो।

यदि तुम्हें यह काम अपने बूतेसे बाहरका लगे तो इनकार करनेमें संकोच मत करना।

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

२. देखिए पिछला शीर्षक; इस शीर्षकमें उल्लिखित यूरोपीय महिलाओंसे तात्पर्य शायद उन दो मिशनरी महिलाओंसे है जो पियरे सेरेसोलके साथ गांधीजीसे मिलने आई थीं।

३. एस० अम्बुजम्माल की माँजी।

आशा है, माताजी स्वस्थ होंगी और पिताजीके स्वास्थ्यमें सुधार हो रहा होगा।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजीसे : अम्बुजम्माल पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१०८. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२४ जून, १९३६

चि० प्रेमा,

कांग्रेस-अधिवेशन तक यह काम[1] करना ठीक है।

कागज-सम्बन्धी तेरा उलाहना उचित है।[2] यह कागज तो ठीक है न?

आटा, चावल, तेलके बारेमें धीरज रखकर प्रचार करती ही रहना। ये चीजें महँगी होनेपर भी सस्ती समझी जायें। हम नया अर्थशास्त्र बना रहे हैं। देश-देशका अर्थशास्त्र अलग होता है। इसके सिवा, गरीब और अमीरका अर्थशास्त्र भी अलग-अलग होता है। इसलिए तू हारना मत।

बाजरेकी बात मैं जानता हूँ। बीज कितना भी अच्छा क्यो न हो, मिट्टी, पानी आदि अनुकूल न होनेपर अपना गुण खो देता है।

यह है चार पंक्तियोकी प्रस्तावना :[3]

'खुदाई खिदमतगार' एक ऐसी पुस्तक है जिसका अनुवाद हिन्दकी सब भाषाओंमें होना चाहिए। गुजराती, उर्दू, हिन्दीमें तो हो ही गया है। सम्भव है दूसरीमें भी होगा। उचित ही है कि अब मराठीमें भी अनुवाद निकला है और अधिक हर्षकी बात यह है कि यह अनुवाद एक सेविकाने किया है। इस शुभ प्रयत्नके लिए उनको धन्यवाद। मेरी आशा है कि महाराष्ट्रकी जनता 'बे खुदाई खिदमतगार' अर्थात् ईश्वर-भक्तके चरित्रको प्रेमसे पढ़ेंगे।

मो० क० गांधी[4]

१. प्रेमाबहनने फैजपुर अधिवेशनके लिए स्वयंसेविका दलका गठन करना स्वीकार कर लिया था।

२. प्रेमाबहनने पत्रोंके लिए गांधीजीको अच्छे कागज भेजे थे। वे उन्होंने किसी और को दे दिये थे। पिछले पत्रका कागज और स्याही दोनों घटिया थे।

३. महादेव देसाईकी पुस्तक बे खुदाई खिदमतगारका प्रेमाबहनने मराठीमें अनुवाद किया था। यहाँ तात्पर्य उसीकी प्रस्तावनासे है। मूल अंग्रेजी संस्करणकी प्रस्तावनाके लिए देखिए खण्ड ६०, पृ० ८६।

४. मूल प्रस्तावना हिन्दीमें ही है और यहाँ शब्दशः उद्धृत की गई है।

किसी समाधिस्थ मनुष्यके जीने के बारेमे श्रद्धा न बैठे तबतक उसे मृतदेह मानकर अग्नि-सस्कार करने के प्रयत्नमें जितना तथ्य हो सकता है, उतना ही ईश्वर पर श्रद्धा बैठने तक नास्तिक होनेमें है।

भावना और श्रद्धामे भेद हो तो भावना न होनेपर भी श्रद्धा जमाने के लिए शुद्ध मनसे प्रार्थनामे बैठने मे लाभ है।

जगली लोगोमें हम रहते हो तो अपने धर्मका प्रचार न करके नीति-धर्मका प्रचार करे। जब उनके हृदय-द्वार खुले तब उन्हे कोई चुनाव करना हो तो करें। हम तो उन्हे सभी धर्मोका सामान्य ज्ञान करायेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३८२) से। सी० डब्ल्यू० ६८२० से भी, सौजन्य : प्रेमाबहन कटक

१०९. पत्र : परीक्षितलाल ल० मजमूदारको

२४ जून, १९३६

भाई परीक्षितलाल,

मुझे सरदारसे ऐसा कहने की याद नही पडती कि गोधरा आश्रम[1] अच्छी तरह चल रहा है। यह चल रहा है, बन्द नही हुआ है, ऐसा कहा था। किन्तु तुमने मुझे स्थिति बता दी, यह तो ठीक ही किया। जैसा ठीक जान पडे, वैसा करना।

भडौंचके बारेमे निर्णय ठीक हुआ है या नही, यह तुमनें नही लिखा। मुझे तो, इस निर्णयका क्या असर हुआ, इसका पता नही चला। प्रस्तावमें इतना ही कहा गया है, या और भी कुछ?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०३८) से।

१. विठ्ठल लक्ष्मण फड़के द्वारा संचालित हरिजन-आश्रम।

११०. पत्र : चिमनलाल एन० शाहको

२४ जून, १९३६

चि० चिमनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा शरीर ठीक होना ही चाहिए। सीरम के इजेक्शन लेने से ठीक हो जाये तो ठीक। अच्छा गठा हुआ शरीर क्यो टूट गया, यह तुम्हे समझ लेना चाहिए। इन नियमोके पालनसे शरीर खराव होता है, इसे असम्भव मानना। यमादिके पालनमे भूल हो जाये तो भयानक परिणाम अवश्य हो सकते है। उदाहरणके लिए देखा जाता है कि ब्रह्मचर्यका पालन करने मे लोग बड़ी-बडी भूले कर देते है। चूँकि यह शारीरिक तप है इसलिए यदि इसके पालनमे भूल-चूक हो जाये तो उसका असर शरीरपर अवश्य ही खराव पडेगा। यही बात अस्वादके विषयमे भी है। यह तो मैने उदाहरणके रूपमे बताया। तुम्हारे विषयमे कहाँ क्या भूल हुई, यह बताना कठिन है। इस शोधका अब इतना ही उपयोग है कि यदि भूल मालूम हो जाये तो उससे उपचारमे मदद मिलेगी।

मन स्वस्थ क्यो नही होता? अहिंसाका मनन करनेवाले को यह बात हस्तामलकवत् होनी चाहिए। यदि शारदाको[1] वहाँका हवा-पानी माफिक न आता हो तो दूसरी जगह जाना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० जी० १९)से।

१११. पत्र : शारदा चि० शाहको

२४ जून, १९३६

चि० शारदा,

लिखने को कुछ नही था, यह तो न मानने-जैसी बात लिखी। जो मेरे मनका काम नही करते, ऐसे कितने ही बालक-बालिकाएँ मुझे पत्र लिखते रहते है।

तेरे तर्क तेरी बुद्धिको शोभा नही देते। तू लिखती है कि शरीर नाजुक है इसलिए बुद्धिका बल बढाकर तू उसे कमाईका साधन बनायेगी। तू यह नही समझती कि ऐसी जानकारी बढाने मे शरीर खराव होता है। कमाने के लिए ज्ञानोपार्जनका विचार भी हीन है। तेरा यह खयाल भी गलत है कि तू भाररूप

१. चिमनलाल एन० शाहकी पुत्री।

बन जायेगी। चाहे जितना पढ़-लिखकर भी अगर तू खटियापर ही पडी रही तो भाररूप ही बनी रहेगी, यह तू क्यों नही समझती? तू लिखे-पढे सो तो मुझे पसन्द है। बाल की तरह तू कालेजमें पढकर कोई बड़ी उपाधि ले तो मै उसे बुरा नही मानूंगा, किन्तु शरीर नही बिगाड़ना चाहिए। शरीर सुधारना ही पहला कर्त्तव्य है। किन्तु यह तो मेरी राय हुई, ठीक तो वही है जो तुझे सूझे। अब लिखना शुरू किया है तो मुझे लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९७१) से; सौजन्य : शारदाबहन गो० चोखावाला

११२. पत्र : अमृतकौरको

सेगांव, वर्धा
२६ जून, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

रूमालकी लम्बाई इस कागजकी लम्बाईकी पौने दो गुनी है और चौडाई सवा गुनी। यहाँ मेरे पास नापने का फीता या गज नही है।

हाँ, चन्दनके डिब्बेको अपने लिए रख लेने की तुम्हे पूरी छूट थी। बा की तो यही आशा थी।

जुलाईके अन्तमें भारी वर्षा होने की सम्भावना नही है, और यदि वर्षा हो भी तो तुम कुछ दूर पैदल चल लेना। तुम्हे खूब सुहावना लगेगा। कुछ ऐसे लोग भी है जो मृत्युसे पहले ही कई-कई बार मरते है। परन्तु भगवान्की कृपासे तुम वैसी नही हो। तुम तो सिंह-वर्गकी हो न?

आज और अधिक नही।

स्नेह।

तानाशाह

[पुनश्च :]

मीरा बुधवारको यहाँसे डेढ मील दूर वरोडाकी अपनी कुटीपर चली गई है।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५८०) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ६३८९ से भी

११३. पत्र : नान मेननको

२६ जून, १९३६

प्रिय नान,

मैंने सोचा था, तुम्हे गपशप-भरा लम्बा पत्र लिखूंगा, परन्तु कभी समय ही नही मिला। अब एस्थरने पत्र लिखकर याद दिलाई है। अत यह छोटा-सा पत्र है, यह बताने को कि चाहे मै पत्र न लिखूं परन्तु मै तुम्हे कभी भूल नही सकता। आशा है, अब तुम दोनो पहलेसे अधिक प्रसन्न हो।

तुम दोनोको प्यार और चुम्बन।

बापू

[अंग्रेजीसे]
माई डियर चाइल्ड, पृ० १२२

११४. पत्र : एफ० मेरी बारको

२६ जून, १९३६

चि० मेरी,

तुम्हारा पत्र मिला। चेक और ८०० पौंडकी हुण्डी पाकर मै परेशानीमें पड़ गया हूँ। समझमें नही आता किस प्रकार इस कामको पूरा कर पाऊँगा। भगवान् ही कोई राह निकालेगा।

मै जानता हूँ कि मार्गरेट असममें काम करने के लिए उत्सुक थी।

वह क्रिश्चियन साधु सच्चा साधु होगा। अगर उसके विषयमें कुछ और बताने लायक हो तो मुझे बताना।

तुम्हारे वजनमें जो इतनी कमी हो रही है, उसको रोको। कारण जानकर उसका निवारण करो, भले ही फिरसे लम्बा अवकाश लेना पड़े। तुम सन्तुलित भोजन ले रही हो क्या? बताना क्या-क्या लेती हो।

मुझे प्रसन्नता है, तुम्हे जुलाहे मिल गये।

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

अब मीरा यहाँसे डढ मील दूर [वरोडामें] है।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०६४) से। सी० डब्ल्यू० ३३९४ से भी, सौजन्य : एफ० मेरी बार

११५. पत्र : जी० वी० केतकरको

२६ जून, १९३६

प्रिय मित्र,

मैंने अभी आपका पत्र पढना समाप्त किया है।

जिन घटनाओंकी आपने चर्चा की है मुझे तो उनका स्मरण नही।

यदि आप मेरे कथनका अर्थ खीच-तानकर न निकाले तो आपकी रोचक शोधोसे मेरी सामान्य स्थितिपर कोई प्रभाव नही पडता। परन्तु यदि आपके मतसे मेरे कथन और आपकी खोजमे वास्तविक विषमता है तो मुझे यह कहने मे कोई सकोच नही कि मेरे कथनकी अपेक्षा आपकी वात ही स्वीकृत होनी चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

जी० वी० केतकर
'मराठा' ऑफिस
५६८, नारायण पेठ, पूना-२

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७८६६) से। सी० डब्ल्यू० ९८३ से भी, सौजन्य जी० वी० केतकर

११६. पत्र : नारणदास गांधीको

२६ जून, १९३६

चि० नारणदास,

साथका प्रेमाका पत्र आधा फाड देने के बाद ध्यान आया कि यह तो तुम्हें भेजा जाना चाहिए। इसलिए टुकडे इकट्ठे करके उसे जोडा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८४९७ से भी; सौजन्य : नारणदास गाधी

११७. पत्र : अमतुस्सलामको

२६ जून, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

मैं क्या वापस लूँ? तूने लिखा, "आपको शर्माको भेजना ही नही चाहिए था, मै उनकी बात माननेवाली नही हूँ।" लेकिन मैंने तो उन्हे भेजने की गलती की। तो फिर उस गलतीके लिए माफी माँगनी चाहिए न? मैंने लिखा[1] कि "तू शर्माको पूजती थी।" तू लिखती है, "मै इन्सानको पूजती ही नही।" बोल, अब हमारा मेल कैसे बैठेगा? मै सबको पूजता हूँ। तुझे पूजता हूँ। मै मानता था कि तू कान्तिको पूजती है, द्रौपदीको पूजती है। जो खुदाको पूजता है वह उसकी खलकतको नही पूजेगा तो क्या करेगा? मुझे पूजनेवाली मेरे कान्तिको नही पूजेगी? पर तेरा मुकाबला कैसे करूँ? तू तो ज्ञानका भण्डार बन गई है। तुझे मेरे या किसीके रहमकी जरूरत कहाँ है? खुदाके रहमकी जरूरत होगी या नही, यह भी एक सवाल है।

"मनमानी" का अर्थ है किसीकी नही सुनना। माँ की नही, भाईकी नही, साथीकी नही, मेरे जैसे मिस्कीन बापकी भी नही। अब बोल तू बेरहम है या मैं? अपना अभिमान छोडती ही नही और बापूकी कदमबोसी करती है। जब सचमुच तुझमे शून्यपन आयेगा, तू यह समझने लगेगी कि तू कुछ भी नही करती है, जो करता है वह खुदा ही करता है, तभी तू खिलेगी। अभी तो तेरा अभिमान तुझे जला रहा है। तेरे पास जो काम पडा है उसे काफी समझकर सन्तोष क्यो नही रखती? बापा जो नया काम दें, वह क्यो लेना चाहिए? तेरा करार तो यह है कि मै कहूँ वही करना है। नया काम करने की मैंने कब इजाजत दी?

बद्री-केदारसे लीलावती आये तब साथका खत[2] उसे दे देना। कृष्णन नायरको यथासमय मालूम हो जायेगा। विद्यार्थियोके लिए खत[3] इसके साथ है। सरस्वती महिला-आश्रम गई है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७८) से।

१. देखिए "पत्र : अमतुस्सलामको" १९-६-१९३६।

२. यह उपलब्ध नहीं है।

३. देखिए अगला शीर्षक।

११८. पत्र : देवनन्दन और अन्य लोगोंको

२६ जून, १९३६

चि० देवनन्दन, रामेहर, रामस्वरूप, श्रीराम और रामवृक्ष।

तुम सब लोगोके खत मिले है। तुमने लिखा तो अच्छा किया। चारमे[1] सबसे अच्छे हरफ देवनन्दनके है और खराब रामवृक्षके है। सब विद्यार्थी कमसे-कम अपने हरूफ तो पूर्ण बनावे। आज अच्छे, नही होगे तो भविष्यमें होना बहूत मुश्केल है। मेरे हरूफ खराब है अब बुढापेमें सुधारना मुश्केल है। और जैसे हम हरूफ साफ और अच्छे रखें इसी तरह दिलको भी साफ और अच्छा रखें यह तो सबसे आसान चीज हो सकती है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १०८४) से।

११९. पत्र : शन्नोदेवीको

२६ जून, १९३६

चि० शन्नोदेवी,

तुमसे क्या कहु? हां [अखबारमें] दैनिक शक्तिका दुर्व्यय अवश्य करेगी। कहां अध्यापिका, कहा सपादिका? जिस चीजसे मुझे कुछ भी रस नही आता है उसमें तुमारा हितेच्छु होते हुए आशीर्वाद कैसे भेजु?

बापुके आशीर्वाद

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे; सौजन्य : नारायण देसाई

१. मूलमें किये गये एक संशोधन से लगता है कि पाँचवाँ नाम बादमें जोड़ा गया था।

१२०. सच हो तो बर्बरतापूर्ण है

'हिन्दू' के निजी सवाददाता द्वारा रामनाडसे ८ जूनको भेजी गई खबरसे नीचेका अनुच्छेद[1] लेकर एक सज्जनने मेरे पास भेजा है :

> शनिवारको देवकोटा पंचायत बोर्डके कार्यालयमें हुई बोर्डकी बैठकमें . . . हमेशासे चले आ रहे रिवाजका पालन किया गया; अर्थात् बोर्डमें जो हरिजन सदस्य है उसने सभा-भवनमें आकर हाजिरीके रजिस्टरमें अपने दस्तखत किये और सभा-भवनके बाहर निकलनेवाले दरवाजे पर जाकर खड़ा हो गया और जबतक बैठक खत्म न हो गई तबतक बराबर वहीं खड़ा रहा। . . .

'हिन्दू' की इस कतरनके साथ मेरे नाम जो पत्र आया है उसमे लिखा है.[2]

> साथमें . . . 'हिन्दू' की एक कतरन भेज रहा हूँ . . .।
>
> उसमें जिस पंचायत-बोर्डका जिक्र है वह चेट्टिनाडके बीचों-बीच है और ऐसा खयाल किया जाता है कि कांग्रेसके आदमी तथा ऐसे लोग ही उसमें है जो अभी हालमें कांग्रेसकी ओरसे खड़े होकर चुने गये है। स्थानीय बोर्डों और पंचायतोके द्वारा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके उद्देश्यो और लक्ष्योंकी प्राप्तिके लिए काम करना उन्होंने अपना ध्येय बताया था।
>
> यह पढ़कर हृदयको धक्का-सा लगता है कि ऐसी संस्था, इस बीसवीं सदीमें, अपने हरिजन-सदस्यको सभा-भवनके बाहर खड़ा रहने के लिए मजबूर करने का साहस करे—और यह जानते हुए भी कि वह खुद उस संस्थाका एक बाकायदा चुना हुआ सदस्य है और समाजके एक भागका प्रतिनिधित्व करता है, जिसके कारण ऐसी सदस्यतासे प्राप्त तमाम सुविधाओंके उपभोगका हक उसे हासिल है। . . .

मै नही जानता कि पत्र-लेखकका यह कहना ठीक है या नही कि देवकोटा पचायतमें काग्रेसी-ही-काग्रेसी है। अगर ऐसा है तो यह उन काग्रेसियोके लिए बहुत ही बुरी बात है, क्योकि पचायतने अपने हरिजन-सदस्यके साथ जो व्यवहार किया वह तो स्पष्टत. अन्यायपूर्ण है ही, लेकिन उसके अलावा भी काग्रेसी तो अस्पृश्यताका विरोध करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। मगर पचायतमे काग्रेसी हो या न हो, जिस प्रकार विधान-सभाकी बैठकके समय उसके सदस्य रावबहादुर राजा साहबका वहाँ एक कोनेमें खडा रखा जाना बर्बरतापूर्ण माना जायेगा, उसी प्रकार बोर्डके इस व्यवहारको भी बर्बरतापूर्ण ही कहा जा सकता है।

१ और २. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये है।

लेकिन 'हिन्दू' के संवाददाताने तो सर्वसाधारणको यह भी बताया है कि देवकोटा पंचायतमें यह रिवाज हमेशासे चला। आया है। इस से यह खयाल होता है कि इस समय दक्षिणमें अस्पृश्यताकी चर्चा खास तौरसे जोरोंपर है, इसीलिए इस आम रिवाजकी ओर ध्यान गया है। मगर कुछ पंचायतोंमें हरिजन-सदस्योंके साथ ऐसा व्यवहार करने का आम रिवाज हो तो भी लोकमतको भविष्यमें इसकी पुनरावृत्ति असम्भव बना देनी चाहिए। लेकिन स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस बातके जाहिर हो जाने से सर्वसाधारणमें कोई हलचल नहीं मची है। ऐसा मालूम पड़ता है कि दक्षिणके अखबारोंने भी अपने सम्पादकीय स्तम्भोंमें इस घटनाकी, जो इतनी बेहूदी है कि उसकी सख्त निन्दा होनी चाहिए, कोई चर्चा नहीं की। इसलिए यह सज्जन इस बातके लिए धन्यवादके पात्र हैं कि मुझे सूचित करके उन्होंने 'हिन्दू' के इस अनुच्छेदको विस्मृतिके गर्तसे निकाल लिया है।

यह व्यवहार तो न केवल बर्बरतापूर्ण है, बल्कि मैं समझता हूँ. गैरकानूनी भी है। हरिजन-सदस्यको कानूनन यह हक है कि वह अपने साथी सदस्योंकी बराबरीमें बैठने की माँग करे। यह कह देने-भरसे काम नहीं चलेगा कि अपने अपमानमें हरिजन-सदस्यका अपना भी कसूर है, क्योंकि हिन्दुस्तानके दूर-दूरके भागोंमें रहनेवाले बेचारे हरिजनोंकी स्थितिको मैं बखूबी समझ सकता हूँ, जिनके कारण उनमें अपने अधिकारों पर जोर देनेका साहस नहीं है। और हरिजनोंके लिए, दुर्भाग्यवश, देवकोटा काफी दूरकी ही जगह है।

जो कुछ भी हो, प्रान्तीय और स्थानीय हरिजन सेवक संघ छोटेसे-छोटे हरिजनोंके अधिकारोंके लिए भी यदि वैसे ही उत्सुक हों जैसे बड़ेसे-बड़े व्यक्तियोंके अधिकारोंके लिए हैं, तो उनका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे इस बातकी जाँच करें और ऐसे उपाय अख्तियार करें जिससे भविष्यमें हरिजनोंके साथ कोई ऐसा दुर्व्यवहार न कर सके, क्योंकि यह अपमान सिर्फ उस एक हरिजन-सदस्यका नहीं, बल्कि सारे हरिजन-समाजका है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २७-६-१९३६

१२१. हरिजन और चुनाव

बगलोरसे लौटते हुए उस दिन श्री ए० कालेश्वर राव और एक हरिजन वकील श्री वी० कूर्मैयाके साथ मेरी जो बातचीत हुई वह 'हिन्दू' में प्रकाशित हुई है। मित्रोने पत्र लिखकर मुझसे पूछा है कि 'हिन्दू' के सवाददाताने उस बातचीतकी क्या सही रिपोर्ट दी है? उन्होने मुझे अपनी राय खुद अपने ही शब्दोमें देनेके लिए भी लिखा है।

'हिन्दू' में उसके सवाददाताकी दी हुई जितनी रिपोर्ट प्रकाशित हुई है वह वास्तवमें सही है। हाँ, उसमें बातचीतका शुरूका अश छोड दिया गया है। श्री कूर्मैयाके प्रश्नके उत्तरमे मैंने कहा था कि नागपुरके विधान-परिषद-सदस्य श्री गवईको मैंने जो लिखित सलाह भेजी है उसपर मै कायम हूँ। इसपर श्री कूर्मैयाने पूछा: "लेकिन अगर हम लोगोमें पूरी एकता न हो, और हममें से कुछ व्यक्ति या समुदाय इतने समर्थ न हो कि वे बगैर किसीकी मददके काम कर सके तो उस सूरतमे हम क्या करें?"

"तब तो" मैंने कहा, "स्वभावत आप लोग उस पार्टीका साथ दे, जो आपको ज्यादासे-ज्यादा फायदा पहुँचाये। मेरी रायमें, ऐसी पार्टी नि सन्देह काग्रेस ही है। अस्पृश्यताको जड-मूलसे उखाड फेकने के लिए वह प्रतिज्ञाबद्ध है। अस्पृश्यता-निवारणके काममे आज जो लोग लगे हुए है उनमे सबसे अधिक सख्या काग्रेस-वालोकी है। पर आपके लिए अच्छा यह होगा कि अगर काग्रेसको अपने पूर्ण स्वतन्त्रताके ध्येयके अनुसार, जिसकी कि स्पष्ट व्याख्या कर दी गई है, कौसिलोके बहिष्कार या सविनय अवज्ञाकी लडाईमे कभी कूदना पडे, तो आप उसमें भाग न ले। यह मै इसलिए कहता हूँ कि ऐसी किसी लडाईके लिए हरिजनोकी बहुत बड़ी सख्या आज मुश्किलसे ही तैयार है। आपका तात्कालिक ध्येय तो यह है कि तथाकथित सनातनी हिन्दू-धर्मके नामपर आपको जो बराबरीका दर्जा नही दे रहे है उसे आप प्राप्त करें। आप तो जैसे एक बिलकुल अलग व्यक्तिके तौरपर पूछ रहे है। लेकिन सब हरिजन आपकी ही तरह तो है नही। आपके लाखो-करोडो हरिजन-भाई न तो आपकी तरह शिक्षित है, न समझदार। अगर आपके प्रति मै सच्चा हूँ, तो मुझे उन करोडो निरक्षर हरिजनोको दृष्टिमें रखकर बात करनी चाहिए, जिनके प्रतिनिधिके रूपमें कौसिलोके हरिजन-सदस्य बोलेगे।"

यही उस बातचीतका आशय है और खूब विचारपूर्वक मैंने इस सम्बन्धमे जो राय कायम की है वह सब इसमे आ जाती है। पाठकोंको यह बात दिलचस्प मालूम होगी कि यही सलाह मैंने हरिजनोको उस वक्त भी दी थी जब मैंने

सविनय अवज्ञाकी पहली लड़ाई छेडी थी, और आश्रमके हरिजनोंपर यह रोक लगा दी थी कि वे न तो लड़ाईमें कोई भाग ले और न आश्रम ही छोड़ें।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २७-६-१९३६

१२२. पत्र: ना० र० मलकानीको

वर्धा

२७ जून, १९३६

प्रिय मलकानी,

मुझे तुम्हारे साथ हार्दिक सहानुभूति है। तुम्हे कुछ समयके लिए रुक्मिणीसे दूर चले जाना चाहिए और [अपने चित्तको आराम देना चाहिए।][1]

मुझे लगता है कि बापाके साथ तुम्हारी खटपटका कारण कुछ हदतक तुम्हारे जीवनमें यह तनावकी स्थिति है।

तुम्हे दिल्ली या दूसरे प्रान्तोके लड़कोके विषयमें चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नही। तुम्हारे पास जितने लड़के है उन्हीको यदि अच्छे और कमाऊ नागरिक बनने का प्रशिक्षण देने में सफल हो सको तो तुम्हारा यश फैलेगा और स्थानाभावके कारण तुमको कितनी ही दरख्वास्तोको ठुकराना पडेगा।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९२२) से।

१२३. पत्रका अंश

२७ जून, १९३६

सेगाँव ही मेरे लिए यूरोप है। सितम्बर तक प्रतीक्षा करना भी कठिन है।[2]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १-७-१९३६

१. चौकोर कोष्ठकमें दिया गया वाक्यांश साधन-सूत्रमें बहुत धुँधला है।

२. कलकत्ताके एक व्यक्तिने पूछा था कि क्या अखबारोंमें प्रकाशित यह खबर सच है कि गांधीजी सितम्बरमें यूरोप-यात्रा पर रवाना होनेवाले हैं?

१२४. पत्र : एक हरिजन-सेवकको[1]

२७ जून, १९३६

मानवीय धर्म और हिन्दु-धर्ममें विरोध नही है। अस्पृश्यता हिन्दु-धर्मका ही व्याधि होने कारण हमारी सेवाकी मर्यादा हिन्दु ही तक होनी चाहिये। मुस्लीम अस्पृश्य-जैसा कोई प्रयोग ही नही हो सकता। आपके सामने जो मुश्केली है वह वहांकी विशेष परिस्थितके कारण हैं। कल जो हरिजन था वह आज ईसाई हो गया। उसकी नोट करने का हमारा कर्तव्य नही है। हमारे नजदीक तो वह हरिजन ही है—जबतक हमसे सहारा पाता है, हा शिक्षितकी वात अलग है। जैसे के कोई कालेजके लिये कुछ मदद लेता है तो धर्म-परिवर्तन करने के बाद उस मददका अधिकारी नही रहता है।

आपका,
मो० क० गांधी

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे; सौजन्य : नारायण देसाई

१२५. बातचीत : एक मित्रसे[2]

[२७ जून, १९३६ के आसपास][3]

यह तो हम सब जानते ही हैं कि ग्राम-जीवन बरसातमें तो खास तौरसे कष्टमय हो जाता है। तो फिर मैं इस बहुमूल्य अनुभवसे ही क्यो न काम शुरू करूँ और तबतक राह देखूँ जबतक कि वहाँकी हालत बेहतर न हो जाये? जबसे मैंने तिमप्पा नायक और उनके मित्रोके अनुभव सुने तभीसे अपने दिलमें किसी गाँवमें जाकर रहने का विचार पाल रहा था और मैं आपको बता दूँ कि अब जब वहाँ रहने लगा हूँ, मुझे एक दिनके लिए भी वहाँसे यहाँ आना अच्छा नही लगता। इस हफ्ते तो मुझे इसलिए यहाँ आना पड़ा कि इस मौसममें कार्य-समितिके तमाम सदस्यो और दूसरे मित्रोंसे सेगाँव आने की आशा करना उचित न होता।

१. पंजाबके।

२. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

३. कार्य-समितिकी बैठकके उल्लेखसे यह स्पष्ट है कि यह बातचीत वर्धामें हुई थी, जहाँ गांधीजी २७ जूनको समितिकी बैठकमें भाग लेने गये थे और एक सप्ताह ठहरे थे।

पर मैं आपको बता दूँ कि यद्यपि मेरा शरीर यहाँ है, पर मन तो मेरा सेगाँवमें ही है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-७-१९३६

१२६. पत्र : गीता बजाजको

सेगाँव, वर्धा
२८ जून, १९३६

चि० गीता,[1]

जैसा तुम्हारा नाम है ऐसा ही तुम्हे रहना है। विधवापन और सधवापन मनमानी चीज है। मरना-जीना किसीके हाथमें नही है। इसलिए शान्त रहो और अपनेको सेवार्पण करो। मैंने तो अभी जमनालालजी से सुना है। मुझे लिखो।

बापुके आशीर्वाद

गांधीजी और राजस्थान, पृ० २०४

१२७. पत्र : मीराबहनको

२९ जून, १९३६

चि० मीरा,

यह एक छोटा-सा प्रेमपत्र-भर है। इसके सिवा मुझे और कुछ नही कहना है कि तुम्हारी तबीयत ठीक हो जाये, इसके लिए भगवान्से प्रार्थना कर रहा हूँ। इस नये अनुभवसे तुम्हे यही शिक्षा लेनी चाहिए कि तुम कोई प्रयोग मत करो।[2]

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३५०) से, सौजन्य मीराबहन। जी० एन० ९८१६ से भी

१. जमनालाल बजाजके भतीजे गिरधारीलाल बजाजकी पत्नी; यह पत्र उसके पतिकी अकाल मृत्यु पर लिखा गया था।

२. मीराबहनने अपनी पुस्तक *बापूज लेटर्स टु मीरा*में लिखा है: "जहाँतक मुझे स्मरण है, गाँववालोंकी सलाहपर मैंने पँवार नामक एक जंगली पौधेकी सब्जी खानेका प्रयोग किया था।"

१२८. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको

वर्धा
२९ जून, १९३६

भाई गांधी,

कार्ड न लिखूं तो पत्र लिखना टलता चला जाये। जिस तरफ आपका ध्यान है, ईश्वर आपको उस तरफ ले ही जायेगा। जबतक आपके प्रयोग सफल नही होते तबतक आपको कोई पूंजी लगानेवाला नही मिलेगा। भंगियोके घरोवाली घटना तो आश्चर्यजनक है।

तुम दोनोको,

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १२६) से। सी० डब्ल्यू० ४७५१ से भी; सौजन्य: पुरुषोत्तम गांधी

१२९. पत्र : बलवन्तसिंहको

२९ जून, १९३६

चि० बलवंतसिंह,

तुमारा खत चाहिये था ऐसा ही मिला। मुनालाल अब तो अच्छा हो जाना चाहिये। घमराहट तो नही है ना? यहा से एक बोटल दूध भेजता हू वह पी सके इतना पी ले। बाकी तुम पीओ या दही बना लो। बोटल वापिस करो, कल भी भेजुंगा।

कुएका समझा। हम शातिसे बैठ रहेंगे, सब अच्छा ही होगा।

काम तो खूब चला रहे हो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८८५) से।

१३०. पत्र : मीराबहनको

३० जून, १९३६

चि० मीरा,

अगर पेट साफ नही होता, तो अण्डीका तेल या 'इपसम' साल्ट क्यो नही लेती? और कोई रेचक ओषधि चाहिए तो भेज सकता हूँ। क्या यहाँसे कोई साग-सब्जी भेजूँ?

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३५१) से, सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९८१७ से भी

१३१. पत्र : प्रभावतीको

वर्धा
३० जून, १९३६

चि० प्रभा,

तेरा पत्र फाड देता हूँ। किन्तु इसमें फाडने-जैसी क्या बात है?

तेरी दिनचर्यामे सोने का समय बहुत ही कम है। रातको नीद जल्दी क्यो नही आती? क्या कोई चिन्ता करती है? राम-नाम जपते हुए सो जाया कर। ऐसा नही लगता कि तू दिनको सोती है। दिनको भी थोडा सोना चाहिए। दूध बढा सके तो अच्छा हो। पटनाके बारेमे समझ गया। क्या पता, जयप्रकाशके साथ रहकर उसकी सेवा करना शायद तेरे नसीबमे ही नही हो। सेगाँवमे मेरे लिए भोजन बलवन्तसिंह और मुन्नालाल बनाते है। ये दोनो वहाँ आग्रहपूर्वक रहने लगे है। भोजन जैसा पहले था, वैसा ही है। जो तू बनाती थी वही। लहसुन, प्याज दोनो लेता हूँ। वजन ११२ है। फिलहाल तो वर्धामें हूँ। शनिवार या रविवारको सेगाँव जाऊँगा। मीरा-बहन वरोडामें है। यह सेगाँवसे डेढ मील दूर है। वह वहाँ अकेली रहती है। मै इस बार जब जाऊँगा तो शायद लीलावती साथ होगी। सेगाँवमें अभी तो मेरा कार्यक्रम चिट्ठियाँ लिखना और जो आये, उनसे मिलना है। मरीज आते है, उन्हे

दवा देता हूँ। जो हो जाये, सो ठीक। वहाँ एक बकरी और गाय रख ली है। गायका दूध मीराबहनके लिए होता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४७७) से।

१३२. पत्र : बलवन्तसिंह और मुन्नालाल जी० शाहको

३० जून, १९३६

चि० बलवंतसिंह और मुन्नालाल,

कीडेके लिये कुछ और दवा पैदा करुंगा। मेरा जी तो वही है।

दूध तो आज भी भेजता हू। उसमे कोई कष्टकी बात तो नही है। कल भी तो स्वेच्छासे हि भेजा था। कंचन[1] अबतक नही मिली है। आज शायद आवेगी।

बापुके आशीर्वाद

[पुनश्च :][2]

जमनालालजी वाले अशका उपयोग तुम अपने लिए करना और वा वाले अश का नानावटी करे। आकाश साफ होने पर बुनाई-घर जल्दीसे पूरा करना। इस बारेमे और क्या कहूँ? जो स्थान रिक्त हो उन्हे भर देना। यहां भी कुछ स्थान खाली तो अवश्य होगे। जो व्यक्ति काम करना चाहता है उसे यह भी सुझाई देना चाहिए कि उसे क्या करना है।

पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ६९९५) से; सौजन्य मुन्नालाल जी० शाह। जी० एन० ८२९९ से भी

१३३. पत्र : मीराबहनको

१ जुलाई, १९३६

चि० मीरा,

तुम्हारी रिपोर्ट अच्छी है। यहाँ वर्षा हो रही है। मैं ५ तारीखको आने की कोशिश करूँगा। पक्की तारीख ६ है।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३५२) से, सौजन्य मीराबहन। जी० एन० ९८१८ से भी

१. मुन्नालाल शाहकी पत्नी।

२. यह अंश पत्रकी दूसरी तरफ गुजरातीमें लिखा हुआ है।

१३४. पत्र : मीराबहनको

वर्धा
२ जुलाई, १९३६

चि० मीरा,

यदि तुम्हारी तबीयत बिलकुल चुस्त हो और दिन सुहावना हो तभी यहाँ आने का प्रयत्न करना, अन्यथा नही। मोहनलाल तुम्हारे लिए भाजी लेने बाजार जा रहा है, यदि मिल गई तो तुम्हे भेज दी जायेगी। यदि पत्रवाहक यहाँसे भाजी न ले जाये तो सेगाँवमे प्राप्त करने का प्रयत्न करना।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३५३) से, सौजन्य मीराबहन। जी० एन० ९८१९ से भी

१३५. पत्र : नारायण स्वामीको

२ जुलाई, १९३६

प्रिय मित्र,

हम लोगोके नन्दी और बंगलोरमें ठहरने का प्रबन्ध करवाने मे आपने जितने मनोयोगसे काम लिया, उसके लिए मै अधिक व्यस्तताके कारण अभीतक आपको धन्यवाद नही दे पाया। राज्यने मेरा और मेरे साथियोका जिस उदारतासे आतिथ्य किया, उसके लिए मै राज्यका तो आभारी हूँ ही, लेकिन साथ ही मै यह भी जानता हूँ कि हम उतनी सुविधापूर्वक रह सके, उसमे आपकी मनोयोगपूर्ण देखरेखका कुछ कम हाथ नही था।

हृदयसे आपका,

नारायण स्वामी
बंगलोर

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य: प्यारेलाल

१३६. पत्र : मुन्नालाल जी० शाहको

२ [जुलाई][1], १९३६

चि० मुन्नालाल,

बलवन्तसिहको बीमार नही पड़ना चाहिए। फिलहाल मीराबहन जो-कुछ कहे, वही करो।

माल कष्ट दे रही है, सो समझ गया। जहाँ कुछ नही कर सकते, वहाँ धीरज ही रखना पड़ेगा। दीवानजी कुछ कर सकें तो देखना। जब मैं आऊँगा तो देखा जायेगा। दूध भेज रहा हूँ। . . .[2]

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

कंचन, हीरामणि,[3] और भाई[4] आज मुझसे मिलने आये थे।

श्रीयुत मुन्नालाल
सेगाँव

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८६०२) से। सी० डब्ल्यू० ६९९४ से भी; सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह

१३७. सन्देश : 'इंडियन ओपिनियन' को

२ जुलाई, १९३६

सम्पादक महोदयने 'इडियन ओपिनियन' के दीवाली-अकके लिए सदेश माँगा है। जिसके हृदयमें होली जल रही हो, उसे दीवाली सूझ ही कैसे सकती है? इस कंगाल देशमे, जहाँ करोड़ो जीवित मुर्दोकी आहे कानमे गूँजती रहती हो, दीवाली कैसे मनाई जा सकती है? इसीलिए 'इंडियन ओपिनियन' के पाठकोसे मैं तो यही

१. साधन-सूत्रमें 'जून' पढ़ा हुआ है। यह भूलसे हुआ होगा। स्पष्ट है कि पत्र इन्हींको लिखे गये ३०'जूनके पत्रके बाद लिखा गया था। देखिए "पत्र : बलवन्तसिंह और मुन्नालाल जी० शाहको", ३०-६-१९३६।

२. यहाँ साधन-सूत्र फटा हुआ है।

३. मुन्नालाल शाहकी भतीजी।

४. मुन्नालाल शाहके भाई।

कह सकता हूँ कि दीवाली मनाना चाहे तो मनाइए, किन्तु हिन्दुस्तानके अस्थि-पंजरोको न भूले और उनके लिए कुछ निकाल कर अलग रखिए।

मो० क० गांधी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८५३) से।

१३८. पत्र : मीराबहनको

वर्धा
३ जुलाई, १९३६

चि० मीरा,

आशा है, तुम्हे सेगाँवमे हर चीज सुव्यवस्थित मिली होगी। मै रविवारको सेगाँव पहुँचने का जी-तोड प्रयत्न कर रहा हूँ। हाँ, मैने श्रीमती सेंगरका भाषण पढा। अधिकतर नेता जा चुके है। इतना समय काफी चिन्ताका रहा।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३५४) से, सौजन्य मीराबहन। जी० एन० ९८२० से भी

१३९. पत्र : सुभाषचन्द्र बोसको

३ जुलाई, १९३६

प्रिय सुभाष,

मुझे तुम्हारा पत्र अभी-अभी मिला है। आशा करता हूँ कि तुम जब भी पत्र लिखोगे, मै उसका अवश्य उत्तर दे सकूंगा। मै जानता हूँ कि कैदियो या नजरबन्दोके लिए मित्रोके पत्र पाना क्या महत्त्व रखता है।[1]

मै महादेवसे कह रहा हूँ कि वह तुमको प्रति सप्ताह 'हरिजन' भिजवाने की व्यवस्था कर दे।

यदि इससे कोई लाभ हो तो बेशक तुम अधिकारियोको सूचित कर दो कि अराजनैतिक विषयोपर जो-कुछ भी मत तुम व्यक्त करोगे, उन्हे छापनेकी मेरी कोई इच्छा नही है, जबतक कि इसकी अनुमति न मिले।

सप्रेम,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य नारायण देसाई

१. सुभाषचन्द्र बोस इस समय दार्जिलिंग जेलमें थे।

१४०. पत्र : मुन्नालाल जी० शाहको

३ जुलाई, १९३६

चि० मुन्नालाल,

यथारीति दूध भेज रहा हूँ। साथमें गधक और फ्लिटका पप तथा फ्लिटकी शीशी भी है। गन्धकका उपयोग, जब मैं आऊँगा, तब करेंगे। फ्लिटका उपयोग तुरन्त करना। दिनमें दो-तीन बार नसैनीसे या पटिया रखकर छप्परपर चढ़कर पंपसे दवा छिड़कना। दवा चुक जाये तब शीशी वापस भेज देना; भरवा कर भिजवा दूंगा।

वा नहीं आयेगी; लीलावती आयेगी। मैं शायद रविवारको आऊँगा, यदि बरसात न हुई तो। आगे ईश्वरेच्छा।

महारके विषयमें मैं समझ गया। मजदूर आने लगे या नहीं?

तुम दोनोको,

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८६००)से। सी० डब्ल्यू० ६९९६ से भी; सौजन्य: मुन्नालाल जी० शाह

१४१. खादी पहननेवालों से

बिहारसे एक सज्जनने एक लम्बा पत्र भेजा है, जिसके दो हिस्से नीचे दिये जा रहे हैं:[1]

> मुझे आपसे एक शिकायत है। मैं आदतन खादी पहननेवाला हूँ। खादीकी बिलकुल शुरुआतसे ही मैं बराबर खादी ही पहन रहा हूँ।... अपनी गरीबीके कारण अगर कभी मुझे मजबूरन खादी छोड़नी पड़ी, तो मुझे बहुत दुःख होगा। लेकिन इस समय उसके दामोंमें अचानक जो बहुत ज्यादा वृद्धि हो गई है, मुझे भय है, उससे कहीं मुझे ऐसा ही न करना पड़े।... इससे, मुझे लगता है, खादी-आन्दोलन ही खत्म हो जायेगा।

१. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये हैं।

मुझे बताया गया है कि आप गरीब कतैयोंको अधिक मजदूरी देना चाहते हैं। . . . लेकिन किसकी जेबसे? . . . गरीब खद्दरधारी जिस आदर्श पर जमे रहे हैं और जिसके लिए बहादुरीसे लड़े हैं उसे अगर उन्हें मजबूरन छोड़ना पड़ा तो यह उन बेचारोंके लिए निश्चय ही मौतके समान होगा। . . . इस समय तो आपका ऐसा निर्णय बड़ी भारी गलती है। मुझे भय है कि ऐसा करके आप इस आन्दोलनकी सुन्दर ढंगसे अन्त्येष्टि ही करना चाहते हैं।

संयुक्त प्रान्तसे आये हुए एक पत्रमें लिखा है:[1]

. . . पण्डित जवाहरलाल नेहरूने खादीकी उपयोगिता, आवश्यकता और महत्ताको इतना कम करके बताया है कि बहुत-से पक्के खादीधारी भी दुविधामें पड़ गये हैं, और जिनका विश्वास पहले ही कमजोर था उन्हें तो पण्डितजी की बातोंमें एक सुरक्षित आड़ मिल गई है। कांग्रेसने भी खादीके व्यवहारकी सख्तीको ढीला कर दिया है और आप अपने संकल्पपूर्ण मौनमें ही सन्तोष पा रहे मालूम पड़ते हैं। क्या आप हमारा पथ-प्रदर्शन करेंगे और यह बतायेंगे कि इस स्थितिमें हमें क्या करना चाहिए? दूसरी कठिनाई अखिल भारतीय चरखा संघके सबब से है, जो कि इस समय खादीकी आपूर्ति करानेवाली संस्था है। वर्तमान परिस्थितियोंमें खादी महँगीसे-महँगी होती जा रही है और इसकी आपूर्ति कमसे-कम। स्वतन्त्र और व्यक्तिगत रूपसे खादी तैयार करानेवालोंके लिए इतनी बन्दिशें लगा दी गई हैं कि उनके लिए एक गज भी खादी तैयार कराना लगभग असम्भव ही हो गया है। सबसे पहले तो उनपर लागू होनेवाले नियम और प्रतिबन्ध ही नामुनासिब मालूम पड़ते हैं। दूसरे, उनपर अमल करना लगभग नामुमकिन है। और तीसरे, जिस भावनासे शायद आपने उन्हें रखा होगा उसके विपरीत बड़े आपत्तिजनक ढंगसे उन्हें लागू किया जाता है। . . . भला निजी तौरपर खादी तैयार करानेवालों पर लगाये गये उन प्रतिबन्धोंको आप किस तरह उचित ठहरा सकते हैं, जिनके कारण उन लोगोंको खादी-उत्पादनका अपना काम ही बन्द कर देना पड़ा है?

इसी तरहकी शिकायत मध्य प्रान्तके राष्ट्रीय बालचरोंने भी की है। लेकिन पण्डित जवाहरलाल नेहरूने यह स्पष्ट कर दिया है कि उनकी बातका गलत अर्थ लगाया गया था और इस सम्बन्धमें अखबारोंमें छपी हुई रिपोर्ट भ्रामक है।[2] खादीमें विश्वास रखनेवाले अन्य अनेक लोगोंकी तरह उनका भी यह विश्वास है कि जबतक देशको आजादी हासिल न हो जाये तबतक खादी बहुत जरूरी है।

१. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये हैं।

२. देखिए "झूठ-मूठका डर", ६-६-१९३६।

आर्थिक दृष्टिसे खादीमें उन्हें जो सन्देह है उसकी गुंजाइश तभी है जब कि आजादी हासिल हो जाये और देश व्यापक रूपसे औद्योगीकरणमें प्रवृत्त हो जाये। और यह निश्चय है कि कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति खादीको इस भयसे अभीसे नही छोड़ देगा कि उद्योगवादके आनेपर—जो सुदूर भविष्यमें आयेगा भी या नही, यह अभी नही कहा जा सकता—यह दब जायेगी। निजी तौरपर खादी तैयार करनेवालो पर जो प्रतिबन्ध लगाये गये है वे कारीगरो, खासकर कतैयोके साथ खरीदारोके हितका भी खयाल करके ही लगाये गये है। अगर उन्हे हटा दिया जाये तो बाजार नकली खादीसे भर जायेगा, जिसके फलस्वरूप कतैयोंको अपने रोजगारसे हाथ धोना पडेगा और खरीदारोके साथ धोखेबाजी होगी। हाँ, नियमोके अमलमे अगर कोई अनियमितता हो तो उस ओर तुरन्त मन्त्रीका ध्यान आकर्षित करना चाहिए। फिर तो उसे अविलम्ब ठीक कर दिया जायेगा।

दामोकी वृद्धि ही ऐसा प्रश्न है जिसका सन्तोषजनक उत्तर मिलना चाहिए। लेकिन यह याद रहे कि जब खादी आजसे आधी भी अच्छी नही थी और न इतनी किस्में ही उसमे थी, उस समय वह नयी दरोकी बनिस्बत कही ज्यादा महँगी थी और उस समय इसके दामोकी किसीने शिकायत नही की थी। इन तमाम वर्षोमे खरीदार लोग तो बराबर फायदा उठाते रहे है, लेकिन कतैयोको वेतन-वृद्धिके रूपमें अभीतक कोई लाभ नही हुआ है। वे बेचारे मूक और असहाय है। चरखा सघके खिलाफ वे हडतालका ऐलान नही कर सकते। वे इतने बिखरे हुए है कि मजदूरी बढ़वाने या अन्य किसी बातके लिए वे सामूहिक रूपसे उठ ही नही सकते। उन्हे तो पाइयो तककी इतनी जरूरत है कि प्रभावकारी रूपमे वे कोई विरोध ही नही कर सकते। उनकी इतनी कम मजदूरी देखकर अब अगर हममें से कुछकी आत्मा विद्रोह करने लगी है तो इसमें हमे उन खरीदारोकी मदद ही मिलनी चाहिए जो अभीतक कम दामोका लाभ उठाते रहे है। गरीब खरीदारोको कठिनाई होती है, यह तो ठीक है। लेकिन खादीका महत्त्व तो उसके सामाजिक और नैतिक मूल्यमे ही है। खादीके खरीदार अगर खादीके फलितार्थोको समझ ले तो यह समझाकर बता देनेपर, जैसाकि वर्तमान उदाहरणमे बताया जा सकता है, कि कतैयोकी मजदूरी बढाने के कारण ही खादीके दाम बढ़े है, वे खादीके महँगी होने की शिकायत नही करेंगे। खादी खरीदने में उन्हे जो ज्यादा खर्च करना पड़ेगा, अगर वे चाहे तो उसकी पूर्तिके लिए वे अनेक उपाय खोज निकाले। लेकिन यह होगा तभी जब वे सन्देहोको छोडकर इस बातका निश्चय कर लेगे कि जबतक हम हिन्दुस्तानमें है तबतक खादीके सिवा और किसी कपडेका इस्तेमाल नही करेगे। इसमें अगर उन्होने छूटकी कोई गुंजाइश रखी तो आवश्यकताके नामपर वे उस छूटका उपयोग करने लगेंगे। यह याद रहे कि आविष्कार प्रायः आवश्यकतासे ही होता है। उपर्युक्त पत्र-प्रेषकोने अगर यह निश्चय कर लिया होता कि हमारे लिए तो खादीके सिवा और कोई कपड़ा ही नही है, तो वे इस प्रकार नही लिखते। बल्कि तब उन अनेक लोगोकी तरह, जिनकी आर्थिक दशा उनसे किसी भी तरह बेहतर नही है, वे भी खादीके दामोमे हुई थोडी-सी वृद्धिको सह लेते।

लेकिन, इन पत्र-प्रेषकोको इसके साथ ही मैं यह विश्वास भी करा देना चाहता हूँ कि गरीब खादी-प्रेमियोका खयाल करके दामोमे यथासम्भव थोडीसे-थोडी वृद्धि करने की पूरी सावधानी बरती गई है। साथ ही, मैं उनसे कहूँगा कि कतैयोकी मजदूरीमे यह थोड़ी-सी वृद्धि करने के इस नये प्रयोगमे कैसी भारी सफलता मिल रही है, इस बारेमें वे राजेन्द्र बाबू और तमिलनाडु चरखा सघके मन्त्रीके विवरण भी अवश्य देखें। खादी-प्रेमी धीरजसे काम ले तो वे देखेंगे कि जहाँ खादीके दामोमें थोडी-सी वृद्धि हुई है, वहाँ उसके साथ-साथ खादीकी किस्म तथा उसके टिकाऊपनमें भी उतनी ही उन्नति हुई है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ४-७-१९३६

१४२. कन्या-वध

आज भी इस हतभाग्य देशमे कन्या-वध-जैसी निर्दय, अमानुषी प्रथा चल रही है, यह मानने मे कष्ट होता है। लेकिन जो पत्र मेरे सामने पडा है वह मुझे यह मानने को मजबूर करता है। बिहार, जिला भागलपुरके देहात अमरपुरमें राजपूत-कन्या वध-विरोधिनी सभा स्थापित हुई है। इस बारेमे सभा-मन्त्रीने एक दु:खजनक खत लिखा है। उसमे से नीचे थोड़े फिक्रे दिये जाते है।

> भगवान् बुद्धने बकरोकी रक्षाके लिए अपने प्राणोंकी बाजी लगा दी थी। आज उन्हीं की सन्तान अपनी सद्यःप्रसूता कन्याको मारने में लगी हुई है। मनुष्यताको कलंकित करनेवाली एक कुप्रथा हम राजपूतोंमें ही है। ऐसे भी घर हैं जहाँ एक दारोगा, एक तहसीलदार तथा पढ़े-लिखे युवक हैं। आज ५० वर्षोंसे उनके घर एक भी कन्या नहीं रखी गई। जरा उस दृश्यकी कल्पना करें, जब बच्ची पैदा होते ही माँ उससे अलग हो जाती है। दूध नहीं दिया जाता है, बच्ची दम घुटकर मर जाती है। यों नहीं मरी तो नमक चटाकर अथवा तम्बाकू खिलाकर मार दी जाती है। सबसे सरल तरीका तो यह है कि उसके मुँह-नाक पर मांसका लोथा रख दिया जाता है। कैसा घृणित तरीका है। बकरेको तो हथियारसे मारते हैं, लेकिन निःसहाय, मुँहसे भी आवाज नहीं निकालनेवाली बच्चीको दम घुटाकर मारना — कितना अनर्थ है।
>
> पंजाबके जाट राजपूतों और जाट सिखोंमें यह कुप्रथा थी। पंजाब-कौंसिल में उसे रोकने के लिए खास कानून बनवाया गया। पर हमारे यहाँ लोग संकोच करते हैं।

धर्म तो सिखाता ही है कि जीव-मात्र अन्तमे एक ही है। अनेकता क्षणिक होने के कारण आभास-मात्र है। लेकिन राष्ट्रभावना भी हमें यही पाठ देती है। हम

अपनेको राजपूत इत्यादि नही मानते है; न विहारी, पजावी इत्यादि। हम अपनेको हिन्दुस्तानी मानते है और एक ही राष्ट्र मानते और मनाते है। इसलिए धर्म-दृष्टि या राष्ट्र-दृष्टिसे हम एक है और एकके दोषकी जिम्मेदारी हम सवपर आती है। इस न्यायसे इस राजपूत-कन्या-वधके लिए हम सब, राजपूत हो या कुछ भी हो, जिम्मेदार है। एक-दूसरेके दोष, एक-दूसरेकी आपत्तिके लिए हम उदासीन न रहते तो कन्या-वध आजतक निभ नहीं सकता था। इसमें न धर्मका बहाना है, न कोई आवश्यकताका। कोई एक युग होगा कि जब राजपूत-जीवन अनिश्चित होने के कारण कन्या-जन्म आपत्ति माना जाता होगा; आज तो यह बहाना रहा ही नही है। दूसरोकी अपेक्षा राजपूत-जीवन अधिक अनिश्चित है, ऐसा नही कहा जा सकता है। राजपूतोके सिर पर आज युद्धका बोझ नही रहा है। आज राजपूतको अपनी तलवार साथमे रखकर सोना नही पडता है। राजपूत कौम भले ही हो, राजपूत धर्म-जैसी कोई वस्तु नही रही। फिर कन्या-वध क्यो? कन्याका बोझ क्यो? वोझ तो उन लोगोपर अवश्य पडता है जो अपनी कन्याके लिए पति खरीदते है और दम निकल जाये इतना दाम देना पडता है। ईश्वरकी कृपा है कि वे अपनी कन्याका वध करने तक नही पहुँचे है। मुझे नही पता कि आज राजपूत-कन्या-वधके लिए कोई बहाना बताया जाता है क्या? अगर ऐसा कोई बहाना है, तो नई सभाका इसपर प्रकाश डालना कर्त्तव्य है।

लेकिन बहाना हो भी सही, उसे दूर करना धर्म होगा। कोई बहाना इस राक्षसी प्रथाको कायम करने मे कभी मान्य नही हो सकता है। लोकमतको सगठित करके शीघ्र ही इस प्रथाको मिटाना चाहिए। सगठन करने का बोझ राजपूत-कन्या वध-विरोधिनी सभा पर ही हो सकता है। लम्बे व्याख्यानोसे प्रयत्न सफल नही होगा, न प्रस्तावोसे ही होगा। इन दोनोकी थोडी आवश्यकता रहेगी। पर अत्यावश्यक वस्तु तो इस बारेमें सविस्तर हकीकत है। ऐसा नकशा बनाना चाहिए जिसको देखने से ही क्षणमें पता चल जाये कि कहाँ-कहाँ कन्या-वध होता है, गत वर्षमे कितनी वालिकाओंका वध हुआ। वधकी सख्या निकालना कठिन होगा, असम्भव भी हो सकता है। बात यह है कि जितनी खवर मिल सके सब इकट्ठी करनी चाहिए और प्रत्येक घरमे जहाँ कन्या-वधकी सम्भावना भी हो, सभाका सन्देश पहुँचना चाहिए। सिर्फ अखवारोमे प्रस्तावादि भेजने का कोई असर, जो माँ-बाप कन्या-वध कर रहे है, उनपर नही पडेगा। सभाके कार्यकर्त्ताओको यह भी याद रखना आवश्यक है कि वे किसी प्रकारकी अतिशयोक्ति न करे। अविश्रान्त, सच्चे और शात प्रयत्नसे इस कार्यमें शीघ्र सफलता मिल सकती है, ऐसा मेरा अभिप्राय और विश्वास है।

हरिजन-सेवक, ४-७-१९३६

१४३. पत्र : मीराबहनको

वर्धा
४ जुलाई, १९३६

चि० मीरा,

मैं अभी भी कल आने की आशा रखता हूँ। इस समय अब और नहीं। मैं एक मीटिंगमें बैठा हूँ।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३५५) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९८२१ से भी।

१४४. पत्र : मुन्नालाल जी० शाहको

४ जुलाई, १९३६

चि० मुन्नालाल,

दूध और फिल्ट भेज रहा हूँ। कल पहुँच जाने की आशा रखता हूँ। महारसे सम्बन्धित समस्या तभी समझूँगा।

तुम दोनोंको,

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५९९) से। सी० डब्ल्यू० ६९९७ से भी; सौजन्य: मुन्नालाल जी० शाह

१४५. पत्र : कनु गांधीको

४ जुलाई, १९३६

चि० कनु,

काम आधा ही हुआ है। तूने सात आने कहा था, इसलिए मैंने गोविन्दसे उतना ही कहा। उसने चार तो दे दिये, तीन अब देगा। ये पैसे मैं वहाँ भेज दूँगा। उसे खर्च-खातेमें लिख लेना और यहाँ से मिल जानेपर जमामें लिख लेना।

रामजीलाल अपने खाने का खर्च देता है, इसलिए वह भोजन करना चाहे तो करे।

फ्लिटके डब्बेकी बात छोड। मैं उसे यहाँके हिसाबमें लिख लूँगा।

'रामायण' का समय बदला जा सकता है। मेरे पहुँचने पर तो जो है वही रखना है। . . .[1] खाते है, जिनमें सबकी सुविधा सधेगी।

एक सँड़सी मेरे ही काममें लाई जाती थी; वह भेज देना। और तवा भी। कुकरके अन्दरका बर्तन भी जुड़कर आ गया हो तो वह भी। वहाँ मराठी अखबार आता है। उसके एक-दो अंक भेज देना। मुझे बर्फ चाहिए। साधारण कागजका एक पैड मुन्नालालके लिए। इसके साथ कृष्णदास, काका, शंभुदयालके लिए . . .[2] [पत्र] है।

तेरी मानसिक स्थिति अच्छी होगी।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

जब यह पत्र पहुँचे तब अगर महादेव वहाँ हो तो उन्हें बता देना कि मुझे फल नहीं चाहिए।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२१) से।

१ और २. साधन-सूत्रमें यह अंश धुँधला पड़ गया है।

१४६. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

४ जुलाई, १९३६

भाई घनश्यामदास,

मैंने म्यूझीयमके बारेमें लिखने का महादेवको नही कहा था। मैंने तो अन्य मकानोके बारेमें लिखने का कहा था। तुमको याद होगा कि जब मेरी हाजतोकी मैं बात करता था तब मैंने कहा था कि मुझे दूसरे मकान बनाने के लिये एक लाखकी आवश्यकता बताई थी। बादमें उन मकानोमें जो विद्यालय बना है उसका भी मैंने समावेश किया था। यद्यपि एक लाखकी वातके समय विद्यालय मैंने अलग रखा था, क्योकि विद्यालयके अलावा एक लाखके मकान बनाने का मैंने सोचा था। लेकिन विद्यालयने काफी पैसे खाये, इतना द्रव्य सघके भण्डारमें नही है। मेरी कुछ समज थी कि तुमने इस एक लाखमें से कुछ तो बछराज कं० में भेज दिये थे। अब पता चला है कि वहाँ इस बारेमें कुछ पैसे जमा नही हुए है। इसलिये मैंने त्रिवेंद्रम तुमको एक पत्र[1] भेजा था। यह पत्र शायद नही मिला होगा। अब इस एक लाखमें से कुछ रकम अब निकल सकती है तो निकाली जाये।

डा० मुजेको मैंने लिखा है,[2] उसकी नकल मिली होगी। पारनेरकरके साथ क्या तय हूआ?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ८०२०) से, सौजन्य : घनश्यामदास बिडला

१४७. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
६ जुलाई, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

मैं कल शामको सेगाँव लौट आया और अब तो मैं पत्रोको निपटा सकता हूँ।

भला सड़सठ वर्षका युवक अनुभवके आधारपर कैसे कहे कि पुरुष लोग (स्त्रियोके विषयमे तो मुझे कुछ कहने ही नही दिया जायेगा) बुढापेमें जिद्दी हो जाते है या नही?

१ और २. उपलब्ध नहीं हैं।

हाँ, जब मूर्खारानी मालवीयजी की सेवामें लगी हुई है उस समय यदि वह पत्रो द्वारा मुझसे बात न करे तो मै खुशीसे इतना त्याग सह लूँगा। मालवीयजी को दूसरोका खयाल रखनेवाले तुम-जैसे श्रोताओकी आवश्यकता है। कितना अच्छा हो, यदि वे एक वर्ष तक आराम करे! परन्तु वे नही करेंगे। वे तो काम करते हुए ही प्राण-त्याग करेंगे। भगवान् उनपर कृपा रखे। फिर भी उनके शरीर और मस्तिष्क, दोनोको आरामकी जरूरत है, और इस समय उनका आराम करने से इनकार करना धर्मसे हटने-जैसा है। तुम्हे और मुझे उनकी नकल हर्गिज नही करनी चाहिए, हालांकि तुममे भी उन्ही के समान हमेशा शक्तिसे बाहर काम करने की प्रवृत्ति है।

यदि मुझे पक्का पता चले कि तुम बेजवाडामे कब और कितने घटे रुकोगी तो तुम्हारे लिए वहाँका कुछ काम निकाल बताऊँगा।

अपने बेचारे गलेको कुछ विश्राम देने के लिए मौन-व्रत धारण करो। तुम्हे पता है कि एक विशेषज्ञने जवाहरलाल से सप्ताह-भर पूर्ण-मौन रखने को कहा है, और बताया है कि ऐसा नही करने पर उसका शरीर बिलकुल जवाब दे देगा? धीमेसे बोलने की भी मनाही है। क्या तुम कहा मानोगी? या किसीकी न सुननेवाली वही मूर्ख हठीली राजकुमारी बनोगी? अपने आने की निश्चित तिथि लिख भेजना। मीरा अपनी कुटियामे सुखी है। उसकी ग्राम्य वृत्तिपर मै मुग्ध हूँ।

सप्रेम,

तानाशाह

[पुनश्च]

साथका पत्र[1] मालवीयजी के लिए है।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५८१) से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६३९० से भी

१४८. पत्र : एफ० मेरी बारको

६ जुलाई, १९३६

चि० मेरी,

यह पत्र लौटती डाकसे भेज रहा हूँ। इसमें कोई हर्ज नही कि तुम मतदाताओकी सूचीमें अपना नाम दर्ज करवा लो।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०६५) से। सी० डब्ल्यू० ३३९५ से भी; सौजन्य: एफ० मेरी बार

१. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

१४९. पत्र : हे० सॉ० लि० पोलकको

६ जुलाई, १९३६

प्रिय हेनरी,

प्रत्र-वाहक जमनालालजी का ज्येष्ठ पुत्र कमलनयन वजाज है। ग्रेट ब्रिटेनके साथ चाहे हम कितना ही सघर्ष करें, लन्दन तो हमारे लिए दिनपर-दिन मक्का या काशी वनता जा रहा है। कमलनयन इसका अपवाद नहीं है। उसको मैंने लन्दन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्सका एक पाठ्यक्रम पूरा कर लेने की सलाह दी है। तुम सम्भवत प्रोफेसर लास्कीसे उसका सम्पर्क करवा सको। आशा है, कमल नयनका मार्ग-दर्शन करने मे उन्हे कोई एतराज नही होगा। म्यूरियलने उसकी देखरेखका जिम्मा लिया है।

कुछ समय पूर्व तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ था। इस पत्रको उसकी प्राप्ति-सूचना भी समझो। मैं देहाती वनने का प्रयास कर रहा हूँ। जहाँसे मैं यह पत्र लिख रहा हूँ, उसकी जने-सख्या है ६००। न कोई सडक है, न डाकघर, न कोई दुकान।

तुम सवको प्यार।

भाई

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०५३) से।

१५०. पत्र : कमलनयन बजाजको

६ जुलाई, १९३६

चि० कमलनयन,

इसके साथ तीन पत्र भेजता हूँ। ये तीस का काम करेंगे। वुडब्रुक बर्मिंघममें है। वह अच्छी सस्था है। इन लागोसे जल्दी सम्पर्क करना। यह लिखते-लिखते लगा कि प्रोफेसर होरेस अलेक्जैंडरको भी लिखूँ, अर्थात् चार पत्र[1] हो गये। वे वुडब्रुकके हैं। मुझे नियमित रूपसे लिखना। सुनना सबकी लेकिन करना अपने मनकी —और, तुमसे जो आशाएँ बँधती जाती है, उनके अनुसार ही। वहाँके प्रलोभनोकी सीमा नही है। अपना नाम शोभित करना और कमलके गुण याद करके उसीके समान कीचडमें रहकर भी अलिप्त रहना। इससे सब-कुछ कुशल ही होगा। अपनी शक्तिके अनुसार ही डुबकियाँ लगाना। किसीकी प्रतिस्पर्धा मत करना। प्रत्येक क्षणका

१. इनमें से केवल दो ही प्राप्त हैं। देखिए पिछला और अगला शीर्षक।

सदुपयोग करोगे तो तुम्हारी शक्तियाँ जितनी विकसित होनी होंगी, हो जायेंगी। 'रामायण' और 'गीता' का गहरा अभ्यास करना। रोज अध्ययन करना। मूल 'गीता' तो पढोगे ही, लेकिन एडविन आर्नेल्डका 'साग सिलेस्टियल' भी पास रखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०५२) से।

१५१. पत्र : होरेस अलेक्जेंडरको

६ जुलाई, १९३६

प्रिय होरेस,

पत्र-वाहक जमनालालजी का ज्येष्ठ पुत्र कमलनयन बजाज है। मैंने उसे लन्दन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्समें दाखिला लेने की सलाह दी है। परन्तु तुम इससे कुछ बेहतर सोच सको तो अवश्य उसे सलाह देना। जो-कुछ भी हो, मैंने उसे वुडब्रुक विचार-धारावालोसे[1] सम्पर्क स्थापित करने को कहा है। और शेष तुमपर छोड़ देता हूँ।

तुम्हें, ऑलिव तथा अन्य सब मित्रोको मेरा प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४२५) से।

१५२. पत्र : अमतुस्सलामको

६ जुलाई, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

तेरा तार और दो पत्र मिले। सरस्वतीके बारेमें कान्तिने जो सुझाया था मैंने वही किया। तू मिलकर लौट सकती थी। इसलिए कान्तिके कहने से मैंने तार कर दिया था — वैसे यह आशंका तो थी ही कि तू आ नही सकेगी। अब तो जब सरस्वती लौटकर आये तभी देखेंगे।

तू महिलाश्रमके बारेमें जो लिखती है, वह बिलकुल ठीक नही है। वह रोज बढ़ रहा है। लडकियोको वापस कर देना पडता है। राजकिशोरी नही रह सकी,

१. क्वेकर सम्प्रदायके सदस्य।

इसलिए सरस्वती भी नही रह सकती, ऐसा कहना ठीक नही है। सरस्वतीके न रहने का कारण अलग ही था। मुझे सारा विवरण लिखने का समय नही है।

छुट्टियोमें तू ऑपरेशन करा लेने की सोचती है, यह बात मुझे पसन्द आई। अधिक वियोगी हरि बतायेंगे। कान्ति और सरस्वती कल त्रिवेन्द्रमके लिए रवाना हो गये। लीलावती मेरे साथ है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३३९) से।

१५३. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

६ जुलाई, १९३६

चि० नरहरि,

तुम्हारे साथ जो एक बात कर लेनी थी, उसे करना भूल गया। नीमुकी इच्छा वहाँ आकर रहने की है। उसे यहाँ पढ़ने का समय नही मिलता। इसके सिवा, वहाँ रहेगी तो सुमित्रा उसकी नजरके सामने रहेगी। वह खुद अंग्रेजी, गणित, इतिहास और भूगोल (गुजराती माध्यमसे) तथा संगीतमें सितार बजाना तथा गाना अच्छी तरह सीख लेना चाहती है। उसे लगता है, ये सब विषय वह विद्यापीठमें सीख सकती है। यदि उसके वहाँ रहने से कोई और अडचन न दिखे तो उसे भेज दूँ।

उसे अपनी रसोई अलग बनानी होगी। किराया आदि तो नियमसे देगी ही। एक घंटा हरिजन-सेवामें लगायेगी। वह सिलाई, संगीत (साधारण) और गुजराती (साधारण) सिखा सकती है। यह बात तुम्हे मेरा विचार करके स्वीकार नही करनी है। सहज ही उसकी इच्छा पूरी कर सकूँ तो मुझे अच्छा लगेगा, इसलिए पूछ रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९०९५) से।

१५४. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

६ जुलाई, १९३६

बापा,

मैं वर्धामें सिर नही उठा पाता। पत्रोको पढ़नेतक का समय नही मिलता। पढ लूँ तो उत्तर नही दे पाता। सक्षेपमें कहना यह है कि अब ज्यादा जीना है तो रात देरतक या सवेरे तड़के उठकर काम नही कर सकता।

जो विषय तुमने सुझाये है उनपर चर्चा करने के लिए बैठक जरूर बुला लो। [उसमे मेरे शामिल होने के सम्बन्धमें] जमनालालजी की अनुमति ले लेना। मै १० से १२ अगस्तके बीच व्यस्त रहूँगा।

चदेसे सम्बन्धित बात समझ गया। बम्बईमे हार माननी पडी, यह आश्चर्य ही है। सभी जगह काममें कटौती करनी पडेगी, मुझे ऐसा नही लगता। लेकिन सभी प्रान्तोको स्वावलम्बी तो होना ही चाहिए।

कोडम्बकममे सशर्त सरकारी मदद लेने मे मुझे तो सस्थाका नाश ही दिखाई देता है। मैंने तो बड़े सबल कारण रावबहादुरके सामने रखे थे और यह समझा था कि वे बाते उनके गले भी उतर गई है। देखता हूँ, मुझे गलतफहमी हुई थी। मुख्य कारण तो यह है कि अगर इतनी छोटी-सी सस्थाके लिए हिन्दुओसे पैसा इकट्ठा नही किया जा सके तो सघ या हिन्दू-समाज उसे चलाने का श्रेय नही ले सकता। अगर कहो कि हमे कामसे काम है, फिर वह चाहे जिस पद्धतिसे सधे तो मै हार गया। लेकिन हारकर भी मै यही कहूँगा कि सघके जन्मकी बात सोचे तो हमारा आदर्श इतना तो होना ही चाहिए कि जिस बोझमे हिन्दू-समाज हाथ न बँटाये, वह बोझ सघ अपने ऊपर न ले। शेष सारी बात पद्धतिकी रह जाती है। यदि इसे सरकारी मददसे चलाना रुचिकर हो तो समिति उसे संघसे अलग करके क्यो नही चलाती? मुझे तो सघकी नीव मजबूत रखना ही अच्छा लगता है। लेकिन मेरी बुद्धिकी दौड तो सेगाँवकी हदतक ही है। इसलिए मेरी बात सुनकर समिति जो-कुछ तय करे, सो सही।

मेरा मलाया या उसे तुम जो कुछ कहो, सो कमसे-कम फिलहाल सेगाँव ही है। अगर ईश्वर मुझे यहाँ तीन ऋतुएँ बिता लेने दे तो यह उसका मुझपर बहुत बड़ा उपकार होगा। किन्तु उसके पास किसकी सिफारिश चलती है?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११६३) से।

१५५. पत्र : के० नटराजनको

वर्धा

७ जुलाई, १९३६

महादेवने अभी तुम्हारा पत्र भेजा है। तुमने मुझे 'यूनिटी' पत्रिका का जो सम्पादकीय लेख भेजा है वह तो असाधारण है। मेरे नाम जो विचार मढे गये है और उद्धरण-चिह्नोंमें पेश किये गये है, वे मैंने कभी मुँहसे निकाले ही नही;[1] और इससे भी बडी बात तो यह है कि मेरे कभी ऐसे विचार रहे ही नही। और जवाहरलालके मुँह से मैंने जो-कुछ सुना है उससे मुझे कभी यह सन्देह तक नही हुआ है कि वह भारतकी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए हिंसाके उपयोगकी बात भी सोच रहा है।[2] आश्चर्य है कि डॉक्टर होम्स कैसे धोखेमें आकर समझ बैठे कि मैंने कभी ऐसी बाते कही होगी। इस पत्रका तुम इच्छानुसार उपयोग कर सकते हो और उचित समझो तो समय बचाने के लिए यही पत्र डॉ० होम्सको भेज सकते हो।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य . नारायण देसाई

१५६. पत्र : खुर्शेदबहन नौरोजीको

७ जुलाई, १९३६

तुमने जो कहा है वह एक शाश्वत सत्य है। परन्तु तुम्हारे पिछले पत्रमें एक स्पष्ट शिकायत थी, और यह शिकायत करने का तुम्हे पूर्ण अधिकार था, बल्कि वैसा करना तुम्हारा कर्त्तव्य था। क्या तुम्हारा मेरे प्रति कर्त्तव्य नही कि मुझे दोषियोंके नाम और उनके दोष बताओ? आखिरकार शाश्वत सत्योको ध्यानमे रखकर बारीकियोका विचार करनेपर ही हम उन सत्योतक पहुँच सकते। कमसे-कम मुझे तो जो-कुछ सत्यकी झाँकियाँ मिली है वे पूर्णत. नही तो मुख्यत उस महत्तम उद्देश्यको सामने रखते हुए छोटी-छोटी बारीकियोपर ध्यान देने से ही मिली है। सो कृपा कर मेरी मदद करो।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य · नारायण देसाई

१. देखिए "क्या हम प्रतिद्वद्वी हैं?", २२-७-१९३६ या उसके पूर्व।

२. यूनिटी इण्टर एलिआ ने अन्य बातोंके साथ यह भी लिखा था: "हालकी लखनऊ कांग्रेसमें नव-निर्वाचित कांग्रेस-अध्यक्ष नेहरूने भारतके स्वातन्त्र्य-संघर्षमें हिंसाके उपयोगका समर्थन किया और कहा जाता है कि वे भारतमें अंग्रेजी शासनको हिला देनेके लिए एक आन्दोलनकी योजना बना रहे है।"

१५७. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
८ जुलाई, १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र[1] अभी मिला। वर्धाकी घटनाओंपर तुम्हे लिख सकने के लिए मैं समय ढूंढ रहा था। तुम्हारे पत्रने इसे कठिन बना दिया है। परन्तु मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि अलग हो जाने का विचार सूचित करनेवाले उस पत्रका वह अर्थ नही है जो तुमने उसे लेते समय लगाया। वह मेरे देख लेने के बाद ही तुम्हे भेजा गया था। त्याग-पत्रके स्थानपर इस तरहका पत्र भेजने का सुझाव मेरा था। मैं चाहता हूँ कि तुम इस पत्रके विषयमें कुछ अधिक न्यायपूर्ण दृष्टिसे विचार करो। जो भी हो, मेरा यह दृढ मत है कि वर्षके शेष समयमे सारी खीचतान बन्द रहे और कोई त्याग-पत्र न दिया जाये। वरना अ० भा० काग्रेस कमेटी अपंग हो जायेगी और इस सकटका सामना नही कर सकेगी। वह दो भावनाओके अन्तर्द्वन्द्वमें फँस जायेगी। लोकतन्त्रके नामपर उसे अचानक एक ऐसे सकटमें डाल देना अत्यन्त अन्यायपूर्ण होगा, जैसा सकट उसके सामने पहले कभी नही आया। तुम उस पत्रके गूढार्थको बढा-चढाकर देख रहे हो। मैं बहस नही करूँगा, परन्तु यह आग्रह अवश्य करूँगा कि स्थितिपर शान्त मनसे विचार करो और क्षणिक विषादवश उसके सामने हथियार न डाल दो, क्योकि यह विषाद तुम्हे शोभा नही देता। कार्य-समितिकी बैठकोमे अपनी विनोद-वृत्तिको खुलकर क्यो न खेलने दो? जिन लोगोके साथ तुमने

१. तात्पर्य ५ जुलाईके पत्रसे है, जिसमें जवाहरलाल नेहरूने कार्य-समितिके अपने उन सहयोगियोंके रवैयेकी शिकायत की थी जिनसे उनका मतभेद था। २९ जूनको वर्धामें कार्य-समितिकी बैठक हुई थी। उसमें ये मतभेद इतने उभर आये थे कि राजेन्द्रप्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, जयरामदास दौलतराम, जमनालाल बजाज, वल्लभभाई पटेल, जे० बी० कृपलानी और एस० डी० देव, समितिके इन सात सदस्योंने अपने त्यागपत्र दे दिये थे और बादमें गांधीजी के बीच-बचाव करनेपर ही उन्होंने त्यागपत्र वापस लिये थे। लेकिन १ जुलाईको राजेन्द्रप्रसादने जवाहरलाल नेहरूको एक व्यक्तिगत पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने सदस्योंके त्यागपत्र देने का कारण विस्तार से समझाया था। २९ जूनको दिया गया त्यागपत्र, १ जुलाईको जवाहरलाल नेहरूके नाम लिखा राजेन्द्रप्रसादका पत्र और ५ जुलाईको गाधीजी को लिखा जवाहरलाल नेहरूका पत्र, ये तीनो यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं; लेकिन ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्समें देखे जा सकते हैं।

कार्य-समितिका यह आन्तरिक मतभेद लखनऊ काग्रेसमें ही स्पष्ट हो गया था, जब जवाहरलाल नेहरू अध्यक्ष चुने गये थे। जिस प्रश्नको लेकर मतभेद हुआ था वह यह था कि काग्रेस अपने कार्यक्रममें समाजवादके प्रति कहाँतक प्रतिबद्ध हो सकती है। पट्टाभि सीतारामय्याके शब्दोंमें, "अध्यक्षकी राय कार्य-समितिके बहुमतसे मेल नही खाती थी।"

किसी तरहकी अनबनके विना वर्षोंतक काम किया है, उनके साथ निर्वाह करना तुम्हारे लिए इतना कठिन क्यो होना चाहिए? यदि वे असहिष्णुताके अपराधी हैं तो तुम भी जरूरतसे ज्यादा असहिष्णु रहे हो। तुम्हारी आपसी असहिष्णुताके कारण देशकी हानि नही होनी चाहिए।

आशा है, तुमने जर्मन डॉक्टरकी बहुत सयानी सलाह मान ली है।

सप्रेम,

बापू

[अग्रेजीसे]

गाधी-नेहरू पेपर्स, १९३६; सौजन्य . नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय। ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स, पृ० १९१-९२ से भी

१५८. पत्र : ग्लेडिस ओवेनको

८ जुलाई, १९३६

प्रिय ग्लेडिस,

मुझे प्रसन्नता है कि तुमने राजघाट थियोसॉफिकल स्कूलमे[1] एक सालकी नौकरी स्वीकार कर ली है। इससे तुम्हे और कुछ नही तो भारतीय विद्यार्थियोका कुछ अनुभव प्राप्त हो जायेगा और तुम भी अवश्य उन बच्चोको, जो तुम्हारी देख-रेखमे होगे, कुछ दे सकोगी।

हाँ, ये वही बडौदावाले अब्बास तैयबजी है जिनसे मिलने का तुम्हारा इरादा था। परन्तु अफसोस! अब वे नही रहे। जिनसे मिलने का मेरा सौभाग्य रहा है, तैयबजी उनमे से अच्छेसे-अच्छे लोगोमे से थे और तुम्हे उनके परिवारके सदस्योसे मिलने की कामना अभी भी सजग रखनी चाहिए। उन सबने उनके गुणोको खूब ग्रहण किया है — विशेषत उनकी एक लड़की रेहानाने, जो अत्यन्त गुणवती ही नही, बडी धार्मिक भी है।

स्नेह।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१९२) से।

१. वाराणसीमें।

१५९. पत्र : अतुलानन्द चक्रवर्तीको

८ जुलाई, १९३६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। काश! आप मेरी कठिनाइयाँ समझ सकते। इस प्रश्नपर दुर्भाग्यवश मेरा दृष्टिकोण आपसे भिन्न है। इसलिए मैं तो चाहता हूँ कि कमसे-कम कुछ समयतक आप अपने ही ढगसे सेवा करते रहे। यदि मुझे आपकी रीति जँच गई तो उसको अपनाने मे मुझे कोई झझट नही होगी। और किसी सुनियोजित कार्य-क्रमके लिए तो मैं आपको अपनी बात काग्रेससे ही कहने की सलाह दूँगा। मुझसे कोई लम्बा-चौडा पत्र पाने की आशा मत रखिए। आपको शीघ्र ही पता चल जायेगा कि मैं ग्राम-सेवाका जो काम करनेपर तुला हुआ हूँ, उसे यदि करना है तो कमसे-कम फिलहाल मुझे पत्र-व्यवहार बन्द करना ही पडेगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० १४७५) से, सौजन्य. ए० के० सेन

१६०. पत्र : प्रभावतीको

८ जुलाई, १९३६

कैसी है तेरी चिट्ठी? इस तरह बीमार पडती रहेगी तो बात कैसे बनेगी? यदि तू वहाँ अच्छी नही रह पाती तो सबकी अनुमतिसे यहाँ क्यो नही आ जाती? बीमार किसीकी सेवा नही कर पाता; सबसे सेवा लेता है। तू चाहे तो जयप्रकाशको लिखूं। तू हिम्मतसे अपने मनकी बात कह क्यों नही देती? मुझे हिम्मतकी बाते लिखती है; लेकिन मुझे आशका होती है कि तू मन-ही-मन चिन्ता करती रहती है। चिन्तासे तो कुछ होना-जाना नही है। जयप्रकाश मिला था। लिखता है कि पटनामे तुम दोनो साथ रहोगे। लगता है, बनारसकी बात तो आई-गई ही हो गई। जान पड़ता है, उसने पटनामें घर तो ले ही लिया है। कहता था, अच्छी जगह है। यह सब तू जानती होगी।

कान्ति सरस्वतीको लेकर त्रिवेन्द्रम गया है। उसका पता है: मार्फत जी० रामचन्द्रन्, हरिजन सेवक सघ, त्रिवेन्द्रम। एक महीनेमे लौटेगा।

यह पत्र मिलते ही तबीयतके बारेमें तार देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४७८) से।

१६१. पत्र : जीवणजी डा० देसाईको

८ जुलाई, १९३६

शब्दकोश[1] देख गया हूँ। मैं इतना मानकर चल रहा हूँ कि 'अनासक्तियोग' में[2] जो शब्दार्थ दिये गये हैं, वही यहाँ भी दिये गये हैं। दिखता तो अच्छा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९९४३) से। सी० डब्ल्यू० ६९१८ से भी; सौजन्य. जीवणजी डा० देसाई

१६२. तार : लेडी फजल-ए-हुसैनको

[१० जुलाई, १९३६][3]

कृपया मेरी समवेदना[4] स्वीकार कीजिए। आपके ख्यातनाम पतिसे जब भी मिला, मुझे सुख ही प्राप्त हुआ। उन सभी मुलाकातोंकी यादें मेरे मनमें कायम हैं।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १३-७-१९३६

१. गीता पदार्थकोष।
२. गांधीजी कृत भगवद्गीता का गुजराती अनुवाद; देखिए खण्ड ४१, पृ० ९२-१६७।
३. देखिए "पत्र : कनु गांधीको", १०-७-१९३६ की पाद-टिप्पणी।
४. लेडी फजल-ए-हुसैन के पति का ९ जुलाई को स्वर्गवास हो गया था।

१६३. पत्र : नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटियाको

१० जुलाई, १९३६

सुज्ञ भाईश्री,

आपके जीवन-साथीकी चिरविदाका समाचार यदि गोकुलभाई नहीं देंगे तो और कौन देगा? आपके अनेक भक्तोंमें से वे एक हैं। आपके प्रति समवेदना प्रकट करने की क्या जरूरत है? आपकी बीमारीकी खबर मुझे मिलती रहती थी। सुशीलाबहनके बारेमें तो मुझे कोई खबर ही नहीं थी। सचमुच ईश्वर अपने भक्तोंकी परीक्षा लेता है। आप तो अनेक अग्नि-परीक्षाओंमें से गुजरे हैं। आप तो सभी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होते ही रहे हैं। ईश्वर जिसकी परीक्षा लेता है उसे उस आँचको सहन करने की शक्ति भी देता जान पड़ता है। आपकी श्रद्धा ऐसी है कि उसे देखकर नास्तिक भी आस्तिक बन जायेगा। आपकी विजय हो।

आपका,
मोहनदास

[पुनश्च :]

इसकी प्राप्ति स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं।

नरसिंहराव भोलानाथ
मैरीन विला
१४ वाँ रास्ता, खार [बम्बई]

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१६४. पत्र : प्रभावतीको

१० जुलाई, १९३६

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला। तेरे लिखने का अभिप्राय समझ गया। शरीर सँभालकर तू वहाँ चाहें जितने दिनोंतक रह, मुझे कोई एतराज नहीं। तू वहाँ रहकर बहुत काम कर सकती है। ['गीता' के] दूसरे अध्यायके श्लोकोंका मनन करना और तदनुसार रहने का प्रयत्न करना। तेरे सामने जो कर्त्तव्य हो, उसमें मन लगाना और प्रसन्नचित्त

रहना। खुराकमें दूध, दही, शाक, फल और रोटीसे काम चलाना। दाल छूना भी मत।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४६७) से।

१६५. पत्र : नारणदास गांधीको

१० जुलाई, १९३६

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे आँकडोका उपयोग तो मै करूँगा ही। तुमने जो परिवर्तन लिख भेजे थे, उन्हे टाँककर रख लिया है। यह उचित ही है कि खादी की बात तुम्हारे मनमे घूमती रहती है। ऐसा होना ही चाहिए। स्वदेशीका एकादश व्रतोमें स्थान है। प्रारम्भसे ही खादीको स्वदेशीका मध्यबिन्दु माना जाता रहा है। फिर भी खादीके बारेमे विचार करते रहनेवाले हमारे पास थोडे ही है। और इसी लिए खादी-प्रवृत्तिको जितना बढना चाहिए, वह उतनी नही बढ पाती।

राष्ट्रीय शिक्षाके मामलोमे भी अन्धेर चल ही रहा है। नामलेवा बहुत है, समझनेवाले कम है। उनमे भी अमल करनेवाले विरले ही है। किन्तु इसमें शका नही कि सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा तो जो मैंने बताई, वही है। अर्थात् जिस प्रकार खादी फैले या न फैले, हम उसमे मिलावट नही करते, उसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षणमें भी मिलावट नही की जानी चाहिए। इस तरह यदि एक भी विद्यार्थी प्रेमसे विशुद्ध राष्ट्रीय शिक्षण प्राप्त करे तो मै कहूँगा कि राष्ट्रीय शिक्षण चल रहा है, और उसका भविष्य उज्ज्वल ही है।

राष्ट्रीय शिक्षणके नामसे चलते रहकर भी यदि वह शुद्ध राष्ट्रीय न हो और तमाम बच्चे तदनुसार शिक्षण ले रहे हो तो भी मै यह नही मानूंगा कि राष्ट्रीय शिक्षण चल रहा है। यह मेरी मान्यता है; फिर भी तुम जितना कर सको उतना ही करना। जब मिलावट स्वय तुम्हारी बर्दाश्तसे बिलकुल बाहर हो जायेगी और जब तुम स्वय मौलिक परिवर्तन करोगे, तब निश्चय ही तुम्हे मेरा पूरा सहयोग मिलेगा, इससे ज्यादा मेरे लिखने का अर्थ मत निकालना। तुमने एक बार मुझे कनुके कपड़ोके बारेमें लिखा था। मुझे याद नही है, उसका मैंने जवाब दिया या नही। न दिया हो तो इतना ही कहना है कि उस विषयमें कोई चिन्ता मत करना। कमसे-कम कपड़े पहनने की आदत डाल ली जाये तो वह शरीरके लिए स्वास्थ्यवर्धक है। इसलिए मै कनुकी शरीर-रक्षा के लिए जितना कपडा जरूरी है, उतने की ही चिन्ता रखता हूँ। इन दिनो तो उसका शिक्षण भी धुआँधार चलता लग रहा है। किन्तु

इसका श्रेय महादेव नहीं ले सकता। नवीन नहीं है; कान्ति नहीं है। अकेले कनुसे इन दोनोंका काम लेना ही पड़ता है। इसलिए कनुको सहज ही पूरी तालीम मिल जाती है। यह तो हुई मेरे मनपर पड़ी हुई छाप। छाप तो वही सही कहलायेगी जो कनुके मनपर पड़ रही होगी। वह इन दिनों बहुत कम दिखाई देता है, इसीलिए मैं उससे पूछ नहीं पाया हूँ। वह काममें जुटा रहता है और इसलिए अब उसे महादेवके सन्देश ले-लेकर दौड़ने का मौका नहीं मिलता।

लगता है, मंजु[1] ठीक प्रगति कर रही है। क्या कुसुमकी[2] तबीयत ठीक रहती है? यात्रासे उसने कुछ पाया है या खोया है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८४९८ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१६६. पत्र : कनु गांधीको

१० जुलाई, १९३६

चि० कनु,

मेरे पास दो मोढ़िये थे। एक यहाँ आ गया है; दूसरा वहीं रह गया है। मिले तो भेज देना। तकलीकी पेटी नहीं आई है; उसकी जरूरत है।

नारणदासकी चिट्ठीमें कुछ तेरे विषयमें भी है। यदि वह बात ठीक हो तो उसे लिखना। मुझे भी लिखना कि वह ठीक है या नहीं। साथमें तार[3] [का मसौदा] है। इसे तुरन्त भिजवा देना। डाककी चिट्ठियाँ तो हैं ही। आज तो सारा काम तेरे ही ऊपर है। यदि हमेशाके लिए ऐसा दिन आ जाये तो बोझ उठायेगा न और वह भी खूबीके साथ?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैं दस्तखत करके ४० रुपये का एक चेक भेज रहा हूँ। यदि वहाँ डाट-समेत या बिना डाट की एक-दो ऐसी छोटी शीशियाँ हो जिनमें एक-दो औंस द्रव्य आ जाये, तो भेजना।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. और २. व्रजलाल गांधीकी पुत्रियाँ।
३. तार कदाचित लेडी फजलेहुसैनके नाम था।

१६७. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

१० जुलाई, १९३६

दुबारा नहीं पढ़ा

भाईश्री हरिभाऊ,

मैंने ल०[1] और सो०[2] से विस्तारसे बातचीत की थी। ल० में कुछ भी नही है। मुझपर उसकी अच्छी छाप नही पड़ी। सो० की ठीक छाप पडी है। उसने यह स्वीकार किया कि दोनो एक-दूसरेके प्रति अत्यधिक आसक्त रहे है और है। फिलहाल भी यही स्थिति है। सो० का कहना है कि निर्दोष सेवासे आसक्ति उत्पन्न हुई थी। इस सम्बन्धमे प्रश्न करने पर ल० ने मौन साध लिया। वह डाक्टरसे जाँच कराने को तैयार हो गई थी, किन्तु मुझे पूरा सन्देह है कि यदि उसे सचमुच डाक्टरके सामने ले जाकर खडा कर दिया जाये तो वह खड़ी न रह सकेगी। सो० कहता है कि वे दोनो अन्तिम स्थितितक नही पहुँचे है क्योकि ऐसा करने मे तुम्हारी और मेरी लज्जा उन दोनोके आड़े आती थी। मै ब्यावरमें ल० के पितासे मिला था और उनकी बातचीतसे मैंने अनुमान लगाया कि उन्हे इस मलिन सम्बन्धकी सही-सही जानकारी नही है। किन्तु इस बातका फैसला कर डालने की जरूरत मुझे नजर नही आई। उसके पिता मुझे प्रभावित नही कर सके। तुम्हारे एक पत्रसे तो मुझे यह जान पड़ता है कि तुमने इस बातको सिद्ध हुआ मान लिया है कि यह व्यक्ति ल० का पिता नही है। दूसरे पत्रसे यह नजर आता है कि तुमने अपना मन्तव्य बदल दिया है। ल० तो कहती है कि यही उसके पिता है। पूरे मामलेकी जाँच पडतालके बाद मैंने निम्नलिखित निर्णय दिया है :

(१) ल० को म०[3] के पास जाकर पत्नीके रूपमे रहना चाहिए।

(२) यदि वह ऐसा न करना चाहे और यदि विकारहीन भावसे रह सके तो उसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए।

(३) यदि वह विकारका दमन न कर सके तो उसे किसी अन्य नवयुवकसे विवाह कर लेना चाहिए।

जबतक विवाह न हो जाये तबतक उसे सो० के साथ अपना सम्बन्ध पवित्र रखना चाहिए था। दोनो ही पवित्र होने का दावा करते है, अत मै इन दोनोके आपसी सम्बन्धको धर्मसम्मत नही मानता। इसके बावजूद यदि वे एक-दूसरेके साथ भोग भोगे विना न रह सकते हो तो दोनोको खुले तौरपर सम्बन्ध रखना चाहिए। किन्तु इस चौथी स्थितिमे उन्हे मेरा आशीर्वाद नही मिल सकता। वे आश्रममें

१, २ और ३. नाम छोड दिये गये हैं।

नही रह सकते और जिन संस्थाओसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है उनमे भी नही रह सकते। मुझे भय है कि ल० सो० के बिना नही रह सकती। मेरा मन्तव्य है कि उसे हिस्टीरियाकी बीमारी होनेका कारण उसकी 'विषयवासना है, और सो० का स्पर्श विकारी होने के कारण उस हिस्टीरियाको बढानेवाला है।

अब तुम्हे जो योग्य लगे सो करना।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजरातीसे : हरिभाऊ उपाध्याय पेपर्स; सौजन्य · नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१६८. डॉ० अम्बेडकरका दोषारोपण – १

पाठकोको याद होगा कि गत मई मासमे लाहौरमे जात-पाँत तोडक मण्डलका वार्षिक अधिवेशन होनेवाला था और डॉ० अम्बेडकर उसका सभापतित्व करनेवाले थे। लेकिन डॉ० अम्बेडकरने उसके लिए जो भाषण तैयार किया वह स्वागत-समितिको अस्वीकार्य प्रतीत हुआ, जिसके कारण वह अधिवेशन ही नही किया गया। यह बात विचारणीय है कि स्वागत-समिति अपने चुने हुए सभापतिको इसलिए अस्वीकार कर दे कि उनका भाषण उसे आपत्तिजनक मालूम पडा। जाति-प्रथा और हिन्दू शास्त्रोके विषयमें डॉ० अम्बेडकरके जो विचार है उन्हे तो समिति जानती ही थी। यह भी उसे मालूम था कि वे हिन्दू-धर्म छोडने का बिलकुल स्पष्ट निर्णय कर चुके है। डॉ० अम्बेडकरने जैसा भाषण तैयार किया था उससे कमकी उनसे उम्मीद ही नही की जा सकती थी। लेकिन लगता है कि समितिने एक ऐसे व्यक्तिके मौलिक विचार सुनने से जनताको वचित कर दिया, जिसने समाजमें अपना एक अद्वितीय स्थान बना लिया है। भविष्यमे चाहे वे कोई भी बाना धारण करें, मगर वे ऐसे आदमी नही है जिन्हे यह गवारा हो कि लोग उन्हे भूल जायें।

डॉ० अम्बेडकर स्वागत-समितिसे यो हार जानेवाले नही थे। उसके इनकार के जवाबमें, उन्होने उस भाषणको अपने ही खर्चेसे प्रकाशित किया है। उन्होने उसकी कीमत आठ आने रखी है। लेकिन मै उनसे कहूँगा कि वे उसे घटाकर दो आने या कमसे-कम चार आने कर दें तो ठीक होगा।

यह भाषण ऐसा है कि कोई सुधारक इसकी उपेक्षा नही कर सकता। रूढि-ग्रस्त लोग भी इसे पढ़कर लाभ ही उठायेंगे। लेकिन इससे यह नही समझना चाहिए कि भाषणमे एतराज करने लायक कोई बात नही है। इसे तो पढ़ना ही इसलिए चाहिए, कि इसमें गहरे एतराजकी गुंजाइश है। डॉ० अम्बेडकर तो हिन्दू-धर्मके लिए एक चुनौती है। उनका पालन-पोषण एक हिन्दूकी तरह हुआ और एक हिन्दू-नरेश द्वारा शिक्षित किये जाने पर भी, सवर्ण कहे जानवाले हिन्दुओ द्वारा अपने

और अपनी जातिवालोंके साथ होनेवाले व्यवहारसे वे इतने निराश हो गये हैं कि न केवल सवर्ण हिन्दुओंको, बल्कि उस धर्मको भी छोड़ने का विचार कर रहे हैं जो उनकी तथा तमाम हिन्दुओंकी संयुक्त विरासत है। उस धर्मको मानने का दावा करनेवाले एक वर्गके व्यवहारके कारण वह हिन्दू-धर्मसे ही निराश हो गये हैं।

लेकिन इसमें अचरजकी कोई बात नहीं है। क्योंकि किसी प्रथा या संस्थाके बारेमें कोई राय उसके प्रतिनिधियोंके व्यवहारसे ही तो बनाई जा सकती है। इसके अलावा डॉ० अम्बेडकरने पाया कि सवर्ण हिन्दुओंके विशाल बहुमतने अपने उन सहधर्मियोंके साथ, जिन्हें कि उन्होंने अस्पृश्य शुमार किया है, न केवल निर्दयता या अमानुषिकताका व्यवहार किया है, बल्कि अपने व्यवहारका आधार भी अपने शास्त्रोंके आदेशको बनाया है। और जब डॉ० अम्बेडकरने शास्त्रोंको देखना शुरू किया तो उन्हें मालूम हुआ कि सचमुच उनमें अस्पृश्यता और उसके लगाये जानेवाले तमाम अर्थोंकी काफी गुंजाइश है। डॉ० अम्बेडकरने ये तीन आरोप लगाये हैं: हरिजनोंके साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया जाता है; निर्दयतापूर्ण व्यवहार करनेवाले अपने इस व्यवहारको निर्लज्जतापूर्वक उचित ठहराते हैं; और हिन्दुओंके शास्त्रोंमें इस प्रकारके निर्दय व्यवहारका समर्थन किया गया है। और अपने इन आरोपोंके समर्थनमें उन्होंने शास्त्रोंके अध्याय और श्लोक उद्धृत किये हैं।

ऐसा कोई भी हिन्दू, जो अपने धर्मको अपने प्राणोंसे अधिक प्यारा समझता है, इस दोषारोपणकी गम्भीरताकी उपेक्षा नहीं कर सकता। हिन्दू-धर्म के प्रति ऐसा जुगुप्सा-भाव औरोंके मनमें भी है। लेकिन उनमें सबसे समर्थ और इस भाव को सबसे कठोर शब्दों में प्रकट करनेवाले व्यक्ति डॉ० अम्बेडकर ही हैं। और निस्सन्देह इन लोगों के बीच ऐसे व्यक्ति भी वही हैं जिन्हें कुछ समझा पाना कठिन है। ईश्वरकी कृपासे बड़े नेताओं में ऐसे विचार रखनेवाले वही अकेले व्यक्ति हैं और अब भी वे मुट्ठी-भर लोगोंके ही प्रतिनिधि हैं। मगर जो-कुछ वह कहते हैं, कम या ज्यादा जोशके साथ वे ही बातें दलित जातियोंके और नेता भी कहते हैं। फर्क सिर्फ इतना ही है कि दूसरे नेता जैसे — रावबहादुर एम० सी० राजा और दीवान बहादुर श्रीनिवासन — हिन्दू-धर्म छोड़ने की धमकी तो नहीं ही देते, साथ ही उसमें इतनी ऊष्मा भी देखते हैं जिसके सहारे उस लज्जास्पद उत्पीड़नका परिशोध सम्भव है जो आज हरिजनोंके एक बहुत बड़े हिस्से को सहना पड़ा है।

पर उनके अनेक नेता हिन्दू-धर्मको नहीं छोड़ते, इसी बातसे हम डॉ० अम्बेडकरके कथनकी उपेक्षा नहीं कर सकते। सवर्णोंको अपने विश्वास और आचरणमें सुधार करना ही पड़ेगा। सबसे जरूरी तो यह है कि सवर्णोंमें जिन लोगोंका अपने ज्ञान और प्रतिष्ठाके कारण सवर्णोंपर कुछ प्रभाव है उन्हें शास्त्रोंकी प्रामाणिक व्याख्या करनी होगी।

डॉ० अम्बेडकरके दोषारोपणसे जो प्रश्न उठते हैं, वे ये हैं:

(१) शास्त्र क्या है?

(२) आज जो-कुछ छपा हुआ मिलता है वह सभी क्या शास्त्रोंका अभिन्न भाग है, या उनके किसी भागको अप्रामाणिक क्षेपक मानकर छोड़ देना चाहिए?

(३) इस तरह काट-छाँटकर जिस अंगको हम स्वीकार करें वह अस्पृश्यता, जाति-प्रथा, दर्जेकी समानता, सहभोज और अन्तर्जातीय विवाहोंके सम्बन्धमें क्या कहता है?

(इन सब प्रश्नोंकी अपने अभिभाषणमें डॉ० अम्बेडकरने कुशलतापूर्वक छानबीन की है।)

इन प्रश्नोंका मेरा अपना उत्तर क्या है, यह तथा डॉ० अम्बेडकरके अभिभाषणमें जो (कमसे-कम कुछ) स्पष्ट त्रुटियाँ हैं, उनके विषयमें मैं अपना वक्तव्य अगले अंकमें दूंगा।[1]

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ११-७-१९३६

१६९. पत्र : ए० डोनाल्ड मिलरको

वर्धा
११ जुलाई, १९३६

प्रिय श्री मिलर,

महादेव देसाईको लिखा आपका ३ जुलाईका पत्र मिला। भारतमें कुष्ठ-रोगके भयंकर प्रकोपके सम्बन्धमें आप जो पत्र[2] लिखते रहे हैं उनके लिए धन्यवाद। ग्राम-सेवकोंके निजी अनुभवके आधार पर मैं जानता हूँ कि ऐसे रोगियोंकी सख्या बढती ही जा रही है। जैसाकि आप जानते हैं, मीराबहनने लगभग पिछले अठारह महीनेसे ग्राम-जीवनको अपना रखा है।[3] आज सुबह ही वह बता रही थी कि कितने सारे कुष्ठ-रोगी अपने रोगके इलाजकी आशासे उससे मिलने आते हैं। मैं जानता हूँ कि आपके पत्रोंसे उसे बहुत मदद मिलेगी। और अब चूंकि मैंने ग्राम-जीवन बिताना आरम्भ कर दिया है, इसलिए आपके पत्रोंमें दी गई हिदायतोंका इस्तेमाल भी कर रहा हूँ।

कहने की जरूरत नहीं कि आपका पाँचवाँ पत्र प्रकाशित किया जायेगा। 'हरिजन' के पाठकोंको यह तो मालूम हो ही जाना चाहिए कि मिशनरियोंके प्रयत्नोंसे कुष्ठ-रोगियोंका कष्ट किस हदतक दूर हुआ है। भारतमें और अन्यत्र विभिन्न मिशनोंने चिकित्साके क्षेत्रमें जो काम किया है उसके महत्त्वको न स्वीकारना मेरे या किसीके लिए भी अशिष्टता ही होगी। मेरी शिकायत तो यह है कि यह काम इसके पीछे कोई और मंशा रखकर किया जाता है। मिशनरियों और उनसे प्राप्त हो सकनेवाली चिकित्सा-विषयक तथा अन्य सुविधाओंका लाभ उठाने के इच्छुक हजारों लोगोंके

१. देखिए "डॉ० अम्बेडकरका दोषारोपण–२", १८-७-१९३६।
२. देखिए "कुष्ठ-समस्या", ६-६-१९३६।
३. वर्धाके पास वरोडा नामक गाँवमें।

बीच यह मंशा किस तरह दीवारका काम करता है, यह मै आपको पूरी तरह नही बता सकता। इसके उत्तरमे शायद आप यह कहेगे कि इस भेदकी दीवारके बारेमें जानकर भी मिशनरी उस उद्देश्यसे विमुख नही होते जिसे वे ईश्वर द्वारा निर्धारित मानते है। सभी धर्मोमें निहित तात्त्विक सत्यमें विश्वास रखनेवाले मुझ-जैसे लोग, इसके विपरीत, यह मानते है कि धर्म-प्रचारके प्रयत्नके कारण बहुत-से भारतीय ईसा मसीहकी उन विशुद्ध शिक्षाओका लाभ नही उठा पाते जो उनके जीवनको ऊपर उठा सकती है, भले ही वे यह न माने कि ईसा ही एकमात्र ईश्वर-पुत्र है।

आशा है, मेरे पत्रके इस अनुच्छेदसे आप ऐसा न मानेगे कि आपके लेखोके लिए आपके प्रति मेरी कृतज्ञता कुछ कम हो जाती है। मुझे लगा कि यह पत्र तभी पूरा हुआ माना जायेगा जब मैं आपको यह बता दूं कि धर्म-प्रचारके सम्बन्धमें मेरे जो विचार है उनके कारण यह नही हो सकता कि मिशन धर्म-प्रचारके प्रयत्नोके बावजूद जो अनेक लाभ पहुँचा रहा है उन्हे मैं मान्यता न दूं। कहने की जरूरत नही कि अपने विचारोकी यहाँ मैंने जो सक्षिप्त चर्चा की है, वह इस विषय पर किसी प्रकारके विवादको आमन्त्रित करने के लिए नही। खुद इस पत्रमें ऐसी कोई चीज नही है जिसके कारण आपके लिए इसका जवाब देना जरूरी हो। यह तो सिर्फ कृतज्ञता-ज्ञापनका पत्र है। आगे मुझसे कुष्ठ-रोगके सम्बन्धमे प्रश्नोकी अपेक्षा रख सकते है। शायद मुझे प्रतिदिन कुष्ठ-रोगियोके सम्पर्कमें तो आना ही होगा और तब ऐसे प्रश्न भी मेरे सामने आयेंगे ही।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल

१७०. पत्र : साहबजी महाराजको

११ जुलाई, १९३६

प्रिय साहबजी महाराज,[१]

मुझे मालूम है कि आपने कराची हरिजन चर्मालयके लिए जूते बनाने की शिक्षा देने के लिए एक कुशल शिक्षक भेजा है और दिल्लीकी हरिजन-बस्तीके लिए भी। हमारा यहाँ वर्धामे भी एक चर्मालय है, जहाँ कुछ नवयुवक मुख्यत. हरिजनोंके प्रति अपने प्रेमकी खातिर काम कर रहे है। परन्तु यहाँ जूते और चमड़ेके अन्य सामान बनाना सिखाने के लिए एक कुशल शिक्षककी आवश्यकता महसूस होती है। गाँवमें यदि चमड़ा कमाने के साथ ही हरिजनो और अन्य लोगोको जूते बनाना

१. राधास्वामी सम्प्रदाय, दयालबाग, आगराके अध्यक्ष।

भी सिखा सकें तो उनकी कमाईकी क्षमता बढ़ जायेगी और यदि हम अपने यहाँ चमडा कमाने के साथ ही चमड़ेकी चीजें बनाने का काम भी शुरू कर सकें तो हम और कार्यकर्त्ता भी रख सकेंगे। यदि आपके पास ऐसा कोई शिक्षक हो जिसे आप भेज सकते है तो क्या हमारे पास छह मासके लिए भेजिएगा? हम चाहते है वह शिक्षक विद्यार्थियोमें से एक होनहार नवयुवकको प्रशिक्षण दे ताकि बादमें वह औरोका शिक्षक बन सके। यदि आपके पास ऐसा कोई व्यक्ति है तो कृपया बताइए कि वह कब आ सकता है और कितने वेतनकी अपेक्षा रखेगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २१६३) से।

१७१. पत्र : उमादेवी बजाजको

११ जुलाई, १९३६

चि० ओम,

मुझे यहाँ छोटा-सा पुस्तकालय बनाना है। उसमे मराठी पुस्तके चाहिए। तेरे पास या मदालसा या और किसीके पास छोटी-छोटी मराठी पुस्तकें हो, जिनकी अभी वहाँ जरूरत न हो, तो मुझे यहाँ भेज देना। सीखने की और पढने की। यहाँका काम नही चला तो वे पुस्तकें-जिनकी होगी उनको वापस मिल जायेगी। काम चल निकला तो अमुक समयके बाद वे वापस कर दी जायेंगी। इसकी कमसे-कम मीयाद छह महीनेकी है। जो पुस्तकें सदाके लिए दी जा सकती है, वे दे देनी है। ऐसी पुस्तको की सूची मुझे भेज देना। दस रुपयेसे ज्यादाका पुस्तकालय मुझे नही बनाना है। इससे तुझे अन्दाज हो जायेगा कि मुझे किस तरहकी पुस्तकोकी जरूरत है। मराठी अखबार भी किसीके पास हो तो वे भी। वहाँ उपयोग हो चुकने के बाद चाहिए। इसमे बडे दानकी बात नही है। इसके लिए बडोको परेशान करने की भी बात नही है। परन्तु तुझ-जैसे लोग गाँववालोकी ओर जरा निगाह रखें तो ऐसे-ऐसे काम सहज ही कर सकते है। इतना तो दिल लगाकर करना। इसमे रस न आये तो बेधडक होकर इनकार लिख भेजना, ताकि दूसरे ठिकाने निवेदन करूँ।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० ३४३

१७२. पत्र : विजया एन० पटेलको

११ जुलाई, १९३६

चि० विजया,

तू अपनी इच्छासे जब मनमें आता है तब पत्र लिखती है। फिर मुझे लौटती डाकसे जवाब क्यों देना पड़ेगा? अपनी ढीलके लिए तू तो माफी तक नही माँगती। यह सब कहाँसे सीखा है? मैं सेगाँवमें रहने तो लगा हूँ; किन्तु अभी तुझे पास रखने लायक सुविधा नही हो सकी है। यदि तू महिलाश्रममें जाना चाहे तो वहाँ जा सकती है। बा अभी नही आई। मगनवाड़ीमें ही है।

हमारे भीतर दिव्य संगीत सतत चलता ही रहता है। यह इंद्रियातीत तो है ही; फिर भी श्रद्धासे इस बातपर विश्वास किया जा सकता है। इसके सिवा जिस तरह हमारे इंद्रियाँ है, इसी प्रकार आत्मा भी तो है न? इसलिए इंद्रियोसे अतीत यह आत्मा उसका अनुभव भी करती है। आत्मा है, इसका मुझे प्रतिक्षण अनुभव होता रहता है, इसलिए कभी-कभी दिव्य संगीतकी गूंज भी सुनाई पड जाती है। तू सुनना चाहे तो तू भी प्रयत्न करनेपर सुन सकती है। यह ऐसा संगीत नही है कि कोई और सुनवा सके। हम एक-दूसरेको वही बता सकते है जो इंद्रियगम्य है। आत्माकी बातको आत्मा ही जाने।

मेरे पास ही रहने की इच्छा हो तो प्रतीक्षा करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७०६०)से। सी० डब्ल्यू० ४५५२ से भी, सौजन्य : विजयाबहन एम० पंचोली

१७३. पत्र : द० बा० कालेलकरको

११ जुलाई, १९३६

चि० काका,

रामेश्वरदासका पत्र पढा। तुमने उसपर अपनी कोई टिप्पणी नही भेजी। इसीलिए मै यह नहीं समझ पाया कि तुम्हारी क्या इच्छा है। मै जितना जानता हूँ वही कहे देता हूँ।

पारनेरकर धूलियाकी गोशालाकी जिम्मेदारी नहीं छोड़ेगा। उसकी देखरेख करेगा। वह रामेश्वरदासका कोई और काम करने के लिए तो वहाँ नही गया है। उनकी

घर-गृहस्थीकी झंझटमें तो वह पड ही नही सकता। फिर भी उसने थोडा-बहुत हस्तक्षेप तो किया ही है। साथ रहता है, इसलिए ऐसा हो जाता है। पति-पत्नी दोनो कुछ मूर्ख-से है। दोनोकी आपसमें नही वनती। मगर रामेश्वरदासका गगावहनके विना एक क्षण भी काम नही चल पाता और झगडा भी जरूर होता है, ऐसेमें कोई क्या करे? शिवाजी वहाँ रहते है। उनका उपयोग भी दोनोमें से कोई नही कर पाता। गगावहन सद[उप]योग तो कर ही नही पाती। अगर उससे वने तो दुरुपयोग वह अवश्य करे। ऐसी भयकर स्थिति है। यदि तुम इस वातको अलग ढगसे देख सके हो तो मेरे पत्रको रदकर देना। जैसा मै मानता हूँ यदि तुम्हारी भी वही मान्यता हो तो सोच-विचार कर जो सलाह देने योग्य लगे, सो देना। शायद यह ज्यादा अच्छा हो कि तुम विनोबासे मिलो और दोनो एकमत होकर मुझे सलाह दो। यह तो पत्र पढकर मेरी जो प्रतिक्रिया हुई, वही है। तुम अपनी इच्छानुसार काम करना।

पत्र वापस कर रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७७००)से।

१७४. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
१२ जुलाई, १९३६

मूर्खारानी,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे पत्र लिखने के लिए श्रम मत करो। तुम्हे घुलते नही जाना चाहिए। अपनी शक्तिको बर्बाद मत करो। मुझे पत्र लिखना तुम्हारे लिए सुखकर और मनोरजन-जैसा होना चाहिए, अन्यथा बिलकुल मत लिखो। केवल पत्रोके कारण ही तो हम निकटतर नही आ सकते। पत्रोका अभाव हमें अलग नही कर सकता और न मनमें एक-दूसरेके प्रति उदासीनता पैदा कर सकता है। तुम्हे भला हमेशा रोगी क्यो बने रहना चाहिए?

तुम्हारी बुद्धिने, चाहे वह मूर्ख-बुद्धि ही क्यो न हो, तुम्हे ठीक रास्ता दिखाया, क्योकि तुम्हारा शिमलाका खादी-प्रयोग आशातीत सफलता पाता दिखता है। मेरे खयालमें इसे संयोग-मात्र ही कहना पडेगा। भला कही मूर्ख भी अच्छी चीजे कर सकते है?

यहाँकी कुटी चित्र-जैसी सुन्दर है। इस समय मेरे पास एक युवक साधु[1] है। वह बड़ा बढिया भजनीक है और अपने बनाये हुए भजन गाता है। मेरे पास एक मास रहेगा। एक कोनेमें मेरा वास है, दूसरेमें उसका, और तीसरेमें मेरे एक सहकर्मी मुन्नालालका है। पहले कोनेमे लकड़ीका एक तख्त है, जिसे तुमने देखा है।

१. तुकडोजी महाराज; देखिए अगला शीर्षक।

उस कोनेमे यदि वा आई तो वह रहेगी और तुम भी। इसलिए तुम सच्चे देहाती जीवनके लिए अपनेको तैयार रखो। स्नानागारके अलावा और कही एकान्त नही मिलेगा, और तुम्हे मेरे स्नानागारका ही प्रयोग करना होगा। यहाँ तुम्हे जो-कुछ झेलना होगा उसके बारेमे सोचकर तुम्हे आना चाहिए। परन्तु तुम्हे यह नवीनता अच्छी लगेगी। इस कमरेमें यो तो कई लोग है, फिर भी कोई शोर नही है। चारो ओर खुला विस्तार है और सुन्दरता है। दिन-भर ताजी हवा बहती रहती है। काफी ठण्डक है और सभी ओर घूमने के लिए खूब रास्ते है। जब तुम यहाँ दो रात बिताने आओगी तव बताना कि तुम्हें क्या परिवर्तन चाहिए।

जितनी भीड़-भाड तुम्हे वहाँ प्रतीत होती है उतनी सम्भवत यहाँ नही होगी। हम सब यहाँ छतके व्यवधानके बिना खुले आकाश-तले सोते है। फिर भी तुम अपनी मसहरी लेती आना और तुमने अपना जो थर्मस मुझे भेट कर दिया है उसके लिए डाट भी। मै पुरानीसे ही काम चलाता हूँ परन्तु वह लगभग घिसपिट गई है।

अगाथाका[1] सीलोनमे होनेवाले उस सम्मेलनमे शामिल होने का पक्का इरादा है, जिसका तुमने अपने लिए निषेध कर लिया है।

मगनवाड़ीमे बने कागजका यह नवीनतम नमूना है, और वहीके बने लिफाफेमें यह पत्र तुमको मिलेगा।

सप्रेम,

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५८२) से; सौजन्य. अमृतकौर। जी० एन० ६३९१ से भी

१७५. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

१२ जुलाई, १९३६

चि० गगाबहन,

रसोईघरका काम और कपडा धोनेका काम कोई मामूली सेवा नही है। आजकल कहा जाता है कि सेवा वही कर सकता है जो पढा-लिखा हो, इसलिए रसोई वगैरहके कामकी कीमत बहुत कम हो गई है। किन्तु क्या तुम यह नही जानती कि साबरमतीमें रसोईघरकी जिम्मेदारी परिपक्व आश्रमवासियोके हाथमें ही दी जाती थी? जब कोचरबमें आश्रम बना तब पहले-पहल यह उत्तरदायित्व मैंने ही सँभाला था। उसके बाद विनोबा, काका इत्यादि पर जिम्मेदारी आती चली गई और ब्रजलाल[2]-जैसा सेवक तो कपड़े धोते-धोते ही गया। जब वह आया था तब

१. अगाथा हैरिसन।

२. ब्रजलाल गांधी किसीका लोटा निकालने के लिए कुँएमें उतरे थे, किन्तु ऊपर चढ़ते हुए फिसल जाने के कारण कुँए में गिर पड़े और डूब गये। देखिए खण्ड, १७, पृ० ५५८।

उसने सबके कपड़े धोनेका काम स्वेच्छया माँगकर लिया था। यों उसे बही-खातेका अच्छा ज्ञान था और अक्षर मोतीके दानोकी तरह लिखता था। गाढे वक्तमें भण्डारकी सारी जिम्मेदारी उसे ही सौंपनी पडी थी। ऐसे सेवकोके बिना स्वराज्य नही मिल सकता।

किन्तु इस पत्रका यह अर्थ नही है कि समय मिलने पर तुम्हे पुस्तक-ज्ञानमें वृद्धि नही करनी है अथवा तुम्हे दूसरे लोगोको पढ़ने-लिखने के लिए प्रोत्साहित नही करना चाहिए। यह लिखने का उद्देश्य इतना ही है कि सहज प्राप्त धर्म को छोडकर जो लिखने-पढने की ओर दौडता है, वह भूल करता है।

बोचासण जाते हुए वर्धा जरूर आना। गोमती तुम्हे खीचकर ले जाने का प्रयत्न करेगी। फिर मगनवाडी है, महिलाश्रम है और जानकीबहन तो है ही। इसके सिवा तुम चाहो तो मुझसे मिलने सेगांव आ सकती हो और मेरे पास ठहर सकती हो। वैसे अभीतक यहाँ हम सब एक ही कमरेमें है। इन्ही दिनो तुकडोजी महाराज आ गये है और उन्हे भी एक कोना सौप दिया गया है। कमरा बड़ा है। २९ फुट लम्बी और १४ फुट चौडी कोठरी है। उसके चारो तरफ ७ फुट चौड़ा बरामदा है और बरामदेके एक कोनेमें छोटा-सा रसोई-घर है, दूसरे कोनेमें मेरा स्नान-घर। दीवारें गारेकी है। निर्माणकार्यमे ग्रामीण सामग्री और कारीगरीका ही प्रयोग किया गया है। अभी तो यहाँ चारो ओर हरेभरे खेत लहलहाते दिखाई पडने है।

मीराबहन यहाँसे डेढ मील दूर अपनी छोटी-सी झोपडीमें अकेली रहती है।

यह बिलकुल जरूरी है कि बच्चूभाई खाने या घूमने-फिरने-सम्बन्धी मर्यादाओमें से किसीका भी बिलकुल उल्लघन न करे।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो—६: गं० स्व० गंगाबहेनने, पृ० ९१-२। सी० डब्ल्यू० ८८३२ से भी; सौजन्य. गंगाबहन वैद्य

१७६. पत्र : प्रभावतीको

१३ जुलाई,[1] १९३६

चि० प्रभा,

कल शाम तेरा तार मिला। बहुत खुशी हुई। तेरा बीमार पडना मेरे लिए असह्य हो जाता है। उसमे तेरी और मेरी लाज जाती है। मेरे पाससे नीरोग रहनेकी

१. साधन-सूत्रमें तिथिको १३ या २३ पढ़ा जा सकता है और महीनेको ६ या ७। लेकिन तुकडोजी के आश्रममें ठहरने के उल्लेखसे स्पष्ट है कि महीना जून नहीं हो सकता। इसी तरह तिथिके भी १३ होनेकी सम्भावना अधिक है, क्योंकि इस तिथिके आसपास गांधोजी तुकडोजी के वहाँ आकर ठहरनेकी खबर लोगोंको दे रहे थे। देखिए "पत्र: अमृतकौरको", १२-७-१९३६ भी।

चाबी पा जाने के बाद तू बीमार क्यो पडती है? वही खाना चाहिए जो खाने योग्य हो; और स्वच्छ हवाका सेवन करना चाहिए, कसरत करनी चाहिए। जरूरी लगे तो कटि-स्नान करना चाहिए। चिन्ता किसी हालतमे नही करनी चाहिए। ऐसा किया जा सकता है। शक्तिसे बाहर काम नही करना चाहिए।

बा कल शाम मनुके साथ यहाँ आ गई। एक साधु भी मेरे साथ एक महीना रहने के विचारसे आये हुए है। सब एक ही कोठरीमें हैं। साधुका नाम तुकडोजी महाराज है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

कान्ति त्रिवेन्द्रममे है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४७३) से।

१७७. पत्र : श्रीमन्नारायण अग्रवालको

सेगाँव
१३ जुलाई, १९३६

भाई श्रीमन्,

तुमारा खत ही आज अभी पढ सका। सब डाक आती है ऐसे नही पढ पाता।

'रोटीका राग' भेजता हूँ। अच्छा, काकासाहव के लिखने के बाद मुझे पुस्तिका वापिस करो। बात यह है मैं समजा था मै तुमको मेरा अभिप्राय लिखु तुमारे सतोषके कारण। पुस्तिका में छापने के हेतु से क्या लिखु वह सुझता ही नही। फिर भी देखो क्या सभव है। दिल चाहे तब आ जाओ। मेरा समय कहा लेना है? महादेव मागे वह 'हरिजन' [का] काम दो।

बापुके आशीर्वाद

पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० २९९

१७८. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

दुबारा नहीं पढ़ा

सेगाँव
१५ जुलाई, १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

(१) आशा है, तुमको 'टाइम्स ऑफ इंडिया' वाले पत्रके बारेमें मेरा तार मिला होगा। मैंने कल प्राप्त करके उसे पूरा पढ़ा। इसके विषयमें मुझे कभी किसीने नही लिखा। पत्रको पढकर मेरी राय पक्की हुई है कि तुम्हे इसपर मान-हानिकी कानूनी कार्रवाई करनी चाहिए।

(२) यदि तुम मुझे गलत न समझो तो मैं चाहूँगा कि तुम मुझे नागरिक स्वातन्त्र्य संघसे मुक्त रखो। फिलहाल मैं किसी राजनीतिक संस्थामें शामिल होना पसन्द नही करता और किसी पक्के सत्याग्रहीके उसमे शरीक होने का कोई अर्थ भी नही। परन्तु इस संघमें मेरे सम्मिलित होने-न होने के प्रश्नको अलग रखकर अच्छी तरह विचार करने के बाद मेरी यह राय पक्की हुई है कि सरोजिनीको या यो कहो कि किसी भी सत्याग्रहीको अध्यक्ष बनाना "एक भूल होगी"। मेरा अब भी यही मत है कि अध्यक्ष वैधानिक मामलोका कोई जाना-माना वकील होना चाहिए। यदि यह बात तुम्हे न जँचती हो तो तुम्हे किसी प्रसिद्ध लेखकको, जो सत्याग्रही न हो, रखना चाहिए। मैं यह भी कहूँगा कि सदस्योकी संख्या सीमित रखो। तुम्हे संख्याके बजाय गुणोकी आवश्यकता है।

(३) तुम्हारा पत्र मर्मस्पर्शी है। तुम ऐसा अनुभव करते हो कि तुम सबसे अधिक पीडित पक्ष हो। लेकिन हकीकत यह है कि तुम्हारे साथियोमे तुम्हारे जैसी हिम्मत और साफगोई नही है। परिणाम विनाशकारी हुआ है। मैंने सदा उन्हे समझाया है कि वे तुमसे साफ-साफ और निडर होकर बात कर ले। परन्तु साहस न होनेके कारण जब कभी वे बोले, अटपटे ढंगसे बोले और तुम्हे झुंझलाहट हुई है। मैं तुम्हे बताता हूँ कि तुम्हारी चिडचिड़ाहट और उनके प्रति तुम्हारी अधीरताके कारण वे तुमसे डरते रहे। वे तुम्हारी झिडकियो और तुम्हारे हाकिमाना ढंगके व्यवहार पर कुढते रहे और सबसे अधिक इस बातसे कि उनके खयालसे तुम अपने-आपको अचूक और श्रेष्ठ ज्ञानवाला समझते हो। वे महसूस करते हैं कि तुम उनके साथ शिष्टतासे पेश नही आये और यदि समाजवादियोने उनका उपहास किया अथवा उन्हें गलत रूपमें पेश किया तो तुमने कभी उनका बचाव नही किया।

तुम्हे शिकायत है कि उन्होने तुम्हारी प्रवृत्तियोको हानिकारक बताया। इसका यह अर्थ नही था कि तुम हानिकारक हो। उनके पत्रमें तुम्हारे गुणों या तुम्हारी

नेवालोंका ध्यान करने की कोई गुंजाइश नहीं थी। वे पूरी तरह जानते हैं कि तुममें जीवट है और आम जनता और देशके युवकों पर तुम्हारा जबरदस्त प्रभाव है। वे जानते हैं कि तुम्हें छोड़ा नहीं जा सकता और इसलिए वे झुक जाना चाहते थे।

मुझे यह सारा मामला तुच्छ लगता है, साथ ही हास्यास्पद भी। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम सारी बातको विनोद-वृत्तिसे देखो। मुझे इस बातपर कोई आपत्ति नहीं कि तुम सारा मामला अ० भा० कां० कमेटीके सामने ले जाओ परन्तु मैं नहीं चाहता कि उसपर तुम्हारे घरेलू झगड़े निपटाने का या तुम्हारे और उनके बीच चुनाव करने का असह्य भार डाला जाये। तुम कुछ भी करो, उनके सामने सब चीजें आपसमें ही तय करके रखी जानी चाहिए।

तुम इस बातपर रोष क्यों करते हो कि तमाम समितियों आदिमें उनका बहुमत प्रकट हो? क्या यह अत्यन्त स्वाभाविक चीज नहीं है? तुम उनके सर्वसम्मत चुनावसे पदारूढ़ हुए हो, लेकिन अभीतक सत्ता तुम्हारे हाथमें नहीं आई है। तुम्हें पदारूढ़ करना तुम्हें शीघ्र सत्तारूढ़ करने का प्रयत्न था। और किसी तरह ऐसा न होता। जो हो, जब मैंने काँटोंके ताजके लिए तुम्हारा नाम सुझाया था तब मेरे दिमागमें यही बात थी। सिरपर घाव हो जायें तो भी इसे पहने रहो। समितियोंकी बैठकोंमें फिरसे अपनी विनोद-वृत्तिका परिचय दो। यही तुम्हारा सबसे सामान्य रूप है। चिन्ताग्रस्त, चिड़चिड़ा और तनिक-सी बातपर उबल पड़ने को तैयार — यह तुम्हारा असली रूप नहीं है।

काश, तुम मुझे तारसे खबर दो कि मेरा पत्र पढ़ लेने के बाद तुम्हें उतनी ही प्रफुल्लता अनुभव हुई जितनी लाहौरमें नव-वर्षके दिन हुई थी जब, कहा जाता है, तुम तिरंगे झंडेके चारों ओर नाचे थे।

अपने गलेको तुम्हें आराम देना ही चाहिए।

मैं अपना बयान फिरसे देख रहा हूँ। मैंने निश्चय किया है कि जबतक तुम इसे देख न लो. मैं इसे प्रकाशित न करूँ।

मैंने निर्णय किया है कि हमारे पत्र-व्यवहारको महादेवके सिवाय और कोई न देखे।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३६; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१७९. पत्र : प्रभावतीको

१५ जुलाई, १९३६

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला। फिरसे बीमार मत पडना। इस बीमारीका क्या कारण हुआ? तू कटि-स्नान करती है या नही? यह कदापि नही छूटना चाहिए।

कान्ति अभी त्रिवेन्द्रममें ही है। नीमू रामदासके पास बम्बई जा रही है। मनु सेगाँवमें आकर रहेगी। लीलावती तो यहाँ है ही। अर्थात् यहाँ भी जगह कम पड़ जायेगी।

लगता है, मैं तो ठीक हूँ। खुराक वही है जो थी। फिलहाल मेरे साथ एक महीनेके लिए तुकडोजी महाराज रह रहे है।

जयप्रकाशके साथ जो बात हुई, वह मैं लिख चुका हूँ[1]। पटना जाना कब होगा?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४७९) से।

१८०. पत्र : अमतुस्सलामको

१५ जुलाई, १९३६

प्यारी बेटी अमतुस्सलाम,[2]

तेरा खत आज मिला। जवाब कनुके साथ भेजता हूँ, जिससे सुबहकी ट्रेनमें चला जाये।

दिल्लीमें ऑपरेशन[3] जरूर हो सकेगा। उसका प्रबन्ध करूँगा। डाक्टरोके नाम मालूम करके लिखूँगा।

तू किसीसे मेरी नाराजगीकी बात सुनकर उसे सच क्यो मान बैठती है? अपनी नाराजगी क्या मैं नही बता सकता? तू कैसी बेटी है जो अपने बापके बारेमे दूसरेसे सुना हुआ माने?

अपनी जरूरतके पैसे मुझसे लेनेके लिए मैंने तुझे कहा नही है क्या? आने के लिए तुझे पैसे मुझसे लेने हैं।

कान्तिकी एक चिट्ठी थी। वह मजेमें है। एक महीनेमे वापस आयेगा।

१. देखिए "पत्र: प्रभावतीको", ८-७-१९३६।

२. इतना अंश उर्दूमें है।

३. नाक की तकलीफ के कारण।

नाक वहाँ किसीको दिखा दे। देवदाससे पूछ।

तेरे खतकी सब बातोका जवाब इसमें आ गया। ज्यादा लिखने का समय नही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४०) से।

१८१. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
१६ जुलाई, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

तानाशाहोके भी कई प्रकार होते हैं। २२ तारीखको देखना कि कैसी तबीयत रहती है। यदि रातको मौसम अच्छा हो, सड़क सूखी हो और तुम्हे थकान न लगती हो तो ब्यालूके बाद गाड़ीसे सेगाँव आ जाना। सेगाँवमें तुम्हारे सोने की व्यवस्था कर रखूँगा। यदि अच्छे सुयोग न हो तो मगनवाड़ीमें ही सो जाना और प्रात काल अपनी इच्छानुसार पैदल या गाड़ीसे सेगाँव आ जाना। तुम्हे किसी हालतमें थकानसे चूर नही होना है। आशा है, वापसीमें तुम कुछ समय रहोगी। उस समय तानाशाहकी मर्जीसे जो तरह-तरहके नये अनुभव प्राप्त करना चाहो, कर लेना।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५८३) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६३९२ से भी

१८२. पत्र : होरेस अलेक्जैंडरको

१६ जुलाई, १९३६

प्रिय होरेस,

तुम्हारा पत्र पाकर बड़ा अच्छा लगा। कमलनयन बजाजके हाथ तुम्हे मेरा एक पत्र[1] मिलेगा। लेकिन वह तो केवल परिचय-पत्र है और तुम्हारे पत्रकी प्राप्तिसे पहले लिखा गया था।

अगाथाके विषयमें तुमने जो लिखा है वह मैं पहले ही कर चुका हूँ। मैंने उसके कार्यक्रमके अनुमोदनका तार[2] भेज दिया था। भारतमें उसके खर्चका प्रबन्ध

१. देखिए "पत्र : होरेस अलेक्जैंडर को", ६-७-१९३६।

२. तार उपलब्ध नहीं है। अगाथा हैरिसनको सीलोन कान्फरेंसमें सम्मिलित होना था। देखिए "पत्र : अमृतकौरको", १२-७-१९३६।

यहाँ हो जायेगा। परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टिसे उसके भारत आने और जाने के खर्चकी व्यवस्था तुम्हारी ओरसे होनी चाहिए। साधारणत मैंने इसी रीतिका पालन किया है।

मै तुमसे सहमत हूँ कि ऐसे छोटे प्रवास लाभदायक होते है। अत यदि हीथ-दम्पति[1] भी आ सके तो अच्छा होगा।

जवाहरलाल अथक रूपसे अपने सन्देशका प्रचार कर रहे है। अपने ध्येयमे उनको अजेय विश्वास है।

तुम दोनोको प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४२४) से।

१८३. पत्र : खुर्शेदबहन नौरोजीको[2]

१६ जुलाई, १९३६

तीर्थयात्राका अवसर कब और कहाँसे आ गया है? यदि तुम्हारा तात्पर्य केवल खानसाहबके घोषणापत्रसे है तो उसमे मेरे लिए ऐसा कोई सन्देश नही है। वह घटना इतनी छोटी-सी है कि उसपर क्या ध्यान दूं! उन दोनो भाइयोके साथ मेरा यह समझौता है कि उनके बुलाये बिना मै दौडकर नही आऊँगा, जबतक कि मुझे कोई दुर्निवार प्रेरणा न हो। और ऐसा कुछ तो मुझे प्रतीत नही हुआ।

सन्त सच्चे भी होते है और नकली भी। सच्चे सन्त अपने चारो ओर कोई धूमधाम नही चाहते, किन्तु उनके भाग्यमें यह कष्टकारी स्थिति बदी ही होती है; और नकली सन्त तो धूमधामके बिना रह ही नही सकते।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य नारायण देसाई

१. सम्भवतः क्वेकर सम्प्रदायके कार्ल हीथ और उनकी पत्नी।

२. खुर्शेदबहनने अपने पत्रमें लिखा था कि सीमाप्रान्तकी पुकार है कि गांधीजी वहाँ आयें, परन्तु बिना धूमधामके। उन्होंने यह भी लिखा था : "क्या सन्त लोग कोई भी काम बिना धूमधामके नहीं कर सकते?"

१८४. पत्र : अमृतलाल ठा० नानावटीको

१६ जुलाई, १९३६

चि० अमृतलाल,

तुम्हारी चिट्ठी समयसे मिल गई थी। 'तुम शतायु होओ', यह कहना तो सरल है। किन्तु इसका प्रयत्न तो तुम्हे ही करना है। यदि हम शरीरको ईश्वरकी धरोहर समझकर उसका उपयोग करें तो इतना काफी है। शरीरको सँभालकर रखो। उसपर उतना ही वजन डालो जितना वह सहन कर सके।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७१८) से।

१८५. पत्र : जयकृष्ण पी० भणसालीको

१६ जुलाई, १९३६

चि० भणसाली,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। मुझे [तुम्हारे बारेमें] फिक्र तो होती ही है। तुम्हे दूसरोके लिए नमूना बनना है। शरीर तो बिलकुल ठीक रखना ही चाहिए। तुम दूसरोके सहारेके बिना उठ न सको, यह बुढापे-जैसी हालत क्यो? मेरा तो यह कहना है कि या तो तुम केवल दूध पर रहो या फिर किसी अन्नके आटे या बादामका उपयोग करो या फिर नारियल, चना, और नीबू लो। राँधे हुए भोजनको न लेनेके व्रतका पालन सम्भव है। सच्चा नियम तो इतना ही है कि स्वाद के विचारसे कुछ न ले; खाद्य पदार्थोमें से औषध-रूपमें चाहे जो योग्य प्रमाणमे खाया जा सकता है। तुम्हारी कमजोरी और रतौंधी जानी ही चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१८६. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

[१६ जुलाई, १९३६][1]

तुम्हारा पत्र मिला। नीमू बम्बई [जायेगी][2]। रामदासका विशेष आग्रह उसे अब अपने ही पास रखने का है। वह अब . . .[3] व्यापार करने लगा है।

रामजीके बारेमें बात समझ गया। किसी भी हालतमें अपनी दृढ़ता मत छोड़ना। गोसेवा का काम हम विनोबाको सौंप देंगे। . . .[4]

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९०९६) से।

१८७. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

[१६][5] जुलाई, १९३६

चि० कान्ति,

तेरी बात सच निकली; मैं झूठा पड़ा। मेरे बिलकुल निर्दोष कथनका कैसा दुरुपयोग और अनर्थ किया गया! किन्तु तुझपर इसका खराब असर क्यों हो? मैं तुझे समझा चुका हूँ कि तुझे बहुत नाजुकमिजाज नहीं बनना चाहिए। हम लोगोंके पत्र भटक गये। मैंने जिस दिन सेगाँवसे पत्र भेजा उसी दिन तेरा पत्र वर्धा पहुँचा।

सरस्वती दो महीने रुकने की इजाजत माँगती है, इसमें कोई विशेष बात नहीं है। मेरे पत्रको लेकर क्या टीका की गई, और किसने की?

अपनी तबीयतके बारेमें तू कुछ नहीं कहता? तू कहाँ हो आया? सरस्वतीने जो-कुछ कहा है सो मेरी समझमें नहीं आया।

नीमू आज रामदास के साथ रहने के लिए चली जायेगी। कानम[6] यहाँ रहेगा। बा वगैरह नीमूको पहुँचाने वर्धा गये हैं, कल वापस लौट आयेंगे। बा वर्धासे यहाँ

१. एस० एन० रजिस्टरसे।

२, ३ और ४. अस्पष्ट हैं।

५. साधन-सूत्रमें २६ जुलाई पड़ी हुई है। यह स्पष्ट ही भूल है क्योंकि निर्मला रामदासके पास १६ को रवाना हुई थी। देखिए "पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको", १८-७-१९३६।

६. रामदास गांधीका पुत्र।

तक मजेमे चलकर आ जाती है, और उसी दिन वापस पैदल चले जाने की हिम्मत रखती है। मनु भी यही आ जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७३०२) से, सौजन्य : कान्तिलाल गाधी

१८८. पत्र : नारणदास गांधीको

वर्धा
१७ जुलाई, १९३६

चि० नारणदास,

तुम्हारी टिप्पणी[1] सुधारकर और अपनी मोहर लगाकर भेज रहा हूँ। फिलहाल तो मेरे वहाँ आने की आशा न रखना ही अच्छा होगा। सरदारसे विनती करते रहना। वे आने का प्रयत्न तो करेंगे। १२ को[2] ही आ सकेंगे, यह कहना कठिन है। नाम जो निकाले है, स्थितिके बहुत अनिश्चित होनेके कारण निकाले है। यदि लोग खादी-प्रेमके वशमें आकर ही इकट्ठे हो तो वाह, वाह! नही तो कुछ और खादी मिली तो क्या और नही मिली तो क्या! नशा कबतक बनाकर रखा जा सकता है? यदि कुछ आनेवालो के नाम इस बीच निश्चित किये जा सके तो सूची प्रकाशित की जा सकती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८४९९ से भी, सौजन्य : नारणदास गाधी

१८९. सन्देश : खादी-कार्यकर्त्ताओंको

१७ जुलाई, १९३६

इसके[3] छपने के पहले मसौदा मुझे भेज दिया गया था। मैं नारणदासके खादी-प्रेमको बरसोसे जानता हूँ। इसीलिए इसके नीचे मेरे हस्ताक्षर कर देने की उनकी

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. द्वादशी; विक्रम संवत्के अनुसार गाधीजी का जन्मदिन।

३. यह गांधीजीके ६८वें जन्मदिनके कार्यक्रमसे सम्बन्धित टिप्पणी थी जिसमें गाधीजी ने कुछ सुधार किये थे। इसमें लिखा था : "यदि कोई अपने काते हुए सूतका उपयोग स्वय करना चाहे तो वह उसे प्रसादके रूपमें वापस पा सकता है; अन्यथा उसका उपयोग खादीका काम आगे बढ़ाने के लिए किया जायेगा। इस प्रसंगका महत्त्व सभी समझेंगे और खादीको गतिके साथ फैलायेंगे, ऐसी आशा रखना अधिक नहीं माना जायेगा।"

माँगकी मैं अवज्ञा नही कर सकता। शुद्ध भावसे जितनी अधिक खादी बनेगी, सबके लिए स्वराज्य उतना ही पास आयेगा। नारणदासने पाठकोसे जो आशा की है वह मैं नही के बराबर मानता हूँ। इसे सहज ही अंगीकार कर लिया जाना चाहिए।

मोहनदास करमचन्द गांधी

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५०० से भी; सौजन्य नारणदास गांधी

१९०. बातचीत: जयरामदास दौलतराम और देवदास गांधीके साथ[1]

[१८ जुलाई, १९३६ के पूर्व][2]

मुझे बड़ी खुशी हुई कि तुम लोग यहाँ आये, पर आशा है कि झोपडी कहा जानेवाला मेरा यह सुन्दर घर देखने न आये होगे। इसका नक्शा बनाने में मेरा कोई हाथ नही रहा है, और इसमें न तो मेरी कुछ कारीगरी लगी है, न मेहनत। लेकिन, हाँ, तुमने रास्तेमे मीराबहनकी मड़ैया देखी है? उसकी झोपडी देखने के लिए तुम्हारा यहाँतक पैदल चलकर आना अवश्य सार्थक माना जायेगा। वह दरअसल और सच्चे अर्थमें उसकी झोपड़ी है। यह झोपडी मेरी नही, बल्कि मेरे लिए बनाई गई है, ऐसा कह सकते हैं। मगर मीराबहनकी झोपडी निश्चय ही उसकी है। नक्शा उसी का बनाया हुआ है, और उसे खडा भी उसी ने ही किया है, हालाँकि उसमे कुछ मजदूरोकी मदद ली गई है। मगर मीराकी वह राम-मडैया महज मडैया ही नही है। मैं तो उसे एक 'कविता' कहूँगा। उसे अच्छी तरह ध्यानसे तो मैंने कल ही देखा, और उसकी एक-एक चीजमें ग्राम्य-मनोवृत्तिकी सुन्दर झलक देखकर मेरी आँखोमें आनन्दाश्रु भर आये। यह तो तुम जानते ही हो कि मीराबहनके साथ मेरा अकसर झगडा होता है, पर यह तो मानना ही पडेगा कि जितनी ग्राम्य मनोवृत्ति मैं मीराबहनमे देखता हूँ उतनी हममे से किसीमें भी नही है। उसके छोटे-से स्नानघरको क्या तुमने भीतर-बाहर से अच्छी तरह ध्यानसे देखा है? कुएँकी खुदाईमें जितना-कुछ पत्थर निकला उस सबका उसने उपयोग किया है, एक टुकडेको भी बेकार नही जाने दिया। नहाने के लिए पत्थरकी चौकी जमीन पर जमा ली है, और उसी छोटी झोपडीमे वही स्नानघरसे लगा हुआ पाखाना है। न वहाँ कमोड है, न लकडीकी चौकी और न ईंटकी खुड्डी वगैरह ही। दो अच्छे पत्थर जमीनमे आधे-आधे गाड दिये है, और

१. महादेव देसाईके "वीक़ली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

२. देवदास गांधी १८ जुलाई तक वापस दिल्ली पहुँच गये थे; देखिए "पत्र: मणिलाल और सुशीला गांधीको", १८-७-१९३६।

उनके ठीक बीचमें मिट्टीके तेलके आधे-आधे कटे हुए दो पुराने पीपे रख दिये है। हरएक ग्रामवासी इतना तो कर ही सकता है, पर करे तब न। पानी सब बहकर पौधों और साग-भाजीकी क्यारियोमे चला जाता है, जो बडी सावधानीसे काटी गई है। और, तुमने वहाँ उसके घोडेका छोटा-सा अस्तबल भी देखा है? कैसा सुन्दर बना है! घोडेको खिलाने-पिलाने, खरहरा करने और उसकी तमाम सार-सँभाल रखनेका काम वह कितने प्रेम और ध्यानसे करती है। जानवरोको प्रेमसे रखना हम मीराबहनसे सीख सकते है। घोड़ेका अस्तबल इस तरह बनाया गया है कि अपनी झोपडीमे बैठे-बैठे या काम करते हुए भी वह अपने घोड़ेको समय-समय पर देख सकती है।

अब उनकी झोपडीको जरा अन्दरसे देखें। सारी चीजें मिट्टी, बाँसकी खपच्चियो और खजूरकी डालियोके टट्टरोसे बनी हुई है। झोपडीकी हरएक चीजको और जहाँ वह रखी है उस जगहको ध्यानसे देखो। अपना चूल्हा उसने खुद अपने हाथसे बनाया है। हालाँकि चूल्हेका बनाना उन्होने सीखा हमी लोगोसे है, पर अब कोई इस कलामें उससे बाजी नही मार सकता। बाँसकी अँगीठी-कानसको भी देखा, जिसपर वह अपने रसोई बनाने के मिट्टीके बरतन-भाँडे रखती है? और बगैर किवाड-वाली छोटी-छोटी खिडकियोंके ऊपर मीराबहनने अपने हाथसे मोर और खजूरके पेडकी आकृतियाँ कैसी सुन्दर बनाई है! उसका छोटा-सा रसोई-घर और रुई धुनने की कोठरी भी देखने लायक है। वह जिस गाँवमें जाकर काम करती है, वह उसकी झोपडीसे दो-तीन फर्लांग पर है। उस गाँवकी तमाम स्त्रियाँ और बहुत-से पुरुष मीरा-बहनसे परिचित है। स्त्रियाँ अपनी घर-गिरस्तीकी कितनी ही बातें उससे दिल खोल कर कहती है और उससे सलाह लेती है कि उन्हे अमुक स्थितिमें क्या करना चाहिए। यो किसीको सलाह देना हमेशा कोई आसान बात नही है, पर उसकी सलाहसे सबको ढाढस और तसल्ली मिलती है। तुमने अगर मीराकी मडैयाको अच्छी तरह ध्यानसे नही देखा, तो मेरी यह सलाह है कि यहाँसे लौटते समय जरूर वहाँ होते जाना।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-७-१९३६

१९१. डॉ० अम्बेडकरका दोषारोपण–२

वेद, उपनिषद्, 'स्मृतियाँ' और पुराण, जिसमें 'रामायण' तथा 'महाभारत' भी शामिल हैं, हिन्दुओके धर्मग्रन्थ हैं। लेकिन यह कोई अन्तिम सूची नही है। हरएक युग और हर पीढीतक ने इसमें वृद्धि की है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि छपी हुई या हस्तलिखित मिलनेवाली हरएक चीज धर्मग्रन्थ नही है। उदाहरणके लिए, स्मृतियोमें बहुत-सी ऐसी बातें है जिन्हे ईश्वरीय वचन हर्गिज नही माना जा सकता। इस प्रकार स्मृतियोसे डॉ० अम्बेडकरने जो बहुत-से उद्धरण दिये है उन्हें प्रामाणिक नही माना जा सकता। यथार्थतः जो शास्त्र कहे जाते है उनका सम्बन्ध शाश्वत सत्योसे ही हो सकता है और वे अन्तरात्मा, यानी ऐसे हर हृदयको स्पर्श करेंगे जिसके ज्ञान-चक्षु खुल गये हो। ऐसी किसी बातको ईश्वरका वचन नही माना जा सकता जिसकी तर्क-बुद्धि द्वारा परीक्षा न हो सके या आध्यात्मिक रूपमें जिसका अनुभव न किया जा सकता हो। और फिर, धर्मग्रन्थोके शुद्ध सस्करण आपके पास हो तो भी आपको उनकी व्याख्याकी जरूरत तो पडेगी ही। सर्वोत्तम भाष्यकार कौन माना जायेगा? निश्चय ही कोरे विद्वान सर्वश्रेष्ठ भाष्यकार नही माने जा सकते। विद्वत्ता तो होनी चाहिए, लेकिन कोरी विद्वत्ता धर्मका आधार नही होती, उसका आधार तो सन्तो और ऋषियोके अनुभवो, उनके जीवन और उपदेशोपर होता है। जब धर्मग्रन्थोंके तमाम उद्भट भाष्य बिलकुल विस्मृत हो जायेंगे, ऋषियो और सन्तोके सचित अनुभव तो तब भी बने रहेंगे और आगेके अनेक युगोतक प्रेरणा प्रदान करते रहेंगे।

जातिका धर्मसे कोई सरोकार नही है। यह एक ऐसी प्रथा है जिसके मूलका मुझे पता नही और न अपनी आध्यात्मिक क्षुधाकी तृप्तिके लिए मुझे उसको जानने की ही कोई जरूरत है। लेकिन यह मै जानता हूँ कि आध्यात्मिक तथा राष्ट्रीय, इन दोनों प्रकारकी प्रगतियोके लिए वह हानिकारक है। वर्ण और आश्रमका जात-पाँतसे कोई सम्बन्ध नही है। वर्ण-व्यवस्थासे तो हमें यही शिक्षा मिलती है कि हममें से हरएक को अपने पुश्तैनी काम-धन्धेके द्वारा अपनी जीविका कमानी चाहिए। यह हमारे अधिकारोको नही, बल्कि कर्त्तव्योको स्पष्ट करती है। इसमें तो आवश्यक रूपसे उन्ही काम-धन्धोका उल्लेख है जो हमें केवल मानव-हितकी ओर ही ले जाते है। इसका यह भी अभिप्राय है कि कोई काम-धन्धा न तो बहुत नीचा है और न बहुत ऊँचा। सभी अच्छे, जायज और दर्जेमें बिलकुल समान है। आध्यात्मिक शिक्षा देने-वाले ब्राह्मणसे लेकर मैला उठानेवाले भगीतक के सब काम समान है, और ईश्वरके सामने उन सभीका महत्त्व समान है—और ऐसा मालूम पडता है कि एक समय ऐसा था जब मनुष्योंको उन सबका समान ही प्रतिफल मिलता था। दोनोको अपने

गुजारे-भरके लिए पाने का हक था, उससे अधिक नही। और गाँवोमें तो वस्तुत: अब भी इस सुन्दर नियमकी थोडी-बहुत धुँधली-सी रेखाएँ नजर आती है। ६००की आबादीवाले सेगाँवमे रहते हुए मुझे यह नही मालूम पडता कि विभिन्न प्रकारके धन्धे करनेवालो की — जिनमे ब्राह्मण भी शामिल है — कमाईमे कोई बहुत ज्यादा भेद हो। मै यह भी देखता हूँ कि धर्मकी ग्लानिके इस युगमे भी ऐसे सच्चे ब्राह्मण मौजूद है जो स्वेच्छापूर्वक उनको दी जानेवाली भिक्षापर निर्वाह करते हुए उनके पास जो आध्यात्मिक निधि है उसे उदारतापूर्वक दूसरोको प्रदान कर रहे हैं। वर्ण-व्यवस्थाका उसके उस विकृत स्वरूपसे निर्णय करना गलत और अनुचित है, जो कि हमे उन लोगोके जीवनमे मिलता है, जो दावा तो यह करते हैं कि हम अमुक वर्णके है, किन्तु जो अपने वर्णके एकमात्र नियमको खुले तौरपर भग कर रहे है। वर्ण-व्यवस्थामे ऐसी कोई बात है ही नही जिससे अस्पृश्यताको समर्थन मिलता हो। हिन्दू-धर्मका सार तो इसमें है कि सत्यको ही वह एकमात्र ईश्वर मानता है और अहिंसाको उसने मानव-जातिके लिए अटल नियमके रूपमें साहसके साथ स्वीकार किया है।

मै जानता हूँ कि हिन्दू-धर्मकी मैंने जो व्याख्या की है उसपर डॉ० अम्बेडकरके अलावा और भी बहुत-से लोग आपत्ति करेंगे। मगर इससे मेरी स्थिति पर कोई असर नही पड़ता। क्योकि यह तो एक ऐसी व्याख्या है जिसे मै कोई आधी सदीसे मानता आ रहा हूँ और जिसके अनुसार अपनी पूरी योग्यताके साथ मैंने अपने जीवनको व्यवस्थित करने की कोशिश की है।

मेरी रायमे डॉ० अम्बेडकरने सबसे बडी जो गलती की वह यह है कि उन्होने ऐसे उद्धरण चुने है जिनकी प्रामाणिकता और महत्ता सदिग्ध है और ऐसे पतनोन्मुख हिन्दुओका उदाहरण दिया है जो हिन्दू-धर्मका अत्यन्त गलत रूपमे प्रतिनिधित्व करते है। डॉ० अम्बेडकरने जो मानदण्ड रखा है उसके हिसाबसे तो सम्भवत आजकलका कोई भी जीवित धर्म खरा नही उतरेगा।

अपने योग्यतापूर्ण भाषणमे विद्वान् डॉक्टर [अम्बेडकर] ने अपने पक्षको सिद्ध करने की कोशिशमें अतिशयोक्तिसे काम लिया है। जिस धर्ममें चैतन्य, ज्ञानदेव, तुकाराम, तिरुवल्लुवर, रामकृष्ण परमहस, राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, विवेकानन्द तथा अन्य बहुत-से ऐसे लोग हुए जिनके नाम सहज ही गिनाये जा सकते है, क्या वह धर्म गुणोसे इतना हीन हो सकता है जितना कि डॉ० अम्बेडकरने अपने भाषणमें सिद्ध करने की कोशिश की है? किसी धर्मका निर्णय उसके सबसे बुरे नमूनोसे नही, बल्कि उसके सर्वोत्तम नमूनोसे ही किया जा सकता है, क्योकि उस धर्मके सर्वोत्तम नमूनोको ही ऐसा आदर्श माना जा सकता है जिससे आगे न जा सकें तो भी उसतक पहुँचने की आकाक्षा तो करनी ही चाहिए।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, १८-७-१९३६

१९२. टिप्पणियाँ

हरिजन सेवक संघ और नगरपालिकाओंकी ओर से दी जानेवाली सहायता

हरिजन सेवक सघके मन्त्री लिखते है:

> धूलियाकी नगरपालिकाने गत वर्ष हरिजन सेवक संघको जो सहायता दी उसपर सरकारी लेखा-परीक्षकोंने एतराज किया है। उनका कहना है कि हरिजनोद्धारका काम शैक्षिक विषय नहीं है, इसलिए नगरपालिका उसके लिए खर्च नहीं कर सकती है। यह एक गम्भीर प्रश्न है, जिसका हल होना आवश्यक है।
>
> इसमें तो यह भी मान लिया गया है कि विद्यार्थियोंके छात्रावास भी शिक्षण-संस्थाएँ नहीं है। यह एक आश्चर्यजनक व्याख्या है और अगर जल्दी ही यह दुरुस्त न हुई तो इससे संघ तथा अन्य संस्थाओंके कामोको बड़ी हानि होगी।

जो बात ऊपर कही गई है वह अगर सच है, तो जरूर कही-न-कही कुछ गलतफहमी हुई है। यह बात तो विवादास्पद हो सकती है कि हरिजनोद्धारका काम शिक्षणात्मक कहा जा सकता है या नही, लेकिन जब हरिजनोके लिए कोई स्कूल खोला जाये या विद्यार्थियोके लिए छात्रावास बनाया जाये तो ये दोनों निश्चय ही शिक्षणात्मक काम है, और वैसी हालतमे, नगरपालिका द्वारा उन सस्थाओको आर्थिक सहायता दिये जानेमे कोई एतराज नही होना चाहिए। मेरा खयाल है कि सरकारी लेखा-परीक्षको ने जो एतराज किये है वे स्थितिको गलत रूपमे समझने के कारण ही किये गये है। यह हो सकता है कि धूलिया-नगरपालिकाने हरिजनोद्धारके नामपर सहायता देने का अधिकार न होने के कारण, हरिजनोद्धारके नामपर दी जानेवाली सहायताको शिक्षा-सम्बन्धी सहायतामे शुमार न किया हो। अत. इस सम्बन्धमे और प्रकाश डाले जाने की जरूरत है। जबतक इस मामलेके सारे तथ्य मालूम न हो, इस बारेमे और कोई टीका-टिप्पणी न करना ही ठीक होगा।

एक ग्रामवासीकी दयालुता

खेडी गाँवकी कुमारी मेरी बारके भेजे हुए नीचेके दो शब्द-चित्रोको देखकर पाठक प्रसन्न होगे। इन शब्द-चित्रोका नाम मैंने "एक ग्रामवासीकी दयालुता" रखा है।

> १. कल मैंने देखा कि बेचारी एक बुढ़िया अपने बछियाके साथ वर्षामें भीगती हुई बैठी है। मैंने उससे पूछा कि अपने साथके दूसरे लोगोके साथ

ओसारेमें (मतलब कुमारी मेरी दारके झोंपड़ेके बरामदेसे है) आकर क्यों नहीं बैठ जाती हो? (ये लोग कोई बनजारे थे, और इन्होंने ओसारेमें २४ घंटेके लिए टिकने की इजाजत ले रखी थी।) बुढ़ियाने जवाब दिया, "इस बच्ची [बछिया] के पास बैठी हूँ। इसकी माँ मर गई है।"

२. आज दोपहरको मैंने देखा कि दो गधोंने वर्षासे बचने के लिए ओसारे की शरण ले रखी है। उन्हें देखते ही मैंने वहाँसे खदेड़ दिया कि कहीं ये फर्श न खराब कर दें। बेचारे फौरन भाग गये। कलवाली उस बुढ़ियाकी याद आते ही मुझे शर्म- लगी, और मैं उन गधोंको फिरसे ओसारेमें ले आई। आकर वे खड़े हो गये!

मुझे विश्वास है कि यह जानकर तारा कितनी प्रसन्न होती कि उसका ओसारा बारिशके इस मौसममें सभी तरहके आदमियों और जानवरोंको शरण दे रहा है।

तारा अर्थात स्व० मेरी चेजलीके विषयमें मुझे जो-कुछ मालूम था वह यहाँ दिये हुए हवालेसे बिलकुल सही उतरता है। अब उनके अनेक घनिष्ठ मित्रोंके पास उनकी असामयिक और आकस्मिक मृत्युकी खबर पहुँच गई है। मेरे पास उन लोगोंके पत्र आते ही रहते हैं, जिनमें ताराकी सहृदयताका वर्णन रहता है। उनमें से एकको मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ:[1]

पॉली (कुमारी चेजली)के स्वभावमें ही शहीदोंके सारे गुण थे। डर तो वह जानती ही न थी। वह दृढ़ शान्तिवादिनी थी और उसकी माँ कनाडाकी . . . चिर सुलह-शान्ति करानेवाली एक संस्थाकी अधीक्षिका थीं। जब उनका स्वर्गवास हो गया तो मेरी चेजलीने मुझसे उस रिक्त स्थानको ग्रहण करने का आग्रह किया। . . . रूस और चीनके दुर्भिक्ष-पीड़ितोंके लिए धन-संग्रह करने का काम पॉली और मैंने एक साथ मिलकर किया, और दस हजार डालर हम लोगोंने इकट्ठे कर लिये। . . . जर्मनीके बच्चोंके कष्ट-निवारणार्थ भी हमने एक हजार डालर एकत्रित किये थे।

भूल-सुधार

"सच हो तो बर्बरतापूर्ण है"[2] शीर्षक मेरे लेखके सम्बन्धमें देवकोट्टईके पंचायत-बोर्डके अध्यक्ष लिखते हैं:

. . . बोर्डकी बैठकोंमें हरिजन सदस्य दूसरे सदस्योंके साथ बैठें, इसपर मैंने या बोर्डके अन्य किसी भी सदस्यने कभी कोई एतराज नहीं उठाया। बल्कि हरएक बैठकमें उनसे यह प्रार्थना की गई है कि वे हमारे साथ बैठा करें। इधर चार

१. यहाँ केवल कुछ अंश दिये गये हैं।
२. २७-६-१९३६ का लेख।

महीनेके अर्सेमें बोर्डकी जो बैठकें हुई हैं, उनमें से कुछ-एकमें उन्होंने हमारी प्रार्थनाको माना भी है।

. . . जो आक्षेप किया गया था उसके सम्बन्धमें हरिजन सदस्यसे पूछताछ की गई तो उन्होंने यह बयान जारी किया है . . . कि बोर्डकी बैठकोमें उनके बैठने पर किसीने कभी कोई एतराज नहीं किया, और कई बार तो युगोंसे चले आये रिवाजके कारण जब उन्हें अन्य सदस्योके साथ बैठने में संकोच हुआ, तो अध्यक्षने उन्हें सबके साथ बैठने के लिए प्रोत्साहित किया है, और दिल छोटा न करने की सलाह भी दी है।

. . . अन्तमें आपको मै इतनी सूचना दे देना चाहता हूँ कि उक्त हरिजन सदस्य अब सब बैठकोमें बराबर दूसरे सदस्योके साथ बैठते है; और आपको मै विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि उन्हें मै तमाम सुविधाएँ दे रहा हूँ, ताकि वे अपने अधिकारोका अच्छी तरह उपभोग कर सकें।

इस पत्रको मै सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ। यह जानकर मुझे और भी हर्ष होता है कि इस सम्बन्धमे जो खबर प्रकाशित हुई थी वह बिलकुल ही गलत थी। इन दिनो, जबकि हरिजनोके मनमे सशय और क्षोभ भरा हुआ है, अखबारोके संवाददाता जो खबरे भेजे उनमे उन्हे यथार्थतासे काम लेना चाहिए। यह जानने-जैसी चीज जरूर है कि उस सवाददाताने ऐसी बिलकुल निराधार खबर अखबारोमे किस तरह भेजी।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, १८-७-१९३६

१९३. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

सेगाँव, वर्धा
१८ जुलाई, १९३६

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम्हारा पत्र मिला। इन दिनो मै तुम्हारे पत्रोका नियमित रूपसे उत्तर नही दे पाता।

हरिलालकी फिलहाल कोई खबर नही है। जो मनमे आता है, सो कहता फिरता है।

लगता है, सुशीलाका ऐसा कुछ खयाल है कि मुझे तुम लोगोके यहाँ आने के बारेमे आग्रह है। मुझे याद नही पडता कि मैंने किसी पत्रमे ऐसा कुछ कहा हो। अगर तुम लोग वहाँ ठीकसे जमे हुए हो तो मै तुम्हारे यहाँ आने की जरूरत नही

मानता। मैं यह जरूर चाहता हूँ कि तगी न भोगो। तुम दोनोको जो योग्य जान पड़े, वही करना।

बा, मनु और कानो कल मेरे साथ रहने के लिए आ गये। लीलावती तो है ही। अर्थात् जगहकी तगी हो गई है।

यह तो लिख ही चुका हूँ न कि एक ही कोठरी है?

फिलहाल रामदास तो ठीक कामसे लग गया है। देखना है, कैसा क्या करता है। नीमू दो दिन पहले उसके पास चली गई।

देवदास और लक्ष्मी यहाँ आये थे। अब वे दिल्ली पहुँच गये है। छगनलाल और काशी अभी तो वर्धा मे ही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८५४) से।

१९४. पत्र : मीराबहनको

सेगाँव
१९ जुलाई, १९३६

चि० मीरा,

वक्तव्यकी खातिर तुम्हे यहाँ आने का प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता नही। कोई जल्दी नही है। और आज 'हरिजन' का सम्पादन-दिवस होने के कारण मैं समय भी नही दे सकूँगा। निस्सन्देह तुमने ठीक किया कि वक्तव्यकी अपेक्षा पौधो पर ध्यान दिया, क्योकि देहाती जीवनमे उन्हीका स्थान पहले आता है।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३५६) से, सौजन्य मीराबहन। जी० एन० ९८२२ से भी

१९५. बातचीत: ग्राम-सेवक प्रशिक्षण विद्यालयके छात्रोंसे[1]

[१९ जुलाई, १९३६][2]

ये[3] मेरी तरह बाते नही करते, भजन गा-गाकर ये तो लोगोमें प्रचार करते और उपदेश देते है। मुझे न तो भजन बनाना आता है और न गाना ही। इससे मै बाते ही करता हूँ।

भजन-कीर्तनके बाद . . . बातचीत . . . सिरपर लम्बे-लम्बे बाल रखनेवाले एक विद्यार्थीपर किये गये कटाक्षसे आरभ हुई। गांधीजी ने पूछा:

ये सिर्फ दिखानेके ही लिए है, या स्वास्थ्यके लिए? अगर इन लम्बे-लम्बे बालोसे कोई खास मतलब पूरा नही होता, तब इनसे पीछा क्यो नही छुडा लेते?

विद्यार्थियोको सम्बोधित करते हुए गांधीजी ने कहा:

तुम यहाँसे कही यह कल्पना लेकर न जाना कि गॉवमे सिर्फ आ बैठने से ही ग्रामसेवा हो जायेगी। तुम सच्चे ग्रामवासी बनकर ही अपने ग्रामीण भाइयोकी सेवा कर सकते हो। और यह याद रखना कि बी० ए० या एम० ए० की डिग्री हासिल करना उतना मुश्किल नही, जितना कि सच्चा ग्रामवासी बनना है। गत ३० वर्षोंसे मैं गाँवो और गाँववालो के बारेमे बात कर रहा हूँ, पर गाँवमे आकर बस तो मै अब सका हूँ। और अभी यह डेरा-भर डाला है, काम अभी नही शुरू हुआ है। हम खुद तो बिना पालिशका चावल और हाथकी चक्कीका आटा खाते है, पर गाँववालो के आहारमे किस तरह यह सुधार कराया जाये? हमारे हाथमे ऐसा कराने की सत्ता होती, तो भी हम इस कामके लिए उसका उपयोग न करते। हमे तो धीरे-धीरे समझा-बुझाकर ही उन्हे ठीक रास्तेपर लाना है।

प्र०: बगैर सत्ताके क्या हम सचमुच सफल हो सकते है?

उ० यह तो मैंने अभी कहा ही कि हमारे हाथमे सत्ता हो, तो भी हमे उसका उपयोग नही करना चाहिए। हमे तो उनका हृदय बदलना है, ताकि वे हमारी ही तरह सोचने लगे; और यह उन्हे बराबर समझाते रहने से ही हो सकता है।

प्र०: जब आप इस काममें इतने हतोत्साह-से मालूम पड़ रहे है, तो फिर हम लोग किस गिनतीमें है?

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

२. महादेव देसाईके अनुसार यह बातचीत रविवारको हुई थी। २५ जुलाई अर्थात् इस लेखकी प्रकाशन-तिथिके पहलेका रविवार १९ जुलाईको पड़ा था।

३. तुकडोजी महाराज

उ० अव्वल तो यह बात है कि मैं जरा भी हतोत्साह नही हूँ। दूसरे, यह कल्पना कर बैठना ठीक नही कि मेरी शक्तियोसे तुम्हारी शक्तियाँ क्षीण है। हाँ, यह हो सकता है कि शारीरिक शक्तिमे तुम्हारे और मेरे बीचमे काफी अन्तर हो, और जो आत्मबल तुम्हारे भीतर सुषुप्त या निष्क्रिय पडा हुआ हो, सम्भवत. मुझमे वह जागरूक या सक्रिय हो। पर ऐसा तो कोई भी काम नही जो जादूकी छडी घुमा देने से ही हो जाता हो। फिर, किसी गाँवमे जाकर बैठ जाने मे ही ऐसा कौन-सा जादू है? किसी गाँवमे छह महीने रहकर भी शायद वहाँ हम कोई सेवा न कर सके। जो भावना लेकर हम वहाँ जायेगे, असलमे, उसीपर बहुत-कुछ निर्भर करेगा। शहरोमे वर्षो रहकर भी हमने अपने चारो तरफके जीवनपर अपना कोई असर नही डाला। इसलिए गाँवोमे हमे स्वयसेवक बनकर ही जाना होगा। गाँवोके लोग शहरोमे आकर मजदूरी लेकर हमारे लिए काम करते है। हमे गाँवोमे जाकर उनकी सेवा बिना मजदूरी लिये करनी होगी।

प्र० मैं समझा। अच्छा गाँवके, लोग आपसे कभी मिलने आते है?

उ० आते है, पर कुछ डरते हुए-से, और शायद थोडी शका भी उनके मनमे रहती है। ग्रामवासियोकी ये भी कमजोरियाँ है। उनकी ये कमजोरियाँ भी हमे दूर करनी होगी।

प्र० : सो कैसे?

उ० धीरे-धीरे उनके दिलमे जगह करके हमे उनका यह भय और सन्देह दूर करना होगा कि हम उनसे जबरन कोई काम कराने आये है। हम अपने बरताव से ही यह दिखा सकेंगे कि हमारा जबरदस्ती या स्वार्थ-साधनका कोई इरादा नही है। पर यह सब धीरजका काम है। तुम अपनी सचाई और ईमानदारीका एकाएक तो विश्वास दिला नही सकते।

प्र० : क्या यह ठीक है कि जो लोग किसी संस्था या किसी गाँवसे बगैर कोई पारिश्रमिक या वेतन लिये काम करते है वे ही गाँववालों के विश्वासपात्र बन सकते है?

उ० नही, मेरा ऐसा खयाल नही है। बेचारे गाँववालो को तो यह भी पता नही होता कि कौन व्यक्ति वेतन लेकर काम कर रहा है और कौन नही। उनके ऊपर तो असलमे हमारी इन बातोका असर पड़ता है कि हम किस ढगसे रहते है, कैसी हमारी आदतें है, हम कैसी बातचीत करते है। यही नही, हमारे हरएक भाव या चेष्टातक का उनके ऊपर असर पडता है। शायद उनमे से कुछ लोग हमपर यह सन्देह करे कि हम यहाँ रुपया-पैसा कमाने की गरजसे काम कर रहे हैं, हमें उनका यह सन्देह भी दूर करना होगा। पर तुम यह बात दिलमे न जमा लेना कि जो किसी सस्था या गाँवसे कुछ भी नही लेता वही आदर्श ग्रामसेवक है। ऐसा मनुष्य अक्सर घमण्डमे आकर अपनेको औरोसे ऊँचा समझने लगता है, जिससे उसका पतन हो जाता है।

प्र०: आप हमें गाँवके उद्योग-धन्धे सिखा रहे हैं। इनका उद्देश्य क्या है? क्या ये धन्धे हमारे जीविका कमाने के साधन होंगे या इन्हें हम गाँवके लोगोंको सिखा सकेंगे? अगर गाँवके लोगोंको सिखाने के लिए ही हमें ये विषय पढ़ाये जा रहे हैं, तो एक सालमें हम इन उद्योग-धन्धोंमें निष्णात कैसे हो सकते हैं?

उ०: तुम्हें तो मामूली धन्धोका ही ज्ञान कराया जा रहा है, क्योंकि जबतक तुम्हे यह जानकारी न होगी तबतक तुम अपनी सलाहसे लोगोको मदद नही पहुँचा सकोगे। तुममे जो सबसे अधिक उत्साही और कर्मशील होंगे, वे बेशक किसी एक धन्धेके जरिये अपनी रोजी कमा सकते हैं। देखो, यहा जमनालालजी की कृपासे और मेरे "महात्मापन" की बदौलत मुझे तो यहाँ यह बनी-बनाई झोपडी मिल गई है। पर अपने लिए तुम्हे खुद अपने हाथो झोपड़ी बनानी होगी—और तुम्हारे लिए झोपड़ी बना देनेवाला कोई मित्र अगर मिल गया, तो मै तो यही कहूँगा कि तुम भी मेरी ही तरह जरा-जीर्ण और निर्बल हो।

प्र०: श्री राजगोपालाचारीने उस दिन हमारे विद्यालयमें कहा था कि किसी उद्योगमें पूरी तरहसे कुशलता प्राप्त किये बगैर गाँवोंमें जाना बेकार है। गाँवोंमें जाकर तुम लोग उन्हें कोई उद्योग सिखाना चाहते हो तो तुम्हें उनसे अच्छे किसान, उनसे अच्छे बुनकर और उनसे अच्छे चर्मकार आदि बननेकी जरूरत है।

उ०. यह उन्होने ठीक कहा था। पर हमने अपने शिक्षाक्रममे यहाँ कृषिका विषय नही रखा है, क्योकि अच्छा कुशल किसान बनने के लिए तो हमे शायद सौ बरस चाहिए। जो विषय यहाँ सिखाये जाते हैं वे ऐसे हैं कि उनसे तुम ग्रामवासियोको कई बातोका अच्छा ज्ञान करा सकते हो। आटा पीसने की चक्की, धान कूटने की ओखली और तेलकी घानीमे हमने सुधार किये हैं। हम अपने औजारोमे सुधार करने के प्रयोग कर रहे हैं। तुम सुधरे हुए औजारोको गाँवोंमे ले जा सकते हो। पर सबसे बडी बात जो हमे उन्हे सिखानी है वह है व्यापारमे सचाई और ईमानदारी। जरा-से फायदेके लिए वे दूधमे, घीमे, तेलमे, और सचाईतक मे मिलावट कर देते हैं। पर यह उनका नही, हमारा दोष है। हम इतने दिनो तक उनकी उपेक्षा और शोषण ही करते रहे। उन्हे कभी अच्छी बाते नही सिखाईं। अब उनके निकट-सम्पर्कमे रहने से हम उनकी बुरी आदतोको आसानीसे सुधार सकेंगे। लम्बे समयतक उपेक्षित और अलग-थलग रहने के कारण उनकी बुद्धि और अन्तरात्मा तक जड हो गई है। हमे उनकी इन जड हो गई शक्तियोको फिरसे जाग्रत और अनुप्राणित करना है।

प्र०: यहाँ हरिजन-समस्या कैसी है?

उ०: वैसी ही, जैसी कि दूसरी जगहोंमें है।

प्र०: हरिजनोंके बीच यहाँ भी ऊँच-नीचका भेदभाव है?

उ० अवश्य है। कोई महार किसी भगीको नही छुएगा, उससे दूर ही रहेगा। जमनालालजी का यहाँ एक कुआँ है; यह उनका अपना कुआँ है, सार्वजनिक

नही। जो सज्जन यहाँ उनकी जायदाद की देखरेख करते है उनसे सलाह करके हमने उसे सब हरिजनोके लिए खोल देने का निश्चय किया, और महारो, चमारो, भगियो आदि हरिजन जातियोको पानी भरने के लिए बुलाया। वे आये, पर पानी कैसे भरे? हिचकते थे। एक या दो महार आगे बढे। और एक भगी भी आ गया। इसपर बड़ा हो-हल्ला मचा। हरिजनोने कुएँका इस्तेमाल जब बन्द कर दिया तब कही हो-हल्ला कुछ शान्त हुआ। लेकिन भीतर-भीतर तो अशान्ति है ही। यह तो एक तरहकी सशस्त्र शान्ति है। पर उन्हे दोष देना व्यर्थ है। हम खुद अपनी तरफ देखे। हम क्या कर रहे है? मै तो राजपूतानेकी यह घटना सुनकर स्तब्ध रह गया कि वहाँका एक हरिजन अपने जात-भाइयोको घी के मालपूए और लड्डू खिलाना चाहता था, पर सवर्णोंके रुकावट डालने से यहाँतक नौवत पहुँची कि पुलिसको गोली चलानी पडी। इसमे तीन सवर्ण हिन्दू मारे गये। जब हम खुद अपने बीचसे अस्पृश्यता दूर नही कर रहे हैं, तो हरिजनोसे यह आशा कैसे की जाये कि वे इस बुराईको पल-भरमे दूर कर देगे।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २५-७-१९३६

१९६. पत्र : मीराबहनको

२० जुलाई, १९३६

चि० मीरा,

कोई नही समझता कि सन्देशवाहक क्या सन्देश लाया है। लीलावती इतनी लापरवाह है कि समझती नही। मै बोल नही सकता। मुन्नालाल अधमरा-सा है। बलवन्तसिंहका भी यही हाल होता दीखता है। ऐसी परिस्थितिमे बेहतर यही है कि तुम्हे जो चाहिए सो लिख दिया करो। आशा तो थी कि यहाँ आश्रम बनेगा, मगर यह एक अस्तव्यस्त गृहस्थी-जैसा बन गया है। मेरा भाग्य ही ऐसा है। मुझे अपना आश्रम अपने भीतर ही खोजना पडेगा।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३५७) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९८२३ से भी

१९७. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

वर्धा
२० जुलाई, १९३६

चि० गगाबहन,

तुम्हारा पत्र मिला। दानमे कोई बडी रकम दे तो भी सफाईके काममे तुम्हे बाहरका पैसा खर्च नही करना चाहिए। यहाँ जिस गाँवमें सफाई चलती है, मैंने उसमे एक भी रुपया खर्च करने की मनाही कर दी है, क्योकि हम खर्च करे तो लोगोको सीखने को नही मिलता। हमें तो केवल श्रम करके सन्तोष करना चाहिए। पैसा खर्च नही करना चाहिए। जबतक लोग स्वयं खर्च नही उठाते तबतक काम अधूरा भले पडा रह जाये। झाडने-बुहारने, पाखाना उठाने और उसे गाडने का सब काम हम ही करे। किन्तु जबतक लोग अपने पैसेसे पाखाने नही बनवाते और खुलेमें शौच करते है तबतक उन्हे वैसा करने दें। लोगोको सभ्यता सिखाई जा सकती है किन्तु सभ्य रहने के साधन तो खुद उन्ही को जुटाने चाहिए। तालुका-बोर्ड खर्च उठाये। इसमे १०-२० रुपये से अधिक खर्च की जरूरत नही पड़ती। मेरी पूरी बात समझमे न आई हो तो फिर पूछना।

सफाईका काम और आरोग्यवर्धक खुराकका प्रचार ही सच्चा चिकित्सा-शास्त्र है, यह पक्का समझ लो। शामलभाई, शिवाभाई और दूसरे सब लोगोके रहते हुए वहाँ पुरुष सफाईमें भाग क्यो नही लेते? यदि रोज १ घंटा सफाई की जाये तो काफी है। सुबह भगीकी तरह झाड़ू, फावड़ा, टोकरी आदि लेकर निकल पड़ना चाहिए।

जो पूछना ठीक लगे सो पूछ लेना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ६ : गं० स्व० गंगाबहेनने, पृ० ९३। सी० डब्ल्यू० ८८३५ से भी; सौजन्य : गगाबहन वैद्य

१९८. पत्र : बाबूराव डी० म्हात्रेको

सेगाँव
२१ जुलाई, १९३६

भाई म्हात्रे,

शूरजीभाईने[1] सन्देश भेजा है कि 'हरिजन'[2] मे आपके नामका उल्लेख न होने से आपको दुःख हुआ है। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि ऐसा जान-बूझकर नही किया गया। आपको पता होगा कि मै प्रशसाके मामलेमे कृपण हूँ। जहाँ श्री कर का उल्लेख हुआ वहाँ आपका भी होना चाहिए था, परन्तु उस समय आपका नाम मेरे सम्मुख नही था। आपकी बहुमूल्य सेवाओसे मै इतनी अच्छी तरह परिचित हूँ कि उनका मूल्य कम आँक ही नही सकता। परन्तु मै आपका उल्लेख करने के लिए विशेष अवसर नही निकालूँगा। वह स्वय समयपर सहज रूपमे प्रकट होगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गाधी

अग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९८२४) से, सौजन्य : बी० डी० म्हात्रे

१९९. पत्र : निर्मला गांधीको

सेगाँव, वर्धा
२१ जुलाई, १९३६

चि० नीमू,

कनुके बारेमे तुझे जो भय था वह सही निकला। तूने अपने पत्रमे लिखा है, इसलिए मै उसे किसीके साथ भेज रहा हूँ। इससे मुझे दुःख तो होता है किन्तु मै यह मानता हूँ कि फिलहाल ईश्वर की यही इच्छा है।

सत्यवानको जिस सॉपने डसा था वह स्थूल सॉप नही बल्कि विषय-वासना-रूपी सॉप ही था। सावित्रीने उसके विषको अपनी पवित्रता और प्रेमसे उतारा था। सावित्रीकी कथाका यही रहस्य है। जिसकी पवित्रता विषय-वासनाको दूर कर सकती

१. शूरजी वल्लभदास।
२. तात्पर्य शायद ४ अप्रैल, १९३६ के हरिजनमें प्रकाशित गांधीजी के भाषणसे है, देखिए खण्ड ६२, पृ० ३१३-१६।

है वह दूसरे सब दोषोको भी दूर कर सकती हैं। इस दृष्टिकोणसे तू अपनी पवित्रता और प्रेमसे रामदासके त्रिविध तापोको दूर करने योग्य बन, यही मेरी इच्छा है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजरातीसे · निर्मला गाधी पेपर्स, सौजन्य नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय

२००. पत्र : चन्द त्यागीको

२१ जुलाई, १९३६

भाई त्यागी,

तुमारा 'खत पूरा पढा नही जाता, बलवीरको' क्षय होना दु:खद बात है। अब कैसे है?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०९७) से।

२०१. पत्र : राजकिशोरीको

२१ जुलाई, १९३६

चि० राजकिशोरी,

तेरा खत मिला। जिस जगह तुमको शाति मिले वही रहो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६३८) से। सी० डब्ल्यू० ४२८६ से भी, सौजन्य चन्द त्यागी

२०२. पत्र : अमतुस्सलामको

२१ जुलाई, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

मेरा खत मिला होगा। साथमे त्यागी[२] और राज[३] के लिए खत है। और भी एक खत[४] विद्यार्थियोके लिए है।

१. चन्द त्यागीका पुत्र।
२ और ३. देखिए पिछले दो शीर्षक।
४. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

राममेहरके[1] खतपर जो हकीकत हो वह लिखकर उसे मेरे पास लौटाना। मलकानीजी[2] से पूछना कि उसे क्यो मुक्त करना पडा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४१) से।

२०३. क्या हम प्रतिद्वन्द्वी है?

[२२ जुलाई, १९३६ या उसके पूर्व][3]

मेरे पास अमेरिकाके अखबारोकी दो कतरने आई है, जिनमे पण्डित जवाहरलाल नेहरू और मेरे पारस्परिक सम्बन्धोके बारेमे सरासर झूठी बातें लिखी है। उनमे कई बाते मेरे कथनोके रूपमे उद्धरण-चिह्नोमें दी गई है। उदाहरणार्थ, उन अखबारोके अनुसार मैंने यह कहा कि "मेरे सारे जीवनका किया-धरा सब चौपट हो गया" (अर्थात् जवाहरलालके कार्यक्रमसे); "नेहरूकी नीतिसे मेरे कामको जितना धक्का पहुँचा है, उतना तो ब्रिटिश सरकारकी दृढता और दमन-नीतिसे भी नही पहुँचा।"[4]

इन दोनो लेखोमे मेरे मुँहसे जैसा कहलाया गया है उस तरहकी कोई भी बात मैंने कभी कही ही नही, और न इस प्रकारका एक भी वाक्य मैंने मुँह से कभी निकाला है। इसके अलावा, इन वाक्योमे जो विचार प्रकट किये गये है, मेरे दिलमें तो वे कभी उठे भी नही। जहाँतक मै जानता हूँ, जवाहरलाल इस नतीजेपर पहुँचे है कि भारतकी आजादी हिंसात्मक साधनोसे नही, बल्कि अहिंसात्मक साधनोसे ही प्राप्त हो सकेगी। यह भी मै अच्छी तरह जानता हूँ कि उन्होने लखनऊमे "स्वातन्त्र्य-संघर्षमें हिंसाके उपयोगका समर्थन" नही किया।[5]

इसमें सन्देह नही कि हम दोनोके बीच कुछ मतभेद है। कुछ वर्ष पहले हमने एक-दूसरेको जो पत्र लिखे थे उनमे ये मतभेद बिलकुल साफ बता दिये गये थे; और मुझे आशा है कि पत्र-लेखकोके प्रश्नोके उत्तरमें मै जल्द ही हम दोनोके इन मतभेदोको और भी स्पष्ट रूपसे प्रस्तुत करूँगा। पर हमारे आपसके सम्बन्धो पर इन मतभेदोका जरा भी असर नही पड सकता। कांग्रेसके ध्येयके सम्बन्धमें आज भी हमारे विचार उतने ही दृढ है जितने कि हमेशासे थे। मेरे जीवनका किया-धरा काम जवाहरलालके कार्यक्रमसे न तो चौपट हुआ है और न हो सकता है। मैंने तो यह भी कभी नही माना कि मेरे जीवनके कामको "ब्रिटिश सरकारकी दृढता और

१. दिल्लीके हरिजन आश्रमके सदस्य।

२. ना० र० मलकानी।

३. *हिन्दुस्तान टाइम्स* की जिस रिपोर्टमें यह लेख दिया गया था, वह दिनांक "२२ जुलाई, १९३६" के अन्तर्गत छपा था।

४. यह रिपोर्ट *लिटरेरी डाइजेस्ट*में छपी थी।

५. यह वाक्य *युनिटी*में प्रकाशित हुआ था, देखिए "पत्र: के० नटराजनको", ७-७-१९३६ की पाद-टिप्पणी २।

दमन-नीति" से कोई धक्का पहुँचा है। मेरा अपना कोई दर्शन है, ऐसा अगर कहा जा सकता है, तो उस दर्शनके अनुसार किसीके कामको कोई भी बाह्य शक्ति हानि पहुँचा ही नही सकती। हानि तो कामको उसी सूरतमे पहुँचती है जब या तो उद्देश्य बुरा हो, या यदि वह अच्छा हो तो उसके समर्थक झूठे, कायर या मलिन हो; लेकिन ऐसी सूरतमें तो हानि पहुँचना उचित ही है। उक्त लेखमे "गांधीजी की गुप्त योजनाओं" का उल्लेख किया गया है।[1] गाधीको अगर मै जरा भी जानता हूँ तो मै यह दृढताके साथ कह सकता हूँ कि उसने अपने जीवनमे कभी भी कोई योजना गुप्त नही रखी। 'हरिजन' के पाठकोको जो-कुछ जानकारी है, उसके अलावा ऐसी कोई भी योजना यदि नही है जिसे मै प्रकट कर सकूँ, तो इसका कारण यही है कि ऐसी कोई योजना सचमुच है ही नही। दूसरे लेखमे यह कहा गया है कि जवाहरलाल और मैं प्रतिद्वन्द्वी हैं। ऐसा विचार तक मेरे मनमें नही आ सकता कि मैं जवाहरलालका प्रतिद्वन्द्वी हूँ, या जवाहरलाल मेरे। अगर हम एक-दूसरेके प्रतिस्पर्धी है भी, तो हमारी प्रतिस्पर्धा एक ही ध्येयकी प्राप्तिके प्रयत्नमे लगे दो व्यक्तियोकी एक-दूसरेसे प्रेम करने की प्रतिस्पर्धा है। अगर उस ध्येयतक पहुँचने के लिए हम दोनो कभी-कभी अलग-अलग रास्तोपर चलते हुए दिखाई दे तो मुझे आशा है कि दुनिया यह समझ लेगी कि दोनो क्षण-भरके लिए ही एक-दूसरेसे अलग हुए थे, और वह भी इसलिए कि हम फिर अधिकसे-अधिक प्रेम और आकर्षणके साथ एक-दूसरेसे मिलें।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-७-१९३६

२०४. पत्र : साहबजी महाराजको

सेगाँव, वर्धा
२२ जुलाई, १९३६

प्रिय साहबजी महाराज,

मेरे पत्र[2] पर तत्काल गौर करने के लिए अनेक धन्यवाद। कृपा करके मिस्तरीको यथाशीघ्र अवश्य भेज दीजिए। मै बता देता हूँ कि हमारे पास नौ साँचो, एक साधारण-सी सिलाईकी मशीन और एक देहाती सुतारीके अलावा और कोई औजार

१. लिटरेरी डाइजेस्टमें कहा गया था : "गाधीजी की गुप्त योजना को जानने के लिए भारतके ३५ करोड लोग जितने उत्सुक है उतने ही उत्सुक मार्क्विस ऑफ लिनलिथगो हैं। . . . लिनलिथगो अगले वर्ष ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाया गया भारतका नया सविधान लागू करेंगे जिसके अन्तर्गत संघीय शासनकी स्थापना होगी। . . . मुसलमानोंको, जिन्हें हिन्दुओंकी अधीनताका भय है, सन्तुष्ट करने के लिए, संविधानके अन्तर्गत उन्हें केन्द्रीय विधान-सभामें लगभग बराबर सीटें प्रदान की गई हैं। केन्द्रीय विधान-सभाको भारतके विदेश और प्रतिरक्षा-सम्बन्धी मामलोंपर नियन्त्रण प्राप्त नहीं होगा। . . . लिनलिथगो चूँकि जानते हैं कि न तो गाधी और न नेहरूके राष्ट्रवादी समर्थक ही नये सविधानको पसन्द करते हैं, इसलिए वे इन दो प्रतिद्वन्द्वियोंकी अगली चाल की सतर्कतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

२. ११ जुलाई, १९३६ का।

नही है। जिन औजारोकी आवश्यकता होगी उन्हे मिस्तरी अपने साथ ही लेता आये। यदि हमारी सामर्थ्य होगी तो हम खरीद लेगे, नही तो जाते समय अपने साथ ही वापस लेता जाये। वर्धा पहुँचने के दिनसे ६० रुपये प्रतिमास उसको मिलेगे या आप चाहे तो आगरासे रवाना होने के दिनसे। आप कृपया यह भी बताये कि उसके आवासके सम्बन्धमे हमसे क्या अपेक्षा रखी जायेगी। चर्मालय डाकघरसे डेढ मील दूर खुले मैदानमे है। चर्मालयमे ही उसको दो कमरे दिये जा सकते है।

आपने कृपापूर्वक इच्छा प्रकट की है कि मैं कमसे-कम आपकी नयी गोशाला देखने दयालबाग दुबारा आऊँ, इसके लिए मैं आभारी हूँ। मुझे तो देखने मे बहुत सुख मिलेगा, परन्तु मेरी वर्तमान साधना सेगाँव न छोडने मे है। मैं इस छोटे-से गाँवमे अपने पैर जमा लेना और लगातार तीन ऋतुएँ यही बिताना चाहता हूँ। मुझे पता है कि इसमे तीन व्यतिक्रम तो आयेगे ही, पर उनकी सख्या बढाना नही चाहता। परन्तु इतना मैं बता दूँ कि दयालबाग आने के लिए मुझे किसी प्रलोभनकी आवश्यकता नही।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २१६४) से।

२०५. पत्र : अमृतकौरको

२२ जुलाई, १९३६

प्रिय अमृत,

आज रात निकलने का साहस मत करना। कल प्रात काल यथाशक्य शीघ्रातिशीघ्र निकल पडना, परन्तु आराममे खलल डालकर नही। और हाँ, रास्तेमे मीराकी कुटीमे भी हो लेना।

सप्रेम,

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७३४) से; सौजन्य . अमृतकौर। जी० एन० ६८९० से भी

२०६. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२२ जुलाई, १९३६

चि० प्रेमा,

तेरे जन्मदिन पर लिखा हुआ कार्ड मेरे पास पहुँच गया था। मेरे आशीर्वाद तूने मान लिये थे, यह ठीक किया। शिष्या बनने के लिए तुझे काल्पनिक महात्मा बनाना पडेगा। जो इस नामसे प्रसिद्ध है वह महात्मा तो है ही नही; पिताका स्थान जरूर बहुतोके लिए पूरा करता है। और इतनेसे उसे सतोष है। ये अनेक लोग अगर इस बातकी साक्षी भरे कि वह सत्पिता है तो उसे बडा सन्तोष होगा।[1]

तेरा काम ठीक चल रहा होगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

मेरे साथ बा, मनु, लीलावती, बलवन्तसिंह और मुन्नालाल हैं।

तुकडो बुवा भी मेरे साथ रहते हैं।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३८३) से। सी० डब्ल्यू० ६८२१ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कटक

२०७. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

२२ जुलाई, १९३६

चि० नरहरि,

भास्करराव[2] खरा नही निकल पाया। अब मेरा दुःख किसी बातसे नही बढता। समुद्रमे एक नदी न मिले या एक और आकर मिल जाये तो क्या घटता-बढ़ता है? हम रोज प्रार्थनामे गाते ही है कि दुख, दुःख नही है; सुख, सुख नही है। जब भगवान्को भूलेगे तब दुःखका पहाड़ सामने खडा हो जायेगा।

१. प्रेमाबहन कटक गांधीजी को बहुत-से लोगोंकी तरह 'बापूजी' न कहकर 'महात्माजी' कहती थी। उनका कहना था कि 'बापू' शब्दका प्रयोग मैं अपने पिताके लिए करती हूँ, और एक शब्द दो का द्योतक कैसे हो सकता है?

२. भास्करराव वेहेरे।

भास्कररावकी मान्यता इस विचारके विरोधमें जाती है। आज मैंने विनोबाको भी सूचित कर दिया है।

रामजी के बारेमें तुम्हारी बात समझ गया।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९०९७) से।

२०८. पत्र : विजयाबहन गांधीको

२२ जुलाई, १९३६

चि० विजया,[1]

तेरा छोटा-सा पत्र मिला था। तू अभीतक दिल खोलकर नहीं लिख पाती। जमनाने[2] तेरे लिए मोटे अक्षरोंवाली मूल संस्कृत 'गीता' जी की प्रति माँगी है। मुझे यह बात ठीक लगी। मैंने मँगाई है; मिलने पर दोनोंके लिए भेजूँगा।

'गीता'-जी का तीसरा अध्याय तो तेरा जाना हुआ है। वह हमारे लिए बहुत उपयोगी है। जैसा उसका नाम है वैसा ही उसका काम है।[3] उसमे यज्ञका अर्थ (पारमार्थिक दृष्टिसे) किया गया है और कहा गया है कि यज्ञका अर्थ है शारीरिक श्रम। मैंने तो पानी भरना, चक्की पीसना, अन्न कूटना, झाड़ू लगाना और सूत कातने की क्रिया को पंच महायज्ञ[4] कहा है; तू इनमे से कितने यज्ञ करती है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. पुरुषोत्तम गांधीकी पत्नी।

२. नारणदास गांधीकी पत्नी।

३. कर्मयोग।

४. स्वाध्याय, होम, बलिवैश्वदेव, पिंड-क्रिया और अतिथि-पूजन, गृहस्थके लिए ये पाँच परम्परागत महायज्ञ बताये गये हैं।

२०९. तार : कमलनयन बजाजको

२३ जुलाई, १९३६

कमलनयन बजाज
इंडियन कंटिनजेंट
ओलम्पिक विलेज
बर्लिन

सगाई[1] की घोषणा हो गई। भगवान् तुम्हे सुखी रखे। प्यार।

बापू

[अंग्रेजीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० २९०

२१०. तार : लक्ष्मणप्रसाद पोद्दारको

२३ जुलाई, १९३६

सेठ लक्ष्मणप्रसादजी पोद्दार
२ हेस्टिंग्स पार्क रोड
अलीपुर, कलकत्ता

कमलनयन और सावित्री दोनोको मेरा आशीर्वाद। ईश्वर करे यह सम्बन्ध उन दोनोके लिए और देशके लिए कल्याणकारी हो।

गांधी

[अंग्रेजीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० २६७

१. कमलनयन और लक्ष्मणप्रसाद पोद्दारकी पुत्री सावित्रीकी; देखिए अगला शीर्षक।

२११. पुर्जा : जमनालाल बजाजको

[२३ जुलाई, १९३६ के पश्चात्][1]

१. ४ वर्ष तक या जबतक कमलनयनकी पढ़ाई पूरी न हो जाये तबतक विवाह नही करना चाहिए।

२. भविष्यमें सावित्रीको जो शिक्षा लेनी हो वह उसे हिन्दुस्तानमें ही लेनी चाहिए। विवाहके बाद दोनो यात्रा या अन्य किसी कारणसे जहाँ चाहे वहाँ जाये।

३. कमलनयन और सावित्रीको एक-दूसरेसे पत्र-व्यवहार करने की पूरी आजादी अवश्य होनी चाहिए। मै यह नही मानता कि उक्त पत्र-व्यवहार गोपनीय हो।

४. सावित्रीको विवाहके पहले भी जब-तब या जहाँ जानकीबहन आदि हो वहाँ आना-जाना चाहिए।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०५४) से।

२१२. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

सेगाँव, वर्धा
२४ जुलाई, १९३६

चि० कान्ति,

तेरा पत्र मिला। मै तेरा उद्वेग किस तरह शान्त करूँ? तू इतना नाजुक-मिजाज है कि कब किस बातपर दुःखी हो जायेगा, समझ मे नही आता। एक तो यह बात तेरे स्वभावमें है, दूसरे इन दिनो तू दुःखी भी है। हरिलालने जो-कुछ किया है, तू उसे भूल नही पाता। इसीलिए जो तुझे प्रिय नही लगता या जो तू समझ नही पाता, उससे उद्विग्न हो उठता है। इसमें तो ईश्वर ही तेरी सहायता कर सकता है और करेगा। तू जो भजन रस लेकर गाता है उनमे तेरे सभी तापोको शान्त करने की शक्ति है। ये भजन तेरी रक्षा करे।

रामचन्द्रन और पापरम्माका रोष मैं तो समझ ही नही पाया। तूने समझा हो तो मुझे समझाना।

हरिलालके विषयमें तो जब तू आयेगा तब बाते करेंगे। वह शराबमे चूर रहता है, ऐसा रामदासके पत्रसे मालूम हुआ। जब रामदासने उसके रादेरमें दिये गये अमर्यादित भाषणके बारेमें बातचीत की तो उसने कहा कि यह तो हमारे प्रचार करने की रीति है। रामदासने तुझे वह भाषण तो भेजा ही है।

१. देखिए "तार : कमलनयन बजाजको", २३-७-१९३६।

पापरम्माका पत्र तो मैंने फाड़ दिया था। तेरे बारेमें उसमें कोई खास बात नही थी। शुरूसे अन्ततक उसमें तेरी तारीफ ही थी कि तू साधु है, बहुत होशियार हैं, यह उसका पुण्य ही है कि सरस्वतीको तू मिला और इसी तरहकी अन्य बातें। इसलिए मैंने जवाबमें लिखा था, "तुम्हारी आशाएँ पूरी हों।"

वे आग्रह करें तो भी तुझे एक महीनेसे ज्यादा वहाँ नहीं रहना है, यदि तेरी बहुत इच्छा हो तो काकासाहबकी अनुमति लेकर रह सकता है। किन्तु अनुमति लेना तभी योग्य है जब इसकी बहुत जरूरत हो। जरूरतका विचार तो तू ही करेगा।

देवदासका तार मेरी समझमे नहीं आया है। तुझे तो इसमे कुछ भी नही सोचना चाहिए।

तू वहाँ अपने शरीरको तो ठीक बना ही लेना।

सरस्वतीका पत्र इसके साथ है।[1]

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७३०१) से, सौजन्य . कान्तिलाल गांधी

२१३. पत्र : सरस्वतीको

सेगाँव

[२४ जुलाई, १९३६][2]

चि० सरस्वती,

तुमारा खत अंत मे मिला तो सही। ऐसे ही लिखा करो।

तू कैसी नही है? तूने नही कहा था अगर आज विवाह हो सके तो करना चाहती है। उसमे कोई दोष तो नही है? तुमारी इच्छा बालकपनकी थी। मैं तो मामा का या मा का गुस्सा समज नही सकता।

कैसी उस्ताद लडकी है? काती को एक मास के लिए भेजा अब दो मागती है? ऐसे मत करो। एक माससे अधिक समय तक कातीको मत रखो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१५३) से। सी० डब्ल्यू० ३४२६ से भी, सौजन्य : कान्तिलाल गांधी

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

इस बंगाली पिताके-जैसे मामलोंमे तो कर्ज या किसी दूसरे रूपमें आवश्यक रकमकी व्यवस्था करने के बजाय सबसे अच्छी मदद यही हो सकती है कि माता-पिताको समझा-बुझाकर इस बातके लिए प्रेरित किया जाये कि वे अपनी लड़कीके लिए वरका सौदा न करके उसके लिए किसी ऐसे लड़केका चुनाव करे, या खुद लड़कीको ऐसा वर चुन लेने का मौका दे, जो प्रेमके लिए ही उससे ब्याह करे, न कि रुपयेके लिए। इसका अर्थ यह हुआ कि स्वेच्छापूर्वक पति चुनने की प्रवृत्ति बढ़ाई जाये। जाति और प्रान्तकी यह दुहरी दीवार टूटनी ही चाहिए। क्योंकि यदि भारत एक और अखण्ड है, तो निश्चय ही उसमे ऐसे कृत्रिम भेदभाव नही रहने चाहिए, जिनके कारण परस्पर खान-पान और ब्याह-शादीका व्यवहार न रखनेवाले अनगिनत छोटे-छोटे समूह बन जाये। इस निर्दय प्रथाका धर्मसे कोई सम्बन्ध नही है। ऐसी दलील करने से काम नही चलेगा कि इसकी शुरुआत व्यक्तियोसे नही हो सकती, इसलिए जबतक सारा समाज परिवर्तनके लिए तैयार न हो जाये तबतक उन्हे प्रतीक्षा ही करते रहना चाहिए। कभी ऐसा कोई सुधार नही हुआ जिसके लिए पहले कुछ साहसी व्यक्तियोने खुद ही समाजमें प्रचलित निर्दय रस्म-रिवाजोके खिलाफ विद्रोह न किया हो। और स्कूल मास्टरकी लडकी अगर विवाहको एक पवित्र सम्बन्धके बदले, जैसाकि वह निश्चित रूपसे है, बाजारू सौदा मानने से इनकार कर दे, तो भला उससे इन मास्टर साहबपर क्या मुसीबत आ जायेगी? इसलिए मै उन्हे यही सलाह दूंगा कि वे ब्याहके लिए कर्ज या भीख माँगने का विचार साहसपूर्वक छोड़कर अपनी लडकीकी सलाहसे उसके लिए, चाहे जिस जाति और जिस प्रान्तके, किसी उपयुक्त पतिका चुनाव करे, और इस प्रकार उन चार सौ रुपयोको भी बचा ले जो अपने जीवन बीमेसे वे पा सकते है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-७-१९३६

२१६. सेलममें पानीका अभाव

सेलम जिलेके हरिजन सेवक सघके मन्त्री लिखते है :

> यह जिला खुश्क है, और जिन कुओंपर सवर्ण हिन्दुओंका स्वामित्व है उनसे हरिजनोंको पानी नहीं भरने दिया जाता। अलबत्ता, गांधी-आश्रमने दो-तीन गाँवोमें उनके लिए कुओंकी व्यवस्था की है। अवंगीर गाँवमें तो अब हरिजनोंको रेलके इंजनपर निर्भर रहना पड़ता है। वह जब स्टेशनपर आता है तब उससे वे अपने पीनेके लिए पानी लेते हैं। इंजन-ड्राइवर कृपा करके थोड़ा पानी उन्हें दे देता है, उसीपर उन्हें सन्तोष करना पड़ता है। मंगल-पुरम् नामका एक और ऐसा स्थान है जहाँ पानीकी किल्लत बहुत ज्यादा है।

इस पत्रसे दिल हिला देनेवाली स्थितिका पता लगता है। कोई खानगी सस्था तो कभी इस भयानक दुर्दशाका उपाय कर ही नही सकती। सेलम जिलेमे तो वैसे

ही हमेशा पानीका बडा अभाव रहता है। फिर इसके अलावा जब इसके बाशिन्दोके एक बड़े भागमे साधारण भाईचारेका भाव भी न रहे तब तो कष्ट और भी असहनीय हो जाता है। सेलम जिलेके हरिजनोके साथ यही हुआ है। क्या यह जिला-बोर्डका प्रथम कर्त्तव्य नही है कि वह हरिजनोके लिए नियमित जल-व्यवस्था करे? हरिजन लोग समाज द्वारा सबसे ज्यादा उपेक्षित किन्तु उसके सबसे ज्यादा उपयोगी सेवक हैं। और अब, जबकि मद्रास सरकारने एक ऐसा महकमा खोल रखा है जिसका काम हरिजनो-जैसे वर्गोकी कठिनाइयोको दूर करने के उपाय करना ही है, हरिजनोको शुद्ध पानी मिलने में दिक्कत होने की दिन-दिन कमसे-कम शिकायतें हमारे सामने आनी चाहिए। लेकिन इसका यह मतलब नही है कि हरिजनसेवक अपनी सतर्कता कम कर दे या दानी लोग निजी तौरपर हरिजनोके लिए पानीकी व्यवस्था करने की ओरसे लापरवाह हो जायें। हरिजनोके लिए पानीका प्रबन्ध तो होना ही चाहिए, चाहे वह किसी भी जरियेसे क्यो न हो। और यह होगा तभी जब इस दुर्दशाको दूर करने मे सब एक होकर प्रयत्न करे।

[अग्रेजीसे]
हरिजन, २५-७-१९३६

२१७. पत्र: एम० सी० राजाको

सेगाँव, वर्धा,
२६ जुलाई, १९३६

प्रिय राव बहादुर,

डाक्टर मुजेके नाम आपके पत्रका[1] आम तौरपर अनुमोदन करने मे मुझे कोई आपत्ति नही है। मै डॉक्टर मुजे या डॉक्टर अम्बेडकरके दृष्टिकोणको बिलकुल भी समझ नही पाता।[2] मेरे लिए अस्पृश्यता-निवारणका प्रश्न एक स्वतन्त्र प्रश्न है। यह मेरे लिए एक अत्यधिक धार्मिक प्रश्न है। पश्चात्ताप-भावसे सवर्ण हिन्दुओ द्वारा इसके स्वैच्छिक निवारणपर ही हमारे धर्मका अस्तित्व निर्भर है। यह मेरे लिए

१ और २. डॉक्टर अम्बेडकर द्वारा स्वीकृत डॉ० बी० एस० मुजेका प्रस्ताव इस प्रकार था "यदि डॉ० अम्बेडकर अपना यह निश्चय घोषित कर दें कि वे तथा उनके अनुयायी इस्लाम और ईसाई धर्मके बजाय सिख धर्म ग्रहण करने को तैयार हैं और सचाई तथा पूरे हृदयसे अपनी संस्कृतिके प्रचारमें हिन्दुओ और सिखोंके साथ सहयोग करेंगे और दलित जातियोंको इस्लाम धर्ममें खींचने का जो मुस्लिम-आन्दोलन चल रहा है, उसका प्रतिकार करेंगे तो हिन्दू महासभा, उनके हिन्दू संस्कृतिके अन्तर्गत बने रहने के निश्चयको दृष्टिमें रखकर, घोषणा करेगी कि उसे निम्नलिखित बातोमें कोई आपत्ति नहीं है·

(१) दलित जातियाँ सिख मत अपना लें।

(२) नव-सिखोंको अनुसूचित जातियोंकी सूचीमें शामिल किया जाये, और

(३) पूना-समझोतेके अन्तर्गत दलित जातियोंको जो राजनीतिक अधिकार प्रदान किये गये हैं उन अधिकारोंका दलित वर्गके नव-सिख और गैर-सिख सदस्य खुली आपसी प्रतियोगिताके आधारपर उपभोग करें। गाधीजी के विचारों के लिए देखिए "पत्र: बी० एस० मुजेको", ३-७-१९३६।

कभी सौदेबाजीका विषय नही बन सकता। और मुझे प्रसन्नता है कि आपने भी लगभग मेरे जैसा ही दृष्टिकोण अपनाया है।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गाधी

अग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७७८७) से; सौजन्य · घनश्यामदास बिडला

२१८. पत्र : छगनलाल जोशीको

२६ जुलाई, १९३६

चि० छगनलाल,

आज तो पत्र लिखना ही पडेगा। लिखने की इच्छा तो थी ही किन्तु समय नही मिल पाता था।

इसके साथ भावनगरके भगियोका पत्र है। मैने उन्हे लिखा है कि स्थानीय सघके सेवक जैसा कहे वैसा किया जाये। पत्र तुम्हारी जानकारीके लिए ही भेज रहा हूँ।[2] देख लेना और कुछ आवश्यक समझो तो करना।

तुम्हारे व्यक्तिगत पत्रके विषयमे प्राय सोचता रहता हूँ। यह समय तूफानका है। इसमे अपने पाँव जमाये रहना कठिन है। इतना तो निश्चित समझ लो कि नीतिहीन बुद्धि, वेश्याके समान है। बाहरसे दीप्त, नाचती है, गाती है, मुग्ध करती है, किन्तु हमे उतारती है गड्ढेमें। देखता हूँ कि यह बुद्धि-वेश्या आज कितनोको ही गड्ढेमे उतार रही है।

आश्रमके छोटेसे-छोटे नियमका भी तुमको तो कदापि उल्लघन नही करना है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५५३९) से।

२१९. पत्र : तारा एन० मशरूवालाको

२६ जुलाई, १९३६

चि० तारा,

तेरे पत्रका जवाब तो तुरन्त दे देना था। विस्तारसे जवाब देना चाहता था, किन्तु वह सम्भव नही हुआ। अब जवाब दिये दे रहा हूँ। डॉक्टर गौरीकी दवा तो जारी ही रखना।

१. अपने पत्रमें एम० सी० राजाने मुंजेके दृष्टिकोणको चुनौती देते हुए बताया था कि धर्मान्तरण और किसी सम्प्रदायके लोगोंके अन्यत्र जा बसनेमें अन्तर है। उन्होंने लिखा था कि मुंजे द्वारा सुझाये गये राजनीतिक जोड़-तोड़में वे शामिल नहीं हो सकते।

२. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

मुझे नियमित पत्र लिखते ही रहना चाहिए।

यदि अकोलामे रहना स्पष्ट रूपसे धर्म न दिखाई दे तो तुझे महिला-आश्रममें रहकर देख ही लेना चाहिए। यदि तू वहाँ अंग्रेजीका अपना ज्ञान बढाना चाहे तो बढा सकती है, इसके सिवाय, महिला-आश्रममे रहेगी तो बीच-बीचमे मुझसे मिलना हो जायेगा। किशोरलाल और गोमती तो वहाँ है ही। जमनालालजी भी अधिकतर वहाँ रहते है।

मैंने तेरी तरफ सहायताका हाथ बढाया तो है; देखता हूँ, तू उसका लाभ किस हदतक उठाती है। मै नही थकूँगा। तू भी मत थकना। मै तो, तेरी बुद्धि और हृदय जहाँतक जा सकते है, वहाँतक तुझे ले जाना चाहता हूँ, अर्थात् तू मेरे पास निश्चित होकर रह।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५२७) से। सी० डब्ल्यू० ५००३ से भी; सौजन्य : कनुभाई एन० मशरूवाला

२२०. पत्र : मीराबहनको

सेगाँव
२७ जुलाई, १९३६

चि० मीरा,

मैंने तो ऐसी खबरके लिए अपना मन पक्का कर रखा था, विशेषत जब पता चला कि तुम नही आई हो। तुम्हे मनु चाहिए या लीलावती? सध्याको आऊँगा तब बताना। चाहे कीटाणु-प्रकोप हो, अथवा ठड लग गई हो, आशा है, कलतक तुम ठीक हो जाओगी। कल पहाडीकी राह नही बल्कि सीधे तुम्हारे पास आऊँगा। मैं चाहता हूँ, तुम सिरपर मिट्टीकी पट्टी रखो, उससे दर्द मिट जायेगा। गरम या ठडे पानीमें सोडा लो। शेष जब आऊँगा तब।

सप्रेम,

बापू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३६०) से, सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९८२६ से भी

२२१. पत्र : उत्तमचन्दको

२८ जुलाई, १९३६

तुमने अपने चन्देकी रकमोको बूंद बताया है और पूछा है कि उनके विषयमे हम मौन क्यो है। इससे तुम्हारा ठीक तात्पर्य मेरी समझमें नही आया। मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूं कि जिन उपेक्षित कार्योंको मैं कर रहा हूं उनमे एक-एक बूंद महासागरके समान है। तुमने सबसे हालमे जो चेक भेजा है, उसका बहुत-बहुत स्वागत है।

कमला-स्मारकके विषयमे तुम्हारी चेतावनी मुझे अच्छी लगी। उसका नियन्त्रण एक न्यासके सदस्य करेगे। मुझे आशा है कि बीमार स्त्रियो और बच्चोके लिए वह सुख-धाम बनेगा।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य : नारायण देसाई

२२२. पत्र : मैडी मैकार्थीको

२८ जुलाई, १९३६

आपके लेख मुझे मिले और मैंने उन्हे दिलचस्पीके साथ देखा है। परन्तु उन्हे 'हरिजन' मे छापने के पूर्व मैं आपके बारेमे उससे आगे भी बहुत-कुछ जानना चाहूंगा जितना आपने अपने पोस्टकार्डमे बताया है। आपका क्या धंधा है, क्या उम्र है, किस प्रेरणासे आप भारत आईं और भारतीय नाम[1] ग्रहण किया, आपका धर्म क्या है तथा आपकी जीविकाका साधन क्या है? आशा है, आपको इन प्रश्नोमे कोई अशिष्टता नही प्रतीत होगी। साधारणत. हम 'हरिजन' में उन्ही व्यक्तियो के लेख छापते है जिनसे हमारा परिचय हो और जो अपने व्यक्त आदर्शोंको अपने जीवनमें उतारने का प्रयत्न करते हो। पिछले ५० वर्षोंमे मैंने देखा है कि सदात्मा व्यक्तियोका सीधा-सादा लेखन प्रभावकारी होता है, जबकि केवल चतुर व्यक्तियोका प्रतिभाशाली लेखन भी प्रभावहीन सिद्ध होता है। लगता है, लेखक या वक्ताका अपना ओज शब्दोमें उतर आता है।

१. तन्द्रादेवी।

लेखोको छापने के पूर्व मुझे आपकी पूर्ण अनुमति चाहिए कि लेखका भाव वदले विना उनकी काट-छाँट कर सकूं।

आपका,
मो० क० गां०

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य: नारायण देसाई

२२३. पत्र: एफी एरिस्टार्शीको

२८ जुलाई, १९३६

तुम्हे पत्र लिखे तो युग वीत गया। तो, तुम्हारे निकट-सम्वन्धीकी मृत्यु हो गई। ईश्वरकी शोध करनेवालो के लिए तो प्रत्येक क्षतिमें एक लाभ ही है। यह वियोग तो नाममात्रका और अस्थायी है। मृत्यु निरपवाद रूपसे सवके लिए मुक्ति ही है। परन्तु तुम्हे मेरे उपदेशकी कोई आवश्यकता नही। चूंकि तुम्हारे सम्वन्धीकी मृत्युपर मैं कुछ लिखना चाहता था, अत. मैं तुम्हे मृत्युके विपयमे अपना वह आन्तरिक विचार ही वता सकता था जो मेरे मनमें काफी लम्वे अरसेसे कायम है। इस छोटे-से गाँवमे जो-कुछ हो रहा है उसका विवरण तुम्हे देनेमे समय व्यय करने का साहस नही कर सकता।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य: नारायण देसाई

२२४. पत्र: वल्लभभाई पटेलको

सेगाँव
२८ जुलाई, १९३६

भाई वल्लभभाई,

तुम काफी कष्ट भोग रहे हो। अवतक ऑपरेशन हो गया होगा।[1]

. . .[2]का ढोग जवरदस्त कहा जायेगा। परन्तु यह गन्दगी प्रजा-परिपद् में ही हो, सो वात नही है। ऐसा समझ लो कि यह व्यापक वस्तु है। हमारे समाजमें .[3] जैसे वहुत-से लोग मौजूद है। . . .[4]का भण्डा फूट गया। अव यह देखना है कि वे क्या करते हैं।

बापूके आशीर्वाद

१. वल्लभभाईकी नाकका ऑपरेशन ३० जुलाई, १९३६ को हुआ था।
२, ३ और ४. साधन-सूत्रमें नाम छोड़ दिये गये हैं।

[पुनश्च :]

भले ही यहाँ न आ सको पर तुम आराम पूरा लो। मेरी तबीयत अच्छी है।

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० १९६

२२५. पत्र : लक्ष्मीनारायण गाडोदियाको

२८ जुलाई, १९३६

भाई लक्ष्मीनारायण,

दोनोके[1] हस्ताक्षर देखकर मुझे आनद होता है। हिप बाथ तो अभी तक चल रहा है। यहा तो पसीना आता है इसलिये स्टम [स्टीम] की आवश्यकता नही रहती। रात्रिको मिट्टी तो नही लेता हूँ। सिट्झ बाथकी मुझे आदत नही है। अब देखुगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ५६२५) से।

२२६. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

सेगाँव, वर्धा
२९ जुलाई, १९३६

भाई सतीश बाबु,

चन्द्रनाथ यदि सत्य व अहिंसा को पूर्णतया नही मानते है तो शायद ही तुमारा कहना माने।

हेमप्रभा क्यो चिन्ता करती रहती है?

हरिजन सेवक सघका कैसे चलता है? अरुण[2] कैसा है?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १६२७) से।

१. गांधीजी का अभिप्राय शायद लक्ष्मीनारायण गाडोदिया और प्राकृतिक उपचार करनेवाले एक चिकित्सक से है।

२. सतीशचन्द्र दासगुप्तका सबसे छोटा लड़का।

२२७. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
३० जुलाई, १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

मैं कितना चाहता हूँ कि तुम 'पागलपन' के कामोको बन्द कर दो और आम भलाईके कामोके लिए अपनी शक्तिको बचाओ।

अगर तुम अपनी विनोद-वृत्ति कभी न छोडो और अवधि समाप्त होनेतक अपने पदपर बने रहने का निश्चय करके अपनी नीतिको मौजूदा साथियोके द्वारा ही अधिकसे-अधिक आगे बढ़ाने का प्रयत्न करो तो सब ठीक हो जायेगा। समय आ पहुँचा है कि भविष्यका अर्थात् अगले वर्षकी योजनाओका विचार किया जाये। कुछ भी हो, तुम्हे विरोधी पक्षमे नही होना चाहिए। यह मेरी पक्की राय है। जब पिताजी की तरह तुम महसूस करो कि तुम कांग्रेसको अकेले ही सँभालने को तैयार हो तब मेरे खयालसे मौजूदा साथियोकी तरफसे कोई विरोध नही पाओगे। आशा है, बम्बईमे तुम्हारा मार्ग साफ रहेगा।[1]

कमला-स्मारकके बारेमे मुझे बेचैनी हो रही है। मुझे मालूम नही कि चन्दे या योजनाके बारेमे क्या हो रहा है। अगर खुर्शेद या सरूप[2] या वे दोनो इस चीज पर पूरा ध्यान लगा रही हैं तो अच्छा है। सरूपसे कहना कि मैं आशा रखता हूँ कि इस सम्बन्धमे वह जो-कुछ करेगी, उससे मुझे अवगत रखेगी।

मैं यहाँ समाजवादके प्रश्नकी चर्चा नही करूँगा। मैं अपनी टिप्पणीको दुबारा देख रहा हूँ। देख चुकते ही तुम्हारे पास उसका मसौदा पहुँच जायेगा। अखबारोको वह बादमे भेजा जायेगा। मेरी कठिनाई सुदूर भविष्यके बारेमे नही है। मैं तो सदा वर्तमानपर ही पूरा ध्यान लगा सकता हूँ और उसीकी मुझे कभी-कभी चिन्ता होती है। अगर वर्तमानको सँभाल लिया जाये तो भविष्य अपने-आप सँभल जायेगा। लेकिन मुझे आगेकी बात नही सोचनी चाहिए।

आशा है, तुम्हारा स्वास्थ्य सचमुच अच्छा होगा।

सप्रेम,

बापू

१. बम्बईमें २२ और २३ अगस्तको होनेवाली अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें।

२. विजयलक्ष्मी पंडित।

[पुनश्च :]

मेरे और जेंकिन्सके बीचका पत्र-व्यवहार तुम देख लेना। मुझे भी कानूनी कार्रवाई से घृणा है। परन्तु यह मामला मुझे ऐसा लगता है, जिसमें कार्रवाई जरूरी है।

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३६; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

२२८. चन्देकी अपीलका मसौदा[1]

[३० जुलाई, १९३६][2]

हरिजन सेवक संघकी ओरसे विनयपूर्वक कमसे-कम रु० . . . के लिए अपील की जा रही है। १९३३-३४ में चन्दा इकट्ठा करने और जनताके अन्त करणको झकझोरने के निमित्त गांधीजी ने दौरा किया था, परन्तु अब पुन· उनसे यह आशा नहीं की जा सकती। अस्पृश्यताको हिन्दू-धर्मका कलंक समझनेवाले सवर्ण हिन्दुओंके लिए हरिजनोद्धारके कार्यको समर्थन देनेसे बड़ा और कोई कार्य नहीं हो सकता। अत अब जनताके लिए विचारणीय प्रश्न यह है कि हरिजन सेवक संघने जो उत्तरदायित्व उठाया है उसे पूरा करने के लिए वह संस्था क्या पर्याप्त योग्यता रखती है। परिशिष्टमें दिये हुए विस्तृत ब्योरेसे जनता इसका निर्णय स्वयं कर सकती है। और यदि वह संस्थाकी योग्यताको सन्तोषजनक माने, तो हम आशा करते हैं कि इस अपीलका बड़ी उदारतासे प्रत्युत्तर मिलेगा।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०५०३) से। सी० डब्ल्यू० ७९७६ बी से भी; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

२२९. चन्देकी अपीलका अनुमोदन

३० जुलाई, १९३६

मैं इस अपीलका[3] बड़े उत्साहसे समर्थन करता हूँ। अस्पृश्यता-निवारण हृदय-परिवर्तन पर आधारित है। धनका व्यय चाहे कितनी ही बुद्धिमत्तासे किया जाये, वह हृदय-परिवर्तन नहीं ला सकता। वह परिवर्तन तभी आयेगा जब हमारे पास नि स्वार्थ और धार्मिक भावना रखनेवाले कार्यकर्ता काफी हों। आर्थिक चंदे इस बातकी खरी कसौटी होंगे कि ऐसे व्यक्ति हैं या नहीं। क्योंकि हृदय-परिवर्तनका एक फल होना चाहिए — हरिजनोंके बीच अविरत कार्य। और यह काम पर्याप्त धनके बिना असम्भव

१ और २. यह मसौदा गांधीजीने तैयार किया था; देखिए "पत्र : एस० आर० वेंकटरामनको", ३०-७-१९३६।

३. देखिए पिछला शीर्षक।

है। बिना विपुल धनके न तो पाठशाला या छात्रावास खुल सकते है, न कुएँ खुद सकते है। मैं आशा करता हूँ कि धनी और निर्धन दोनो अपनी सामर्थ्यके अनुसार इस अपीलके उत्तरमे उदारतापूर्वक दान देंगे।

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०५०३) से। सी० डब्ल्यू० ७९७६ ए से भी, सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

२३०. पत्र: एस० आर० वेंकटरामनको

३० जुलाई, १९३६

प्रिय वेंकटरामन,

श्री बिडलाकी इच्छानुसार मैंने चन्देकी अपीलका[1] मसौदा बनाया है। उसके साथ ही मैं अपना अनुमोदन[2] भी भेज रहा हूँ। फोटो-नकल छापने के निमित्त उसकी एक सुलिखित प्रति बनाने का समय नही रहा। यदि श्री बिडलाके मनमे कुछ भिन्न रूपरेखा हो तो उनकी इच्छानुसार इस मसौदेमें फेर-बदल कर लिया जाये। मेरी रायमे तो यह अपील तभी निकालनी चाहिए जब सहायताके पक्के वचन मिल जायें और सम्पूर्ण भारतमे चन्दा इकट्ठा करने का प्रबन्ध हो जाये।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०५०३) से। सी० डब्ल्यू० ७९७६ से भी, सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

२३१. पत्र: अमतुस्सलामको

३० जुलाई, १९३६

प्यारी बेटी अमतुस्सलाम,[3]

मुझे तेरे दो खतोका जवाब देना है। तेरा ऑपरेशन वहाँ भी हो सकता है। देवदासकी मारफत जो हो सकेगा, करूँगा। व्रजकिशन जब आयेंगे तब वे तो रहेंगे ही। साथका पत्र[4] देवदासको देना।

रुक्मिणीके बारेमें समझा। अब तो वह गई न? मलकानीका उसे हैदराबाद पहुँचा आना ही ठीक होगा।

१ और २. देखिए पिछले दो शीर्षक।
३. यह सम्बोधन उर्दूमें है।
४. उपलब्ध नहीं है।

तेरा ऑपरेशन हो जाने के बाद तुझे बुलाऊँगा। इस बीच अपना शरीर ठीकमे सँभालना। जो चाहिए सो मँगा लेना। देवदासको अगर तू सचमुच भाई मानती है तो तुझे जो चाहिए वह उससे निःसकोच माँगना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४२)से।

२३२. पत्र : आनन्दशंकर बा० ध्रुवको

३० जुलाई, १९३६[1]

सुज्ञ भाईश्री (प्रो० ध्रुव),[2]

आपके महादेवको लिखे दोनो पत्र मै ध्यानपूर्वक पढ गया हूँ। मुझे जो चाहिए वह ज्ञानियोके लिए नही वल्कि हरिजनो और सेवकोके लिए चाहिए, जो उसे समझ सके और उसपर अमल भी कर सके। मै आपसे नये सिरे से अध्ययन नही करवाना चाहता किन्तु आप अपने विस्तृत ज्ञानके आधारपर कोई ऐसी चीज दीजिए जिसे आप . . .[3] घंटेमे या अधिकसे-अधिक आठ घंटेमे लिख सके।

मैंने आपको लिखा तो था ही कि 'आपकी हिन्दू-धर्म-सम्बन्धी पुस्तक मुझे बहुत अच्छी लगी थी। मै उसे दुबारा पढ जाऊँगा। किन्तु मुझे उसमे से उद्धृत अंश नही चाहिए। घडी-भरके लिए कल्पना कीजिए कि आप किसी गाँवमे हरिजन-समाजके बीच बैंठे हुए हैं, और फिर कल्पनामें ही आप हरिजन बूढे-बूढियो और बच्चोसे चर्चा करे और उन्हे धार्मिक शिक्षा दे। इस तरहसे जो मिले वह मुझे चाहिए और उसपर आपकी मोहर होनी चाहिए। महादेव इसका अंग्रेजीमें अनुवाद भी नही करेगे। आपने उन्हे जो प्रमाण-पत्र दिया है वह तो बिलकुल सही है लेकिन एक तो उन्हे समय नही है और दूसरी बात यह कि मुझे आपकी भाषा चाहिए। सरल अंग्रेजी लिखना आपकी सामर्थ्यके बाहर नही है और अन्तमे किसी तरहका सुझाव देने का अधिकार तो हम दोनोको देंगे न? आपकी स्वीकृतिसे ही उन सुझावोको स्थान दिया जायेगा।

अब आपके कार्यक्रमके बारेमे। उक्त कार्यक्रमको पढकर ही मै घबरा गया। फिलहाल गुजरात या हिन्दू-धर्मको पाण्डित्यकी जरूरत नही हैं। उससे न तो धर्मकी रक्षा होगी और न हिन्दुस्तान या गुजरातकी ही। मेरे कहने का तात्पर्य यह नही है कि पाण्डित्यकी कोई आवश्यकता ही नही है। पाण्डित्यके खयालसे नीरस रचनाएँ देनेवाले तो बहुत लोग पड़े है। किन्तु लोगोमे घुलमिल जानेवाले और सच्ची धार्मिक

१. साधन-सूत्रमें स्थानकी जगह अहमदाबाद दिया हुआ है जो स्पष्ट ही चूक है।

२. १८६९-१९४२; संस्कृतके पण्डित और गुजराती लेखक।

३. साधन-सूत्र अस्पष्ट होने के कारण यहाँ एक शब्द पढा नहीं जा सका।

लगनवाले लोग थोड़े ही है। उनमे से एक मैं आपको मानता हूँ। यह माना जा सकता है कि पण्डितो और पढे-लिखोके लिए आपने अपने पाण्डित्यका अच्छा-खासा हिस्सा दिया है। किन्तु ग्रामीणो और मुझ-जैसोको आपने क्या दिया है? शिक्षितोको आपने जो दिया है उसमे से मुझ-जैसा यदि कुछ चुरा ले तो उसे देना नही माना जायेगा। टॉल्स्टॉयने जो किया वही आप कीजिए। उन्होने परवर्ती कालमे केवल रूसके अनजान किसानोको अपनी नजरके सामने रखा और उनके लिए जिस साहित्यकी रचना की वह सदा रहेगा। क्या मैं आपसे इस तरहकी चीजकी कुछ आशा न करूँ?

जो हो, मैं जो चाहता हूँ वह मैंने कह दिया। मैं इतना अधिक नही लिखना चाहता था। इसमें से जो आपके गले उतरे उसे ले ले और बाकी सब छोड दे। इससे मुझे दु.ख नही होगा। याचकके लिए लज्जा कैसी? दाता तो अपनी इच्छा और सामर्थ्यके अनुसार ही देता है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य: प्यारेलाल

२३३. पत्र: सत्यानन्द बोसको

[३० जुलाई, १९३६][1]

प्रिय सत्यानन्द बाबू,

आप ठीक ही कहते है कि लोकमतमे समय-समयपर जो परिवर्तन आते रहते है, कांग्रेसको उनका पूरा खयाल रखकर चलना है। पडित जवाहरलाल इस बातके प्रति पूरी तरह सजग है और इस तरहके सवाल जैसे-जैसे सामने आते है, उन्हें हल करने की वे कोशिश करते रहते हैं। मेरा काम तो उन लोगोको सलाह-मशविरा देना-भर है जिन्हे किसी मामलेमें मेरी राय लेना जरूरी लगता है।

इसलिए अच्छा हो कि आप अपने विचार पडित नेहरूको सूचित करे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य: प्यारेलाल

१. प्यारेलाल नैयरने इस पत्रको १९३६ के पत्रोंके साथ रखा है। इसके अतिरिक्त अगले शीर्षकसे लगता है कि यह पत्र इसी तिथिको लिखा गया होगा।

२३४. पत्र : कनु गांधीको

३० जुलाई, १९३६

चि० कनु,

इसके साथ छह पत्र हैं। सेठ जुगलकिशोर और गंगावहनके पत्रोंकी[1] नकल रख लेना। बाकीके बिना कुछ किये डाकमें छोड देना। सत्यानन्द बोसके पत्रकी नकल भी कर रखना।

इस प्रकार तू महादेवका काम सँभालने के योग्य बनता चला जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

२३५. पत्र : जयन्ती एन० पारेखको

३० जुलाई, १९३६[2]

चि० जयन्ती,[3]

तेरे बारेमें समाचार पाता और लेता ही रहता था। तूने मुझे लिखा इससे मुझे प्रसन्नता हुई। तेरे विचार-परिवर्तनके बारेमें मुझे कुछ नही कहना है। तू अपनी चिन्तन-शक्तिमें उत्तरोत्तर वृद्धि किया कर और तुझे जो सच लगे उसपर निर्भयता से अमल किया कर। इसमें तेरा श्रेय ही है।

परन्तु तू प्रतिज्ञासे बँधा हुआ था और उसे भंग करने से पहले तुझे अपनी टुकडीके नायकके पास जाकर अपने धर्मसंकटकी बात बताना तेरा धर्म था। इसमें तू चूक गया। सैनिकका धर्म सहज नही है। यदि सभी ८० सैनिक अपनी-अपनी इच्छासे प्रतिज्ञाका अर्थ लगायेंगे तो नायक क्या करेगा? ऐसे कहीं देशका काम होता है? किन्तु जो दूध बिखर गया वह फिर नही मिल सकता। यह तो भविष्यमें याद रखने की बात हुई।

मैं यह जानता हूँ कि गुजरातमें वैमनस्य बढ रहा है। यह कहना मुश्किल है कि इसमें किसका दोष है। किन्तु मैंने देखा है कि गुजरातके समाजवादी सत्यासत्यमें भेद नही करते। और उनमें कुछ ऐसे लोग भी हैं-जिनके बारेमें मैंने ऐसा सोचा भी नही था। इसका निश्चय ही मुझे दुःख है। मैं यह आशा किये हुए हूँ कि स्वयं तूने कूटनीतिको धर्म नही माना होगा।

१. ये पत्र उपलब्ध नहीं हैं।

२. साधन-सूत्रमें स्थानकी जगह अहमदाबाद दिया हुआ है, जो स्पष्ट ही चूक है।

३. एक आश्रमवासी जो बादमें साम्यवादी हो गये थे।

तू मुझसे आकर मिल गया था। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम दोनो भाई आर्थिक रूपमे उन्नति कर रहे हो।

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य. प्यारेलाल

२३६. पत्र : हीरालाल शर्माको

३० जुलाई, १९३६

भाई शर्मा,

वेविटकी[1] खोज हो रही है। अबतक पता नही चला। सूत[2] कितना था? इतनी उस नवरकी खद्दर भेजी जायगी। बारीक सूतकी तलाशमे हूँ। भूल हि गया था। ग्राममे जाने की मेरी विचारधारा तो जानते हो। बडे खर्च मे न पडो। द्रोपदी और बच्चा अच्छे होगे। मुझको लिखा करो।

बापुके आशीर्वाद

बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृ० २५८ के सामने प्रकाशित प्रतिकृति से

२३७. पत्र : बी० एस० मुंजेको

सेगाँव, वर्धा
३१ जुलाई, १९३६

प्रिय डॉ० मुंजे,

राव बहादुर एम० सी० राजाने सेठ बिडलाको और मुझे यरवडा-पैक्ट[3] पर आप दोनोके पत्र-व्यवहारकी प्रतियाँ भेजी है और कहा है कि हम उनका इच्छानुसार उपयोग करे। परन्तु आपके पत्रो पर "गोपनीय" लिखा है। मेरे विचारमे तो विषय-वस्तुमे गोपनीयताका कोई स्थान नही। परन्तु पत्र-व्यवहारके प्रकाशनके लिए राव बहादुरकी अनुमतिका लाभ उठाने से पहले मैं आपकी अनुमति चाहता हूँ। इसी सिलसिलेमे मैं यह कहने की इजाजत चाहता हूँ कि आपका प्रस्ताव[4] यरवडा-पैक्टकी मूलभूत भावनापर कुठाराघात करता है और अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनके उद्देश्यके पूर्णत. विपरीत है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७७८८)से, सौजन्य. घनश्यामदास बिडला

१. ई० डी० वैबिट द्वारा लिखित *प्रिंसिपल्ज ऑफ लाइट ऐंड कलर*, जो हीरालाल शर्माने स्विट्‌जरलैंडमें प्राप्त की थी।

२. जिसे हीरालाल शर्माने अपने कुर्तोके लिए स्वयं काता था।

३. देखिए खण्ड ५१, परिशिष्ट २।

४. देखिए "पत्र : एम० सी० राजाको", २६-७-१९३६ की पाद-टिप्पणियाँ १ और २।

२३८. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

३१ जुलाई, १९३६

चि० कान्ति,

यहाँ औजारोकी जरूरत तो पल-पल पडती है। मैंने गाँवमे बने औजार पाने की कोशिश की। वे नही मिले। अभी बगलोरमे औजार बन रहे हैं। इस बीच औजारोकी तेरी पेटीकी कोई जरूरत मगनवाडीमे नही थी, इसलिए मैंने उसे यहाँ मँगवा लिया है।

लगता है कि उसमे से कुछ औजार गुम हो गये हैं। कुछ भी हो, मुझे जितने मिले मैंने उनकी एक सूची बना ली है। पत्रके पीछे सूची भेज रहा हूँ। जिनके गुम हो जाने की याद आये उनके बारेमे लिखना, उन्हे ढुँढवाने की कोशिश करूँगा।

पत्रके पीछेकी लिखावटसे तू जान जायेगा कि राजकुमारी यहाँ है। वह कल शामको आई। अब तो तू स्वीकार कर लेगा कि यह जगह भी तेरी धर्मशालाकी तरह हो गई है। एक कोना मेरा, एक राजकुमारीका, एक तुकडोजी महाराजका और एक मुन्नालालका। बीचमे बा, लीलावती और मनु। तुकडोजी महाराजसे मेरा तात्पर्य है — वे खुद और उनके भक्तगण। सारे दिन भक्तोकी टोलियो-पर-टोलियाँ आती रहती है। क्या तूने इनका नाम सुना है? नागपुरमे मुझसे मिलने आये थे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७३०३) से, सौजन्य · कान्तिलाल गाधी

२३९. एक बातचीत[1]

[१ अगस्त, १९३६ के पूर्व]

अब, यह तो तुम देखती ही हो कि मुझे दाढी बढानी पड रही है।

इसपर उस महिलाने कहा, "पर मेरे पतिने आने से इनकार ही कब किया? जब भी आप बुलायें, वे आने को तैयार तो हैं।"

सो तो मैं जानता हूँ, पर वह हरिजनोके बाल बनायेगा?

यह मैं नहीं जानती, महाराज; पर आपके बाल वह खुशीसे बनाने को तैयार है।

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। सेगाँवके मुखियाने गाधीजी से स्पष्ट कह दिया था कि वह अस्पृश्यताके मामलेमें उनका साथ नहीं देगा और इसी कारण गाँवके नाईको गाधीजी की हजामत बनाने से रोका गया था। गाँवके मुखियासे गाधीजी की बातचीतके लिए देखिए अगला शीर्षक।

लेकिन जब वह मेरे हरिजन भाइयोंकी हजामत बनानेको तैयार नहीं है, तो फिर मैं उससे अपनी दाढी कैसे बनवा सकता हूँ?

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-८-१९३६

२४०. एक बातचीत[1]

[१ अगस्त, १९३६ के पूर्व]

तो, पाटिल, क्या तुम्हारे गाँवमें मुझे नाई मिलेगा ही नहीं?

नहीं महात्माजी, वह तो तैयार है। क्या मैं उसे भेज दूँ?

यह मैं जानता हूँ कि तुम उसे भेज सकते हो। पर मेरे हरिजन लडकेका क्या होगा? यह तो तुम्हें मालूम ही है कि मैं यहाँ अपने एक कुटुम्बके साथ रहता हूँ और गोविन्दको तो मेरा पुत्र समझो। अगर तुम्हारा नाई मेरे गोविन्दको अपने पास नहीं आने देगा, तो मैं उससे कैसे दाढी बनवा सकता हूँ? तुम अगर मेरी स्थितिमें होते तो क्या करते? बतलाओ न! मान लो, तुम्हें ऐसी जगह बुलाया जाये, जहाँसे तुम्हारा लडका जान-बूझकर निकाल बाहर कर दिया गया हो, तो क्या तुम वहाँ जाओगे?

जमनालालजी, जो बूढ़े पाटिलको बरसोंसे जानते हैं, बोले, "बापूजी, क्यों बेचारेको फंदेमें फँसा रहे हैं? हाँ, अगर इन्हें कोई यह यकीन दिला सके कि आप अस्पृश्यता दूर कर दें तो वे सीधे स्वर्ग चले जायेंगे, तभी ये ऐसा करेंगे। पर ये विश्वसनीय आश्वासन चाहते हैं; और हम लोगोंका आश्वासन मानने को तैयार नहीं हैं।" इसपर सब लोग जोरसे हँस पड़े। बूढ़े पाटिलको भी हँसी आ गई। उसने कहा, "आप सरीखे महात्मा जो भी करें सब उचित है, पर हम तो साधारण लोग हैं।"

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-८-१९३६

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

२४१. बातचीत : आगन्तुकोंसे[1]

[१ अगस्त, १९३६ के पूर्व]

वे साधु[2] या बुवा फिलहाल तो गांधीजी के कुटुम्ब के सदस्य ही हैं। उनके अनेक भक्तजन उनके दर्शन करने आते हैं। उन्हें बड़ा आश्चर्य होता है कि साधु बावा न केवल महात्मा गांधीके साथ रहते हैं, बल्कि उनकी झोंपड़ीमें एक हरिजन लड़केके हाथका पकाया हुआ खाना भी खाते हैं। . . . वे आते और उनसे बहस करते हैं। कभी-कभी साधु बाबा जब उनकी शंकाओं और कठिनाइयोंका निवारण नहीं कर पाते, तब वे गांधीजी से पूछते हैं।

[एक आगन्तुक :] लेकिन अस्पृश्यता तो, महात्माजी, पशु-पक्षी तक मानते है, पर आप मनुष्यसे भी अस्पृश्यता दूर कराना चाहते हैं।

[गाधीजी :] यह तो आपने कुछ नयी-सी बात सुनाई। मैं जरा समझ तो लूँ।

गधा कभी कुत्तेके साथ नहीं रहेगा; कौआ कबूतरके अंडोको नहीं छुएगा; प्रत्येक योनिका अपना-अपना मण्डल है, अपना-अपना स्थान है, और ईश्वरकी सृष्टिमें प्रत्येकका अपना-अपना उपयोग है।

किन्तु गायो, गधो और कुत्तोको अगर आप साथ-साथ खिलाये और रखे तो वे खुशीसे एक ही जगह बने रहेगे। फिर आप क्या यह मानते है कि जो अन्तर गाय और कुत्तेके बीच है वही आपके और एक अस्पृश्यके बीच है?

क्या हम जंगली खूँखार जानवरोंसे नहीं बचा करते हैं?

तो शेर, चीता और साँपसे क्या हम इसलिए बचते रहते है कि वे अस्पृश्य है? यह भी भला कोई उपमा है। उनसे तो इसलिए दूर रहते है कि हम उनसे डरते है। हम उन्हे पाल सके तो बडे शौकसे पाल लेगे, और वे हमसे हिल-मिल भी जायेगे। जो उन्हे हिला-मिला लेता है, उसके चारो ओर लोगोके ठठ लगे रहते है, और कहते है कि अवश्य इस मनुष्यमे कोई चमत्कारी सिद्धि है।

लेकिन हम जो सूअरोंको नहीं छूते इसका यह कारण थोड़े ही है कि हम उनसे डरते हैं, बल्कि इसलिए कि वे गन्दे हैं।

मान लीजिए, एक आदमीकी नजरमे, जो आपसे अधिक स्वच्छ कपडे पहने हुए है, आप गन्दे मालूम हो, और आपको वह अस्पृश्य समझे, तो कैसा लगेगा? और

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से, उद्धृत।

२. तुकडोजी महाराज।

आप अपने घरकी स्त्रियोके विषयमे क्या कहेगे? क्या वे आपके बच्चोका तमाम मल-मूत्र साफ नही करती? फिर भी वे गृहस्वामिनी है। ऐसा क्यो?

अच्छा, मान ले कि जिन्हे आप 'अस्पृश्य कहते है वे आपकी ही तरह साफ कपड़े पहन ले और आपकी खातिर वे जो गन्दा काम करते है — जिसके लिए आपको उनका आभार मानना चाहिए, न कि उन्हे नीच मानकर उनसे बचना चाहिए — वह कर चुकने के बाद अच्छी तरह नहा-धो डाले, तो फिर आप उन्हे छुएंगे? मान लीजिए, वे अच्छा साफ खाना खाते है, और गोमास या मुर्दार मासको छूते भी नही, तो क्या आप उनका स्पर्श करेगे? हिन्दुस्तानमें ऐसे न मालूम कितने हरिजन है, जो स्वच्छ और पवित्र रहते है, तो भी हम उन्हे अस्पृश्य ही समझते हैं। हमारे इस घोर पापको ईश्वर किस तरह क्षमा करेगा?

पर आप तो यह भी चाहते है कि हम उन्हें अपने मन्दिरोंमें भी ले जायें। गलीज काम करनेवाले लोगोको हम मन्दिरोंमें कैसे ले जा सकते है?

मैंने यह कब कहा कि वे मैलेकी टोकरियाँ सिरपर लिये हुए मन्दिरोंमें जाये? मैंने क्या यह नही कहा है कि स्नान और स्वच्छता-सम्बन्धी जो शर्तें दूसरे हिन्दुओके लिए रखी है, उन्हे पूरा करके ही हरिजन मन्दिरोमे जायेंगे? आपके अनुसार तो चीर-फाड़ करनेवाला एक भी डॉक्टर और दाई हमारे मन्दिरोमें जाने के योग्य नही।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-८-१९३६

२४२. बातचीत: एक मित्रसे[1]

[१ अगस्त, १९३६ के पूर्व]

[मित्र:] आठ घंटे रोजके शारीरिक श्रमपर आप क्यों जोर देते है? एक सुव्यवस्थित समाजमें क्या सम्भव नहीं कि केवल दो घंटे शारीरिक श्रम कराया जाये, और बौद्धिक तथा कलात्मक प्रवृत्तियोके लिए काफी फुरसतका समय छोड़ दिया जाये?

[गांधीजी:] हम यह जानते है कि श्रमिक और बौद्धिक दोनो वर्गोंके लोगोमे से, जिन्हे यह सब फुरसतका समय मिलता है, वे उसका अच्छेसे-अच्छा उपयोग नही करते। सच पूछिए तो हमने तो अक्सर 'खाली दिमाग शैतानका घर' वाली कहावत ही चरितार्थ होते देखी है।

नहीं; फुरसतका समय हम बेकार नहीं जाने देंगे। मान लीजिए, हम दिनमें दो घंटे तो शारीरिक श्रम करें और छह घंटे मानसिक श्रम, तो क्या यह राष्ट्रके लिए हितकर न होगा?

१. महादेव देसाई के "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

मैं नही जानता कि आपकी इस योजनापर कहाँतक अमल हो सकेगा। मैंने इसका हिसाब लगाकर तो नही देखा, पर अगर कोई मनुष्य मानसिक श्रम केवल अपने लाभके लिए करेगा, न कि राष्ट्रके लिए, तो मुझे इसमें सन्देह नही कि यह योजना विफल ही होगी। हाँ, सरकार उसे उसके दो घंटेके शरीर-श्रमके लिए काफी मजदूरी दे दे, और फिर उसे वगैर कुछ दिये दूसरा काम करनेके लिए मजबूर करे, तो अलवत्ता वह एक अच्छी चीज हो सकती है। पर यह तो सरकारकी जोर-जवरदस्तीसे ही हो सकता है।

उदाहरणके लिए, आप अपनेको ही ले लीजिए। आप आठ घंटेका शारीरिक श्रम तो रोज कर नहीं सकते, आठ घंटे या इससे भी ज्यादा आपको मानसिक श्रम करना पड़ता है। आप अपनी फुरसतके समयका यह दुरुपयोग तो नही करते?

यह तो अनिवार्य रूपसे करना पड़ता है। फुरसत इसमे कहाँ है? इस फुरसतमे मैं टैनिस वगैराह खेलने तो जाता नही। लेकिन अपने उदाहरणको लेकर भी मैं आपसे यह कहूँगा कि अगर हम अपने हाथसे आठ घटे रोज मेहनत करते होते, तो हमारी मानसिक शक्तियोका इतना अच्छा विकास होता जिसकी कोई हद नही। हमारे मनमे एक भी निरर्थक विचार न उठता। यह वात नही कि मेरा मन निरर्थक विचारोसे एकदम मुक्त हो गया है। अव भी मेरी जो-कुछ प्रगति है वह इस कारण है कि जीवनमे वहुत पहले मैंने शारीरिक श्रमका महत्त्व जान लिया था।

पर अगर शारीरिक श्रमकी स्वभावतः ऐसी महिमा है तो हमारे यहाँके लोग तो आठ घंटेसे भी ज्यादा मेहनत करते हैं, पर इसका उनकी मानसिक पवित्रता या दृढ़तापर कोई ऐसा उल्लेखनीय असर तो पड़ा नहीं।

केवल शारीरिक या मानसिक श्रमसे कोई शिक्षा मिलती हो यह वात नही, पर हमारे देशके लोग सख्तसे-सख्त मशक्कत बिना समझे-बूझे जडकी तरह किये चले जाते है और इससे उनकी सूक्ष्म सहज बुद्धि निष्प्राण हो गई है। यही मेरी सवर्ण हिन्दुओसे जबरदस्त शिकायत है। श्रमजीवी वर्गके लोगोको उन्होने जो काम दिया है वह सख्त और नीरस मेहनतका है, जिसमे न तो उन्हे कोई आनन्द मिलता है और न कुछ दिलचस्पी ही। अगर समाजमे वे सवर्ण हिन्दुओकी वरावरीके समझे जाते, तो जीवनमे उनका स्थान आज सवसे अधिक गौरवका होता। यह युग तो कलियुग समझा जाता है। मैं कह सकता हूँ कि सत्ययुगमें — चाहे यह युग जब भी रहा हो — हमारे समाजकी व्यवस्था वर्तमान युगसे कहीं अच्छी थी। हमारे प्राचीन देशमे कितनी ही सभ्यताएँ आईं और चली गईं। इसलिए यह ठीक-ठीक कहना कठिन है कि किसी खास युगमे हमारी कैसी स्थिति थी। लेकिन इसमे तो जरा भी शक नही कि हमारी यह हालत शूद्रोके प्रति कई सदियोसे उपेक्षाका भाव रखने से ही हुई है। आज गाँवोकी संस्कृति — अगर वह कोई सस्कृति कही जा सकती है तो — एक भयकर सस्कृति है। गाँवके लोग आज जानवरोसे भी वदतर हालतमे रहते है। प्रकृति जानवरोको काममे लगाने और स्वाभाविक रीतिसे रहने के लिए मजवूर करती है। पर हमने अपने श्रमजीवी वर्गोको ठुकराकर इतना नीचे गिरा दिया है कि वे प्राकृतिक रीतिसे न काम कर सकते है और न रह ही सकते

हैं। अगर ये लोग बुद्धि और रसपूर्वक काम करते, तो हमारी हालत आज कुछ दूसरी ही होती।

तो श्रम और संस्कृतिको क्या हम अलग नहीं कर सकते?

नही, प्राचीन रोमवासियोने ऐसा करने का प्रयत्न किया था, पर वे बुरी तरह असफल हुए। बिना श्रमकी सस्कृति, या वह सस्कृति जो श्रमका फल नही है, एक रोमन कैथलिक लेखकके अनुसार, नाशकारक ही है। रोम-निवासी भोग-विलासमें पड़कर नष्ट हो गये, उनकी सस्कृतिका नाम-निशान भी न रहा। सिर्फ लिख-पढकर या तमाम दिन व्याख्यान देकर मनुष्य अपनी मानसिक शक्तियोको विकसित नही कर सकता। मैंने जितना-कुछ पढा है वह जेलमे मिले हुए फुरसतके वक्तमे पढा। उसे पढ़ने से मुझे इसीलिए लाभ हुआ कि मैंने यो ही ऊटपटाँग तौरसे नही, बल्कि किसी प्रयोजनसे ही पढ़ा था। हालाँकि मैंने लगातार महीनो आठ-आठ घटे शारीरिक श्रम किया है, तो भी मैं समझता हूँ कि मानसिक शक्ति उससे कुछ कम नही हुई है। मैं अक्सर दिनमे चालीस-चालीस मील चला हूँ, तब भी मुझे कोई शिथिलता मालूम नही हुई।

लेकिन आपकी तो मानसिक शक्ति ही इस प्रकारकी है।

नही, यह बात नही है। आपको मालूम नही कि मैं स्कूलमे और इग्लैंडमें भी एक औसत दरजेका विद्यार्थी था। किसी सभा-सोसाइटी या निरामिषाहारियोकी जमात तक मे मुझे बोलने का साहस नही होता था। आप यह कल्पना न कर बैठे कि ईश्वर ने मुझे कोई असाधारण शक्ति दी है। मेरा खयाल है कि ईश्वरने उस समय मुझे बोलने की शक्ति न देकर अच्छा ही किया। आपको जानना चाहिए कि हम लोगोमें सबसे कम अगर किसीने पढ़ा है तो वह मैं हूँ।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-८-१९३६

२४३. बातचीत: ग्राम-सेवक प्रशिक्षणशालाके छात्रोंसे[1]

[१ अगस्त, १९३६ के पूर्व]

प्र०: समाजवादियों को इसी बात की लगन है कि लोगोके अन्यायपूर्वक कमाये हुए धनको कैसे छीना जाये।

उ०. इस बातका निर्णय कौन करेगा कि यह न्यायपूर्वक कमाया हुआ है और वह अन्यायपूर्वक? इसका निर्णय तो केवल अन्तर्यामी ईश्वर ही कर सकता है, या फिर धनिको और निर्धनोके द्वारा नियत किये गये योग्य विशेषज्ञ। इसका निर्णय हर कोई नही कर सकता। पर अगर तुम यह कहते हो कि सभी तरहकी मिल्कियत और धन-दौलतका रखना चोरी है, तो फिर सभीको अपनी-अपनी धन-सम्पत्तिका

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

त्याग कर देना चाहिए। क्या हमने यह त्याग किया है? यह आशा रखकर कि दूसरे हमारा अनुसरण करेंगे, हम खुद सम्पत्तिका परित्याग आरम्भ कर दें। जिनका यह विश्वास है कि उनकी खुदकी सम्पत्ति अन्याय-अर्जित है, उनके लिए उसके त्याग के सिवा दूसरा कोई मार्ग ही नही है।

प्र० : हिंसाका मूल क्या है? क्या अन्याय और अपमानको रोकने के लिए हिंसाकी उत्पत्ति नहीं हुई?

उ० : नही, हिंसाके कारण तो स्वार्थ, क्रोध, काम, लोभ आदि है।

प्र० : मैं अपना प्रश्न शायद अच्छी तरह स्पष्ट नहीं कर सका। मान लीजिए, मेरे सामने एक भयंकर अन्याय हो रहा है, जिसे देखकर मेरी हिंसक वृत्ति उत्तेजित हो उठती है। तो क्या इस हिंसाकी उत्पत्ति उस अन्यायके कारण ही नहीं हुई?

उ० : नही, क्रोध तुम्हारी हिंसाका मूल कारण है। यह प्रश्न अलग है कि ऐसे मौकेपर हिंसा करना उचित है या अनुचित, पर इसमे कोई शक नही कि क्रोध ही हिंसाका मूल है।

प्र० : भिखमंगोके साथ कैसा सलूक किया जाये? उन्हें भूखो मरते देखकर दरवाजेसे कैसे हटा सकते हैं?

उ० : हमे यह भेद अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि कौन भिखारी है और कौन भूखो मरनेवाला। ये भिखमगे अक्सर काफी हट्टे-कट्टे होते है। उनमे कुछ तो चोरी भी करते है। मनुष्यको भीख माँगने का कोई अधिकार नही। हाँ, उसे रोजीके लिए काम माँगने का अधिकार अवश्य है। हम भीख न दे, पर जो काम माँगे उसे किसी-न-किसी काममे लगा देना हमारा धर्म है।

प्र० : पर इस कर्त्तव्यका पालन आप कैसे करेंगे, जब कि चार आदमियोंके लिए आपके पास काम है, और आ जाते है आठ? क्या आप आठोको काममें लगा लेंगे?

उ० : नही, क्योकि मुझे अपनी मर्यादाओका ध्यान तो रखना ही चाहिए।

प्र० : तब तो वे भूखों मरने की अपेक्षा भीख ही माँगेंगे।

उ० : नही, उन्हे भीख माँगने के बजाय कोई-न-कोई काम ही करना होगा। अभी सेगाँवमे मेरा काम अच्छी तरह नही जमा है। जब सब ठीक-ठीक जम जायेगा, तो फिर एक भी आदमी काम न होने के कारण भूखा नही रह सकेगा। जो बेकार आदमी मुझसे काम माँगेगा, उसके हाथमे मै चरखा और चक्की दे दूंगा।

प्र० : गाँवोमें विरोध तो हमारा अवश्य होगा। जैसे, सफाईके कामका वे विरोध करते है। तो ऐसी स्थितिमें हमें क्या करना चाहिए?

उ० : विरोध बर्दाश्त करना चाहिए।

प्र० : वे हमारा बहिष्कार कर दें, हमें अपने कुओंसे पानी न भरने दें, तो?

उ० : भले करे। हम दूसरे कुओसे पानी भरेगे, पर उनके साथ हम लडाई-झगडा नही करेगे। हम तो उन्हे शान्तिके साथ समझाने का ही जतन करेगे। हमें सभी तरहकी कठिनाइयोंका वहाँ शान्ति और साहसके साथ सामना करना पड़ेगा।

प्र० : कठिनाई मेरे लिए यह है कि अगर मेरे सफाईके कामसे नाराज होकर लोग प्रार्थनामें सम्मिलित न हों, चरखा चलाना छोड़ दें, तब भी क्या मुझे अपना काम जारी रखना ही चाहिए?

उ० यह तुम्हारी उस भावनापर निर्भर करता है जिससे प्रेरित होकर तुम वहाँ जाओगे। अगर तुम खासकर सफाईके कामके लिए ही वहाँ जाओगे तो तुम्हे वह काम हर्गिज नही छोडना चाहिए। कमसे-कम हम अपने घरकी सफाई तो करेंगे ही। अपने इर्दगिर्दकी जगह भी साफ रखेंगे। पर अगर तुम्हारे खयालमे, पहले कताई और रात्रि-पाठशाला जारी करने से काममे आसानी होती है, तो सफाईका काम बादमे भी हाथमे लिया जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-८-१९३६

२४४. गलतफहमियोंकी गुत्थी

मेरे सामने कई उर्दू अखबारोकी कतरने पडी हुई है, जिनमे हालमे ही स्थापित अखिल भारतीय साहित्य परिषद्की कार्यवाहियोकी[1], और साथ ही बाबू राजेन्द्रप्रसाद, बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, पंडित जवाहरलाल नेहरू और मेरी बहुत सख्त और कटु आलोचना की गई है। हमपर यह इलजाम लगाया गया है कि इसमे हमारा कुछ छिपा हुआ मतलब है। लेकिन मुझे मालूम है कि हमारा ऐसा कोई मतलब नही है। लिखनेवालो ने यह समझने की भी तकलीफ गवारा नही की कि हमने परिषद्में क्या कहा और क्या किया था। उनका यह खयाल है कि परिषद् का अन्दरूनी मंशा यह है कि उर्दूको हटाकर उसकी गद्दी हिन्दीको दे दी जाये, और उसे संस्कृतके शब्दोसे इस कदर लाद दिया जाये कि मुसलमानोके लिए उसका समझना करीब-करीब असम्भव हो जाये। बाबू पुरुषोत्तदास टंडनने इलाहाबादमे हिन्दी साहित्य सम्मेलनका संग्रहालय खोले जाने के अवसरपर जो भाषण दिया था, उससे ये लोग यह नतीजा निकालते है कि उनके इस दावेमे, कि २३ करोड़ हिन्दुस्तानी हिन्दी बोलते है या कमसे-कम समझ लेते है, सचाईका गला घोट दिया गया है। इन लेखोमे इतना ही नही, और भी ताने दिये गये है। पर उनकी तरफ मुझे ध्यान देने की जरूरत नही। मेरा मतलब तो सिर्फ यह है कि अगर हो सके तो उन गलतफहमियोको दूर कर दूं, जिनकी वजहसे हम लोगोपर ये कटाक्ष किये गये है।

पहले आखिरी बातको लूं। इन लेखकोके पास टंडनजी का पूरा भाषण होता, तो उनको यह पता चल जाता कि इन २३ करोड हिन्दुस्तानियोमे उन्होंने जान-बूझकर उर्दू बोलनेवाले हिन्दुओ और मुसलमानोको शामिल किया था। इसीसे उन्होने

१. नागपुरमें; देखिए खण्ड ६२, पृ० ३७०-७३।

हिन्दी शब्दके प्रयोगमे उर्दूको शामिल कर लिया था। १९३५ में इन्दौरके साहित्य सम्मेलनमें[1] टंडनजी की सलाहसे जो प्रस्ताव पास हुआ था, उसके मुताबिक हिन्दीका मतलब उस जबानसे था जिसे उत्तर हिन्दुस्तानमे हिन्दू और मुसलमान दोनो बोलते है और जो देवनागरी या उर्दू लिपिमे लिखी जाती है। लेखकोंको अगर यह व्याख्या मालूम होती तो उन्हे किसी तरहकी शिकायत न होती—हाँ, अगर हिन्दी शब्दपर ही उन्हे आपत्ति हो तो बात दूसरी है। अगर इसपर भी वे आपत्ति करते, तो वह दु:खकी बात होती। उत्तर हिन्दुस्तानमे बोली जानेवाली भाषाके लिए "हिन्दी" ही मूल शब्द है। उर्दू नाम तो—जैसाकि सब अच्छी तरह जानते है—खास तौरसे और खास मतलबसे रखा गया। अरबी लिपि भी मुसलमान शासकोंके सुभीतेके लिए रखी गई थी। इतिहासका अगर यही क्रम है, तो जबतक "हिन्दी" शब्दमें दोनो जबानोको शामिल माना जाता है, तबतक उसके प्रयोगकी कोई मुखालफत नही होनी चाहिए। खैर, जो-कुछ भी हो, ज्यादासे-ज्यादा जो मतभेद है वह यही रह जाता है कि एक ही चीजका बोध कराने के लिए दो शब्दोमे से कौन-सा काममे लाया जाये।

हिन्दीको सस्कृत शब्दोसे लादने की शिकायतमे कुछ सचाई तो है। हिन्दीके कुछ लेखक अपने लेखोमे बेमतलब सस्कृत शब्द ठूंसने का आग्रह रखते है। पर इसी तरहकी शिकायत उन उर्दू लेखकोंके खिलाफ भी की जा सकती है जो फारसी या अरबी शब्दोके इस्तेमालपर अनावश्यक जोर देते है। इससे भी बुरी बात यह है कि वे भाषाका व्याकरण भी बदल देते है। ये दोनो ही तरहकी ज्यादतियाँ कुछ ही समयमे गायब हो जायेंगी, क्योकि साधारण जनता ऐसी भाषाको कभी अपना नही सकती। जिस जबानको सामान्य जनता नही समझ सकती, उसकी उम्र लम्बी नही होती।

रही भारतीय साहित्य परिषद्की बात, सो उसका मशा तो भिन्न-भिन्न प्रान्तोके अच्छे-अच्छे विचारोंको हिन्दी भाषाके द्वारा सारे भारतके लिए सुलभ बनाना है। इसमे, जैसाकि कुछ लेखोमे ताना दिया गया है, हमारा कोई छिपा हुआ मशा या साम्प्रदायिक हेतु नही है।

"हिन्दी-हिन्दुस्तानी" शब्द तो मेरे कहने से अपनाया गया था। यह शब्द हिन्दीकी परिभाषा एक सयुक्त शब्दके द्वारा बतलाने-के लिए अपनाया गया था। मौलवी अब्दुल कादर साहबने "हिन्दी-हिन्दुस्तानी" के बजाय सिर्फ "हिन्दुस्तानी" या "हिन्दी-उर्दू" के प्रयोगका प्रस्ताव रखा था। मुझे तो इन दोनोमे से किसी पर कोई एतराज नही है। लेकिन भारतीय साहित्य परिषद् अपने जन्मको नही भूल सकती थी। परिषद्का विचार तो इन्दौरके साहित्य सम्मेलनमे उठा था, और नागपुरमें सम्मेलनकी सरक्षकता मे ही उसने एक निश्चित रूप धारण किया। इसीलिए हिन्दी शब्दको रखना जरूरी हो गया। उसकी जगह उर्दू शब्दको रखने मे जो बुराई होती,

१. हिन्दी साहित्य सम्मेलन में, जो २० अप्रैल से २३ अप्रैल तक हुआ था; देखिए खण्ड ६१, पृ० ३३-३४।

उसकी वजह तो मै बतला ही चुका हूँ। लेकिन, जैसाकि मैने दिखलाने की कोशिश की है, "हिन्दी", "हिन्दुस्तानी" और "उर्दू" एक ही अर्थ प्रकट करनेवाले विभिन्न शब्द है और उनसे एक ही भाषा या जबानका मतलब निकलता है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १-८-१९३६

२४५. एक जरायमपेशा जाति

इस पृथ्वीपर शायद ऐसी जगहे बहुत नही है जहाँ हिन्दुस्तानकी तरह जुर्म करना ही कुछ जातियोका पेशा हो और धर्मके आवरणमे वह पनपता रहता हो। इसीके कारण, हमारे देशमे जरायमपेशा अधिनियम (क्रिमिनल ट्राइब्स ऐक्ट) नामका एक कानून भी बना हुआ है। हिसार जिलेके अहेरी लोग भी ऐसी ही एक जाति माने जाते है। ७ जूनको गाँगन खेडी गाँवमे उनका एक सम्मेलन हुआ था, जिसके सभापति लाला ठाकुरदास भार्गव थे। इस सम्मेलनमे कोई १,००० से ऊपर अहेरी और २०० से अधिक सवर्ण हिन्दू शामिल हुए थे। इसकी जो रिपोर्ट मेरे पास आई है उससे मालूम पडता है कि कुछ लोगोने अहेरियोसे यह कहा था कि अगर वे मुसलमान हो जाये तो उन्हे इस कानूनके अमलसे मुक्त करने मे मदद दी जायेगी और उनपर जरायमपेशा जाति होने का जो कलक लगा हुआ है वह दूर हो जायेगा। इसलिए अहेरियोने एक जगह एकत्रित होकर हिन्दू-धर्मके प्रति अपनी अटल श्रद्धाकी घोषणा की और सरकारसे प्रार्थना की कि वह उन्हे इस जरायमपेशा कानूनके अमलसे मुक्त कर दे।

लेकिन इन दिनो उत्तेजनाका जैसा वातावरण बना हुआ है उसमे सिर्फ सम्मेलनो और प्रस्तावोके जोरपर न तो सासारिक प्रलोभनोके सहारे चलाई जानेवाली धर्मान्तरणकी प्रवृत्ति को रोका जा सकता है और न वह मुक्ति ही हासिलकी जा सकती है जो वे चाहते है। अपना धर्म छोड़कर दूसरे धर्ममे चले जाने के खतरेको रोकने और विशेष कठिनाइयोसे मुक्ति पाने का तो एकमात्र उपाय आत्म-शुद्धि तथा सवर्णो द्वारा दलितोकी निरन्तर निःस्वार्थ सेवा ही है। जरायमपेशा कौमे और अस्पृश्य जातियाँ तो, हिन्दू-समाज धर्मके पवित्र नामपर अपने ही लोगोके साथ जो अमानवीय और धर्म-विरुद्ध व्यवहार करता आ रहा है, उसके लिए उसे मिलनेवाला दण्ड है। और शरीरके किसी भी अवयवमे कोई तकलीफ हो तो सारे शरीरपर उसका असर पड़ता ही है। इसलिए इसका एकमात्र प्रभावकारी उपाय यही है कि अन्दर से ही सुधार किया जाये। अगर सारा समाज शुद्ध हो जाये तो उसपर होनेवाले बाहरी आक्रमण कितने ही भयंकर क्यो न हो, उसपर उनका कोई प्रभाव नही पड़ेगा। इसके विपरीत, बाहरी आक्रमणोसे कितना ही लडते रहिए, उससे अन्दरूनी खराबी नही रुकेगी। अलबत्ता, बाहरी आक्रमणोका मुकाबला करने मे जो शक्ति खर्च होगी उससे और थकावट जरूर आयेगी, जिससे विनाश और जल्दी

होगा। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि जो जिम्मेदार सवर्ण हिन्दू इस सम्मेलनमें शामिल हुए थे वे सम्मेलनमें शुरू किये गये कामको जारी रखेंगे और रचनात्मक दिशामें ही अपनी शक्ति लगायेंगे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-८-१९३६

२४६. पत्र : रफी अहमद किदवईको

सेगाँव, वर्धा
१ अगस्त, १९३६

प्रिय किदवई,

मुझसे सन्देश देने को कहना तो यो भी [मेरे जबड़ोंमें से][1] किसी सही-सलामत दाँतको उखाड़ने-जैसा है, और उसपर भी जिसका आपने वर्णन किया है, वैसी सभाके लिए सन्देश देने को कहना!

जिस सभाकी अध्यक्षता मोहम्मद अली जिन्ना और उद्घाटन जवाहरलाल करे उसके लिए कोई सन्देश भेजना तो निश्चय ही बेकार होगा।

हृदयसे आपका,

मौलवी रफी अहमद किदवई
४ ए, रटलेज रोड
लखनऊ

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

२४७. पत्र : बाल द० कालेलकरको

१ अगस्त, १९३६

चि० बाल,

स्वयं भोजन बनाने के अपने प्रयोगोके आधारपर मैं जिस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ वह यह है : स्वयं भोजन बनाने से पैसे बचते है, तन्दुरुस्ती बढ़ती है, उत्साह और व्यावहारिक ज्ञान बढ़ता है। इससे अनायास ही आहार-शास्त्रका ज्ञान हो जाता है, जिससे अन्य लोगोंके लिए भोजनका प्रबन्ध करने की शक्ति बढ जाती है।

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

१. साधन-सूत्रमें यहाँ कुछ शब्द पढ़े नहीं जा सके। उन्हें अनुमान से पूरा किया गया है।

२४८. पत्र : कीकाभाई लावजीको

१ अगस्त, १९३६

भाई कीकाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। हम कह सकते है कि यरवडा-समझौता तो सबके लिए है। यदि यह हृदयमे उतर जाये तो सब अच्छा ही होगा। फिलहाल तो उसे दुबारा छापने की आवश्यकता नही है। आवश्यकता जान पडने पर मै इसे अवश्य छपवाऊँगा।

डॉ० अम्बेडकर जो कहते है वह हमे सहन करना चाहिए। जिसकी शिराओमें हिन्दू रक्त है वह अन्य हिन्दुओके अनुचित कृत्योके कारण अपना धर्म कदापि नही छोड़ेगा। हम यह भले ही कहे कि हरिजन अपने कर्मोके कारण दुःखी है, किन्तु मुझ-जैसे लोग यह कदापि नही भूल सकते कि सवर्ण माने जानेवाले हिन्दुओके जुल्म उनका दुःख बढा देते है। यदि सवर्ण हिन्दू सुधर जाये और प्रायश्चित्त करे तो आजकल हरिजनोमे जो दोष जान पड़ते हैं, वे यदि जड-मूलसे दूर नही होगे तो हलके तो पड़ ही जायेंगे।

मिलोकी सख्या बढने के साथ-साथ शराबखोरी तो निश्चय ही बढेगी।

बापू

कीकाभाई लावजी
पत्थर कुआँ
अहमदाबाद

गुजरातीकी नकल प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य प्यारेलाल

२४९. पत्र : वल्लभभाई पटेलको

१ अगस्त, १९३६

भाई वल्लभभाई,

ऑपरेशन ठीक हो गया। सफल हो जायें तो तुम मुक्त हो जाओगे।

राजारामको मैंने जो जवाब दिया[1] उसकी नकल तो तुम्हे मिल गई होगी। तुमने अगर अभीतक जवाब न दिया हो, तो मेरा सुझाव यह है· "तुम्हारे पत्रमे उत्तर देने-जैसी कोई नयी महत्त्वकी बात नही है। इसलिए मुझे अपने पहले पत्रमे कुछ भी जोडना नही है।"

अस्पताल छोडने की जल्दी मत करना और पूरा आराम लिये बिना काममे मत लगना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – २ : सरदार वल्लभभाईने, पृ० १९६-९७

२५०. पत्र : गंगाबहन बी० झवेरीको

१ अगस्त, १९३६

चि० गगाबहन,

काफी समय बाद तुम्हारा पत्र मिला तो सही। नयी पाठशालाके बारेमे मैं कोई राय कायम नही कर सकता। उसके सचालकके नीतिनाशक विचार मेरे गले नही उतरते। किन्तु मेरे इस विचारको भी निरर्थक मानना। पन्नालालकी सलाह लेना और उनकी राय जान लेने के बाद तुमने जो सोचा हो वैसा करना।

समाजवादके बारेमे यदि तुमने सब-कुछ पढ़ा न हो तो थोड़ा-बहुत पढने के बाद निर्णय करना। समाजवाद एक बात है और जवाहरलाल दूसरी बात। व्यक्ति और विचारधारामे सदा ही अन्तर रहा है।

गुजरातीकी नकलसे प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य · प्यारेलाल

१. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

२५१. पत्र : कृष्णचन्द्रको

१ अगस्त, १९३६

चि० कृष्णचन्द्र,

तुमारा खत मिला। गिरोगे, चढोगे, गिरोगे और चढोगे ऐसे होते-होते कभी विजय पाओगे। प्रयत्न से कभी मत हारना। मुझको अवश्य लिखा करो। मेरे तरफ से उत्तर की प्रतीक्षा न की जाय। मुझे फुरसद नही रहती। कभी हो सका तो दो पंक्ति लिखुगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२८७) से।

२५२. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

सेगाँव, वर्धा
२ अगस्त, १९३६

चि० मणिलाल और सुशीला,

इस बार मणिलालने मुझे नही लिखा। मैं पत्र बायें हाथसे लिख रहा हूँ, क्योंकि दाहिना हाथ थोड़ा थक गया है। जो लोग हरिलालकी तारीफ करना चाहते है, वे खुशीसे करे। यहाँ तो वह बिलकुल भुला दिया गया है। शराबमें गर्क रहता है। यह ऐसा निकला, इसमे मेरी लालन-पालन करने की पद्धतिका कोई दोष होना चाहिए। मेरा जीवन भ्रमणमे गुजरा, उसमे बडे परिवर्तन होते रहे; यह स्पष्ट है कि मैं उसे सँभाल नही सका।

मनु अब मेरे पास है। मजेमें है। बा और लीलावती तो है ही। सुशीलाको स्वादपर काबू करना चाहिए और अपना शरीर सुधारना चाहिए। केवल स्टार्च और चीनी खाने में ही स्वाद नही है। तुम्हे वहाँ फल पर्याप्त मिल सकते है और तुम आसानीसे स्वास्थ्य बनाये रख सकते हो। दूध और ताजे फलोसे शरीर ठीक हो ही जाता है। रोज घूमना तो चाहिए ही।

लगता है, फिलहाल तो रामदास स्थिर हो गया है। नीमू भी उसके साथ रहने के लिए चली गई है। देवदास और लक्ष्मी दिल्लीमें है।

किशोरलाल अकोला गये थे। वहाँसे बम्बई चले गये है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८५५) से।

२५३. पत्र : रावजीभाई एम० पटेलको

सेगाँव, वर्धा
३ अगस्त, १९३६

चि० रावजीभाई,

पत्र मिला। एन्ड्रयूजको फिजीसे चला गया समझो। फिर भी मैं पूछताछ करूँगा।

अगर तुम अच्छा घी इकट्ठा कर सको तो ठीक हो। मैं तो फिलहाल मगनवाडीमें ही तैयार कराने का आग्रह कर रहा हूँ। एक अच्छा विशेषज्ञ मिल गया है। मैंने तो सेगाँवमे भी गाय रखी है।

लगता है, तुम्हारा काम ठीक तरहसे चल रहा है। पत्र लिखते रहना।

बापूके आशीर्वाद

श्रीयुत रावजीभाई पटेल
पो० ऑ० पेटलाद वरास्ता आणन्द
बी० बी० ऐंड सी० आई० रेलवे

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९००८) से।

२५४. पत्र : बी० के० दीवानजीको

सेगाँव, वर्धा, म० प्रा०
४ अगस्त, १९३६

प्रिय दीवानजी,

विदेशी पेढियोके एजेन्टोंकी तरह काम करना भारतीयोके लिए वाछनीय नही हो सकता, क्योकि इन पेढियोका कारोवार देशके नैतिक और भौतिक हितोके लिए वाधक है। इतनेमे आपके सभी प्रश्नोका उत्तर आ जाता है। लेकिन मैं यहाँ इतना और कह दूँ कि भारतीय या विदेशी कोई भी ऐसा विज्ञापन स्वीकार करना, जिसका उद्देश्य ऐसी चीजोंको विज्ञापित करना हो जो सम्बन्धित अखवार द्वारा प्रतिपादित नीतिके विरुद्ध हो, उचित नही ठहराया जा सकता।

चिकित्सकका धधा नेक तो जरूर है, लेकिन तभी जव वह पैसेके लिए नही, वल्कि सेवाके लिए किया जाये और चिकित्सक रोगोके इलाजको नही, वरन् उसकी

रोकथामको प्रमुखता दें और उनके इलाजके सम्बन्धमें ऐसी मर्यादा स्वीकार करे जिससे मानवेतर प्राणियोके प्रति दयाभाव का हनन न हो।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे . प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल

२५५. पत्र: क० मा० मुंशीको

४ अगस्त, १९३६

भाई मुशी,

वे[1] दूसरा पत्र निकालना चाहते है तो फिर हम 'हस' को किसलिए रखे? तुम उन्हे ऐसा क्यो नही लिख देते :

"चूंकि आप अन्य कोई पत्रिका निकालना ही चाहते हैं तो फिर आप 'हस' ही चलाते रहे। परिषद् अपने मुखपत्र का कोई और नाम रख लेगी।"[2]

यदि तुम ऐसा लिखना ठीक न समझो तो अपने विचारके अनुसार लिख देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७६०४) से; सौजन्य: क० मा० मुंशी

२५६. पत्र: सुभाषचन्द्र बोसको

सेगाँव, वर्धा
५ अगस्त, १९३६

प्रिय सुभाष,

आप जवाब देनेमे देर कर सकते है लेकिन मुझे तो लौटती डाकसे ही लिखना है। मुझे मालूम है, कैदीके लिए मित्रोके पत्र पाने का क्या महत्त्व होता है।

मुझे भी इस बातका खेद है कि हम नितान्त अराजनीतिक मामलोपर भी खुलकर चर्चा नही कर सकते।

मुझे हैरानी है कि आपको 'हरिजन' की प्रति नही मिल रही है। मै पूछताछ कर रहा हूँ।

१. मुंशी प्रेमचन्द।
२. मूलमें यह अनुच्छेद अंग्रेजीमें है।

मैं अपने आहार-सम्बन्धी प्रयोगोमे निरन्तर जुटा हुआ हूँ। आजकल मैं खाने-योग्य जगली पत्तियाँ ढूँढ रहा हूँ और मुझे इसमें आशातीत सफलता मिली है। मैं सेगाँवके वाहरसे ताजी शाकभाजी नही मँगा रहा हूँ। मैं दूसरी वात यह कर रहा हूँ कि ताजे फलोके विकल्पकी तरह नीवू और गुडका उपयोग कर रहा हूँ।

कई तरहके प्रयोगोके वाद मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि गायका दूध, ताजी हरी साग-भाजी (इसमे पौधोके फल और पत्ते भी शामिल हैं), प्याज और लहसुन, गेहूँ या और कोई अनाज, गुड़ और कोई रसीला फल सम्पूर्ण आहार है। जिन लोगोको दिमागी काम करना होता है मैं उन्हे सामान्यतया दालोका उपयोग न करने की सलाह देता हूँ। वनस्पतिमे पाया जानेवाला प्रोटीन उतनी आसानीसे नही पचता जितनी आसानीसे जीवोसे प्राप्त प्रोटीन पचता है। मैंने प्याज और लहसुनका उल्लेख किया है। वहुत-से चिकित्सक प्याज और लहसुनके उपयोगकी जोरदार सिफारिश करते हैं।

हृदयसे आपका,

श्री सुभाष वोस
मार्फत सुपरिटेन्डेन्ट ऑफ पुलिस
दार्जिलिग

अंग्रेजीकी नकलसे प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य . प्यारेलाल

२५७. पत्र : साहबजी महाराजको

५ अगस्त, १९३६

प्रिय साहवजी महाराज,

आपके पत्रके लिए वहुत-वहुत धन्यवाद। हम १२ तारीखको मिस्तरीका इन्तजार करेंगे। उसके आने-जाने का खर्च उसे दिया जायेगा, और आगरासे उसके प्रस्थानके दिनसे ही उसका वेतन शुरू हो जायेगा।

इस प्रयोगसे[1] मैं काफी आशा रख रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २१६५) से।

१. देखिए "पत्र : साहवजी महाराजको", २२-७-१९३६।

२५८. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

५ अगस्त, १९३६

चि० गंगाबहन,

तुम्हारे मनमे निराशा किसलिए? ५७ वर्ष किस तरह गये? मैंने तो तुम्हे जबसे जाना है, परिश्रमशील ही जाना है। परिश्रम करने की शक्तिके सिवा और कुछ हमे ईश्वरने दिया ही नही है। आलस्य न करके कर्त्तव्यमे लगे रहें तो फिर निराश होने का कोई कारण ही नही दिखता।

रमीबाई बहुत दु:खी हो गई, ऐसा लगता है। उसकी कोई मदद की जा सकती है क्या? बधूभाईके बारेमे मालूम हुआ।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती गगाबहन वैद्य
रामबाग, बोरीवली
बी० बी० ऐंड सी० आई० रेलवे

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ६ : गं स्व० गंगाबहेनने, पृ० ९४। सी० डब्ल्यू० ८८३४ से भी; सौजन्य : गगाबहन वैद्य

२५९. पत्र : न० चि० केलकरको

सेगाँव, वर्धा
६ अगस्त, १९३६

प्रिय श्री केलकर,

खबर है कि आपने कहा है "जब वे (गाधीजी) खुलेआम कहते है कि उनका उद्देश्य तिलककी राजनीतिक विचारधाराको कमजोर बनाना है, इत्यादि, इत्यादि।" यदि आपने ऐसा कहा हो, तो कृपया मुझे बताये कि मैंने कब ये शब्द कहे? ऐसा-कुछ कभी कहने का मुझे तो स्मरण नही है, और भला मैं कह भी कैसे सकता था,

जबकि आपके कथनानुसार ही, जो सत्य भी है, "मैंने श्री तिलकके कार्यको आगे बढाया है"?[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ३१२०) से; सौजन्य : काशिनाथ नरसिंह केलकर

२६०. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

सेगाँव, वर्धा
७ अगस्त, १९३६

भाई घनश्यामदास,

दोनो खत पढ गया। बाकी सब बाद मे। पारनेरकर अबतक मुझे मिला नही है।

इंटरव्यु[2] ठीक है। मुझे उसमे से कुछ आशाजनक नही है; वह कुछ भी कर नही पायगा। उनकी नीति और हमारी मे जमीन-आसमान का फरक है। अब उसकी ओर जाना ही नही, ऐसा मेरा दृढ विश्वास है। मैंने किसी प्रकार का वचन दिया था ऐसा कहना ठीक नही। जो-कुछ भी किया वह सब करने योग्य था, इसलिये हुआ। कुछ प्रतिज्ञा के कारण नही। आगे बढ़ने मे प्रजाहित नही था। इतना भविष्यकी स्पष्टता के लिये लिखता हू।

इलेकशनमे मैं क्या कर सकता हू? हा, काग्रेसमे झगडा रोकने की चेष्टा अवश्य करूगा। कर रहा हूँ।

बापुके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ८०२१ से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. इसके जवाबमें श्री केल्करने लिखा : "तिलकके जिस कार्यको आपने आगे बढ़ाया है वह है जोरदार राजनीतिक आन्दोलन। लेकिन तिलककी राजनीतिक विचारधारा से मेरा अर्थ है तिलकका राजनीतिक दर्शन और पद्धति। राजनीतिक दर्शन और पद्धतिकी दृष्टिसे उनमें और आपमें बहुत बड़ा अन्तर है। ... अहिंसा, सत्य और असहयोगपर आपके आग्रहका अर्थ यह लगाया गया कि जिस राजनीतिक विचारधाराको आपने अपदस्थ किया उसमें उक्त तीनों चीजोंके विलोमका समर्थन किया जाता था। ..." देखिए "पत्र : न० चि० केल्करको", २४-८-१९३६ भी।

२. घनश्यामदास बिड़लाने वाइसराय लॉर्ड लिनलिथगोसे ५ अगस्त, १९३६ को भेंट की थी।

२६१. भेंट: पॉला लेकलर और वाई० एस० चेनको[1]

[८ अगस्त, १९३६ के पूर्व]

कई प्रश्नोंके जवाबमें गांधीजी ने कहा:

राजनीतिक कार्यक्रमके विषयमे तो आपको पण्डित नेहरूके पास जाना चाहिए। वैसे तो वे मुझसे भी ज्यादा व्यस्त रहते है, फिर भी सम्भवत आपको अपना उपयोगी आध घटा दे सकेगे। मै तो अपनेको राजनीतिक मामलोपर बोलने का अधिकारी नही समझता, और काग्रेससे अवकाश ग्रहण किये दो साल हो जाने के कारण अब एक तरहसे पिछड़-सा गया हूँ।

लेकिन क्या यह बात नहीं है कि सम्भवतः दूसरोको मौका देने के लिए, और इस खयालसे कि हार-थककर वे फिर आपके ही पास आयेंगे, आपने कांग्रेससे अवकाश ग्रहण किया है?

मेरा यह ढग नही है। मै तो सत्यका उपासक हूँ। जब मैंने काग्रेस और देशकी तथाकथित राजनीतिसे अवकाश ग्रहण किया तब मैंने सच्चे अर्थोमे अवकाश ग्रहण किया था। अब तो मेरा शरीर और मन दोनो इस सेंगाँवमे ही है। आगे क्या होगा, यह तो केवल ईश्वर ही जानता है।

[वाई० एस० चेन:] आपका शरीर ही यहाँ है; लेकिन आपकी आत्मा तो सारे संसारमें भ्रमण कर रही है।

हाँ, मगर मेरी राजनीतिक आत्मा नही। आज मै जो कर रहा हूँ, यानी गाँवमे रह रहा हूँ, वह तो मुझे अपने कार्य-कालके आरम्भमें ही करना चाहिए था, लेकिन उसके बजाय, अब अपने जीवनकी साध्य-वेलामे मै वह काम कर रहा हूँ।[2]

अमेरिकी महिला चाहती थीं . . . कि बातचीत करके वे विक्षुब्ध संसारके लिए गांधीजी से यह सन्देश प्राप्त करे कि अपनी इस विपन्नावस्था और अस्त-व्यस्तता से वह किस प्रकार मुक्त हो सकता है।

---

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। पॉला लेकलर अमेरिकी महिला थीं और वाई० एस० चेन चीनके कपास-उद्योग आयोगके सदस्य थे।

२. पॉला लेकलरने गांधीजी के कथनको यों उद्धृत किया है: "आप विश्वास कीजिए कि मैं अब जिस प्रकार रहना चाहता हूँ उसी प्रकार रह रहा हूँ। यदि मुझे प्रकाश दिख गया होता तो जो काम मैं अपने जीवनकी सांध्यवेला में कर रहा हूँ, उसे जीवनके शुरूमें करता। अपने कार्य-कालके अन्तमें अब मैं नव-निर्माणका काम नींवसे शुरू कर रहा हूँ। अगर आप जानना चाहें कि मैं क्या हूँ तो यहीं मेरे रहन-सहनके ढगका, मेरे आसपासके वातावरणका अध्ययन कीजिए। ग्रामोद्धार ही ऐसी बुनियाद है जिसके आधारपर भारतकी दशाको स्थायी रूपमें सुधारा जा सकता है।"

मैं अब बातें नही करता। मैं सन्देश नही दे सकता। यदि आप इस गाँवमें ठहरें, तो खुद देख सकती हैं कि मैं क्या कर रहा हूँ। और अस्त-व्यस्ततासे ससारको कैसे मुक्त किया जाये, यह तो ऐसा विशाल प्रश्न है कि तत्काल इसका कोई उत्तर नही दिया जा सकता। लेकिन अगर इसका कोई जवाब हो सकता है तो वह यह है: 'बस, एक ईश्वरके भरोसे।'

ईश्वरमें आपकी जो आस्था है और जो प्रकाश आपको प्राप्त है, मैं अमेरिकाको उसका दर्शन कराना चाहती हूँ।

शब्दो द्वारा मैं ऐसा नही कर सकता। इस वक्त बातचीत करने की मेरी तबीयत नही है।

लेकिन आपके मनमें निष्ठा तो है न?

हाँ, वह तो जरूर है।

तब क्या आप उसे थोड़े-से शब्दोंमें नहीं बता सकते?

भला, मैं शब्दोमे उसे कैसे व्यक्त कर सकता हूँ?

तब, आप प्रार्थनाके रूपमें ही कुछ शब्द, यानी आपकी जो आन्तरिक आकांक्षा है उसे ही कह दीजिए। आप बोलकर प्रार्थना ही कर लें।

नही! शायद मैं ऐसा नही कर सकता। क्या आपके लिए इतना जानना काफी नही है कि मैं एक सीधे-सादे देहातीकी तरह गाँवका सरल जीवन बिताने का प्रयत्न कर रहा हूँ। जब मैं सफल हो जाऊँगा, तो मेरी आकाक्षा पूरी हो जायेगी।

और आपके बच्चों, यानी भारतवासियोका क्या होगा?

वे गाँवोमे रहते हैं। मैं उनके साथ रहता हूँ और वे मेरे साथ रहेंगे।

क्या आप सुखी हैं?

हाँ! इस सवालका जवाब मैं दे सकता हूँ। मैं पूरी तरह सुखी हूँ।

गाँवमें न रहते हुए जितने सुखी थे उससे भी अधिक?

यह मैं नही कह सकता, क्योकि मेरा सुख बाहरी परिस्थितियो पर अवलम्बित नही है।

[वाई० एस० चेन:] समाज-सुधारके कार्यक्रमके बारेमें कुछ जानना चाहते थे।

मुझे इसमे कोई सन्देह नही है कि अस्पृश्यता खत्म हो रही है। यह और जल्दी समाप्त हो सकती है, लेकिन हमारे पास इस कार्यके लिए पर्याप्त सख्यामे कार्यकर्त्ता नही हैं। यह सामाजिक कार्य बेशक है, लेकिन उससे भी ज्यादा यह एक जबरदस्त आध्यात्मिक आन्दोलन है। यदि अस्पृश्यता बनी रही तो हिन्दू-धर्म नष्ट हो जायेगा और उसके साथ ही हिन्दू-सस्कृति भी। यदि ऐसी विपत्ति आई तो सारे भारतका स्वरूप ही बदल जायेगा। हिन्दू संस्कृतिके नाशका भारतकी सामान्य सस्कृतिपर अत्यन्त घातक प्रभाव होगा। लेकिन मेरा सुदृढ विश्वास है कि अस्पृश्यताका अन्त अवश्यम्भावी है, वह खत्म हो रही है। यहाँ आप देखेंगे कि मैं चारों ओर अस्पृश्योसे घिरा हुआ हूँ। उदाहरणके लिए, हमारा रसोइया एक अस्पृश्य लड़का है। उसे खाना बनाना नही आता था, और स्वच्छता-सफाईके साथ बनाना

तो निश्चित ही नही आता था। अब वह खाना बनाना सीख रहा है। यह लड़का बहुत अच्छा है, सीखना चाहता है और मेहनती है। यह चीज भारत-भरमें हो रही है। हमारे अच्छेसे-अच्छे कार्यकर्त्ता अस्पृश्योके बीच इसी ढगसे काम करने की कोशिश कर रहे हैं। यही पूर्ण सुधार है। हमें सामाजिक ऊँच-नीचको बिलकुल मिटा देना है। हमारे समाज-सुधार-कार्यक्रमके इस अंगकी यही मुख्य बात है।

अमेरिकामें जो यह खयाल फैल गया है कि गांधीजी का प्रभाव अब कम हो रहा है उसे मैं दुरुस्त करना चाहती हूँ। लेकिन नेहरूजी और आपके बीच विरोधकी जो कल्पना की गई है, उसमें सचाई क्या है?

इसके लिए आपको मेरा प्रतिवाद देखना चाहिए।[1]

उसे तो मैंने देखा है।

मैं कह चुका हूँ कि यह सरासर सत्यका उपहास है, बिलकुल झूठ है।

अच्छा, नेहरूके बारेमें आपके भाव क्या हैं?

नेहरूके लिए मेरे मनमे प्रेम और प्रशसाके सिवा और कोई भाव नही है। हम दोनो एक-दूसरेसे अलग नही हैं। करीब-करीब हर हफ्ते उनके दो पत्र मेरे पास आते हैं।[2] यह ठीक है कि ऐसी भी कई बाते है जिनके बारेमे मेरे और उनके विचार बिलकुल एक नही हैं। हमारे दृष्टिकोणमे जो अन्तर है वह स्पष्ट है। लेकिन फिर भी हमारे प्रेममें कोई कमी नही आई है। और यह अन्तर कोई नया हो, सो बात भी नही है। समय-समयपर उन्हें जो-कुछ महसूस हुआ उसे उन्होने मुझसे कभी छिपाया नही है। यहाँतक कि लखनऊमे उन्होने जो-कुछ कहा उसमे भी कोई नयी बात नही थी। यह तो उन विचारोका साराश-मात्र था, जो उन्होने भिन्न-भिन्न स्थानोपर भिन्न-भिन्न अवसरोपर प्रकट किये थे।

लेकिन क्या सचाई उन्हींके पक्षमें नहीं है?

नही। लेकिन यह कहना एक बात है कि उनके कुछ विचारोसे मैं सहमत नही हूँ, और यह एकदम दूसरी बात है कि उन्होंने मेरी सारी जिन्दगी के किये-धरे पर पानी फेर दिया है। यह तो सफेद झूठ है। इसके सिवा इसको और कुछ कहा ही नही जा सकता।[3] मुझे तो कभी ऐसा सन्देह भी नही हुआ कि जवाहरलालकी नीतिसे मेरे किसी कामको कोई भी हानि पहुँची है।

१. देखिए "क्या हम प्रतिद्वन्द्वी हैं?", २२-७-१९३६।

२. पॉला लेकलरने यहाँ गांधीजी के कथनको यों उद्धृत किया है: "जवाहरलाल नेहरू और मैं मित्र हैं। यह सही है कि हमारे विचारोंमें कुछ अन्तर हो सकता है, लेकिन यह झूठ है कि हमारे बीच शत्रुता है। जब वे भाषण देनेके लिए देशका दौरा कर रहे होते हैं, जैसाकि वे अक्सर करते हैं, तब भी हर सप्ताह उनके दो पत्र मुझे मिलते हैं। जो काम हम कर रहे हैं उसमें प्रतिस्पर्द्धा हो ही नहीं सकती।"

३. पॉला लेकलरने गांधीजी के कथनको इन शब्दोंमें उद्धृत किया है: "उन लोगोंके अनुसार मैंने कहा कि 'मेरे जीवनका किया-धरा सब चौपट हो गया . . . नेहरू की नीतिसे मेरे कामको जितना धक्का पहुँचा है उतना तो ब्रिटिश सरकारकी दृढ़ता और दमनसे भी नहीं पहुँचा।' लेकिन कड़े शब्दोंके प्रयोगसे बचने की अपनी प्रवृत्तिके बावजूद मैं कहूँगा कि यह सरासर झूठ है। मैंने ऐसी कोई बात न कभी कही और न कभी सोचता हूँ।"

क्या इसलिए कि जिस सत्यका आपने प्रतिपादन किया है, वह अब भी मौजूद है?

यह कहना सच तो है, लेकिन मैं किसी बड़े दार्शनिक दृष्टिकोणसे बात नही कर रहा हूँ। मैं तो सिर्फ सासारिक अर्थमें ही यह कह रहा हूँ। मैं कहना चाहता हूँ कि उन्होंने ऐसा कोई काम नही किया है, जिससे मेरा कार्यक्रम या काम चौपट हो गया हो। अगर उन्होंने यह कहा होता, जैसाकि कुछ ने कहा भी है कि 'आप जिन्दगी-भर बडी-बड़ी गलतियाँ करते रहे हैं। अब आपको अपने कदम वापस लेने चाहिए। आप देशको एक सदी पीछे ले गये हैं', तो मुझे जरूर परेशानी होती, क्योकि मेरे लिए उनकी बात बहुत मूल्य रखती है। पर इस तरहकी तो उन्होंने कोई भी बात नही कही है। यह कहना भी बिलकुल सही नहीं कि उनके कार्यक्रमसे मेरी सहानुभूति नही है। वे आज ऐसा कौन-सा काम कर रहे है, जिससे मेरी सहानुभूति न हो सके? वे जो वैज्ञानिक समाजवादकी बात कर रहे हैं उसके साथ मेरा कोई झगडा नही है। जिस प्रकारकी जिन्दगी आज वे सारे हिन्दुस्तानको जीते देखना चाहते है, मैं उसी प्रकारका जीवन १९०६ से व्यतीत कर रहा हूँ। यह कहना कि वे रूसी साम्यवादके पक्षमे है, सत्यका मजाक उडाना है।[1] वे तो यह कहते है कि साम्यवाद रूसके लिए अच्छा है, पर उसे कोई असन्दिग्ध प्रमाणपत्र तो वे रूसके बारेमे भी नही देते। हिन्दुस्तानके बारेमें तो उन्होने साफ ही कह दिया है कि जो तरीके हिन्दुस्तानमे अख्तियार किये जाये वे ऐसे होने चाहिए जो हिन्दुस्तानकी जरूरतें पूरी कर सके। वे यह नही कहते कि वर्ग-सघर्ष होना ही चाहिए, हालाँकि उनका ऐसा खयाल है कि वह शायद अवश्यम्भावी है,[2] और यह तो अभी हाल ही में उन्होने जोर देकर कहा था कि बगैर मुआवजा दिये कोई भी जब्ती नही होनी चाहिए। इस सबमे ऐसी कोई भी बात नही जिसका मैं विरोध करूँ। बेशक तरीकेमे मतभेद है, पर यह कहना कि उन मतभेदोने हमें एक-दूसरेका शत्रु या प्रतिद्वन्द्वी बना दिया है, सत्यका उपहास करना है।[3]

उनके विश्वासो, उनके कार्यक्रममे आज ऐसी कोई चीज नही है जिसके बारेमे मैं कह सकूँ: इसका मैं पूरी शक्तिसे विरोध करता हूँ। यदि मुझे वैसा लगता तो मैं निश्चय ही वैसा कह देता। वे चीजोको जिस ढंगसे रखते है, मैं उस ढगसे नही रखूँगा। कुछ तरीके जो मैंने अपनाये, उन्हें जवाहरलाल नही अपनायेंगे।

क्या उनपर आपका स्नेह है?

–जरूर, जैसाकि मेरा आपपर स्नेह है। पर इसमे ऐसी कोई खास बात तो नही है।

१. पॉला लेकलरकी रिपोर्ट के अनुसार गांधीजी के शब्द ये थे: "यह कहना कि वे रूसी ढंगके साम्यवादके पक्षमें हैं, जवाहरलालके साथ गम्भीर अन्याय करना है।"

२. पॉला लेकलरकी रिपोर्ट के अनुसार: "मैं मानता हूँ कि वे वर्ग-संघर्षको अवश्यम्भावी मानते हैं, लेकिन वे उसे बचाने की भरसक कोशिश कर रहे हैं।"

३. इसके बादके अनुच्छेद पॉला लेकलरकी उस रिपोर्ट से लिये गये हैं, जो बॉम्बे क्रॉनिकलमें पुनर्प्रकाशित हुई थी।

क्या हिन्दुस्तानके हितोंकी दृष्टिसे आप उन्हें ठीक मानते हैं?

हाँ!

हमारी इस अमेरिकी मित्रके मनमें कराचीमें किसीने यह धारणा पैदा कर दी थी कि बाहरका जुल्म इतना बुरा नहीं है जितनी बुरी कि हमारी यह अन्दरकी फूट है, और वह मनमें इसी छापको लेकर अमेरिका उड़नेवाली थी।

उसके ऐसा बताने पर गांधीजी के मुँहसे काफी कड़ी आलोचनाका यह वाक्य निकल गया, जिससे उसका मुँह ही बन्द हो गया:

अगर मानव-प्रकृतिमे मेरा विश्वास न होता, तो मै यह कहता कि आपके मनपर ऐसी छाप डालना हिन्दुस्तानका नाम कलंकित करने के लिए शैतानियतसे भरा हुआ एक षड्यन्त्र था।

यह पूछने पर कि यदि जनताको उनकी आवश्यकता होगी तो क्या वे फिर सक्रिय रूपसे मैदानमें आ जायेंगे, गांधीजी ने प्रश्नकर्त्ताकी ओर तेजीसे देखा और दृढ़ स्वरमें बोले:

यह ईश्वरकी मर्जीपर है। मैं पहलेसे कोई चीज तय नही करता बल्कि आवश्यकता कैसी है इसको देखता हूँ। अगले चन्द वर्षोंके लिए भी पहलेसे कुछ योजना बनाना मेरे सिद्धान्तके विरुद्ध है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ८-८-१९३६ और बॉम्बे क्रॉनिकल, ७-३-१९३७

२६२. दो शब्द-चित्र

बंगालके पितामह बाबू हरदयाल नाग सेवा-प्रवृत्तिसे तो कभी थकते ही नहीं। उनके अटल देशानुरागमें कौन उनकी बराबरी कर सकता है? नीचे वे अपने गाँवके दो शब्द-चित्र देते हैं। एक चित्र तो उस समयका है, जब उन्होंने उस गाँवको अपनी युवावस्थामे देखा था, और दूसरा आजका है। पाठकोको ये वर्णन रुचिकर प्रतीत होंगे।[1]

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ८-८-१९३६

१. यहाँ नहीं दिये गये है।

२६३. निन्दाकी नींवपर प्रचार

एक सज्जनने मेरे पास तबलीग-सम्बन्धी एक परचा भेजा है। मूल परचा उर्दूमे है, जिसका यह गुजराती अनुवाद है। इस गुजराती परचेके अनुवादक तथा प्रकाशक शेख उमरभाई मोहम्मदभाई है, और यह अहमदाबादमे छपा है। जिन सज्जनने मेरे पास यह भेजा है, उनके पत्रसे मै नीचे कुछ भाग उद्धृत कर रहा हूँ:

> आपके पास मै एक परचेकी नकल भेज रहा हूँ, जिसे एक स्थानीय मुस्लिमने प्रकाशित किया है। स्पष्ट ही उन्होंने इसे इस विचारसे प्रकाशित किया है कि हरिजनोंको इस्लाम ग्रहण कर लेने का प्रलोभन दिया जाये, और हिन्दुओंके खिलाफ उनमें घृणाके भाव फैलाये जायें। इस परचेमें हिन्दू-धर्म और हिन्दू संस्कारोंके बारेमें ऐसी-ऐसी बातें लिखी गई हैं जो न सिर्फ सरासर झूठी हैं, बल्कि हमारे देशके साम्प्रदायिक तनावको और भी बढ़ा सकती हैं।
>
> हालमें, मैंने उत्तर भारतके दो लड़कोको बचाने का प्रयत्न किया है। उनका पता लगाकर उनके रिश्तेदारोके साथ, जो उनकी तलाशमें आये हुए थे, उन लड़कोंको घर भिजवा दिया है। अभी हालमें हरिजन लड़कियोतक को इस्लाम ग्रहण कर लेने का लोभ दिया गया है।
>
> कृपाकर आप इस परचेको एक बार पढ़ जाइए, और फिर हमें कोई ऐसा रास्ता सुझाइए, जिससे ये गरीब और अपढ़ हरिजन ऐसे झूठे और द्वेषकी आग भड़कानेवाले परचोके जालमें न फँसें।

मै दुखके साथ परचेको पढ़ गया। जैसाकि भेजनेवाले सज्जनने इसके बारेमे लिखा है, यह काफी शरारतसे भरा हुआ है। पिता और पुत्र, दो हरिजनोके सवादके रूपमे यह लिखा गया है। पिताके कहने से लड़का हिन्दू-शास्त्रोको पढ़ता है और उनका मजाक उड़ाता है। इसमे हिन्दुओकी हरएक पवित्र चीजका ऐसा वाहियात व्यग्य-चित्र खीचा गया है जिसे देखकर हिन्दू-धर्म और सवर्ण हिन्दुओके प्रति घृणाका भाव भडक उठे। स्वामी श्रद्धानन्दजी तकका पवित्र नाम इस मुबाहसेमे घसीटा गया है, और उनके मुँहसे ऐसे-ऐसे शब्द कहलाये गये हैं, जो मै जानता हूँ, उन्होंने कभी नही कहे होगे। इसी एक वाक्यको लीजिए, "कुछ हिन्दू गोबरसे लिपे हुए चौकोमें इस तरह खाने बैठ जाते है, गोया वे टट्टी करने बैठे हो। बुरा हो ऐसे खानेवालो का!" क्या कोई भला आदमी अपने मानव बन्धुओ के बारेमें ऐसी बाते लिख सकता है? सारा परचा तोडी-मरोड़ी हुई बातोसे भरा हुआ है और उसमे हरिजनोको ऐसी-ऐसी आर्थिक आशाएँ दिलाई गई हैं, जो कभी पूरी नही हो सकती — खासकर यदि हरिजनो का कोई बड़ा समुदाय अपने बाप-दादाओका धर्म छोड देने के प्रलोभन के जालमे फँस जाये। जो

मौलवी हरिजनके लड़केको मुसलमान बनाता है वह कहता है कि "मैं खुद पहले चमार था, पर मुसलमान हो जाने से मेरी शादी एक शरीफ मुस्लिम खानदानकी लड़कीसे हुई।" -नया मुसलमान उसी प्यालीसे पानी पीता है, जिससे कि वह मौलवी पीता है, और जो बाकी पानी बचता है उसे सारी मजलिस पीती है। एक मुंशीजी के आलीशान मकानमें अब उसे दावत दी जाती है। खानेका कमरा खुशबूसे महक रहा है। "हरएक लुकमा अमृत है, हरएक शर्बत आबेहयात है", और जो अभी-अभी तक हरिजन था उसके आगे हुक्का रखा जाता है, और फिर उसे सारी मजलिस पीती है।

यह देखकर कितना दुःख होता है कि लोगोंको फुसलाने के लिए धर्मको असंस्कृत भौतिकवादकी इस निचाई तक घसीटा जाता है, लाखों-करोड़ो मानव प्राणियोंकी चिरपोषित भावनाओंको इस तरह पैरों तले कुचला जाता है!

मैं आशा करता हूँ कि इस परचेको किसी भी विचारशील मुसलमानका समर्थन नहीं मिलेगा, पर यह जानने के लिए कि ऐसे-ऐसे परचे कैसी शरारत पैदा करते हैं, उन्हें इसे पढ़ना जरूर चाहिए।

परचा भेजनेवाले सज्जनने मुझसे पूछा है कि इस शरारत-भरे प्रचारका मुकाबला किस तरह किया जाये। एक उपाय तो मेरे पास यह है कि इस तरह झूठ-मूठ बदनाम करनेवाले कुत्सित प्रचार-कार्यकी तरफ जिम्मेदार मुसलमानोंका ध्यान खींचा जाये। वे खुद इस परचेकी तरफ स्थानीय मुसलमान नेताओंका ध्यान आकर्षित कर सकते हैं। और दूसरा, और सबसे महत्त्वपूर्ण, उपाय यह है कि हिन्दू-धर्मकी आन्तरिक शुद्धि की जाये। जबतक हिन्दू-समाजमें यह अस्पृश्यताका जहर बना रहेगा, तबतक बाहरसे उसपर इस तरहके हमले होते ही रहेंगे। जब हम आत्मशुद्धिकी सुदृढ़ और अडिग दीवार खड़ी कर देंगे, तभी ऐसे हमलोंसे हिन्दू-समाजकी रक्षा हो सकेगी।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ८-८-१९३६

२६४. टिप्पणियाँ

कन्धोंके बजाय गाड़ियाँ

राजकोटके श्री सी० तेजपाल कई सालसे यह आन्दोलन कर रहे है कि मुर्दोको कन्धोपर ले जाने के बजाय हलकी ठेलागाडियो पर ले जाया जाये। वे भली-भाँति जानते है कि इसके लिए उन्हे एक ऐसी भावनाका मुकाबला करना पड़ेगा जो लाखों हिन्दू-मुसलमानोमे न जाने कबसे चली आ रही है। लोग तो मुर्देको कन्धा लगाने के लिए एक-दूसरेसे होड करते है। कन्धोपर मुर्देको ले जाने का दृश्य भी बडा असर डालनेवाला होता है। कमसे-कम हम ऐसा समझने के आदी तो हो ही गये है। लेकिन सिवा भावुकताके इस प्रथाके पक्षमें और कुछ भी नही है। जहाँ श्मशान या कब्रिस्तान कुछ दूर हो, वहाँ तो मुर्देको कन्धोपर ढोकर ले जाना बड़ा दिक्कततलब होता है। फिर, जब मरनेवाले की जात-बिरादरीके लोग थोड़े हो, या किसी गरीबके यहाँ कोई मौत हुई हो, तब तो श्मशान नजदीक ही क्यों न हो, फिर भी मुश्किल ही पड़ती है। प्लेग और अकालके दिनोमे अक्सर लाशें किस प्रकार गली-सड़कोपर पडी सडा करती है और चील-कौए उन्हे नोंच-नोचकर खाते रहते है, यह हम सभी जानते है। इसलिए इसमे कोई सन्देह नही कि मुर्दोको गाड़ियोपर ले जाने के पक्षमे बहुत-कुछ कहा जा सकता है। श्री तेजपालने इसके लिए जो गाडी बनाई है उसपर १०० रुपयेसे कुछ ही ज्यादा खर्च पड़ता है। हिन्दुस्तान-जैसे गरीब देशमे सौ रुपये ऐसी बात नही है जिसकी हम कोई परवाह न करे। लेकिन अगर गाँवके महाजन और नगरपालिकाएँ इन गाड़ियोको रखने लगे और बरायनाम रकमपर भाडेपर दिया करे तो खर्चका यह सवाल हल हो सकता है। उस हालतमे, जो स्थानीय व्यक्ति इस सुधारके समर्थक होगे वे उत्साहपूर्वक अपने आसपास इसका प्रचार करेगे। श्री तेजपालने मुझे बताया है कि अहमदाबादकी नगरपालिकाने ऐसी एक गाडी रख ली है और सूरत, बड़ौदा, जामनगर और पोरबन्दरके महाजनो या सेवा-समितियोने भी यही किया है। बम्बईके प्रार्थना-समाजने भी एक गाड़ी रखी बताते है। यह पता लगे तो बड़ा अच्छा हो कि जहाँ-जहाँ ऐसी गाड़ियाँ रखी गई है, वहाँ अबतक इस दिशामे कितना क्या सुधार हुआ है।

कपास ओटने की चरखी

चरखेकी तरह, पीजने और कपास ओटने की चरखीमे भी बराबर सुधार हो रहा है, हालाँकि वह चरखेके-जितना नही हुआ है। लेकिन कताईसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य काम भी कताई-जितने ही महत्त्वपूर्ण है। अच्छी रुई और उसकी अच्छी तरह

सफाई, ओटाई और पिंजाईका कपड़ा तैयार होने के समय उसके सुथरेपन व उसकी मजबूतीपर बहुत असर पड़ता है। इनमे से कोई भी बात अगर दोषपूर्ण हो तो निश्चित समयमे तैयार होनेवाले सूतकी मिकदार और उम्दापनपर उसका असर पडता है। इसलिए वर्धामे श्री राधाकृष्ण बजाज इस बातके प्रयोग कर रहे है कि कपास ओटने की चरखीमें कोई सुधार होने की सम्भावना है या नहीं। अगर कहीं कोई ऐसे खादी-प्रेमी हो, जिन्होने इस दिशामे सुधार किया हो, तो उन्हे श्री राधाकृष्णसे पत्र-व्यवहार करना चाहिए, और अगर कोई नमूने भी उनके पास हो तो वे भी भेजने चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ८-८-१९३६

२६५. पत्र : मीराबहनको

९ अगस्त, १९३६

चि० मीरा,

हाँ, तुम्हारा न आना ही अच्छा है। मै और अधिक दूध भेज रहा हूँ। अगर इसकी जरूरत न हो तो मोतीबहन इसको वापस ले आयें।

स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३५८) से, सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९८२४ से भी

२६६. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

सेगाँव, वर्धा
९ अगस्त, १९३६

चि० कान्ति,

मेरे मनमें तूने काँटा क्यो चुभा दिया?[1] तूने जबसे मुझे पिस्तौल की यह गोली मारी, तबसे तेरा चेहरा मेरे सामने घूमता रहा है। यह क्या हुआ? तूने यह क्या किया? किन्तु इसमे तू क्या कर सकता है? स्वभावको कौन जीत सकता है? जो तेरे मनमे उठे, उसे तू जाहिर करे, यही ठीक है; नही तो

१. कान्ति गाधीने परम्परागत विद्याभ्यास करके उपाधि लेने की इच्छा व्यक्त की थी। देखिए "पत्र : मणिलाल और सुशीला गाधीको", १६-८-१९३६।

पाखण्डकी सृष्टि होती है। इसलिए मैं अपने मनको धीरज बंधा रहा हूँ और जितना मुझसे बन सकता है, उतना तेरी मदद करने के बारेमे सोच रहा हूँ।

तू लम्बाई-चौड़ाईका अनुमान भेजे तो मैं धोती यहाँसे भेज दूँगा। या तू जब यहाँ आये तब खुद उस नापकी धोती काट लेना। मेरे पास तीन थान हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७३०४)से; सौजन्य कान्तिलाल गांधी

२६७. पत्र : कनु गांधीको

सेगाँव, वर्धा
९/१० अगस्त, १९३६

चि० कनैयो,

छोटेलालसे कहना कि जिनमें पाँच-सात सेर दूध आ जाये, ऐसे दो बर्तन भेज दे। कलईदार पीतलके हो तो अधिक अच्छा। जस्तेके सस्ते मिले तो भी काम चल जायेगा।

राईका तेल भेजना।

साथमे कुछ पत्र भेज रहा हूँ।

हाथके बने कुछ कागज नोट-बुक वगैरह बनाने के लिए चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

पीछे देखो

१० अगस्त, १९३६

पीछे जो-कुछ लिखा है, सो कल का लिखा हुआ है, किन्तु पत्र यही छूट गया। बहुत महत्त्वपूर्ण तो नही था। अब मैं कुछ पत्र और एक लेख इसके साथ भेज रहा हूँ। बादमे कुछ और भेजूंगा। वहाँ जो एनिमा है, वह मुझे चाहिए। यदि वह वहाँ काममे आ रहा हो तो यहाँके लिए नया ले लेना जरूरी है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से।

२६८. पत्र : मीराबहनको

१० अगस्त, १९३६

चि० मीरा,

आशा है, प्रगति जारी रहेगी। अगर कोई गडबड़ हो तो मुझे तुरन्त सूचना देना।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३५९)से, सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९८२५ से भी

२६९. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव, वर्धा
१० अगस्त, १९३६[1]

प्रिय जवाहरलाल,

खान साहबको बम्बईमे होनेवाली बैठकों[2] मे शामिल होने की सामान्य सूचना प्राप्त हुई है। उनमे शामिल होने की उनकी बिलकुल इच्छा नही है और मै उनको मजबूर नही करना चाहता। बम्बईमे उन्हे ऐसी सभाओ और समारोहोमें आने के लिए कहा जायेगा जिनमे उन्हे भाषण देने को भी आमन्त्रित किया जायेगा। मै नही चाहता कि उन्हे अभीसे यह सब करना पडे। वस्तुत. मै चाहता हूँ कि वे साल-भर मेरे साथ बितायें। उनमे इतनी शक्ति नही है और न वे ऐसे ही है कि बीमारीके हमलोका उनपर असर न हो। इसलिए क्या तुम अनुपस्थितिके लिए उन्हे क्षमा कर दोगे?

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]
गाधी-नेहरू पेपर्स, १९३४, सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. साधन-सूत्रमें यह पत्र १९३४ के कागजातके साथ रखा गया है और ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्समें भी इसे इसी वर्षका बताया गया है। लेकिन यह चूक है, क्योंकि गांधीजी १९३६ में सेगाँवमें बसे थे।

२. अ० भा० कांग्रेस कमेटी की।

२७०. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१० अगस्त, १९३६

चि० प्रेमा,

तीन पैसेका कार्ड न लिखने मे हेतु था।[1]

तेरी राखी मेरे हाथ नही लगी। लगती तो मै जरूर बाँधता। परन्तु तूने भेज दी इसलिए उसका रस अथवा पुण्य तुझे मिल गया।

तू नये-नये काम हाथमें ले रही है, यह अच्छा है। तेरी पुस्तक ऊपर-ऊपरसे देख तो जाऊँगा।

सेगाँवके अनुभवोमे वृद्धि हो तो सकती है, परन्तु अभी नही। न फुरसत है, न इच्छा। अनुभवोको मै किसीको देने-जैसा नही मानता।

जिस भाषाका मनुष्य उपयोग करते हैं उसका रूढ अर्थ तो होगा ही, परन्तु उनका अपना अर्थ उसमें जरूर होगा, जो आगे-पीछेके प्रसगमे से निकाला जा सकता है। सत्यको सम्पूर्ण रूपमे किसीने जाना ही नही है, इसलिए जो मनुष्य जिस वस्तु को जिस रूपमे देखे उसी रूपमे कहे, यही उसके लिए सत्य है, भले ही वस्तुत: वह असत्य हो।

इसी प्रकार एक ही वस्तु के सम्बन्ध मे लोगोके विचार युगके अनुसार बदलते रहते हैं और वे ही सम्बन्धित युगके लिए सत्य माने जाते है। "असतो मा सद्गमय" मे यही अर्थ अथवा विचार निहित है।

जहाँ ऊँच-नीचका भाव उड जाता है वहाँ शूद्र अन्य तीन वर्णोंकी सेवा करे, तो उसमे मुझे दोष दिखाई नही देता।[2] [किसीको कोई][3] शूद्र बनाता नही। [तब यदि स्वाभाविक रूपमे परिचर्या उसका धर्म हो][4] तो उसे बदलने का क्या प्रयोजन? ब्राह्मण और भगी पेटके लायक ही कमाते हो तो दोनोमे भेद क्या है? भगीके ज्ञानी बनने मे कोई रुकावट नही। मेरी कल्पनाके वर्णमे ज्ञानका एकाधिकार किसी का नही है। स्त्रियोंकी प्रार्थनाके श्लोकों[5] पर विचार करना। चार वर्णोके सामान्य

१. गांधीजी का २२ जुलाई, १९३६ का पत्र छोटा था। उतना कार्डपर भी लिखा जा सकता था, फिर लिफाफा क्यों भेजा, ऐसा प्रेमाबहनने पूछा था।

२. प्रेमाबहनने लिखा था कि महाराष्ट्रके प्राय: सभी सन्त कवियोंने वर्ण-धर्ममें ऊँच-नीचका अस्तित्व स्वीकार किया है।

३ और ४. साधन-सूत्रमें ये दो वाक्य अधूरे है।

५. देखिए खण्ड ४४, पृ० ४०४-५।

धर्म कौन-से है? ज्ञानदेव[1] आदिके वचनोमे, शायद, ऊँच-नीचके भावका समर्थन करनेवाले वचन भी मिले। लेकिन किसी संतके बारेमें इस तरह उसके दो-चार वचनो के आधारपर राय नही कायम की जा सकती। रामदासके[2] बारे मे तू जो कहना चाहती है वह मै जानता हूँ। ये उदाहरण अनुपयुक्त सिद्ध हो तो भी मेरी दलीलपर आँच नही आती।

तेरी प्रार्थना मै स्वीकार नही कर सकता, क्योकि तूने इस प्रार्थनाके औचित्यका पूरी तरह विचार ही नही किया है। तू प्रचलित प्रवाहमे बह गई है। तू, मै और सब अपने-अपने माता-पिताके चौखटे मे ही पड़े हुए है। उसे भूलकर नये कहलाने मे जितना अर्थ या अनर्थ है, उतना ही पुराने चौखटेके त्यागमें है। उसमे रहकर हम अनेक परिवर्तन कर सकते है। इसीका नाम प्रगति या उन्नति है। सर्वथा नये होने का अर्थ है उल्कापात या नया धर्म। हिन्दू-धर्मके लिए भी कही कोई चौखटा होगा या नही? बच्चे रोज पानीमे नये अक्षर बनाते है और बनाते ही वे मिट जाते है। परन्तु इसमे भी उनके लिए तो आनन्द है ही। लगता है, ऐसा ही आनन्द तू लेना चाहती है। परन्तु पुराने चौखटेमे पले हुए मुझ ६७ वर्षके बूढेको तू पानीमे अक्षर लिखने के लिए कैसे खीच सकेगी? मै तो किनारेपर खड़ा तेरे और तुझ-जैसोके खेल देखा करता हूँ। आगामी 'हरिजन' मे एक पत्रकी आलोचनामे इससे सम्बन्धित कुछ देखेगी।[3]

मेरा अज्ञान तेरे हाथ ठीक ही लगा। अभी और खोज करे तो इससे भी घोर अज्ञान तेरे हाथ लगे। परन्तु जब तुझे मेरे पूर्ण अज्ञान का पता चलेगा तब तू भाग तो नही जायेगी? इतना वचन दे दे तो मै साफ कह दूँ कि मै कुछ जानता ही नही, क्योकि ऐसा अध्ययन मैने किया ही नही है।

साम्यवादके विषयमे अपने सन्तोषके लायक मैने पढा है। स्वराज्यमे किसकी जरूरत होगी, यह तो स्वराज्यको देखूँ तभी कह सकता हूँ। मेरा विरोध तू जहाँ देखे वहाँ सत्य-असत्य तथा हिंसा-अहिंसाके सम्बन्धमें ही होगा।

-बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३८४)से। सी० डब्ल्यू० ६८२२ से भी; सौजन्य . प्रेमाबहन कटक

१. ज्ञानेश्वर, महाराष्ट्रके संत कवि।
२. समर्थ रामदास, शिवाजी के गुरु।
३. देखिए "वर्ण बनाम जाति", १५-८-१९३६।

२७१. पत्र : नारणदास गांधीको

१० अगस्त, १९३६

चि० नारणदास,

प्रेमाका पत्र सलग्न है। तुम लीलावतीको बुला रहे हो। मैंने तो उसे खुशीसे इजाजत दे दी है। किन्तु उसका मन यहाँसे हिलने का नही होता। बहुत अस्थिर है। एक वर्ष स्थिरता पाने का प्रयत्न करके देखना चाहती है। मानती है कि अगर वहाँ चली जायेगी तो उसमें विक्षेप आयेगा। इसमें तथ्य तो जरूर है।

इसलिए यदि उसके बिना काम चलाया जा सकता हो तो मेरी राय है कि चला लेना चाहिए। कल कह रही थी कि मैं खुद लिखूंगी। कनैयो अक्सर आ जाता है। देखता हूँ, बहुत प्रसन्न है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ८५०१ से भी; सौजन्य . नारणदास गाधी

२७२. पत्र : नरहरि द्वा० परीखको

१० अगस्त, १९३६

चि० नरहरि,

सूखे हुए नीबूमे से क्या तुमने कभी रस निकाला है? यदि जवावमे 'ना' कहो तो फिर मेरे द्वारा वाचनमालाके लिए पाठ किस तरह लिखवा सकोगे? तुम्हारी पत्रिका पढ गया हूँ, अच्छी है। किन्तु मेरे लिए नही है। मुझसे बने तो मैं सारा लिखना बन्द कर दूं। नया कुछ लिखने के लिए तो मत कहो। मुझे गया-बीता मानकर अपना काम चलाते रहो।

मारुति[1] की इच्छा घर बनाने की है। जमीन हरिजन आश्रमकी चाहिए। अवन्तिकाबाईकी[2] जमीनका क्या हुआ? क्या वह या उसमे से कुछ दी जा सकती है? या फिर वह जो पैसा खर्च करना चाहता है सो हमारे पास जमा कर दे और

१. गाधीजीकी गोद ली हुई हरिजन पुत्री लक्ष्मीका पति।

२. अवन्तिकाबाई गोखले।

इस रकमके हमारे पास जमा रहते हुए जबतक चाहे जमीनका उपयोग करे और अपनेको घरका मालिक माने। यदि हमे यह सुविधाजनक न लगे तो हम घरकी उस समयकी कीमत कूतकर उसका पैसा वापस कर दे। यह सब तो उस हालतमे करना पड़ेगा जब अवन्तिकाबाईकी जमीन न मिले या आश्रमकी जमीन न बेची जा सके। मुझे तो बेचने मे कोई हर्ज नही दिखता। सब-कुछ सोचकर लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० १०९८)से।

२७३. पत्र: हीरालाल शर्माको

१० अगस्त, १९३६

चि० शर्मा,

तुमारा पत्र मिला। मै लज्जित होता हूँ कि बेविट अबतक नही मिलता। मिल तो जायगा। सूत दूसरे सूत के साथ मिल गया। तुमारे मेरे पाससे खादीका स्वीकार करना चाहीये। . . .[1]

बापुके आशीर्वाद

बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृ० २५९ के सामने प्रकाशित प्रतिकृतिसे।

२७४. पत्र: अमृतलाल वि० ठक्करको

सेगाँव, वर्धा
१२ अगस्त, १९३६

बापा,

एक ही पत्रमें कितनी विविध बाते लिख भेजी है। देवदासके रहने से वहाँकी जीवन-चर्यामें विक्षेप तो नही पड़ रहा होगा।

मलकानीने मुझे लम्बा पत्र लिखा था। उसकी स्थिति बडी दयनीय है। मै सोचता रहता हूँ कि रुक्मिणीको कुमार्या मानूँ कि बिलकुल ही मूर्ख स्त्री!

सतीश बाबूका क्या करे? एक तरफ उनका जबरदस्त त्याग और दूसरी तरफ उनका शकालु स्वभाव। हम जबतक उन्हे रखना चाहे, तबतक रखना तो सम्भव है ही।

रामचन्द्रनके बारेमे आश्चर्य होता है। उसको लेकर कठिनाई पैदा हो, तो खबर देना।

१. मूल कटा-फटा होनेसे अन्तिम वाक्य अस्पष्ट है।

किसी-न-किसी दिन तुम सेगाँवको आकर देखोगे ही। . . .[1] भूलमें है। मेरे सामने तुकडोजी, बाजूमें खान साहब, तुकडोजी के बाजूमें मुन्नालाल, तुकडोजी और मेरे बीचमें राजकुमारीकी गद्दी लगी हुई है। उसके सामने एक पाटेके ऊपर दवाओंकी एक कामचलाऊ पेटी है, जो असलमें तो खोखा है, जिसमें कभी फल आये थे। और भी कुछ फुटकर सामान उस पाटेपर है। बा, लीलावती- और मनु जहाँ जगह मिल जाये वही समा जाती हैं। रातका दृश्य तो इससे भी अलग होता है। भक्तका एक लक्षण अनिर्केत होता है न? भक्त बननेकी चालो का इस्तेमाल तो मैं चाहे जहाँ करता ही रहता हूँ न? सेगाँवमें मुझे तो बडा मजा मिलता है। कल कोठरीका आखिरी कोना खाली हो गया है। अभीतक तो खाली है। मुन्नालाल स्थायी निवासी है।

तुम मजेमें होगे।

बापू

[पुनश्च :]

यह जो-सो लिखनेका भी बिलकुल समय नहीं था। इस तरहका कुछ आराम तो मुझे भी चाहिए न? तुम्हारा अनुकरण किया है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११६९) से।

२७५. पत्र : माँगीबाईको

सेगाँव
१३ अगस्त, १९३६

चि० मागीबाई,

तुमारे वैधव्यकी खबर अभी सुनी। प्रियजनोके मृत्युसे दुख क्यो माने? मृत्यु तो सबको पीछे है ही। यह भी ईश्वरकी प्रसादी समजी जाय। अब शात रहो और सेवा करो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १७२) से।

१. मूल कटा-फटा होनेके कारण यह वाक्य ठीकसे पढ़ा नहीं जा सका।

२७६. बातचीत : एक पाटिलसे[1]

[१५ अगस्त, १९३६ के पूर्व]

एक दिन शामको गाँवके बूढ़े पाटिलने गांधीजी के पास जाकर कहा . . . . "मै तो इसके लिए भी तैयार हूँ कि इधर नाई गोविन्दकी[2] हजामत बनाकर उठे और उधर मेरी बना दे।"

[गाधीजी :] तो फिर कठिनाई क्या है?

[पाटिल :] अब वह एक ऐसी बात कहता है जिसके लिए मै तैयार नहीं हूँ।

वह क्या है?

बात यह है कि वह मुझसे एक बार अपने घरपर खाने को कहता है। महाराज, भगवान् जानता है, मै लगभग ८० सालका होने को आया हूँ, पर आजतक मैंने होटलका पानी भी नहीं छुआ। फिर वह यह उम्मीद कैसे करता है कि मै उसके घर खाऊँगा?

भाई, तुम्हारी बात समझता हूँ, पर वह तुम्हे अपने घर खाना खिलाने का हठ क्यो करता है?

इसलिए करता है कि वह जानता है कि शायद उसकी जातिवाले उसे बिरादरीसे निकाल दें। इसलिए मुझे अपने घर खिलाकर वह अपनी पक्की तसल्ली कर लेना चाहता है। अच्छा महाराज, आप ही बताइए, क्या यह बात भी आपके अस्पृश्यता-निवारणके काममें शामिल है?

कभी नही। मै तो इतनेसे ही सन्तुष्ट हूँ कि अब तुमने छूने का परहेज तो छोड दिया है। तुम जानते हो कि मै गोविन्दसे अपना खाना बनवाता हूँ, फिर भी एक-दूसरेके साथ खाने का छुआछूत दूर करने के आन्दोलनसे कोई सम्बन्ध नही है। पर इस बातकी आशा मै तुमसे नही, हरिजन-सेवकोसे रखता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १५-८-१९३६

१. पाटिल, अर्थात् गाँवके मुखियाके साथ गांधीजी की बातचीतका यह विवरण महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से लिया गया है।

२. नाईने इस डरसे गोविन्दकी हजामत बनाने से इनकार कर दिया था कि गाँवका मुखिया और अन्य लोग कहीं उसका बहिष्कार न कर दें।

२७७. बातचीत : एक नाईसे[1]

सेगांव

[१५, अगस्त, १९३६ के पूर्व]

एक दिन सुबह जब मैं सेगाँव पहुँचा तो देखता क्या हूँ कि एक बाल काटने की मशीनको साफ करने और तेल देने के लिए गांधीजी उसके पुरजे अलग कर रहे हैं। जब मशीन साफ हो गई तो सामने एक शीशा रखकर वे खुद ही अपने बाल काटने लगे।

उसी समय साधु महाराजका एक भक्त, जो इत्तफाकसे जातिका नाई था, आ पहुँचा। "बापूजी", सामनेके कोनेमें बैठे साधुने जोरसे कहा, "भीमाको हजामत बनाने दीजिए न; वह तो अच्छी तरह बाल बनाना जानता है।"

[गांधीजी :] उसे बाल बनाना कैसे आ गया?

इसका तो पेशा ही यही है।

अरे! तब तो ठीक है। अच्छा, तो आओ।

पर ज्यों ही भीमाने मशीन चलानी शुरू की, गांधीजी ने उससे पूछा :

मेरे खयालमे, अपने हरिजन भाइयोकी हजामत बनाने मे तो तुम्हे कोई परहेज नही होगा? क्यो?

"दिलमें तो मेरे कोई परहेज नहीं", उसने कुछ हिचकिचाहटसे कहा।

सो तो मै मानता हूँ, पर जैसे तुम मेरी हजामत बनाते हो, उसी तरह हरिजनकी भी बना दोगे?

वह फिर कुछ हिचका। तब गांधीजी साधुसे बोले :

मै तो इस खयालमे था कि मुझे नाईसे हजामत बनवाने को कहने के पहले ही आपने उससे इस बातका पता लगा लिया होगा।

"मुझे खेद है", साधुने कहा, "यह बात तो उस वक्त मेरे ध्यान में ही नहीं आई।"

तो फिर मुझे इस बातपर जरा विचार करना पड़ेगा कि हजामतको बीचमें ही रोककर भीमाको छुट्टी दे दूँ या नही।

पर भीमा बोल उठा : "नहीं, ऐसा न करें। मैं यों आम तौरसे तो हरिजनोंकी हजामत नहीं बनाता, पर अब वादा करता हूँ कि आजसे उनके साथ कोई भेदभाव नहीं रखूँगा।"

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १५-८-१९३६

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

२७८. और भी गलतफहमियाँ

सत्यशोधकको किसीको खुश करने के लिए ही लिखना या बोलना नही पुसा सकता। जिन-जिन बातोसे मेरा वास्ता पडा है, उन सभीमे सत्यकी शोध करते हुए मुझे काफी लम्बा अरसा हो गया है। मगर मैं जानता हूँ कि समय-समयपर उपस्थित होनेवाले मामलोमे मैं सदा और सबको यह नही समझा सका हूँ कि मैं जो कहता हूँ या करता हूँ वह सही ही है। हिन्दी प्रचारको ही लीजिए। इस बारेमे जहाँ कुछ मुसलमान दोस्त मुझसे नाखुश हैं, वहाँ हिन्दू मित्र भी कम असन्तुष्ट नही है। पर जबतक मेरे आलोचक मेरी भूलका मुझे विश्वास न करा दें, तबतक उन्हे यह आशा नही रखनी चाहिए कि वे चाहते हैं इसीलिए मैं अपनी राय बदल दूंगा। एक सज्जनने तो मुझे सचमुच ही ऐसा लिखा है कि हालाँकि तर्क और इतिहासकी दृष्टिसे मेरी स्थिति सही है फिर भी मुझे मुसलमान आलोचकोको सन्तुष्ट करने के लिए अपनी राय बदल लेनी चाहिए। यह आलोचक चाहते हैं कि एक ही भाषाका परिचय देने के लिए या तो मैं 'हिन्दी-उर्दू' शब्दके प्रयोगका समर्थन करूँ, या सिर्फ 'उर्दू' शब्दका। इनका एतराज भाषापर नही है, बल्कि उसके उस नामपर है, जो अबतक चला आ रहा है। अब मुझे एक और पत्र मिला है। इसमे झगडा दूसरे दृष्टिकोणसे है, और वह है उस भाषणके सम्बन्धमे जो मैंने हाल मे ही बगलोरमें हिन्दी-प्रचार पदवीदान समारोहमे दिया था।[1] पत्र लम्बा है। मैं यहाँ उन्ही अशोको देता हूँ जिनका विषयसे अधिकसे-अधिक सम्बन्ध है.

> बंगलोरमें पदवीदान-समारोहमें दिये गये अपने भाषणमें आपने कहा है कि भारतके २० करोड़ लोगोंसे सम्पर्क स्थापित करने के लिए कर्नाटकके १ करोड़ १० लाख नर-नारियोंको उनकी भाषा हिन्दी सीखनी चाहिए। ध्यातव्य है कि यह बात आपने उन्हींके लिए नहीं कही जो मातृभाषा पढ़ चुके हैं। मान लीजिए, सब लोग मातृभाषा सीख भी लें, फिर भी न तो यह सम्भव है, और सम्भव हो भी तो न वांछनीय है और न स्वाभाविक ही, कि सर्वसाधारण लोग मातृ-भाषाके अतिरिक्त एक दूसरी भाषा और सीखें। राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता, व्यापारी और दूसरे लोग जो उत्तर भारतवासियोंके सम्पर्कमें आते हैं वे ही हिन्दी सीख सकते हैं और उन्हींको सीखनी चाहिए। वे लोग तो बिना किसी प्रचारके भी आवश्यकतावश ही यह भाषा सीख लेंगे।

१. देखिए "दीक्षान्त भाषण: हिन्दी प्रचार सभाके समारोहमें", १२-६-१९३६।

आप कहते तो हैं कि हिन्दी प्रान्तीय भाषाओंके स्थानपर नहीं, बल्कि उनके साथ-साथ सीखी जाये। पर हो ऐसा नहीं रहा है। तमिलनाडुके अधिकांश शिक्षित लोग तमिलके बजाय अंग्रेजीमें सोचते हैं और महसूस भी करते हैं। तमिलकी वे पूरी उपेक्षा करते हैं। अंग्रेजी सभ्यताके वे किस हदतक गुलाम हो गये हैं, यह हम इसीसे समझ सकते हैं कि सार्वजनिक सभाओं और दूसरी जगहोंमें भी वे गर्वके साथ उच्च स्वरसे कहते हैं कि वे तमिलमें न तो बोल सकते हैं और न लिख सकते हैं, पर अंग्रेजीमें वे दोनों काम धड़ल्लेसे कर सकते हैं। इनमें से कुछ लोग हिन्दीका अध्ययन भी तमिलकी अपेक्षा अंग्रेजीकी मददसे अधिक करने लगे हैं। नतीजा एक ही होगा — यह कि अंग्रेजीके बजाय वे हिन्दीमें सोचने लगेंगे। अगर कोई गुजराती भाई आपसे कहे कि वह गुजरातीमें तो नहीं पर हिन्दीमें सुन्दर निबन्ध लिख सकता है, तो आपको उसपर अफसोस ही होगा। आपको लगेगा कि देश अभी पूर्ण स्वराज्यसे बहुत दूर है। तमिलनाडुमें बहुतेरे लोग कहने लगे हैं कि वे तमिलसे हिन्दी अच्छी जानते हैं।

दूसरी भाषा देवभाषा हो तो भी अपनी मातृभाषाको हानि पहुँचाकर नहीं सीखनी चाहिए। हिन्दीके अन्धसमर्थकोंको इस सम्बन्धमें मैं आपकी ही मिसाल दिया करता था। आप कहते तो हैं कि हिन्दी भारतकी राष्ट्रभाषा है, पर न तो अपनी 'आत्मकथा' ही आपने हिन्दीमें लिखी है और न 'दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' ही। दोनों पुस्तकें गुजरातीमें लिखी हैं। हिन्दीमें आप अगर लिखते तो बहुत अधिक लोगोंको आपकी बात आपके ही शब्दोंमें जानने को मिलती। पर आपने दोनोंको गुजरातीमें लिखना पसन्द किया। हालाँकि इस मामलेमें आपके उपदेशसे आपका आचरण भिन्न है, तो भी मैं आपके आचरणको ही ठीक समझता हूँ। इसलिए मैं चाहता हूँ कि लोग, आप जो कहते हैं, उसे न मानकर आप जो करते हैं, उसका अनुसरण करें।

स्वराज्यका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलनेवालों पर एक ही भाषा लाद दी जाये। प्रथम स्थान मातृभाषाको ही मिलना चाहिए। भारतकी सामान्य भाषा हिन्दीको गौण स्थान ही देना चाहिए। सच्ची प्रेरणा और प्रगति तो मातृभाषासे ही मिल सकती है।

अब मैं लिपिका प्रश्न लेता हूँ। ४ मई, १९३५ के 'हरिजन' में इन्दौरके हिन्दी साहित्य सम्मेलनके प्रस्तावोंपर लिखते हुए आपने उर्दू लिपिका पक्षपात किया है। यह मेरी समझमें नहीं आया। बंगलोरके भाषणमें भी आपने उर्दू लिपिके प्रति अपना वही पक्षपात प्रकट किया है। आप तो संस्कृतसे निकली हुई या उससे प्रभावित समस्त भारतीय भाषाओंकी लिपियाँ नष्ट करके उनकी जगह देवनागरीको आसीन कर देना चाहते हैं, ताकि जो लोग विभिन्न भाषाएँ

सीखना चाहें उन्हें सुविधा हो। हिन्दू और मुसलमान दोनों जिस एक ही भाषाको बोलते हैं उसके लिए आप देवनागरी और उर्दू दोनों लिपियाँ कायम रखना चाहते हैं। तो क्या अन्य करोड़ों लोग, जो दुर्भाग्यसे भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते हैं, अपनी लिपियाँ नष्ट हो जाने दें, उनकी जगह देवनागरीको दे दें और हिन्दी-हिन्दुस्तानी भाषा और उर्दू लिपि सीखकर १३ करोड़ हिन्दुओं और ७ करोड़ मुसलमानोंको समझने और उनके सम्पर्कमें आने की कोशिश करें? क्या यह बात हास्यास्पद नहीं लगती और इसमें घोरसे-घोर अत्याचार नहीं है? इस नीतिका साफ नतीजा यही हो सकता है कि अन्य सभी भाषाएँ मिट जायें और केवल एक हिन्दी रह जाये — वह भी दोनों लिपियोंमें। क्योंकि, सब भाषाओंकी लिपि तो देवनागरी हो ही जायेगी, हिन्दी सब सीख ही लेंगे और मातृभाषाओंके महत्त्वपूर्ण ग्रंथोंका हिन्दीमें अनुवाद हो ही जायेगा। मैं चाहता हूँ, आप जरा विचारकर देखिए कि क्या वह स्थिति हम सबकी जन्मभूमि भारतवर्षके लिए वांछनीय होगी? सब लिपियोंको नष्ट करने का प्रयत्न करने से पहले देवनागरी और उर्दूमें से — जो एक ही भाषाकी दो लिपियाँ हैं — एकको मिटाने की कोशिश आप क्यों नहीं करते? एक ही भाषा बोलनेवाले हिन्दू और मुसलमान अपने लिए दो अलग-अलग लिपियाँ क्यों रखें?

मुझे मालूम नही कि मैंने कर्नाटकके सभी, अर्थात् एक करोड़ दस लाख स्त्री-पुरुषोसे हिन्दी-हिन्दुस्तानी सीखने की बात कही थी। जिन्हे उत्तर भारतके लोगोके कभी भी सम्पर्कमे आना पड़ता है, वे सभी हिन्दी-हिन्दुस्तानी सीख ले तो मुझे बहुत सन्तोष होगा। लेकिन यदि अहिन्दी-भाषी प्रान्तोके सभी लोग हिन्दी सीख ले तो मैं इसका स्वागत ही करूँगा और, जैसा पत्र-लेखक सज्जन चाहते है, इसपर अफसोस तो मैं निश्चय ही नही करूँगा। हरएक प्रान्तके लोग अपनी-अपनी भाषा जान लेने के साथ-साथ एक अखिल भारतीय भाषा और सीख ले तो इसमें भारतवर्षके लिए अवांछनीय या अस्वाभाविक बात क्या हो जायेगी? इस तरहका ज्ञान थोड़े-से सुसस्कृत लोगोका ही विशेषाधिकार क्यो रहे, और जन-साधारण उससे क्यो वंचित रहे? तीस करोड़से अधिक आबादीवाले एक राष्ट्रके लोग दो भाषाएँ जानते हो तो अवश्य ही यह बात एक बहुत उच्च कोटिकी संस्कृतिकी सूचक होगी। दुर्भाग्यसे यह बिलकुल सही है कि ऐसा होना लगभग असम्भव है।

मगर सबसे अधिक दुर्भाग्यकी बात तो यह होगी कि कोई प्रान्त अपनी भाषाकी उपेक्षा कर दूसरी भाषाको अधिक पसन्द करने लग जाये। पत्र-लेखककी शिकायत है कि तमिलनाडुमे ऐसा ही हो रहा है। उनकी रायकी पुष्टि मेरी तमिलनाडुकी बार-बारकी यात्राओसे भी होती है। परन्तु इधर मैंने देखा है कि उस प्रान्तमे शुभ परिवर्तन भी हो रहा है। और जैसे-जैसे प्रत्येक प्रान्तके शिक्षित लोग सर्व-साधारणके साथ सम्पर्क बढ़ाने की अधिकाधिक आवश्यकता महसूस करेंगे, वैसे-वैसे जहाँ सम्भव

होगा वहाँ अन्य भाषाओंपर प्रान्तीय भाषाको प्राथमिकता देने की प्रवृत्ति और गति भी बढ़ती जायेगी।

पत्र-लेखकने प्रसंगवश राष्ट्रभाषा होने के विषयमें अंग्रेजी और हिन्दी-हिन्दुस्तानीकी चिरकालीन प्रतिस्पर्धाका भी जिक्र किया है। मैंने तो जबसे सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश किया है सदा यही निश्चित राय रखी और जाहिर की है कि अंग्रेजी न कभी सारे हिन्दुस्तानकी भाषा हो सकती है और न होनी चाहिए। ऐसी भाषा तो हिन्दी यानी हिन्दुस्तानी ही हो सकती है, क्योंकि उत्तर भारतके करोड़ों हिन्दू और मुसलमान इसे बोलते हैं। अंग्रेजीके बारेमें ऐसा समझना जनसाधारण और अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंके बीचमें स्थायी दीवार खड़ी करना और अपने ध्येयतक पहुंचने में देशकी प्रगतिको पीछे ढकेलना है। मैंने बार-बार यह समझाया है कि हमारी उन्नतिमें अंग्रेजी का एक निश्चित स्थान है। हमारे शासकों और सारी पश्चिमी दुनियाकी बात समझने के लिए और पश्चिमकी अच्छी-अच्छी बातें हिन्दुस्तानको सिखाने के लिए हमारे कुछ आदमियोंको जरूर अंग्रेजी सीखनी चाहिए, क्योंकि पश्चिमी भाषाओंमें इसका सबसे अधिक प्रचार है। पर अगर शिक्षित-वर्गको निरक्षर जनताके साथ एक होना है तो अंग्रेजी सीखनेवालोंसे हजार गुना अधिक हिन्दुस्तानियोंको हिन्दी-हिन्दुस्तानी जाननी पड़ेगी।

पत्र-लेखकका यह सोचना कि मैंने प्रान्तीय भाषाओंपर हिन्दीको प्राथमिकता देने की सलाह देने का अपराध किया है, मेरी रायसे उनकी बिलकुल अनभिज्ञताका सूचक है। इस बारेमें मेरी कथनी और करनीमें कोई अन्तर नहीं। मैं इस प्रस्तावका दिलसे समर्थन करता हूँ कि मातृभाषाको प्रथम स्थान दिया जाना चाहिए।

हाँ, लिपिके मामलेमें पत्र-लेखककी आशंका सही है। मुझे अपनी रायपर पछतावा भी नहीं है। जो अलग-अलग भाषाएँ संस्कृतसे निकली हैं या जिनका उसके साथ गहरा सम्बन्ध रहा है, पर जो लिखी जाती हैं भिन्न-भिन्न लिपियोंमें, उनकी एक ही लिपि होनी चाहिए, और वह लिपि निस्सन्देह देवनागरी ही है। अलग-अलग लिपियाँ एक प्रान्तके लोगोंके लिए दूसरे प्रान्तोंकी भाषाएँ सीखने में अनावश्यक बाधास्वरूप हैं। यूरोप तो कोई एक राष्ट्र नहीं है। फिर भी उसने एक सामान्य लिपि स्वीकार कर ली है। पर हिन्दुस्तान एक राष्ट्र होने का दावा करता है, और है। तो उसकी लिपि एक क्यों न हो? मैं जानता हूँ कि एक ही भाषाके लिए देवनागरी और उर्दू, इन दोनों लिपियोंको सहन कर लेने की मेरी बात असंगत है। मगर मेरी यह असंगति निरी मूर्खता नहीं है। इस समय हिन्दू-मुसलमानोंमें संघर्ष है। पढ़े-लिखे हिन्दुओं और मुसलमानोंके लिए एक-दूसरेके प्रति अधिकसे-अधिक आदर और सहिष्णुता दिखाना जरूरी और बुद्धिमानीका काम है, इसीलिए मेरी यह राय है कि लिपिके मामलेमें देवनागरी या उर्दूका विकल्प रहे। यह सद्भाग्यकी बात है कि प्रान्त-प्रान्तमें संघर्ष नहीं है। इसलिए जिस सुधारसे अनेक दिशाओंमें प्रान्तोंका गहरा मेल हो सकता है उसकी हिमायत करना वाछनीय है। और यह भी नहीं भूल जाना चाहिए कि राष्ट्रका बहुजन समाज बिलकुल निरक्षर है। उसपर भिन्न-भिन्न

लिपियोंका बोझ लादना, और वह भी खाली झूठे मोह और दिमागी आलस्यके कारण, अपने हाथों अपने पैरोंपर कुल्हाड़ी मारना होगा।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १५-८-१९३६

२७९. वर्ण बनाम जाति

जात-पाँत तोड़क मण्डलके श्री सन्तरामजी ने निम्नलिखित पत्र मेरे पास प्रकाशनार्थ भेजा है:

> डॉ० अम्बेडकर और लाहौरके जात-पाँत तोड़क मण्डलके बारेमें आपने जो-कुछ लिखा,[1] वह मैंने पढ़ा। इस सम्बन्धमें मैं नीचे लिखी बातें आपके सामने रखना चाहता हूँ:
>
> डॉ० अम्बेडकरको अपने सम्मेलनका सभापति बनाने के लिए हमने इसलिए आमन्त्रित नहीं किया था कि वे दलित जातिके हैं, क्योंकि सवर्ण और अवर्ण (दलित) हिन्दूमें हम कोई भेदभाव नहीं मानते। उलटे, हमने तो उन्हें इसलिए चुना था कि हिन्दू-जातिके महारोगका उनका निदान भी वही है जो कि हमारा है, यानी उनका भी यही मत है कि जाति-प्रथा ही हिन्दुओंके पतन और बिखरावका मूल कारण है। डॉ० अम्बेडकरने डॉक्टरेटके लिए जाति-प्रथा पर ही अपना प्रबन्ध लिखा था और उन्होंने इस विषयका गहराईसे अध्ययन किया है। हमारे सम्मेलनका तो उद्देश्य ही यह था कि हिन्दुओंको जात-पाँत तोड़ने के लिए प्रेरित किया जाये, लेकिन सामाजिक तथा राजनीतिक मामलोंमें किसी अहिन्दूकी सलाहका उनपर कोई असर नहीं हो सकता। मगर डॉक्टर अम्बेडकरने अपने भाषणके परिशिष्टांशमें यह कहने पर आग्रह किया कि बहैसियत हिन्दू यह मेरा आखिरी भाषण है। यह चीज हमारे सम्मेलनके लिए बिलकुल अप्रासंगिक, बल्कि उसके हकमें खतरनाक भी थी। इसलिए हमने उनसे प्रार्थना की कि वे भाषणसे उस अंशको निकाल दें, क्योंकि और मौकेपर वे इस बातको बड़ी आसानीसे कह सकते थे। मगर उन्होंने ऐसा करने से इनकार किया। तब अपने समारोहका सिर्फ दिखावा करने में हमें कोई अर्थ दिखाई न पड़ा। लेकिन इस सबके बावजूद, मैं उनके भाषणकी प्रशंसा किये बगैर नहीं रह सकता। वह तो, जहाँतक मैं जानता हूँ, इस विषयपर एक अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण प्रबन्ध है और हिन्दुस्तानकी हरएक देशी भाषामें अनूदित होने लायक है।

१. देखिए "डॉ० अम्बेडकरका दोषारोपण–१", ११-७-१९३६।

अलावा इसके, मैं यह बात भी आपके ध्यानमें लाना चाहता हूँ कि जाति और वर्णके बीच आप जो तात्त्विक भेद करते हैं वह इतना गूढ़ है कि आम लोग उसे नहीं समझ सकते; क्योंकि व्यवहारतः देखा जाये तो हिन्दू-समाजके अन्दर जाति और वर्णमें कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनों का प्रयोजन अन्तर्जातीय विवाहों और सहभोजोंपर प्रतिबन्ध लगाना ही है। वर्ण-व्यवस्थाका आपका सिद्धान्त इस युगमें अव्यावहारिक है और निकट-भविष्यमें उसके पुनरुद्धारकी कोई आशा नहीं है। लेकिन हिन्दू तो जात-पाँतके गुलाम हैं और उसे नष्ट नहीं करना चाहते। इसलिए जब आप अपने आदर्श या काल्पनिक वर्ण-व्यवस्थाका प्रतिपादन करते हैं तो वे जात-पाँतसे चिपटे रहने का औचित्य पा जाते हैं। इस प्रकार वर्णभेदकी अपनी काल्पनिक उपयोगिताका प्रतिपादन करके समाज-सुधारके पक्षका आप बड़ा नुकसान कर रहे हैं। वर्ण-व्यवस्थाकी जड़पर कुठाराघात किये बगैर अस्पृश्यताको दूर करने की कोशिश तो मानों रोगके ऊपरी लक्षणोंका इलाज करना या पानीके ऊपर लकीर खींचना है। द्विजोंका दिली मंशा तो यह है कि तथाकथित स्पृश्य और अस्पृश्य शूद्रोंको सामाजिक समानता न दी जाये, इसलिए वे जात-पाँतको नहीं तोड़ते और इस प्रश्नको टालनेकी खातिर अस्पृश्यता-निवारणके लिए चन्देमें बड़ी-बड़ी रकमें देते हैं। और अस्पृश्यता तथा जात-पाँतके निवारणार्थ शास्त्रोंकी सहायता लेना तो मानों कीचड़को कीचड़से धोना ही है।

इस पत्रके आखिरी अनुच्छेदसे पहला अनुच्छेद तो निश्चय ही रद हो जाता है। जात-पाँत तोड़क मण्डल शास्त्रोकी मददको अस्वीकार करके वही करता है जो डॉ० अम्बेडकर कर रहे है, यानी ऐसा करके वह हिन्दू नही रह जाता। और ऐसी हालतमें, वह डॉ० अम्बेडकरके भाषणपर सिर्फ इसलिए कैसे एतराज कर सकता है कि उसमे उन्होने यह कहा कि बहैसियत हिन्दू यह मेरा आखिरी भाषण है? यह स्थिति तो बिलकुल असंगत है, खासकर उस हालतमे जबकि श्री सन्तराम जिसकी ओरसे बोलने का दावा करते है वह मण्डल डॉ० अम्बेडकरके सारे भाषणकी प्रशंसा करता है।

लेकिन यह पूछना अप्रासगिक न होगा कि जात-पाँत तोडक मण्डल शास्त्रोको नही मानता तो आखिर मानता किसको है? अगर कोई मुसलमान कुरानको न माने या कोई ईसाई बाइबिलको मानने से इनकार करे, तो भला ये मुसलमान या ईसाई रहेगे? जाति और वर्ण अगर एक ही बात है और वर्ण उन शास्त्रोका अभिन्न अग है जिनमें हिन्दू-धर्मकी व्याख्या की गई है, तो मै नही जानता कि जो व्यक्ति जाति, यानी वर्णको मानने से इनकार करता है वह अपनेको हिन्दू कैसे कह सकता है।

श्री सन्तराम शास्त्रोको कीचड़की उपमा देते है। जहाँतक मुझे याद है, डॉ० अम्बेडकरने शास्त्रोके बारेमे अभीतक ऐसा कुछ नही कहा है। मैंने जो यह कहा है कि शास्त्रो द्वारा अगर वर्तमान अस्पृश्यताका समर्थन होता हो तो मैं अपनेको हिन्दू कहना बन्द कर दूंगा, वह अवश्य किसी अर्थसे ही कहा था। इसी प्रकार

आज जातिका जो बीभत्स रूप हमे दिखाई पड़ता है उसका यदि शास्त्रोसे समर्थन होता हो, तो सम्भवतः मैं अपनेको हिन्दू नही कहूँगा, या हिन्दू नही रहूँगा, क्योकि विभिन्न जातियोके रोटी-बेटी-व्यवहारमें मुझे कोई आपत्ति नही है। शास्त्रो और उनकी व्याख्याके बारेमें मेरी जो स्थिति है उसे यहाँ दुहरानेकी मै कोई जरूरत नही समझता। मै तो श्री सन्तरामसे यह कहने-भरका साहस करता हूँ कि बुद्धि, सचाई और नैतिकताके लिहाजसे जो स्थिति वांछनीय है वह एकमात्र वही है और हिन्दू-परम्परामे उसके लिए काफी गुंजाइश है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १५-८-१९३६

२८०. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

सेगाँव, वर्धा
१६ अगस्त, १९३६

चि० मणिलाल, सुशीला,

तुम्हारे पत्र मिले। जबतक तुम लोग वहाँ आनन्दसे हो तबतक तुम्हे यहाँ आनेकी कोई जरूरत नही है। हम चाहे जहाँ रहे, जो कर सकते है सो सेवा करे। जहाँ रहते हैं वहाँके लोगोको कुटुम्बी-जन समझे। मिलना तो हृदयका होता है। और यह तो करोडो योजन दूर रहकर भी सम्भव है और एक कोठरीमे पास-पास रहना भी उन दो कैदियोके शारीरिक सान्निध्यकी तरह निरर्थक है, जिनका दिल एक नही है। इसलिए मुझे इस बातका लोभ नही है कि तुम मुझे यहाँ देखने आओ। यदि तुम्हे वहाँ शान्ति मिलती है तो तुम सदा ही वहाँ बने रहो।

अब तुम्हे एक ऐसी बात लिखता हूँ जो अजीब लगेगी। कान्तिका मन परम्परागत विद्याभ्यास करके उपाधिकी छाप अपने ऊपर लगवा लेनेका है। चाहे जितना रोको वह रुक नही सकता। मैंने बहुत कोशिश की किन्तु सफलता नही मिली। अब सवाल रह जाता है उसके शिक्षणके खर्चका। कान्ति भी मानता है कि सार्वजनिक कोषसे खर्च नही दिया जा सकता। मौसी तो बहुत दे चुकी है, अब उससे लेना एक गुनाह ही हो जायेगा। इसलिए या तो तुम तीनो भाई मिलकर खर्च दो या वह कमाये और पढे। मेरी समझमे तो तुम तीनोको यह बोझ उठाना चाहिए। हर महीने ७८ से १०० रुपयेके बीचमे खर्च आनेकी सम्भावना है। मै ठीक नही जानता; फिर भी यदि तू अपना हिस्सा यानी ३३ रुपये दे सके तो काफी है। यदि यह बात तेरे गले उतरती हो तो मुझे भेजना शुरू कर देना।

मंनु और बा मेरे साथ हैं। हमारा ठीक चल रहा है।

मुझे हरिलालका एक पत्र मिला था। धर्म-परिवर्तनके बाद पहला पत्र। उसने ['इंडियन ओपिनियन'] के स्वर्ण-जयंती अंककी प्रति माँगी है और मुझसे मिलना

भी चाहता है। मैंने लिख दिया है[1] कि अगर मिलने की मेरी शर्त स्वीकार करे तो आ सकता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८५६) से।

२८१. तार : कस्तूरभाई लालभाईको[2]

[१७ अगस्त, १९३६ या उसके पूर्व][3]

ये नोटिस पंच-फैसलेके सिद्धान्तके विपरीत हैं और इनके गम्भीर परिणाम हो सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १८-८-१९३६

२८२. पत्र : ना० र० मलकानीको

सेगाँव, वर्धा
१७ अगस्त, १९३६

प्रिय मलकानी,

तुमने अच्छा किया कि मेरे सामने अपना दिल उँडेलकर रख दिया। दूसरे क्या कहते हैं इसपर बिलकुल ध्यान मत देना। ठक्कर बापाने लोगोंको पहचाननेमें अनेक बार भूल की है और बहुधा वे ध्यानपूर्वक सोचे बिना ही पत्र लिख डालते हैं। परन्तु अब इस उम्रमें वे अपना ढंग बदलेंगे ऐसी आशा बेकार है। हमें तो अब वे जैसे हैं उसी रूपमें उनको स्वीकार करना चाहिए और उनके त्यागको, दीन और दलित लोगोंके प्रति उनके अनन्य प्रेमको देखते हुए उनसे प्रेम करना चाहिए। उस महिलाके आनेके विषयमें उन्होंने जो लिखा है उसे मैंने कोई महत्त्व नहीं दिया। हाँ, उनका इस घटनाके बारेमें कुछ भी लिखना निःसन्देह गलत था; विशेष रूपसे जिस ढंगसे उन्होंने लिखा वह तो और भी गलत था।

१. पत्र उपलब्ध नहीं है।

२. मिल-मालिक संघके अध्यक्ष। बॉम्बे क्रॉनिकलके अनुसार ऐसा ही एक तार चिमनलाल परीखके लिए भी था, जिन्होंने अपनी मिलमें वेतन-कटौतीके नोटिस लगवा दिये थे।

३. जिस रिपोर्टमें यह तार छपा था वह दिनांक "१७ अगस्त, १९३६" के अन्तर्गत प्रकाशित हुई थी।

रुक्मिणीको सिन्ध छोड़ आये सो ठीक किया। यह उसके हितमें है कि तुम उसके साथ जरा कड़ाई बरतो। उसको तुम्हारा जीवन दुःखी करने या तुम्हारे काममें विघ्न नहीं डालने दिया जा सकता।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१९)से।

२८३. पत्र : एस० अम्बुजम्मालको

सेगाँव, वर्धा
२० अगस्त, १९३६

चि० अम्बुजम,

तो, मेरे लिखे पत्र पाये बिना तुम्हे सन्तोष नहीं होगा। अच्छा, तो तुम्हें अवश्य मिलेंगे।

चाहे कुछ भी हो जाये, तुम्हें शान्त रहना चाहिए। किसीके कमजोर स्वास्थ्य पर तुम्हे चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भगवान् हम सबका रक्षक है, और जब परिस्थितियाँ हमारी इच्छानुसार न हो, या प्रियजन बीमार पड़ें तब भी हमें उसपर अविश्वास नहीं करना चाहिए। इसीलिए जब तुम कहती हो कि तुमने अपनेको भगवान्के आसरे छोड़ दिया है, तो मुझे खुशी होती है। यह समर्पण केवल निष्प्राण भावसे नहीं प्रत्युत अन्तरतमसे होना चाहिए। बहुधा हम ऐसे सद्वचनोंका उच्चारण उन्हे बिना हृदयंगम किये ही कर डालते हैं।

आजकल मेरी खुराक है दूध, कुम्हड़ा या सेगाँव अथवा निकटवर्ती गाँवोमें प्राप्य कोई सब्जी, थोड़ा लहसुन, और जब फल मिल जाये तब फल। अब मुझे पहलेके समान फलोंकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

आशा है, अब तुम पहलेके समान स्वस्थ हो गई होगी, और पिताजी तथा माताजी भी कुशलसे होंगी।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६०९)से; सौजन्य : एस० अम्बुजम्माल

२८४. एक पत्र

२० अगस्त, १९३६

तुम्हारा पत्र मुझे सोचने को मजबूर कर देता है। यदि सभी खास रिश्तेदारोंको कोई आपत्ति न हो, अगर . . .[1] अपनी आस्था कायम रखने को स्वतन्त्र हो और वास्तवमें ऐसा कर सकती है और भावी साथी भी ऐसा ही है तथा दोनो एक-दूसरेके विश्वास व व्यवहारकी एक-जैसी कद्र करते हैं, तो जहाँतक अभी मेरी समझमें आता है, मुझे इस सम्मिलनको अपना आशीर्वाद देनेमें कोई आपत्ति नही होनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य : नारायण देसाई

२८५. पत्र : नारणदास गांधीको

२० अगस्त, १९३६

चि० नारणदास,

अगर मैं यहाँसे कुमीके लिए हर महीने १५ रुपयेका प्रबन्ध कर दूँ तो क्या तुम उसे शाला या किसी दूसरी जगह कोई काम दिला सकते हो? दूसरे शब्दोंमें मैं यह पूछता हूँ कि क्या तुम्हारी दृष्टिमें उसका स्वभाव काम सौंपने योग्य है?

पुरुषोत्तम और विजयके लिए पदच्छेद और शब्दार्थ-सहित 'गीता' ठीक रहेगी? माँग तो सिर्फ मूल की ही थी। मुझे अभी मालूम हुआ है कि बड़े अक्षरोंमें अर्थ-सहित एक ऐसा सस्करण है। मूल सस्कृत 'गीता' प्राप्त करने में तो कोई कठिनाई आयेगी ही नही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ८५०२ से भी; सौजन्य : नारणदास गाधी

१. साधन-सूत्रमें नाम छोड़ दिया गया है।

२८६. पत्र : प्रभावतीको

सेगाँव, वर्धा
२१ अगस्त, १९३६

चि० प्रभा,

बहुत दिनोंके बाद तेरा पत्र आया। रोज राह देखता था। तू क्यों नहीं लिख सकी, मैं इसका कारण बिलकुल ठीक समझ गया। जब इतना अधिक काम हो तो एक कार्ड लिख देना काफी है। तेरी चिन्ता करनेवाला मैं कौन? और चिन्ता करके लाभ भी क्या है? हम सबकी चिन्ता और रक्षा प्रभु ही करता है। वह प्रत्येक श्वासका स्वामी है। तेरे मनमें ऐसा विश्वास उत्पन्न हो तो फिर सब कुशल ही है। यों तो तेरी कठिन परीक्षा हो रही है। तू उसमें उत्तीर्ण होगी ही। सामर्थ्यसे अधिक कुछ मत करना। चाहे जिस प्रकार बने, दूध और फल लेती रहना। फिर दूसरी किसी खुराककी परवाह नहीं रहेगी। वहाँ कौन-कौन है? आज इतना ही लिखूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४८०) से।

२८७. पत्र : हीरालाल शर्माको

२१ अगस्त, १९३६

चि० शर्मा,

. . . .[1] बेबिट के पुस्तक का पूरा नाम दो। तुमको इसके गुमने का दुःख भले न हो वह पुस्तक न मिले तबतक मैं अवश्य बेचैन रहूँगा। ऐसे पुस्तक क्यों गुम हो सकता है? इसी तरह खादी का। लेकिन हाँ उसके गुम होने का दुःख इतना नहीं जितना बेबिट जानेका। मैं तो अभी भी आशा रखता हूँ कि पुस्तक हाथमें आयेगा।

बापुके आशीर्वाद

बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृ० २६०

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

२८८. एक पत्र[1]

[२२ अगस्त, १९३६ के पूर्व]

मैं देखता हूँ कि तथाकथित अस्पृश्योंके लिए प्रयुक्त "हरिजन" नामका मूल अर्थ आप नही जानते। हिन्दू साहित्य, और जहाँतक मैं जानता हूँ, ईसाई साहित्यमे भी, इस बातको बराबर कहा गया है कि पृथ्वीपर जो लोग तिरस्कृत है उन्हे भगवान् विशेष रूपसे प्यार करता है। इसी कारण हमारे दैनिक जीवनमे मुहावरा चलता है "निर्बलके बल राम"। मनुष्योने अहंकारवश जिन करोड़ो मनुष्योको समाज मे अछूत बना दिया है, भला "हरिजन" कहलाने का अधिकारी उनसे ज्यादा कौन हो सकता है? यदि अस्पृश्य स्वय कहते कि "हम हरिजन है क्योकि हम निष्पाप है", तब और बात होती। परन्तु आप जिसे "नवजन्म" कहते है, उसका अनुभव हुआ हो अथवा न हुआ हो, कौन माईका लाल कह सकता है कि वह निष्पाप है?

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २२-८-१९३६

२८९. बातचीत: एक पंडितसे[2]

[२२ अगस्त, १९३६ के पूर्व]

उस दिन एक पंडितजी सेगाँव पहुँचे। गांधीजी से उनका परिचय कराते समय बताया गया कि इन्होंने शास्त्रोंका अच्छा अध्ययन किया है और 'गीता' पर ये नियमित रूपसे प्रवचन करते हैं। गांधीजी ने उनसे पूछा कि क्या 'गीता' में अस्पृश्यता के पक्षमें कोई प्रमाण मिलता है। पंडितजी के कथनानुसार ऐसा मालूम हुआ कि यह तो अस्पृश्यकी परिभाषापर निर्भर करता है। उन्होंने कहा:

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। यह पत्र एक मिशनरीको लिखा गया था, जिसने गांधीजी से पूछा था, "क्या इससे यह पता नहीं चलता कि वास्तविक और सच्चे अर्थमें हरिजन बनने के लिए हमें नवजन्म लेने का या आध्यात्मिक पुनरुज्जीवनका अनुभव होना आवश्यक है? और जबतक कोई साधारण मनुष्य अपुनरुज्जीवित दशामें है, तबतक उसको नवजन्म या आध्यात्मिक पुनरुज्जीवनकी कोई ठीक समझ नहीं हो सकती। बेचारे देहाती जो भूलों और पापोंमें आकण्ठ डूबे हुए मृतक-समान हो रहे हैं, उन्हें 'हरिजन' नाम देने के बजाय क्या यह अच्छा नहीं होगा कि उन्हें केवल स्त्री और पुरुष कहा जाये, जो चाहें तो भगवान्के सच्चे बालक बन सकते हैं?"

२. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

अस्पृश्य तो वह है, जो बुरी-बुरी बातें सोचता है, गन्दे या कटु शब्द मुँहसे निकालता है और कुकर्मोंमें प्रवृत्त रहता है। 'गीता' के अनुसार अस्पृश्य ऐसा ही व्यक्ति माना जायेगा।

पर इस दृष्टिसे विचार किया जाये, तब तो हममे से हरएक अस्पृश्य है। ऐसा यहाँ कौन है, जो पाप-रहित हो? मैं जरा जान तो लूँ। क्यों तुकडो महाराज, आप पाप-रहित हैं?

नहीं, किसी प्रकार नहीं।

तब खान साहब, कहिए, आप क्या कहते हैं?

मैं भी यही कहूँगा। बेगुनाह होने का दावा कौन कर सकता है?

तब इसका यह मतलब हुआ कि हम सभी अस्पृश्य हैं। कुछ भी हो, अच्छा तो यही है कि हम अपनेको दूसरोसे कम पवित्र समझें, क्योकि जितना हमें अपने बारेमें पता है उतना दूसरोके बारेमें नही, और दूसरोके दोष निकालनेवाले हम होते कौन हैं! इसीसे तो भक्त सूरदास अपना अन्तर्निरीक्षण करते हुए गा रहे हैं. "मो सम कौन कुटिल खल कामी।"

"किन्तु अपनेको बुरे विचारोंसे मुक्त रखने के लिए शास्त्रोंकी सहायता तो आवश्यक ही है", पंडितजी ने कहा।

हाँ, है। पर मैं ऐसे किसी शास्त्रको प्रामाणिक नही मानता, जो अस्पृश्यताका समर्थन करता हो अर्थात्, जो मनुष्योके विशेष वर्गोको जन्मना अस्पृश्य मानता हो। ऐसा शास्त्र भला हमें पापोसे उबारेगा? अरे, वह तो हमे उलटा पाप-पकमें और डुबायेगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २२-८-१९३६

२९०. बातचीत : एक साधुसे[1]

[२२ अगस्त, १९३६ के पूर्व]

एक दूसरा साधु, जो हरिजनोंका नेता है, एक दिन एक विचित्र-सी पहेली लेकर पहुँचा। उसका कूट प्रश्न यह था: "ईश्वरको जब हम जानते ही नहीं, तो फिर उसकी सेवा हम कैसे कर सकते हैं?"

[गांधीजी.] ईश्वरको हम भले ही न जाने, पर उसकी रची हुई सृष्टिको तो हम जानते हैं। और सृष्टिकी सेवा उस सिरजनहारकी ही सेवा है।

पर सिरजनहारकी समस्त सृष्टिकी हम किस प्रकार सेवा कर सकते हैं?

हम केवल परमात्माकी सृष्टिके उस भागकी सेवा कर सकते है जो हमारे सबसे अधिक नजदीक हो और जिसके विषयमें हमें अधिकसे-अधिक ज्ञान हो। इसका आरम्भ हम अपने सबसे नजदीकी पड़ोसीसे कर सकते हैं। हमारा आँगन साफ है, बस इतनेसे ही हमे सन्तोष नही मान लेना चाहिए; हमें यह भी देखना चाहिए कि हमारे पडोसीका आँगन भी साफ है न। हम अपने कुटुम्बकी सेवा करे, पर कुटुम्बके स्वार्थकी खातिर गाँवको कुर्बान न कर दे। गाँवकी इज्जत-आबरू बनाये रखने में ही हमारी मान-प्रतिष्ठा है। लेकिन हम सबको अपनी-अपनी मर्यादाएँ समझ लेनी चाहिए। जिस दुनियामे हम रहते है उसका हमें जो ज्ञान है, उससे हमारी सेवा-शक्ति या योग्यता स्वतः ही मर्यादित है। पर इसे मैं सरलसे-सरल शब्दोमें कह दूं। जितना खयाल हम अपना रखते हैं, अपने पड़ोसीका उससे ज्यादा खयाल रखें। अपने आँगनका कूड़ा-कचरा अपने पड़ोसमे डाल देना, यह मानव-जातिकी सेवा नही, कुसेवा है। इसलिए अपने पड़ोसियोकी सेवा से ही हमें परमात्माकी सेवाका आरम्भ करनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २२-८-१९३६

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

२९१. एक खतरनाक योजना

रावबहादुर राजा ने अपने और डॉ० मुंजेके बीच हुआ पत्र-व्यवहार[1] प्रकाशित करके सार्वजनिक सेवा ही की है। इस पत्र-व्यवहारको प्रकाशित करने में कोई विश्वासघातकी बात नही है। क्योकि पत्र पानेवाला जिस बातको खतरनाक या भयानक समझे, जैसाकि मुंजे-अम्बेडकरकी योजना निश्चित रूपसे है, उसे गुप्त रखना लाजिमी नही है। डॉ० मुंजे और डॉ० अम्बेडकर, दोनो अपनी योजनाको खतरनाक नही समझते, इस बातसे उनके लिए वह कम खतरनाक नही हो जाती जो उसे नापसन्द करते है। और जब रावबहादुर राजा का इरादा हर तरहके उचित उपायोका सहारा लेकर उसे अमलमे आने से रोकने का था, तब इसके सिवा वे और करते भी क्या? उन्होने उन कुछ व्यक्तियोसे इस बारेमे पत्र-व्यवहार शुरू किया जो यरवडा-समझौतेमे शामिल थे, और जब यह देखा कि उनमे से कोई भी इस योजनाको पसन्द नही करता तब उन्होने तुरन्त वह पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया। आशा करनी चाहिए कि सवर्ण हिन्दुओ तथा डॉ० अम्बेडकरके बीच आगे कोई ऐसा सौदा नही होगा जिसमे लाखो मूक हरिजनोके धर्मको इस तरह बदल देने की तजवीज हो, जैसेकि हरिजन लोग मनुष्य नही, कोई माल-असबाब हो।

जहाँतक यरवडा-समझौतेका ताल्लुक है, वह हिन्दुओके दो बड़े समुदायोके बीचमे हुआ समझौता है। उसने हिन्दू जातिको उसके दो टुकडे होने से बचाया है और सवर्ण हिन्दुओको उन लाखो-करोड़ोंकी क्षति-पूर्ति करने का मौका दिया है जिनके साथ वे सदियोसे दुर्व्यवहार करते चले आ रहे है।

डॉ० अम्बेडकर इसके लिए हिन्दुओको दण्ड देना चाहते है और उन्हे ऐसा करने का हर तरहका हक भी है, लेकिन उन्हे यह आशा नही करनी चाहिए कि सवर्ण हिन्दू भी इसमे उनका साथ देगे। उन्हे अधीर होने का पूरा हक है। मगर सदियो पुराने पूर्वग्रह व अन्ध-विश्वास एक क्षणमे दूर नही हो जाते। सुधार-आन्दोलन का जिसने जरा भी अध्ययन करने की कोशिश की है, ऐसा कोई व्यक्ति इस बातसे इनकार नही करेगा कि अस्पृश्यता-निवारण-आन्दोलनका सन्देश सवर्ण हिन्दुओ तक पहुँचाने का वह सब प्रयत्न किया जा रहा है, जो मनुष्यके लिए शक्य है। डॉ० अम्बेडकरकी योजना अगर मान ली गई तो सुधार-आन्दोलनको ऐसा धक्का लगेगा जो अन्तमे जाकर शायद उसकी मौत ही साबित हो। क्योकि इसमे हरिजनोको कागजी, लेकिन कानूनी तौरपर, हिन्दू-धर्मके दायरेसे दूसरे दायरेमे रख देने की बात है, चाहे उस दूसरे दायरेका नाम कुछ भी क्यो न हो। इसका अर्थ अवश्य ही भ्रातृघात है।

१. देखिए "पत्र: एम० सी० राजाको", २६-७-१९३६।

क्योंकि इससे खुद हरिजन ही दो परस्पर-विरोधी मार्गोमे बँट जायँगे और अगर उन दोनोंको यरवडा-समझौतेके अर्थमें हरिजन शुमार किया गया तो उनकी हालत आजसे भी बदतर हो जायेगी, और यदि दुखी भारतपर यह विपत्ति आई तो वह उसके लिए बहुत ही बुरा दिन होगा।

यह दलील बेकार है कि इसमे धर्मका नाम-मात्रके लिए परिवर्तन भले ही हो, पर वस्तुतः कोई धर्म-परिवर्तन नही होगा, और अगर हुआ भी तो वह वैसा खराब नही होगा जैसाकि हरिजनोके ईसाई या मुसलमान बन जाने पर होता। अगर धर्म-परिवर्तन ही हो, तो इससे कोई फर्क नही पडता कि वे (अर्थात् हरिजन) किस नामसे पुकारे जाते है। अगर सिर्फ कहने-मात्रके लिए वे दूसरे धर्ममें चले जायें, मगर बने रहे फिर भी हरिजन ही, तो इससे तो उनके अन्दरूनी झगडोके लिए एक अतिरिक्त कारण पैदा हो जायेगा — और वह सब होगा सवर्ण हिन्दुओंको सजा देने की इच्छा पूरी करने के लिए। अपनी नाराजगी या अधीरताके कारण डॉ० अम्बेडकर इस स्पष्ट परिणामको न देखना चाहे तो न देखे, लेकिन डॉ० मुजेको तो इसे देखना ही चाहिए।

और, हम स्वयभू नेता हरिजनोकी धार्मिक स्वतन्त्रताका सौदा करनेवाले होते कौन है? क्या हरएक हरिजनको, फिर वह चाहे बेवकूफ और मन्दबुद्धि ही क्यो न हो, अपना चुनाव स्वय करने का हक नही है? डॉ० अम्बेडकर और दूसरे जो लोग धर्म-परिवर्तन करना चाहते है, उनके लिए ऐसा करना एक बात है, लेकिन राजनीतिक या अन्य प्रकारके दलोके लिए तमाम हरिजनोकी ओरसे ऐसा मान बैठना और उसपर कानूनी तथा दूसरे दूरगामी परिणामोको आधारित करना बिलकुल ही अलग बात है।

हिन्दुस्तानमे भिन्न-भिन्न धर्मोके जो नेता है वे अगर हरिजनोको अपने-अपने धर्मंमे मिलाने के लिए आपसमे प्रतिस्पर्द्धा करना बन्द कर दे, तो यह इस अभागे देशके लिए सद्भाग्य की बात होगी। मेरा तो पक्का विश्वास है कि जो लोग इस चढ़ा-ऊपरी मे लगे हुए है वे धर्मकी कोई सेवा नही कर रहे है। राजनीतिक या आर्थिक रूपमें उसका सौदा करके उलटे वे तो धर्मके महत्त्वको घटा रहे है। उचित तो यह है कि खुद राजनीति और अन्य सब बातो का मूल्याकन धर्मकी दृष्टिसे हो। कारण, धर्मका सम्बन्ध तो आत्मासे है। दुनियाकी दूसरी शक्तियाँ कितनी ही बड़ी क्यो न हो, अगर ईश्वर-जैसी कोई चीज है, तो आत्म-शक्ति सबसे प्रबल शक्ति है। वस्तुत. यह तो हम जानते ही है कि जो शक्ति जितनी बड़ी होगी वह उतनी ही बढिया भी होगी। बढिया भौतिक शक्तियोमे अभीतक विद्युत् ही सर्वप्रधान है। मगर उसके आश्चर्य-जनक परिणामोके सिवा अन्य रूपमें अभीतक उसे किसीने नही देखा है। हाँ, वैज्ञानिक चिन्तनमे विद्युत्से भी श्रेष्ठ शक्तिके अस्तित्वकी परिकल्पना की जाती है। लेकिन मनुष्य-रचित कोई औजार ऐसा नही है जो आत्माका, अर्थात् आध्यात्मिक शक्तिका किसी निश्चित रूपमे पता लगा सके। सच्चे धार्मिक सुधारकोने अभीतक इसी शक्ति पर अपना आधार रखा है, और उनकी आशा कभी निष्फल नही हुई। इसी शक्तिसे

अन्तमे हरिजनोका तथा अन्य हरएक व्यक्तिका कल्याण होगा और मनुष्योके लगाये सारे अनुमान गड़बड़ हो जायेंगे, फिर वे मनुष्य बौद्धिक दृष्टिसे कितने ही प्रतिभाशाली क्यो न हो। जो सुधारक हिन्दू-धर्मको अस्पृश्यताके रोगसे मुक्त करने के कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ है उन्हे तो हरएक बातमे इसी एक शक्तिपर निर्भर रहना पड़ेगा।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २२-८-१९३६

२९२. पत्र : मेहरचन्द अहलुवालियाको

सेगांव, वर्धा

२२ अगस्त, १९३६

प्रिय मित्र,

मेरी सहमति आम ढंगकी है। मैंने न कभी पहले और न आज ही वर्ग-संघर्ष या वर्ग-द्वेषका समर्थन किया है। मैं वर्ग-संघर्षको अवश्यम्भावी भी नही मानता। लेकिन मैंने ऐसा कभी नही कहा और न यह माना ही है कि कांग्रेसके उद्देश्यके लिए पूंजीपतियोकी मदद आवश्यक है।

हृदयसे आपका,

श्री मेहरचन्द अहलुवालिया
राजपुरा
एन० डब्ल्यू० आर०

अंग्रेजीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

२९३. पत्र : मेहराबहन झाबवालाको

२२ अगस्त, १९३६

प्रिय बहन,

आपका सुन्दर पत्र मिला। हरिजन-कार्यकर्त्ताओं और खादीके बीच कोई सीधा सम्बन्ध नही है। विदेशी वस्त्र पहननेवाला भी हरिजन-सेवा कर सकता है। अतः आप तो आलोचनाकी चिन्ता न करके अपना सेवा-कार्य करती ही जाये।

लेकिन आप तो दरिद्रनारायणकी भी सेविका है। दरिद्रनारायणसे तात्पर्य है गाँवोके करोड़ों भूखे मरनेवाले लोग। उनकी सेवा करनेवाला निश्चय ही खादीका बोझ उठा सकता है। आपसे जितना सम्भव है उतना तो आप करती हैं, इतना ही काफी है। आपको एक सुझाव दूं? आप अपने हाथसे बहुत बारीक सूत कात सकती

है। यदि आप ऐसा करे तो वजनमे विलकुल हलकी साड़ी पाँच-छह रुपयेमे तैयार करवा सकती हैं। वहुत-सी गरीव वहने ऐसा करती है।

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

२९४. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

सेगाँव, वर्धा
२३ अगस्त, १९३६

वापा,

दक्षिण हिन्दुस्तानके सेवक-मण्डलके विषयमें हुई वाते मुझे याद नही पड़ती। अव तो मैं प्रत्येक वातके वारेमे उसी समय अपनी राय वनाता हूँ जव वह मेरे सामने रखी जाती है। दक्षिण हिन्दुस्तानके मण्डलके योग्य सेवक मिले और दक्षिण हिन्दुस्तानसे ही उनका खर्च निकल आये तो मुझे कोई हर्ज दिखाई नही देता। केन्द्रसे कोई मदद नही दी जा सकती।

अमतुस्सलाम तुम्हारे लिए कुल मिलाकर चिन्ताका कारण तो नही है न? वह वहाँसे वापस लौटने की तैयारी कर रही है। नीलमका खर्च तो तुम्हे यहाँसे लेना है। उसका वोझ वहाँ तुमपर नही डालना है। शायद यह खर्च जमनालालजी उठायेंगे; और नही तो फिर मेरी थैली तो है ही।

वालुजकरको और पैसेकी जरूरत पडेगी। मैंने उसकी हुडी स्वीकार करने की वात लिखी थी; वह मेरी देखरेखमे काम कर रहा है। हरएक वातके वारेमे मुझसे पूछता है।

वापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११६५) से।

२९५. पत्र : न० चि० केलकरको

सेगाँव, वर्धा
२४ अगस्त, १९३६

प्रिय श्री केलकर,

आपके पत्रका उत्तर देने मे देर हो गई।

आपका कथन[1] क्या वहुत ही कमजोर साक्ष्यपर आधारित नही था? आप तथ्यो की पुष्टिके लिए स्वामी सत्यदेवका लेख मेरे पास भेज सकते थे। यदि समय होता तो मैं वड़ी खुशीसे उनसे पत्र-व्यवहार करके उन लोगोके नाम जानता जिनसे मैंने

१. देखिए "पत्र: न० चि० केलकरको", ६-८-१९३६।

तथाकथित बाते कही थी। परन्तु इस विषयकी चर्चा आगे बढ़ाने को न मेरे पास समय है न इच्छा ही। सत्य अजेय है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ३११९) से; सौजन्य: काशिनाथ एन० केलकर

२९६. पत्र : अमृतकौरको

२४ अगस्त, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

मेरे पास केवल इतना ही समय है कि तुम्हारे दो तारोंके लिए तुम्हें खूब प्यार भेज सकूं। भगवान्‌का शुक्र है कि अँगूठा ठीक हो गया है।

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७३५) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६८९१ से भी

२९७. पत्र : मीराबहनको

२४ अगस्त, १९३६

चि० मीरा,

तुम्हारे देखने के लिए इसके साथ सीताराम शास्त्रीका पत्र भेज रहा हूँ। तुम सैंडिल भूल गई। मुझे पता नही कि तुम्हे अपना जोडा मिल गया या नही। यदि ऐसा नही है तो तुम्हें एक जोड़ा वही प्राप्त कर लेना चाहिए अथवा एकदम ही वालुंजकरको लिख देना चाहिए।

मुझे उम्मीद है कि तुम ठीक-ठाक होगी और वहाँ अच्छी तरह जम गई होगी।[१] अपने नये जीवन मे रम जाने के पश्चात् तुम जो पहला पत्र लिखोगी उसकी प्रतीक्षामें हूँ। कोई भी समय-सारणी मत बनाओ।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३६२) से; सौजन्य: मीराबहन। जी० एन० ९८२८ से भी

१. मीराबहन बैतूलमें रहने चली गई थीं।

२९८. पत्र : बाल गंगाधर खेरको

२४ अगस्त, १९३६

प्रिय भाई खेर,

समयाभावके कारण तुम्हारे महत्त्वपूर्ण पत्रका[1] उत्तर देने में देरी हो गई। यहाँ किसीके बौद्ध बनने का कोई सवाल ही नही है। जिस प्रकार राम, कृष्ण आदिके मन्दिर है, उसी प्रकार इस मन्दिरमे बुद्धकी प्रतिष्ठा होगी। यह आन्दोलन धर्म-परिवर्तन कराने के दोषसे मुक्त है। अधिकसे-अधिक यह आधुनिक प्रकारका एक हिन्दू मन्दिर होगा, जिसका रक्षक या पुजारी कोई अत्यन्त विद्वान् व्यक्ति होगा। प्रोफेसर कोसम्बीकी समूची योजनाको मैंने इसी रूपमे समझा है। इस पत्रको तुम प्रोफेसरको दिखा लो और यदि वे मेरे दृष्टिकोणका अनुमोदन करे तो श्री नटराजनको भी, ताकि मन्दिरके विषयमे सबकी एक राय रहे।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९७७) से, सौजन्य. घनश्यामदास बिडला

२९९. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

२४ अगस्त, १९३६

चि० मणिलाल, सुशीला,

तुम्हारे पत्र मिले। किशोरलालके नामका पत्र भी पढ लिया। शेयर-होल्डरोके बारेमे तुम्हारा विचार ठीक नही लगता। जहाँ शेयर-होल्डरोके लिए क्षेत्र हो सकता है, वहाँ ग्राहकका और योग्य व्यक्तिका क्षेत्र हो ही सकता है। शेयर-होल्डर प्राप्त करने का मतलब पत्रका चन्दा देनेवाले और कुशल ढंगसे काम करनेवाले योग्य लोगोका

१. श्री खेरने अपने पत्रमें लिखा था : "श्री धर्मानन्द कोसम्बीने मुझे बताया कि आप चाहते हैं कि नायगाँव विहारके निमित्त बिड़लाजी द्वारा दिये गये दानके व्ययपर मैं नजर रखूँ। मैं ऐसा ही करूँगा। भवन-निर्माणका कार्य पूरा होने तक मैं उस धनके व्ययका ध्यान रखूँगा। परन्तु मै तो इस समय हरिजन सेवक संघसे सम्बन्धित माना जाता हूँ। इस कारण उसके बाद मैं क्या कर सकूँगा, कह नहीं सकता। मै भला बुद्ध-विहार समितिका सदस्य कैसे बन सकता हूँ? क्या वे सब बौद्ध बन जायेंगे? और इसकी आवश्यकता ही क्या है? . . ."

मिल जाना नही है। मेरी समझमें तो भरपूर पैसा आ रहा हो तो भी ठीक आदमी मिलना मुश्किल होता है। सीधी बात तो यह है कि अभीतक 'इंडियन ओपिनियन' के ग्राहक उसके पाठक न होकर उसके सरक्षक हैं। यह एक करुणाजनक स्थिति है। तुम्हे यहाँ-वहाँ भटकना बन्द करके कोई दूसरा ऐसा प्रामाणिक काम खोज लेना चाहिए जिससे तुम दोनोका खर्च निकल सके। 'इंडियन ओपिनियन' चलायें तो उसका नुकसान या तो तुमको भरना चाहिए या उन लोगोंको यह नुकसान भरने का वचन देना चाहिए जो चाहते हैं कि पत्र चलाया जाता रहे। अगर यह सम्भव न हो तो 'इडियन ओपिनियन' बन्द कर देना चाहिए। उसे चलाने का आग्रह रखना एक सीमातक ठीक माना जा सकता है। 'इडियन ओपिनियन' के बन्द हो जानेपर तुममें दूसरा धन्धा करके पेट भरने की सामर्थ्य तो होनी ही चाहिए। केवल खेतीके बलपर गुजारा कर सकने की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। इन सब बातोंपर वीरजके साथ विचार करना चाहिए। यहाँसे सुझाव भेजने में भी बड़ी मदद नही हो सकती। वहाँकी आजकी परिस्थिति तुम्ही जानते हो। फिर भी अन्तिम निर्णय करने के पहले यहाँ लिखकर सूचित कर देना ठीक होगा। यदि उतना समय न हो तो तुम स्वतन्त्र रीतिसे निर्णय कर सकते हो। इतनी शर्तोंका पालन तो करना ही चाहिए:

(१) कर्ज न करना;
(२) धन्धेको उधारपर न चलाना;
(३) कोई अनुचित धन्धा—जैसे बीड़ी बेचना आदि—न करना;
(४) जिसमें जल्दी धनवान होने की आशका हो, ऐसा धन्धा न करना।

सोराबजी की बात पढ़कर दुःख हुआ। इनके बारेमे रुस्तमजी सेठको जो भय रहता था वह सही सिद्ध हुआ लगता है। जिसका जैसा नसीब उसकी बुद्धि उसी प्रकार चलती है।

शायद कान्तिके विषयमे लिख चुका हूँ। वह भी परीक्षा और उपाधियोंके प्रवाहमे पड़ गया है। इसके बिना उसे सन्तोष ही नही होता। हाँ, मुझे याद आया कि मैंने उसके लिए तुमसे मदद माँगी थी।[1] जान पड़ता है, देवदासने कुछ मदद दी भी है। परसो-नरसो तक मददकी रकम आ जानेकी उम्मीद है। तब फिर अधिक मालूम होगा। रामदास लिखता है कि वह मदद नही कर सकता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८५७) से।

१. देखिए "पत्र: मणिलाल और सुशीला गांधीको", १६-८-१९३६।

३००. बातचीत : मॉरिस फ्राइडमनसे[1]

[२५ अगस्त, १९३६ या उसके पूर्व][2]

[गांधीजी.] अच्छा, तो ये फ्राइडमन हैं। आप तो चरखेका अध्ययन करने के लिए आये हैं न? पर वह एक लाख रुपयेका इनाम आपको मिलने से रहा। वह तो रद्द कर दिया गया है।

[मॉरिस फ्राइडमन] भी गांधीजी के साथ जोरसे हँसते हुए बोले, "जी नहीं, मैं वह इनाम नहीं चाहता। मैं तो आपको सिर्फ वह चरखा बना देना चाहता हूँ, जिसकी आपको जरूरत है।"

मॉरिस फ्राइडमनने चरखेके बारेमें फिर कई सवाल पूछे, अनेक सुधार सुझाकर उनपर बहस की, और इसके बाद वर्धाके लिए रवाना हो गये।[3]

उन्होंने पूछा, यहाँ गाँवमें आनेमें आपका उद्देश्य शुद्ध मानव-सेवा ही है न, जिससे आप अपनी शक्ति-भर इन ग्रामवासियोंकी अधिकसे-अधिक सेवा कर सकें?

यहाँ तो मैं सिवा अपने और किसीकी सेवा करने नही आया हूँ। इन देहातियो की सेवा द्वारा मैं आत्म-साक्षात्कार करना चाहता हूँ। मनुष्यका अन्तिम उद्देश्य है ईश्वरका साक्षात्कार — उसकी अनुभूति प्राप्त करना। उसके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी कार्य इस अन्तिम उद्देश्य — ईश्वरानुभूति — को ध्यानमे रखकर ही सम्पादित होने चाहिए। इसलिए मानव-जातिकी सेवा इस प्रयत्नका एक अनिवार्य भाग है, क्योंकि ईश्वरको पाने का एकमात्र उपाय है उसीकी बनाई सृष्टिमें परमात्माका दर्शन करना और उससे तादात्म्य स्थापित कर लेना। यह तो सबकी सेवा द्वारा ही हो सकता है। स्वदेश-सेवाके बगैर विश्व-सेवा हो ही नही सकती। मैं इस विश्वका एक छोटा-सा अंग-मात्र हूँ। इसलिए मैं इस मानव-जातिको छोड़कर उसे कही पा ही नही सकता। मेरे देशभाई मेरे सबसे नजदीकी पडोसी हैं। वे इतने असहाय, इतने साधनहीन, इतने सुस्त और जड हो गये है कि उन्हीकी सेवामें मुझे अपना सारा ध्यान और शक्ति लगा देनी पड़ेगी। अगर मुझे यह विश्वास हो जाता

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। मॉरिस फ्राइडमन एक पोलिश इंजीनियर थे और ग्रामोद्धार आन्दोलनमें उनकी बड़ी दिलचस्पी थी। इससे पहले वे नन्दी हिल पर गांधीजी से मिल चुके थे। उन्हें भारतानन्द नाम दिया गया था।

२. साधन-सूत्रके अनुसार बातचीत मंगलवारको हुई थी। २९-८-१९३६ से पहलेका मंगलवार २५-८-१९३६ को पड़ा था।

३. इसके बादकी बातचीत अगली भेंटमें हुई थी।

कि मै हिमालयकी किसी गुफामे ईश्वरको पा सकता हूँ तो मै तुरन्त वहाँ चल देता। पर मै तो जानता हूँ कि मै इस मनुष्य-जातिको छोडकर उसे और कही नही पा सकता।

पर मनुष्यकी आध्यात्मिक उन्नतिके लिए भी कुछ सुख-सुविधाओंकी तो जरूरत रहती ही है। ग्रामवासियोंके असुविधा-भरे और गन्दे जीवनसे एकरूप होकर भी क्या कभी कोई अपनी उन्नति कर सकता है?

शारीरिक सुख और शान्ति एक हदतक अवश्य जरूरी है। पर उस हद तक पहुँच जाने के वाद उनसे आगे वढने मे सहायता पहुँचने के वजाय रुकावट पडने लगती है। इसलिए अपनी जरूरतोको अन्धाधुन्ध वढाकर उनकी पूर्ति करने का आदर्श एक प्रकारका मोहजाल ही है। मनुष्यकी शारीरिक जरूरतोको, वल्कि उसकी व्यक्तिगत वौद्धिक जरूरतोको भी एक हदतक पहुँचने के वाद रोकना ही चाहिए, नही तो वे शारीरिक तथा वौद्धिक विलासमे परिणत होने लग जायेगी। मनुष्यको अपनी भौतिक और सास्कृतिक परिस्थितियोको इस तरह व्यवस्थित और नियमित कर लेना चाहिए जिससे वे उसके सेवामार्गमें वाधक न हो पाये। असलमे, सेवामे ही उसकी सारी शक्तियाँ केन्द्रित होनी चाहिए।

आप जो गाँवोंपर सारा ध्यान और प्रयत्न केन्द्रित करते हैं, इसका रहस्य क्या है?

मै वरावर कहता रहा हूँ कि अस्पृश्यता वनी रही तो हिन्दू-धर्म नष्ट हो जायेगा। इसी प्रकार मै कहूँगा कि यदि गाँव तवाह हुए तो भारत भी नष्ट हो जायेगा। वह फिर भारत नही रह जायेगा। ससारमे भारतका जो मिशन है, वह खत्म हो जायेगा। गाँवोका भविष्यमे शोषण न हो तभी उनका पुनरुद्धार हो सकता है। वडे पैमानेपर औद्योगीकरण किये जाने का परिणाम यह होगा कि होड और वाजारकी समस्याएँ पैदा होगी और इनके फलस्वरूप गाँववालोका किसी-न-किसी प्रकार शोषण किया जायेगा। इसलिए हमे इस वातपर आग्रह रखकर चलना है कि गाँव आत्म-निर्भर हो, और अपनी जरूरतका सामान मुख्यत वही तैयार कर ले। यदि ग्रामोद्योगोका यह स्वरूप कायम रखा जाये तो फिर इसपर कोई आपत्ति नही है कि गाँववाले आधुनिक यन्त्र और औजारोका उपयोग करे — ऐसे यत्र-औजारोका जो वे आसानीसे प्राप्त कर सके और स्वय वना सके। शर्त यही है कि इन यन्त्रोका उपयोग दूसरोका शोषण करने के लिए नही होना चाहिए।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, २९-८-१९३६

३०१. तार : अमृतकौरको

सेगाँव
२५ अगस्त, १९३६

राजकुमारी अमृतकौर
मैनरविले
शिमला

तारसे ठीक-ठीक सूचित करो कि डॉक्टरकी रायमें अँगूठे समेत शरीरकी दशा कैसी है। सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७३६) से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६८९२ से भी।

३०२. पत्र : अमृतकौरको

२५ अगस्त, १९३६

प्रिय अमृत,

तुमने यह क्या कर डाला? शम्मी कहते हैं कि तुम "बीमार होकर लौटी" हो और स्वभावत यह भी कि उन्हे "सब प्रकारसे बड़ी निराशा हुई है।" सच्ची बात बता देने के कारण उनसे नाराज मत होना। तार पढ़कर मैं व्यथित हो गया हूँ। तुम्हे हुआ क्या है? मैंने तुम्हे कड़ा तार भेजा है।

आशा है, तुम मुझे संशयमें नही रखोगी और ठीक-ठीक ब्योरा दोगी। शम्मीको सब प्रकारसे निराशा क्यो हुई है, इसपर भी प्रकाश डालना। तुमने मुझे शम्मीको लिखने का निषेध किया था। किन्तु मैं उनके तारकी अवहेलना नही कर सका। उन्हे छोटा-सा पत्र[1] भेजा है।

आशा करता हूँ, तुम्हे कोई गम्भीर रोग नही होगा। पूरा सच्चा हाल जानने के बाद ही और कुछ लिखूँगा।

१. उपलब्ध नहीं है।

हाँ, मीरा कल बैतूल चली गई और उसकी कुटीमे पुरी[1] रहता है।

तुम्हारे कोने खाली पड़े है! और गुसलखाना? वहाँके सारे खिलौने चले गये! परन्तु जब तुम यहाँ स्वस्थ रह ही नही सकती तब तुम मेरे पास आ भी कैसे सकती हो?

सप्रेम,

बापू

[पुनश्च :]

तुम्हारी यह मजाल कि मुझे कोरा पन्ना भेज दिया, जबकि लिखे हुए पन्नेपर एक कोना भी रीता नही छोड़ती!

बा०

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७३७) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६८९३ से भी

३०३. पत्र: एफ० मेरी बारको

२५ अगस्त, १९३६

चि० मेरी,

इस पत्रसे[2] तुम मेरी नजरो मे और भी उठ गई हो और यदि मेरे-तुम्हारे बीच अब भी कोई दूरी थी तो वह इससे मिट गई है। हमे सत्यका ध्यानपूर्वक पालन करने की आवश्यकता है। बात यह है कि मैने केवल यह जानने के लिए पूछा था कि तुम्हारे आराममे कोई विघ्न तो नही पडा। मै यह नही चाहता था कि घटी बजने पर तुम आओ ही। मेरे पास सेगाँवमे जो थोडे-से लोग है उनके साथ भी मै कडाई नही बरतता। उन्हे स्वतन्त्रता है कि चाहे तो प्रात.कालीन प्रार्थनामे शरीक न हो। इसमे सीखकी बात यह है कि प्रियसे-प्रिय व्यक्तियोकी प्रसन्नताकी खातिर भी कोई कार्य तबतक न किया जाये जबतक वह स्वयंको भी प्रिय न लगे। इस सामान्य सिद्धान्तसे अनेक छोटे प्रश्न उठते है सही, परन्तु तुम मेरा तात्पर्य तो समझती हो।

मोतीसे मेरा प्यार कहना। खुशी है कि उसे वहाँका जीवन पसन्द है। आशा है, उसकी तबीयत ठीक रहती होगी।

मीरा चली गई है। आशा है, वहाँ आरामसे रहेगी। ऐसा न हो, तो उसे लौट आना चाहिए। मै उसको एक दूसरी परन्तु दूरकी जगह भेज सकता था, परन्तु दूर जाने मे उसकी अनिच्छा थी।

१. अनन्तराम पुरी।

२. एफ० मेरी बारने पत्रमें लिखा था कि गांधीजी को सेगाँवकी प्रातःकालीन प्रार्थनामें शामिल न होने का कारण बतानेमें वे "एक प्रकारका झूठ बोली" थीं क्योंकि उनका सुबह उठने का इरादा ही नहीं था।

महादेव मालवाही जहाजोके विषयमे पूछ-ताछ करेगा।

सप्रेम,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०६७) से। सी० डब्ल्यू० ३३९७ से भी, सौजन्य ' एफ० मेरी बार

३०४. पत्र : व्रजकृष्ण चाँदीवालाको

२५ अगस्त, १९३६

चि० व्रजकिसन,

तुमारे पत्र के उत्तर देने मे बहूत देरी हुई, कारण सिर्फ समयाभाव ही थी। आज भी सोने के समय लिख रहा हू।

मेरे पास कौन रहते है? तीन तो थे ही। बाकी मे बा और मनु खानसाहेब। जिसको रोक सकता हू उसे रोक लेता हू। तुमको आने देने से क्या लाभ? यहा तुमारी सेहत अच्छी तो रहती ही नही।

ग्रामउद्योग मे किसीकी मदद न मिले तो उसे छोडो।

वहा शरीर अच्छा न रहे सो तो मुझे लिखो।

बापु

[पुनश्च]

यहा कुछ खत खतम नही हुआ था। आखरी वाक्य नीद मे ही लिखा। कलम छुट गई और सो गया। अब नीद से उठकर और गरम पानी पीकर इसे लिख रहा हू। यह बात कोई बीमारी की या कम शक्ति की निशानी नही है आरोग्य की निशानी अलबत्ता है। मेरे साथ रहने का लोभ छोडो और वहा या अन्य स्थलपर जिधर कुछ भी धधा कर सको वहाँ धधा करो और खर्च-जितना कमाओ। कोई खादी भडार मे क्यो नही? अथवा नरेला जाकर रहो। दूसरो की मदद से कार्य करो। ऐसे ही बैठे रहना अच्छी बात नही है। देवदास से मश्वार करो। यह जानो कि मैं नही लिखता हू उसका कारण जो तुमने निकाला है सो कभी हो ही नही सकता है। मै तुमें कैसे भूलू?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २४४५) से।

३०५. पत्र : रणजीत एस० पंडितको

वर्धा
२६ अगस्त, १९३६

चि० रणजीत,

तुम्हारी तबीयत खराब क्यों रहा करती है? सरूप लिखती है कि अब तुम्हारी तबीयत पहलेसे कुछ अच्छी है। प्रयास करके भी तुम्हें अपना शरीर वज्र-जैसा बना लेना चाहिए। गंगा पार करने के लिए नाव तो बन सकती है। बात तो तब बनेगी जब गुलामीसे पार उतरने की नाव बनाओ। लेकिन छातीमें दम न हो तो ऐसा साहस नहीं किया जा सकता। इसके लिए तो इतनी मजबूत छाती होनी चाहिए कि हाथमें लिये हुए चप्पू छूटें ही नहीं।

गुजरातीकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य : प्यारेलाल

३०६. पत्र : अमतुस्सलामको

[२७ अगस्त, १९३६ के पूर्व][1]

प्यारी बेटी,[2]

तेरे दो खत मिले हैं। डॉ० भारद्वाज जो कहते हैं उसपर विश्वास रखना है। डॉ० अन्सारी भी वही करते। इसलिए तुझे नाक साफ करनी है और दूसरी जो सिफारिशें उन्होंने की हैं, उन्हें मानना है।

नीलमका खत[3] साथमें है। नीलमकी बीमारी अगर न होती तो तुझे जरूर बुला लेता। कान्तिको तेरे दोनों खत दिखाऊँगा। वह आना चाहेगा तो इजाजत दे दूँगा। उसने जो कदम उठाया है वह मुझे भी पसन्द तो नहीं है। लेकिन उसपर मैं दबाव नहीं डालना चाहता।

अभी समय नहीं है, इसलिए यहीं खत्म करता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०३)) से।

१. कान्तिलाल गांधीके अमतुस्सलाम के यहाँ जाने के इरादे के उल्लेखसे; देखिए पृ० २६७ पर अमतुस्सलामको ही लिखा एक अन्य पत्र।

२. ये शब्द उर्दू लिपिमें हैं।

३. पत्र उपलब्ध नहीं है।

३०७. तार : अमृतकौरको

वर्धागंज
२७ अगस्त, १९३६

राजकुमारी अमृतकौर
मैनरविले
शिमला वेस्ट

तुम्हारा तार मिला। परमात्माका शुक्र है। तार द्वारा रोज हालत बताओ। प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७३८)से, सौजन्य . अमृतकौर। जी० एन० ६८९४ से भी

३०८. पत्र : अमतुस्सलामको

सेगाँव, वर्धा
२७ अगस्त, १९३६

चि० अमतुस्सलाम

अब तो कान्ति वहाँ पहुँच गया है। देखता हूँ, अब तू क्या पराक्रम करती है? झगड़ना मत। मिठाससे जो समझाना हो वह समझाना। अब उसे रोका नहीं जा सकेगा, ऐसा मुझे तो लगता है।

डॉ० भारद्वाज जैसा कहे वैसा करना। सबको नसीहत देती है, अपने शरीरकी सँभाल रखना। मुझसे अभी लम्बे खतकी आशा न रखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४३)से।

३०९. पत्र : परीक्षितलाल ल० मजमूदारको

सेगाँव, वर्धा
[२७] अगस्त, [१९३६][1]

भाई परीक्षितलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि तुम्हे ऐसा लगता है कि बापाने भूल की है तो तुम्हे चाहिए कि स्पष्ट रूपसे उन्हे वैसा लिख दो। मैंने सब-कुछ पूरी तरह नही पढा है, इसलिए मैंने उन्हे कुछ नही लिखा। मैं इतना जरूर जानता हूँ कि निर्णय देने के बाद न्यायाधीशका काम पूरा हो जाता है और अपने निर्णयका अर्थ करने का अधिकार भी उसे नही रहता। मैंने बापाको यह भी नही लिखा कि यदि दोनो पक्ष उनके सामने अपनी बात पेश करे तो वे उसे सुन ले और इसका कारण यह है कि मैं अपने काममे इतना लगा हुआ हूँ कि ऐसी बहुत-सी चीजे कर नही पाता। अगर तुम बापाको लिख रहे हो तो यह पत्र उन्हे भेज सकते हो। तुम्हे इतना लिखा इसलिए अब उन्हे लिखने की इच्छा भी हो आई है; किन्तु लिखने का वक्त कहाँ है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०३७) से।

३१०. पत्र : प्रभावतीको

सेगाँव, वर्धा
[२७ अगस्त, १९३६ के आसपास][2]

चि० प्रभा,

तू पटना गई, फिर भी तुझे मेरा सिताब दियारा भेजा गया पत्र तो मिला ही होगा। अब पटनामे दूध, फल लेकर तबीयत सुधार लेना। घरकी ठीक देखरेख करना। अब तुझे जयप्रकाशकी खुराककी तरफ ठीक ध्यान देने का अवसर मिला है। तेरे प्रश्नोका तफसीलसे जवाब दे ही चुका हूँ, इसलिए दुबारा यहाँ नही लिख रहा हूँ। वहाँ घरमे कैसा चल रहा है? मेरे जानने योग्य और जो-कुछ हो, सो लिखना। आबोहवा कैसी है? घूमनेका क्रम जारी रखना। कल मैंने वजन लिया था। १०९ पौंड निकला।

बापूके आशीर्वाद

१. जी० एन० रजिस्टरसे।

२. नीलमकी बीमारी और अमतुस्सलामके साथ उसके ठहरने के उल्लेखके आधारपर; देखिए "पत्र : अमतुस्सलामको", २७-८-१९३६ के पूर्व।

[पुनश्च :]

महादेवी वगैरह बद्रीनारायणसे वापस आ गई हैं, इनमें से एक, नीलम, बीमार हो गई थी। वह अमतुलके पास है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४६४)से।

३११. तार : अमतुस्सलामको

वर्धागंज
२८ अगस्त, १९३६

अमतुस्सलाम
सेवक
दिल्ली

तुम अपनेको शान्त रखो। जल्दी ठीक हो जाओ। मैं कान्तिकी देखभाल कर रहा हूँ।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४४)से।

३१२. पत्र : अमृतकौरको

वर्धा
[२८][1] अगस्त, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

यह पत्र मैं ज०[मनालालजी] के यहाँसे सवेरे तड़के लिख रहा हूँ ताकि पहलेकी ट्रेनसे चला जाये।

यह आश्वासन भला तुम्हे कैसे दूँ कि मै चिन्ता-मुक्त हूँ? और मैं हो भी कैसे सकता हूँ जब तुम ऐसा विद्रोहाचरण कर रही हो? तानाशाहके सामने तो तुम आज्ञाकारी थी। उसकी पीठ पीछे तुम्हारा विद्रोही स्वभाव फूट पडा। तो मुझे चिन्ता-मुक्त करने का उपाय यह है कि तुम जल्दीसे स्वस्थ हो जाओ और यदि मछली खाने से तुम्हे लाभ हो तो बेहिचक खाना आरम्भ कर दो।

१. साधन-सूत्रमें "२९-८-१९३६" है, लेकिन उसके नीचे किसीने लिख दिया है, "वास्तवमें २८-८-१९३६"। इसकी पुष्टि डाककी मुहरसे भी होती है।

फिर भी यह विश्वास तो मै तुम्हे दिला सकता हूँ कि शम्मी चाहे कुछ भी कहे, मै उसका बिलकुल बुरा नही मानूँगा। उनका यह भयकर क्रोध तुम्हारे प्रति उनके प्रेमकी गहराईका सूचक है। जिस वातावरणमे वे पले है, उसे देखते हुए मै कहूँगा कि उन्हे पूरा अधिकार है कि वे मुझपर तुम्हारा स्वास्थ्य बिगाड़ने और सब प्रकारसे तुम्हारे सामान्य नियमित जीवनमे व्यतिक्रम पैदा कर देने का दोषारोपण करे। वे और कुछ सोच भी कैसे सकते है? मैने तुमसे पहले ही कहा था कि तुम्हारे पूर्ण स्वस्थ रूपमें शिमला लौटने पर बहुत-कुछ निर्भर करेगा। तुमने ध्यान नही दिया, दे भी नही सकती थी। अच्छा, अब तुम ठीक हो जाओ और पहलेसे भी स्वस्थ दिखने लगो, तब हम सारा हिसाब कर लेगे। जबतक बीमारी रहे, प्रतिदिन पत्र और तार भेजती रहो। पूर्णत. नीरोग होनेतक तुम कोई काम मत उठाना। आशा है, कल तुम्हे मेरा तार[1] मिला होगा।

कल मै वर्धा आया और आज शामको पैदल वापस चला जाऊंगा।

मीरा आज बैतूलसे लौट रही है।

तुम्हे और शम्मी दोनोको प्यार।

तानाशाह

डाकू, बापू आदि

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५८४)से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६३९३ से भी

३१३. पत्र: जवाहरलाल नेहरूको

सेगाँव

२८ अगस्त, १९३६

प्रिय जवाहरलाल,

कल की हमारी बातचीतने मुझे विचारमें डाल दिया है। क्या कारण है कि पूरी इच्छा होते हुए भी मै उस चीजको नही समझ सकता, जो तुम्हारे लिए इतनी स्पष्ट है? जहाँतक मै जानता हूँ, मेरी बुद्धि अभी सठियाई नही है। ऐसी हालतमे क्या यह ठीक नही होगा कि तुम मुझे यह समझाने की पूरी कोशिश तो करो कि तुम चाहते क्या हो? सम्भव है, मै तुमसे सहमत न होऊँ। मगर मुझे वैसा कह सकने की स्थितिमे होना चाहिए। कलकी बातचीतसे इसपर प्रकाश नही पडता कि तुम्हारे मनमे क्या है। और शायद जो बात मेरे मामलेमे सही है वही कुछ और लोगोके मामलेमे भी हो। मै इस समय राजाजी से इसी बातकी चर्चा कर रहा हूँ। तुम समय निकाल सको तो मै चाहूँगा कि अपने कार्यक्रमकी चर्चा उनसे कर लो।

१. देखिए "तार: अमृतकौरको", २७-८-१९३६।

मेरे पास समय नहीं है, इसलिए विस्तारसे नहीं लिखूंगा। तुम जानते हो मेरा क्या मतलब है।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]

गांधी-नेहरू पेपर्स, १९३६, सौजन्य नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

३१४. टिप्पणियाँ

प्रमाणित बनाम अप्रमाणित खादी

कताईकी नयी दर लागू करने पर जो कठिनाई तमिलनाडुमें पैदा हुई थी, वही आन्ध्रदेशमें भी हो रही है, जैसाकि मेरे पास उस तरफसे आये हुए अनेक पत्रोंसे मालूम होता है। पत्र-प्रेषकोंने खादीके अप्रमाणित व्यापारियोंके खिलाफ कड़ी शिकायत करते हुए लिखा है कि किस तरह ये लोग उन गरीब कत्तिनोंको हानि पहुँचा रहे हैं, जिनके पास दो पैसे अतिरिक्त कमाने का और कोई साधन ही नहीं है। मैं नहीं जानता कि अगर मैं उन अप्रमाणित खादीके व्यापारियोंसे कहूँ कि वे ऐसे खुदगर्ज बनकर उन हजारों गरीब कातनेवालियों के पैसे न छीनें तो वे मेरी सुनेंगे या नहीं। मुझे आशा तो है कि वे सुनेंगे। पर इसका वास्तविक इलाज खादी खरीदनेवालों के हाथमें है। अगर वे अखिल भारतीय चरखा संघ द्वारा प्रमाणित भण्डारोंको छोड़कर दूसरी दुकानोंसे खादी खरीदना कतई बन्द कर दें तो अप्रमाणित दुकानें अपने-आप बन्द हो जायेंगी। जनताको यह समझ लेना चाहिए कि चरखा संघ नहीं रहेगा तो खादी भी नहीं रहेगी। जबतक खादी एक प्रचलित सिक्केकी तरह देहातोंमें सर्वप्रिय नहीं बन जाती, यह जरूरी है कि एक ऐसी सावधान संस्था उसका संवर्धन करती रहे जो इस कठिन कार्यको करने की क्षमता रखती हो। चरखा संघ इसी प्रकार की एक संस्था है। जनता तो जानती ही है, और अगर नहीं जानती तो उसे जान लेना चाहिए कि चरखा संघ पूर्णतया एक परोपकारी संस्था है, जिसे सिवा गाँवोंकी लाखों गरीब कत्तिनोंके और-किसीका स्वार्थ प्रिय नहीं है। यह तो उसके नामसे ही प्रकट है कि उसकी सारी प्रवृत्ति उन गरीबोंको फायदा पहुँचाने के लिए ही है। जबतक उन लाखों-करोड़ों बहनोंको, जो सालमें लगभग छह महीने बेकार रहती हैं, उनकी शक्तिके लायक कोई स्थायी फायदा पहुँचानेवाला उद्योग नहीं मिल जाता, तबतक गाँवोंकी आर्थिक मुक्ति एक असम्भव-सी बात है, और हाथ-कताईके समान दूसरा कोई उद्योग ही नहीं जो सबके लिए उपयोगी हो। जनताको चाहिए कि अगर अप्रमाणित व्यापारी चरखा संघकी अपेक्षा कम दामोंपर खादी बेचते हों तो भी वह हमेशा खादी तो चरखा संघके भण्डारोंसे ही खरीदे। मैं कई बार पहले

यह बात कह चुका हूँ। पर फिर भी इसे बार-बार इसलिए कहना पडता है जिससे जनताके मनपर यह बात अच्छी तरह अंकित हो जाये, जनता यह जान ले कि चरखा संघके दामोपर खादी बेचने पर ही कातनेवालोको अधिक मजदूरी दी जा सकती है।

बगैर पैसेकी झोपड़ियाँ

> पिछले वर्ष मैंने अपने भावी निवासके गाँवमें साठ हरिजनोंको लाकर बसाया था। उनके लिए झोंपड़ियाँ खड़ी करने का सवाल जरा टेढ़ा था। लेकिन खुद हरिजनोंने ही उसे मेरी ओरसे हल कर दिया। एक महीनेके बाद जब मैं उस गाँवमें गया तो देखता क्या हूँ कि बारह झोपड़ियाँ तो बन चुकी थीं, और सो भी बगैर एक पैसा भी लगाये। दीवारें ज्वार, कपास या तुवरके डंठलो तथा ताड़की डालियोकी बनी थीं। ऊपर छाने के लिए ज्वारके डंठलोको चीरकर उनकी चटाइयाँ बुन ली गई थीं, और उनपर ढाकके पत्ते अच्छी तरह बाँध दिये गये थे। रस्सियाँ ढाककी जड़ोको कूट-पीटकर उनके तन्तुओसे बना ली थीं।

यह पत्र कृषि-शास्त्रकी उपाधि पाये हुए एक उत्साही ग्रेजुएट नवयुवकने लिखा है जिसने किसी गाँवमे बसने का निश्चय कर लिया है। ऐसे स्थानोपर हरिजनोको अपने लिए आरामदेह झोपड़ियाँ और जीवनकी अन्य सुविधाएँ प्राप्त करने मे कोई कठिनाई नही होती, जहाँ मजदूरोको आजादी है और जहाँ वे उन प्राकृतिक साधनोका बेरोक-टोक उपयोग कर सकते है जो अन्यथा या तो यो ही पडे-पडे सड जाते है या कौडियोके मोल बेच दिये जाते है। पर रूढिग्रस्त लोगोके दुराग्रहने तो हरिजनोको अपने कुओपर चढ़ने देना भी पाप और जुर्म करार दे रखा है!!

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २९-८-१९३६

३१५. पत्र: अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
२९ अगस्त, १९३६

प्रिय अमृत,

आशा है, तुम्हे मेरा कलका पत्र मिला होगा। यह मै सेगाँवसे लिख रहा हूँ, इसलिए इसे विलम्ब-शुल्क देकर भी आजकी डाकसे नही भेज सकता। मेरी मन की शान्तिके लिए अत्यावश्यक है कि तुम प्रतिदिन तार और पत्रोसे सोलहो आने सही समाचार भेजो। तुमने सब्जियाँ भी क्यो भेजी? यह बात गाँवमे रहने के उद्देश्यके विपरीत पडती है। भरोसा रखो, जो आवश्यक होगा तुमसे माँग लूँगा।

चीर-फाडके औजारोकी कोई जल्दी नही है। शम्मीके शान्त हो जानेतक मैं प्रतीक्षा कर लूंगा। तुम्हे उन्हे मना लेनेका निश्चय कर लेना है। घरमे भाग निकलने की बात तो निपट मूर्खता है। ऐसी बातें तुम्हारे स्वभावसे मेल नही खाती। 'प्रेम तो धीरज और अपार कष्ट-सहनका नाम है।' तुम प्रेमका मूर्तरूप नही तो और क्या हो? मुझसे तुम्हारे मूल्यवान साहचर्यका नतीजा यह नही हो सकता कि तुम पहले से कम प्रेमल और कम प्रेमभाजन बन जाओ। यदि तुम अपने परिवारको सन्तुष्ट करनेके लिए अपना स्वास्थ्य और अच्छा बनाकर नही दिखा सकी तो न सही, लेकिन यह तो तुम्हारे बसकी बात है कि शान्त-चित्त रहो और इतना प्रेम दिखाओ कि दूसरोका तीव्रतम कोप ठडा हो जाये। मुझे तार भेजो कि तुमने शम्मीको मना लिया है। तुम्हे बताता हूँ कि तुम्हारी बीमारीके कारण उन्हे जो दु ख हुआ है उसका ध्यान मुझे दिन-भर सताता रहता है। मेरी समझमे नही आता कि मैं किस प्रकार उन्हे सन्तुष्ट करूँ। इसका एकमात्र उपाय यही है कि तुम बिलकुल स्पष्ट रूपसे उनपर प्रकट कर सको कि मेरे सम्पर्कसे तुमने कुछ खोया नही है बल्कि सम्भवतः जीवनके महत्त्वपूर्ण विषयोमे कुछ पाया ही है।

मीरा कल वापस आ गई। बैतूलमे रहन-सहनका ढग उसको बहुत गन्दा लगा।

तुम दोनोको प्यार।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५८५) से; सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ६३९४ से भी

३१६. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
३० अगस्त, १९३६

प्रिय अमृत,

तुम बहुत अच्छी हो। लम्बे पत्र और तार भेज रही हो। मुझे उन सबकी आवश्यकता थी। तुम्हारे पत्रोमे प्रसन्नता भी झलकती है। परन्तु हालांकि तुम्हारे समान मैं चिन्ता नही करता, फिर भी मैं स्वीकार करता हूँ कि तुम्हारी बीमारीने मुझे कड़ा धक्का पहुंचाया है और शम्मीसे मनमुटाव तो असह्य लगता है। तुम्हे चाहिए कि तुम उनके कमरेमे जाओ और अपनी नम्रतासे उन्हे जीत लो। अपने आंसुओसे उनको नहला दो। मैं चाहता हूँ कि वह मुझे तार भेजें कि उन्होने मुझे हृदयसे क्षमा कर दिया है। मुझे यह सोचकर कष्ट होता है कि तुम दोनोके अलगावका मैं कारण हूँ।

यहाँ तो तुम पूर्णरूपेण आज्ञाकारिणी थी। अब इसमे भी मै तुमसे पूरे दिलसे आज्ञाकारिता चाहता हूँ। स्वैच्छिक आज्ञाकारिताका अपने-आप असर होता है। और मै जानता हूँ, तुम्हारी आज्ञाकारिता परिवारमे फिर से शान्ति और प्रेम स्थापित कर देगी। शम्मीको मनाने का ठीक तरीका तो तुमपर ही छोड़ देता हूँ।

जब तुम पूरी तरह नीरोग हो जाओ तबतक यदि शम्मी भी सुस्थिर-चित्त हो गये हो, तो मै तुम दोनोके साथ इस दु:खदायी बीमारीके कारणके बारेमें अपनी रायके बारेमें चर्चा करना चाहता हूँ।

तुम्हारे लिए अडे छोड़ने की अपेक्षा दूधका परिमाण घटा देना लाभदायी होगा। भारीपनका कारण सीधे अडोको मानना उचित नही। और यदि डॉक्टर मानें तो तुमको हमेशा थोड़ा लहसुन लेना चाहिए। मै पूरे विश्वाससे तो नही कह सकता, परन्तु मुझे लगता है अपरस (एक्जीमा) के लिए प्याजका तेल अच्छा होगा।

सुभाषको जो डर है उसपर मुझे हँसी नही आई। उसके कथनमें काफी सत्य है। उत्साह और मेरे प्रति अत्यधिक प्रेमसे प्रेरित होकर यदि तुम, अनजाने ही सही, शारीरिक शक्तिका दिखावा कर रही थी, तो वियोग होने पर स्वभावत शरीर जवाब दे बैठेगा। वास्तविकता क्या है, इसका निर्णय तो आत्म-निरीक्षण द्वारा स्वय तुम्ही कर सकती हो। आजकी रात इतना ही।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५८६) से; सौजन्य . अमृतकौर। जी० एन० ६३९५ से भी

३१७. पत्र : प्रभावतीको

३० अगस्त, १९३६

चि० प्रभा,

इस बार तेरा पत्र देरसे मिला है। तुझे पत्र लिखने का दिन निश्चित कर ही लेना चाहिए। मैंने तो बिलकुल ढील नही दी। जैसे ही तेरा पत्र मिलता है, तुरन्त जवाब दे देता हूँ। इस बारका पत्र कल मिला, आज जवाब लिख रहा हूँ। सुनता हूँ कि जयप्रकाश आज वर्धा पहुँच रहा है। यह नही समझ पाया कि आने का कारण क्या है। आगेके पत्र क्या किसी नये पतेपर भेजने है? क्या 'सर्चलाइट' के पतेपर भेजने से पत्र देर से मिलता है? तुझे खाँसी क्यो होने लगी। अगर अब दूध मिलने लगा हो तो अपनी शक्ति जल्दी वापस पा लेना।

कुटुम्बका जितना बोझ उठाया जा सके उतना ही उठाना। शक्तिको समझ कर सेवा करने से पछताना नही पड़ता।

अभी-अभी सुना कि जयप्रकाश आ गया है।

तेरे पत्रमें लिंगकी गलतियाँ रहती हैं। आज उन्हें सुधारकर पत्र वापस भेज रहा हूँ। अगर तू न समझ पाये तो पूछना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४८१) से।

३१८. तार : घनश्यामदास बिड़लाको

वर्धा
३१ अगस्त, १९३६

घनश्यामदास
मार्फत लकी
बम्बई

यथाशीघ्र आ जाइए। वल्लभभाई आपकी प्रतीक्षामें हैं। तारसे उत्तर दें।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ७९७९) से, सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

३१९. पत्र : जमनालाल बजाजको

सेगाँव
३१ अगस्त, १९३६

चि० जमनालाल,

तुम्हारे साथ तीन बातें करनी रह गईं।

बाबाराव हरकरेका क्या हुआ? मुझे लगता है कि उसे हर महीने २५ रुपये भेजना अच्छा है।

उसके भाईकी योग्यता अधिक की हो तो उसे ज्यादा देना उचित होगा।

शंकरराव टिकेकरकी स्थिति दयाजनक लगती है। उसके ऊपर १,५०० रुपयेके सम्मन हैं और वह बेकार है। उसके लिए कुछ करने का विचार किया है क्या?

इन सब बातोंके बारेमें तुम अधिक ठीक विचार कर सकते हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २९८३) से।

३२०. एक बातचीत[1]

[२ सितम्बर, १९३६ के पूर्व][2]

गांधीजी की कुटियाके बरामदेमें एक दिन सुबह कई नंग-धड़ंग और अधनंगे बच्चे इकट्ठे हो गये थे।. . .तमाम लड़कोंकी आँखें उस साँपपर लगी हुई थीं, जो उस मेजपर रखे हुए एक काँचके बरतनमें बन्द था। . . . यह तो नहीं कह सकते कि सेगाँवमें साँप बहुत अधिक संख्यामें हैं, पर इस मौसममें जरूर वहाँ काफी साँप पाये गये हैं। इससे यह अनुमान होता है कि साँप वहाँ कई लोगोंको काटते भी होंगे। पर आम तौरपर तो लोग साँपको देखते ही मार डालते हैं। गांधीजी ने इस साँपको यहाँ रखने का प्रयोजन बतलाते हुए कहा:

पर इस तरह हरएक साँपको मारना न तो आवश्यक है और न उचित ही। हमे अभी यह ज्ञान नही है कि जहरीला और वगैर जहरवाला साँप कैसा होता है। इसलिए हम विना समझे-बूझे ही सबको मार डालते हैं। पर इनमे से ज्यादातर साँप जहरीले नही होते। और साँपके डँसे हुए आदमियोमे अधिकाश तो साँपके जहरकी अपेक्षा उसके भयके कारण ही प्राण छोड देते है। फसलकी रक्षामे साँपोका एक खास स्थान है। पर शायद गाँवोके लोगोको इसका ज्ञान नही है। साँप अकसर खेती को नुकसान पहुंचानेवाले चूहो और दूसरे जीव-जन्तुओको मारकर खा जाते है। इसलिए साँपोके वारेमे आवश्यक जानकारी हासिल करके उसे किसानोतक पहुँचा देना जरूरी है। उन्हे यह वताया जाये कि जहरीले और वगैर जहरवाले साँप कैसे होते है। किसानोको जान लेना चाहिए कि सर्पको मात्र मार डालना जरूरी नही है। क्योकि जहरीले होनेपर भी वे तवतक नही काटते, जवतक कि वे पैरके नीचे न पड जाये या उन्हे छेड़ा न जाये। फिर कमसे-कम कुछ साँप तो निश्चित रूपसे उपयोगी होते ही है। इस दृष्टिसे मैंने यह निश्चय किया है कि कुछ जिन्दा या मरे हुए साँप यहाँ पर गाँवोके लोगोको दिखाने के लिए रख दूँ। आपके सामने काँचके वर्तनमे रखे हुए इस साँपको तो हमारे एक आश्रमवासीने जिन्दा ही पकड़ लिया था। हम लोग एक विलकुल आसान तरकीवसे काम लेते है, जिसके जरिये साँपोको वगैर किसी प्रकारकी शारीरिक चोट पहुँचाये जिन्दा ही पकड़ा जा सकता है। यह साँप वहाँ, उस तरफ एक झोपड़ीके छप्परसे लटक रहा था। मैंने सोचा कि इसे जाँचके लिए सिविल सर्जनके पास भिजवा दूँ। उन्होंने बड़ी खुशीसे इसकी जाँच की, और बताया कि यह तो

१. महादेव देसाई के "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

२. यह और आगेकी भेंट स्पष्टत: २ सितम्बर, १९३६ को गांधीजी के अस्पतालमें भरती होने के पूर्व हुई थीं।

करैत साँप है। करैत साँप सबसे ज्यादा जहरीले साँपोंमें से है। इसलिए उन्होंने उसे मारकर मेरे पास लौटा दिया। मैं चाहता था कि उसे लोगोंको दिखानेके लिए रख छोडूँ। इसलिए मैंने काँचका बरतन और रेक्टिफाइड स्पिरिट मँगाया। पर इसमें कई घंटे बीत गये और जब वह बरतन आया और हमने साँपका पिटारा खोला तो यह देखकर हमें बड़ा अचरज हुआ कि वह तो जिन्दा था। मालूम होता है, इस जातिमें खास तौरपर बहुत अधिक जीवन-शक्ति होती है। इसलिए उसके तीन दिनतक प्राण नहीं निकले। आखिर उसकी मृत्यु-वेदनाका अन्त करनेके विचारसे हमने उसे पानीमें डुबा देने का निश्चय किया। बात यह थी कि सिविल सर्जनने उसके सरको तो कुचल दिया था, पर जैसाकि उन्होंने बादमें बताया, उसकी रीढ़ नहीं तोड़ी गई थी। वह तो ज्यों-की-त्यों थी। इसलिए वह जीवित रह गया था। अब तो नमूनेके लिए जीवित साँप रखने का मेरे पास एक पिंजरा ही आ गया है। इसी-लिए तो अभीसे ये बच्चे आकर्षित होने लग गये हैं। मैंने सर्पोंसे सम्बन्धित साहित्य पढ़ना शुरू कर दिया है, और आशा करता हूँ कि इन प्राणियोंके सम्बन्धमें कुछ मोटी-मोटी बातें शीघ्र ही ग्रामवासियोंके सामने रख सकूँगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-९-१९३६

३२१. बातचीत : अध्यापकोंसे[1]

[२ सितम्बर, १९३६ के पूर्व]

एक दिन कुछ अध्यापकगण सेगाँव पहुँचे और प्लेटोके इस प्रसिद्ध सिद्धान्त पर कि "ज्ञान ही सदाचार है", गांधीजी की राय माँगी। यह जानते हुए भी कि अमुक कार्य नैतिक दृष्टिसे सदोष है, हम उसे टाल क्यों नहीं सकते? इस प्रश्नके उत्तरमें गांधीजी ने कहा:

मानव-जीवन समझौतेकी एक शृंखला है, और सिद्धान्तकी दृष्टिसे सही दिखाई देनेवाली बातपर भी अमल करना मनुष्यके लिए आसान नहीं होता। यही एक सीधी-सी बात लीजिए। सिद्धान्त यह है कि प्राणिमात्र समान हैं। पापी और पुण्यवान, दोनोंके साथ समतापूर्वक बरतना चाहिए। 'गीता' में लिखा है न कि विद्वान् पुरुष, कुत्ता और कुत्तेका मांस खानेवाला, ये तीनों हमारी दृष्टिमें बराबर होने चाहिए। पर अब मेरी ओर देखिए। यद्यपि मैंने अपने हाथों इस साँपको नहीं मारा, तो भी यह तो मैं जानता ही हूँ कि उसे मारने में मैं कारण तो हुआ ही हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि मुझे यह नहीं करना चाहिए था। मुझे यह भी पता है कि साँप तो खेतीकी रक्षा करनेवाला "क्षेत्रपाल" है। इस कारणसे

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

भी उसे मारने मे मुझे सहायक नही होना चाहिए था। पर आप देखते ही है कि मै इसे टाल नही सका। पर केवल यह सोचना काफी नही कि मै अमुक बातको रोक नही सकता। मै इस सनातन सिद्धान्तको तो नही छोड रहा हूँ कि प्राणिमात्रमे एक ही आत्म-तत्त्व मौजूद है। मै तो ईश्वरसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि वह मेरे हृदयसे सर्प-जनित भयको दूर कर दे और मुझे इतना अहिंसक बना दे जिससे मै साँपोको भी उसी तरह प्रेमसे रख सकूँ, जिस तरह अपने अन्य घरेलू जानवरोको रखता हूँ। दूसरा उदाहरण ही लीजिए। बात बहुत सीधी-सी है। एक देहातीकी हैसियतसे और खास तौरपर ग्रामोद्योगोके हिमायतीकी हैसियतसे, मुझे गाँवोके बने उस्तरेसे बाल बनाने चाहिए। पर आप तो देख रहे है कि मै एक विदेशी उस्तरेसे हजामत बना रहा हूँ।[1]

अगर मै चाहता तो कुछ मित्रोको लिखकर गाँवका बना उस्तरा भी मँगवा लेता। पर मैने सोचा कि मुझे गाँवके नाईकी ही मदद करनी चाहिए, चाहे वह किसी भी उस्तरेसे बाल बनाता हो। इसलिए मैने उसके गन्दे कपडे और निकम्मे उस्तरेकी परवाह न करते हुए भी उसी को बुलाया। पर मैने एक बात नही छोडी। जब उसने कहा कि वह मेरी ही भाँति हरिजनोकी हजामत नही बना सकता, तो मैने उससे दाढी बनवाने से साफ इनकार कर दिया। अब आप लोग देख रहे है कि मै विदेशी उस्तरेसे अपनी हजामत बना रहा हूँ, हालाँकि गाँवका बना उस्तरा मुझे मिल सकता है। यह एक ऐसी बात है जिसका बचाव मै नही कर सकता, फिर भी इसका कारण तो है ही। मै बहुत दिनोसे इसी सेटसे काम ले रहा हूँ। यह एक प्यारी बहनका दिया हुआ है। उसकी भेंटको मै यह कहकर कि इसमे तो विदेशी उस्तरा है, लेकिन मै तो देशी उस्तरेसे काम लेना चाहता हूँ, अस्वीकार नही कर सका। बात जो है, वह यह है। थोडा भी क्यो न हो, सिद्धान्तसे हटना तो इसमें है ही। कोई इसका अनुसरण करे, मै यह नही चाहूँगा। सिद्धान्त-रक्षाकी खातिर तो अपने प्रियसे-प्रिय व्यक्तिकी भी नाराजगी बरदाश्त करने का साहस हमारे अन्दर होना चाहिए।

पर कुछ सिद्धान्त सनातन होते है, जिसमे समझौता हो ही नही सकता। उनके पालनके लिए तो हमें अपने प्राणोकी भी कुर्बानी करने को तैयार रहना चाहिए। मान लीजिए, कोई आपसे अपना धर्म छोडकर दूसरा धर्म ग्रहण करने के लिए कहता है और इनकार करनेपर आपको छुरा या तलवार दिखाता है, तो क्या आप अपना धर्म छोड़ देंगे? कभी नही। एक दूसरा व्यक्ति आपको शराब पीने, गो-मास खाने या झूठ बोलने के लिए मजबूर करना चाहता है, तो क्या आप उसके सामने सिर झुकाने के बजाय अपने प्राण ही दे देना पसन्द नही करेंगे? सिद्धान्त तो सिद्धान्त ही है। उसका मूल्य इसलिए नही घट सकता कि उसे हम अपने आचरणमे लाने मे असमर्थ है। उसका पालन करने के लिए हमे निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए। और वह यत्न भी सजग, बुद्धिपूर्वक और सुदृढ होना चाहिए।

१. जब अध्यापकगण वहाँ पहुँचे, गांधीजी दाढ़ी बना रहे थे।

हमारे कवि [रवीन्द्रनाथ] ने अपनी अमरवाणी में क्या यह नही कहा है कि निर्भय और अविश्रान्त यत्न स्वाधीनताकी पहली शर्त है?

> ओ पिता, स्वाधीनताके उस स्वर्गका उदय हमारे देशमें हो, जहाँ हमारा मन निर्भय हो, मस्तक स्वाभिमानपूर्वक ऊँचा हो, और पूर्णता तक पहुँचानेवाला बलवान अविश्रान्त प्रयत्न हो।[1]

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-९-१९३६

३२२. बातचीत : भारतन कुमारप्पासे[2]

[२ सितम्बर, १९३६ के पूर्व]

इस चिट्ठी-पत्रीके काममे अब मेरा दिल नही लगता। इसमे कोई उत्साह नही रहा। मै तो सचमुच इससे थक-सा गया हूँ। कभी-कभी तो ऐसा मन होता है कि लोगोसे कह दूँ कि मुझे अब कोई एक भी खत न भेजे। वर्धा कई मित्र आते है, इससे मुझे भी वहाँ जाना पड़ता है। पर इसके बजाय अब जी तो चाहता है कि इन आसपासके गाँवोमें ही कुछ घूमूँ। अपने कामको छोड़कर कही भी जाते हुए मुझे बड़ी पीड़ा होती है। यह तो मेरी साधना समझो, और अगर मेरा बस चले तो इसमे किसी प्रकारका विघ्न न आने दूँ। बहुत अरसे से मैंने दो-तीन काम अपने जिम्मे ले रखे है। उन्हे निभाना पडता है, हालाँकि उन्हे छोड़ने या टालने के लिए कोई बहाना मिल जाये तो मुझे बडी खुशी हो। मेरी तो इच्छा है कि मै रोज सवेरे पास-पडोसके गाँवोका एक चक्कर लगा लिया करूँ। यो भी आजकल मै बहुत कम शारीरिक परिश्रम कर रहा हूँ, और कुछ-न-कुछ परिश्रम करने की लालसा प्रबल हो रही है। हमने दो गौएँ रख ली है और अब अपने लिए यही घी निकालने का प्रयोग कर रहे है। मै चाहता हूँ कि इन गाँवोकी देख-भाल मै खुद किया करूँ। मेरी यह कल्पना है कि इन लोगोको दिखा दूँ कि गाये खुद अपना खर्चा बडी आसानी से निकाल सकती है। फिर इन गरीब देहातियोकी बीमारियोको देखिए। दुनिया-भरकी फालतू दवाएँ करेगे, लेकिन बिलकुल सीधी-सादी वे बातें नही करेगे जो उन्हे करनी चाहिए।

यह सब धीरे-धीरे होने वाला काम है। इससे सोवियत रूसकी पचवर्षीय योजना की भाँति आश्चर्यजनक परिणामोकी उम्मीद भी नही कर सकते। हमे यह महसूस करना चाहिए कि हम देहातके लोगोका नमक खा रहे है और हमें उसका पूरी तरहसे बदला चुकाना है। अगर इस कठिन कामके लिए आपको एजेंट न मिलते हो तो

१. गीतांजलि, ३५।
२. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

कोई चिन्ता न करें। हमे अगर एक भी सच्चा एजेंट मिल गया, तो मुझे सन्तोष हो जायेगा और अगर एक भी न मिला, तो भी मुझे दु ख नही होगा। हमारी सच्ची कसौटी तो यह है कि *अपने कार्यक्रमके अनुसार हम एक भी गाँवका सगठन कर सके* है या नही। हम उनके आहारमे सुधार कर सके है या नही? उस गाँवके रास्ते और गलियाँ पूरी तरह साफ-सुथरी और अच्छी बना सके है या नही? वहाँके गृहोद्योगोमे हम नयी जान डाल सके है या नही? शराबखोरी और दुर्व्यसनोके सवालको हल कर सके है या नही? अगर हम एक भी गाँवमे यह सब करके दिखा दें, तो मै तो समझूँगा कि हमने बहुत-कुछ कर लिया। कुछ इने-गिने आदमी आपके काममे सहयोग दे सकते है। पर इससे हमारा काम आगे नही बढ सकता। उसके लिए तो सम्पूर्ण गाँवको हाथमे लेना चाहिए। जाजूजी[1] कह रहे थे कि क्या इससे अधिक व्यापक कोई योजना नही हो सकती? नही, इससे अधिक व्यापक नही हो सकती। यह कताई की तरह कोई एक चीज तो है नही। यह तो सारे गाँवके सुधारका प्रश्न है। आज हमारे काममे भले तीन या चार चीजे ही हो, पर किसी दिन ये तीनकी तीस भी हो जायेंगी, हाँ, आज नही।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-९-१९३६

३२३. तार : अमतुस्सलामको

वर्धागंज
२ सितम्बर, १९३६

अमतुस्सलाम
मार्फत सेवक
दिल्ली

तबीयत सुधारने के लिए इन्दौर, पटियाला, बम्बई या वर्धा जा सकती है। कान्ति बम्बईमे वकील के स्कूल मे भर्ती हुआ है। बा, मै, देवदास जब चिन्ता नही करते, तब तेरा चिन्ता करना गलत है।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४५)से।

१. श्रीकृष्णदास जाजू।

३२४. सन्देश : विश्व शान्ति कांग्रेसको[1]

२ सितम्बर, १९३६

पाश्चात्य देशोमे हो रहे शान्ति-प्रयत्नोका कोई भी भारतीय समर्थन किये बगैर नही रह सकता।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ३-९-१९३६

३२५. तार : अमतुस्सलामको

वर्धागंज
३ [सितम्बर][2], १९३६

अमतुल सलाम
मार्फत सेवक
दिल्ली

सरस्वती सोमवारको त्रिवेन्द्रम जा रही है। सम्भव हो तो इससे पहले आ जा।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४६)से।

१. यह सन्देश सरोजिनी नायडू की मार्फत भेजा गया था।
२. बापूके पत्र – ८: बीबी अमतुस्सलामके नाम, पृ० ९० से। मूल यहाँ फट-फट गया है।

३२६. तार : अमृतकौरको

वर्धागंज
४ सितम्बर, १९३६

राजकुमारी अमृतकौर
मैनरविले
शिमला

ठीक ढगसे रहो और मेरी बीमारी[1] पर दु.खी मत हो। अभीतक बुखार नही आया है। सप्रेम।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७३९)से; सौजन्य. अमृतकौर। जी० एन० ६८९५ से भी

३२७. सन्देश : अमृतकौरके लिए[2]

४ सितम्बर, १९३६

उसे बता दो कि कमसे-कम दो-तीन दिन तो उसे तुम्हारे पत्रसे ही सन्तोष करना पड़ेगा। उसे यह भी बता देना कि थर्मसके बारेमे मैंने जो बात कही थी वह ठीक निकली, वह टूट गया है और अब उसे दूसरा देना होगा।

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० १०१००) से, सौजन्य अमृतकौर

१. गांधीजी को मलेरिया हो गया था; देखिए अगला शीर्षक भी।

२. यह सन्देश महादेव देसाईने अपने पत्रमें अमृतकौरको भेजा था। पत्रमें और बातोंके साथ यह भी लिखा था · "[गांधीजी] जान-बूझकर अस्पताल चले गये, ताकि डॉक्टरोंको बार-बार तकलीफ न उठानी पड़े। उनकी अच्छी देखरेख हो रही है और ठीक प्रगति है। [दिनमें] ढाई बजे तक तो बुखार नहीं आया। यदि आया भी, तो मुझे विश्वास है, हलका ही होगा। वे पूरा आराम कर रहे हैं।..."

३२८. अहिंसा परमो धर्मः

कैनन रेफर्ड और दूसरे सच्चे और उत्साही ईसाई इंग्लैंडमें युद्धोंके खिलाफ आन्दोलन कर रहे हैं। दिल्लीके 'स्टेट्समैन' ने चार लेख लिखकर इस आन्दोलनकी बेहद निन्दा की है। इस पत्रने अपने पक्ष-समर्थनमें 'भगवद्गीता' को भी इन शब्दोंमें घसीटा है:

> असलमें, ईसाई धर्मकी वास्तविक किन्तु कठिन शिक्षा यही मालूम पड़ती है कि समाजको अपने शत्रुओंसे लड़ना चाहिए, पर साथ ही उनसे प्रेम भी करना चाहिए।
>
> श्री गांधी भी इस बातपर खास तौरसे ध्यान दें कि 'भगवद्गीता' की भी साफ-साफ यही शिक्षा है। कृष्णने अर्जुनसे कहा है कि विजय उसे मिलती है, जो पूर्णतया निर्भय और निर्वैर होकर लड़ता है। सचमुच, इस महान् ग्रन्थके द्वितीय अध्यायमें धर्मके आधारपर युद्धका विरोध करनेवाले तथा एक सच्चे योद्धाके बीच सारे विवादका सर्वोच्च धरातलपर, सदाके लिए, समाधान कर दिया गया है। स्थानाभावके कारण, हम उसमें से उद्धरण तो नहीं दे सकते। पर वह सारा काव्य एक बार नहीं, बार-बार पढ़ने की चीज है।

इन लेखोंका लेखक शायद यह नहीं जानता कि उसने जो श्लोक उद्धृत किये हैं, आतंकवादियोंने भी अपने पक्षमें ठीक उन्हीं श्लोकोंका हवाला दिया है। सच्ची बात तो यह है कि निर्विकार चित्तसे 'भगवद्गीता' पढ़ने पर मुझे तो 'स्टेट्समैन' के इस लेखकने जो अर्थ लगाया है, उससे ठीक विपरीत अर्थ मिला है।

वह भूल जाता है कि पश्चिमके युद्ध-विरोधी, जिस अर्थमें धार्मिक आपत्ति-कर्त्ता कहे जाते हैं वैसा अर्जुन नहीं था। अर्जुन तो युद्धका हिमायती था। कौरवोंकी सेनामें वह पहले भी कई बार लोहा ले चुका था। उसके हाथ-पैर तो तब ढीले पड़ गये जब उसने दोनों सेनाओंको युद्धके लिए तैयार देखा और उनमें अपने प्यारेसे-प्यारे स्वजनों तथा पूज्य गुरुजनोंको पाया, जिनसे उसे युद्ध करना था। न तो वहाँ मानवताके प्रति प्रेम था, और न युद्धके प्रति घृणा ही थी, जिससे प्रेरित होकर अर्जुनने कृष्णसे वे प्रश्न पूछे थे। और कृष्ण भी ऐसी परिस्थितिमें दूसरा कोई उत्तर दे ही नहीं सकते थे। 'महाभारत' तो रत्नोंकी एक खान है, जिनमें से 'गीता' केवल एक किन्तु सबसे अधिक देदीप्यमान रत्न है। लिखा है कि उस युद्धमें लाखों योद्धा एकत्र हुए थे और दोनों तरफसे अवर्णनीय अमानुषिकताएँ बरती गई थीं। इन लाखोंकी सेनामें से केवल सातको जीवित रखकर तथा उन्हें वह निःसार विजय प्रदान करके इन

महाकाव्यके अमर कविने तो युद्धकी निरर्थकता ही सिद्ध की है। किन्तु केवल युद्धको एक मूर्खतापूर्ण और धोखेकी चीज सिद्ध करनेके अलावा, 'महाभारत' एक उससे भी ऊँचा सन्देश हमे देता है। मनुष्यको अगर एक अमर प्राणी समझा जाये तो 'महाभारत' उसका एक आध्यात्मिक इतिहास है, और 'महाभारत' के रचयिताने इसके वर्णनमे एक ऐतिहासिक घटनाका उपयोग-मात्र किया है, जो तत्कालीन छोटे-से जगत्के लिए तो वडी महत्त्वपूर्ण थी, पर जो आजकलकी दुनियाके लिए कोई भी महत्त्व नही रखती। अनेक आधुनिक आविष्कारोके कारण आज तो यह सारा ससार हथेलीपर रखे हुए आँवलेके समान मालूम होने लगा है। उसके किसी एक कोनेमे घटी हुई घटनाका असर सारे ससारमे दूर-दूरतक फैल जाता है। यह बात उस समय नही थी। हमारे हृदयोमे जो दिन-रात सत् और असत्के वीच सनातन सघर्ष चल रहा है, महाभारतकार उसे इस कथा द्वारा एक अमर काव्यके रूपमे हमारे सामने प्रस्तुत करता है। वह वताता है कि यद्यपि अन्तमे तो सत्यकी ही विजय होती है, तो भी असत् किस तरह सशक्त होकर अत्यन्त विवेकशील पुरुषको भी किंकर्त्तव्यविमूढ वना देता है। 'महाभारत' सदाचारका एकमात्र मार्ग भी हमे वताता है।

लेकिन 'भगवद्गीता' का वास्तविक सन्देश जो-कुछ भी हो, शान्ति-स्थापना-आन्दोलनके नेताओके लिए तो 'गीता' की शिक्षा नही, 'वाइविल' की शिक्षा महत्त्व रखती है, क्योकि उसीको उन्होने अपना आध्यात्मिक मार्गदर्शक वना रखा है। फिर, 'वाइविल' का भी तो कई तरहसे अर्थ लगाया जाता है। उन्हे 'बाइविल' का वह अर्थ स्वीकार नही है, जो सावारणतया ईसाई धर्माधिकारी लगाते है। उन्हे तो वह अर्थ मजूर है जो 'वाइविल' को श्रद्धायुक्त मनसे पढने पर उन्हे प्रतीत होता है। असलमे, सवसे महत्त्वपूर्ण चीज तो है युद्ध-विरोधियोका अहिंसा अर्थात् प्रेम-धर्म-विषयक ज्ञान। अहिंसाका अर्थ वहुत व्यापक है। अग्रेजीका "नॉन-वॉयलेन्स" शब्द उसके लिए विलकुल अपर्याप्त है। 'स्टेट्समैन' के ये लेख युद्ध-विरोधियोके लिए एक खासी चुनौती ही है। मुझे दु ख है कि इस आन्दोलनके विषयमे मुझे पूरी जानकारी नही है जिससे मैं उसके वारेमे अपनी निश्चित राय दे सकूँ। युद्ध-विरोधियोके नजदीक भले मेरे विचारोका विशेप महत्त्व न हो, पर जहाँतक मुझे भीतरी बातोका पता है, कुछ लोग तो जरूर उसका खयाल करेगे। क्योकि वे अकसर मुझसे पत्र-व्यवहार करते है। और अब तो वे एक कदम और आगे वढ गये है, क्योकि उन्होने रिचर्ड ग्रेगकी 'द पॉवर ऑफ नॉन-वॉयलेन्स' नामक पुस्तकको लगभग अपनी पाठ्य-पुस्तक बना लिया है। लेखकके शब्दोमे, यह पुस्तक अहिंसाके सिद्धान्तकी मेरी व्याख्याको पाश्चात्य ससारकी भाषामे प्रस्तुत करती है। इसलिए बगैर किसी प्रकारकी दलील वगैरह दिये, अगर मैं यहाँ अहिंसाकी सफलताकी कुछ शर्तें तथा फलितार्थ लिख दूँ, तो शायद धृष्टता न होगी। वे है

(१) अहिसा परमश्रेष्ठ मानव-धर्म है, और पशुबलसे वह अनन्त गुना महान् और उच्च है।

(२) अन्ततोगत्वा, वह उन लोगोंको कोई लाभ नही पहुँचा सकती, जिनकी प्रेम-रूपी परमेश्वरमे सजीव श्रद्धा नहीं है।

(३) मनुष्यके स्वाभिमान और सम्मान-भावनाकी वह सबसे बड़ी रक्षक है। हाँ, वह मनुष्यकी चल-अचल सम्पत्तिकी हमेशा रक्षा करने का आश्वासन नहीं देती — हालांकि अगर मनुष्य उसका अच्छा अभ्यास कर ले तो शस्त्रधारियोंकी सेनाओंकी अपेक्षा वह सम्पत्तिकी अधिक अच्छी तरह रक्षा कर सकती है। यह तो स्पष्ट है कि अन्यायसे अर्जित सम्पत्ति तथा दुराचारकी रक्षामें वह जरा भी सहायक नहीं हो सकती।

(४) जो व्यक्ति और राष्ट्र अहिंसाका अवलम्बन करना चाहे, उन्हें आत्म-सम्मानको छोडकर, अपना सर्वस्व (राष्ट्रोको तो एक-एक आदमी तक) बलिदान करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसलिए वह दूसरेके देशोंपर आधिपत्य रखने अर्थात् आधुनिक साम्राज्यवादसे, जो कि अपनी रक्षाके लिए पशुबल पर निर्भर रहता है, बिलकुल मेल नही खा सकता।

(५) अहिंसा एक ऐसी शक्ति है जिसका सहारा बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब ले सकते है, बशर्ते कि प्रेम-रूपी ईश्वरमे तथा मनुष्य-मात्रमे उनकी सजीव श्रद्धा हो। जब हम अहिंसाको अपना जीवन-सिद्धान्त बना ले, तो यह हमारे सम्पूर्ण जीवनमे व्याप्त होना चाहिए। यो कभी-कभी छिटपुट मामलोंमे उसका पालन करने से लाभ नही हो सकता।

(६) यह समझना एक जबरदस्त भूल है कि अहिंसाका यह नियम केवल व्यक्तियोके लिए ही ठीक और लाभदायक है, ससारके सामान्य मानव-समूहके लिए नही।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ५-९-१९३६

३२९. लड़कीको क्या चाहिए

एक महिला लिखती है:[1]

आपका "ऐसी मुसीबत जिससे बच सकते है" शीर्षक लेख[2] मुझे अधूरा-सा लगता है। . . . अगर वे अपनी लड़कियोको भी लड़कोकी तरह ऐसी शिक्षा देने लग जायें जिससे कि वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी आजीविका भी कमाने लगें तो उन्हे लड़कियोके लिए वर तलाश करने में इतना कष्ट और चिन्ताएँ न करनी पड़ें। मेरा अपना तो यह अनुभव है कि जब लड़कियोंको अपनी मान-सिक उन्नति करने का अवकाश मिल जाता है और वे इज्जतके साथ अपना

१. यहाँ केवल कुछ अंश ही दिये गये हैं।
२. २५ जुलाई, १९३६ का।

भरण-पोषण करने लायक हो जाती है, तब अगर वे शादी करना चाहती है तो उन्हें अपने लायक वर तलाशने में कोई कठिनाई नहीं उठानी पड़ती। . . . मेरा मतलब यह है कि लड़कियोको उपयोगी ज्ञानके साथ-साथ किसी ऐसे धन्धेकी शिक्षा भी दी जाये जिससे उन्हें यह पूरा विश्वास हो जाये कि वे अपने माता-पिता या पतिकी निरी आश्रिता बनकर नहीं रहेंगी, बल्कि अगर मौका आया तो संसारमें अपने पैरोपर भी खड़ी रह सकती है। . . . विवाह-योग्य कन्याओके माता-पिताओंकी कठिनाइयोंका विचार करते समय, आप सवालके इस पहलूपर भी जोर दें तो बड़ा अच्छा हो!!

पत्र भेजनेवाली महिलाने जो भाव प्रकट किये है उनका मै हृदयसे समर्थन करता हूँ। मुझे तो एक ऐसे पिताके मामलेपर विचार करना था जिसने अपने-आपको बडी मुसीवतमें डाल लिया था — इसलिए नही कि उनकी लड़की अयोग्य थी, वल्कि इसलिए कि वे और शायद उनकी लडकी भी वरका चुनाव अपनी जातिके छोटे-से दायरेमे ही करना चाहते थे। इस मामलेमे तो लडकीका सुयोग्य होना ही एक विघ्न सावित हो रहा था। अगर लड़की निरक्षर होती तो हर किसी युवकके अनुकूल अपनेको वना लेती। पर चूँकि वह खुद सुशिक्षिता थी, इसलिए स्वभावत उसके लिए उतने ही सुयोग्य वरकी भी जरूरत थी। दुर्भाग्यवश, समाजमे लोग किसी लड़कीसे शादी करने के लिए वतौर कीमतके रुपये माँगना नीचता और बुराई नही मानते। कॉलेजकी अंग्रेजी शिक्षाको व्यर्थ ही इतना अधिक कृत्रिम महत्त्व प्रदान किया गया है। उसमे तो न जाने कितने पाप छिपे रहते है। जिन वर्गोंके युवक लड़कियोसे शादी करने के प्रस्ताव मजूर करनेपर कीमतें वसूल करते है, वडा अच्छा होता अगर उनमे सुयोग्यताकी परिभाषा वनाने में कुछ अधिक अक्लसे काम लिया जाता। ऐसा होता तो लडकियोके लिए वर ढूँढनेकी चिन्ता अगर पूरी तरह न भी दूर होती तो कमसे-कम काफी घट जाती। इसलिए पाठकोसे मै सिफारिश करूँगा कि वे पत्र लिखनेवाली इन महिलाके विचारोपर जरूर गौर करे। पर साथ ही, जात-पाँतकी इन महान् हानिकर दीवारोको भी तोड़नेकी उन्हे मै जोरोसे सलाह दूँगा। ये दीवारे तोडनेपर चुनावके लिए एक विशाल क्षेत्र खुल जायेगा और यह पैसे वसूल करने की बुराई वहुत हदतक अपने-आप कम हो जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ५-९-१९३६

३३०. तार: अमृतकौरको

वर्धागंज
५ सितम्बर, १९३६

राजकुमारी अमृतकौर
मैनरविले
शिमला

साठ घंटोंसे बिलकुल मुक्त हूँ। काफी प्रसन्न हूँ। तुम्हें केवल जालंधरके लिए स्मारक की[1] एजेंसी स्वीकार करनी चाहिए।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७४०)से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ६८९६ से भी

३३१. पत्र: अमृतकौरको

वर्धा
६/७ सितम्बर, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

पिछले कुछ दिनों खिलवाड़ करने की मेरी बिलकुल मनःस्थिति नहीं थी। अतः मैं भूल ही गया था कि तुम विद्रोहिणी, मूर्खा आदि-आदि हो। अब मैं कुछ प्रकृतिस्थ हूँ। मुझे अभीतक यह खबर तुमसे नहीं मिली है कि तुम्हारी और शम्मीकी सुलह हो गई। तुम यदि अभीतक उनके पास नहीं गई हो तो फौरन जाओ।

मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि अँगूठेकी वह फुन्सी ठीक नहीं है। उसका इलाज तुम्हें स्वयं नहीं करना चाहिए। यदि शम्मी न देखें तो किसी कुशल डॉक्टरको दिखाओ। और भोजनके बारेमें भी सामान्य सलाह देने के अलावा मैं यहाँसे तुम्हारा मार्ग-निर्देशन नहीं कर सकता। स्नान तो ठीक है। पानीका तापमान बढ़ाया सो ठीक किया। यदि पानीका तापमान शरीरसे कमसे-कम ५ डिग्री कम हो तो पर्याप्त है।

तुम्हारे सहसा अस्वस्थ हो जाने का कारण मेरी रायमें क्या था, इसे मैं बादमें बताऊँगा। यह पत्र तो मैं रातमें ८ बजेके बाद लिख रहा हूँ, इसलिए अब और नहीं लिखूँगा।

१. कमला नेहरू स्मारक।

महादेव मेरे स्वास्थ्यके बारेमे तुमको बराबर सूचित करता रहा है। अत. मुझे अधिक कहने की आवश्यकता नही — सिवाय इसके कि मैं खूब अच्छा हूँ।

साँपोके विषयकी पुस्तकके लिए शम्मीसे मेरा धन्यवाद कहना। उनके कुछ सुन्दर जीवित नमूने मैंने कल देखे।

ढेर सारे प्यार-सहित,

डाकू

७ सितम्बर, १९३६

[पुनश्च .]

मेरा द्वार तुम्हारे लिए कभी बन्द नही हो सकता।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५८७)से; सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ६३९६ से भी

३३२. पत्र : अमतुस्सलामको

वर्धा

७ सितम्बर, १९३६

प्यारी बेटी,[1]

तीन दिनसे बुखार नही है, इसलिए उसे गया समझ। अस्पतालमे बिस्तरमे से यह लिख रहा हूँ। कान्तिका खत इसके साथ है।

तू उसकी चिन्ता करती है सो ठीक नही है। क्या बा से और मुझसे भी तेरा-उसका सम्बन्ध ज्यादा गहरा है? क्या तेरे प्रेमका प्रमाण उसके प्रति हमारे प्रेमसे अधिक है? जरा समझ और शान्त हो।

तेरी सेहत सुधरती नही, यह ठीक नही है। मेरा तार[2] मिला होगा। उसका जवाब नही आया है। कैसी निर्दय है तू!

पूरा हाल भेजकर अन्तिम निर्णय कर।

वर्धा आने से डरती है, इससे तेरी मूर्खता झलकती है। फिर भी मेरा कोई आग्रह नही है। तू जहाँ अच्छी हो सके, वही जा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

क्या चित्रे वहाँ है?

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४७) से।

१. इतना उर्दूमें है।
२. २ सितम्बर, १९३६ का।

३३३. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

७ सितम्बर, १९३६

चि० कान्ति,

मैं रोज तेरे नामकी माला जपता हूँ। किन्तु बीमारी भला मुझे क्यो लिखने देगी? आज तो मैं लिखे विना नही रह सकता। मुझे अब बुखार नही है। मैंने 'हरिजन' के लिए लिखा है तो तुझे क्यो नही लिखना चाहिए? तेरा पत्र मिला। मुझे तो अपार दु:ख हुआ। मेरी आस्थाका प्रासाद एक क्षणमे ढह गया। तू अचानक मुझसे दूर फिसल गया। मेरी अपेक्षा बा का दु:ख अधिक है; और सबसे अधिक बेचारी अ० का। मैंने तुझे जो उपाधि दी थी उसे तूने सही सिद्ध कर दिया है। तू जालिम है, कपटी है। तूने अ० का चित्त चोरी किया और फिर उसे ठुकरा दिया। क्या तू इससे अधिक निर्दयताकी कल्पना कर सकता है? तेरे पाठ्यक्रममे जीवित प्राणियोको सुई भोकना और उनका अग-भग करना होगा। उस समय मेरे इस पत्रकी याद करना। तूने अपना पाठ जीवित प्राणीको सतानेसे आरम्भ किया है। किन्तु मैं तेरे इस विचित्र त्यागसे तनिक भी क्रुद्ध नही हूँ। तू क्या कर सकता है? तू अपने स्वभावपर कहाँतक काबू पा सकता है? तेरा स्वभाव तुझे वातावरणके प्रवाहमे घसीट ले गया है। थोडे-बहुत अनुपातमे ऐसा सभीके साथ होता है। तेरा कल्याण हो। एक बात मुझे बहुत खटकी। साँझको तू मेरे पास आया है और एक निश्चय करके गया। अगले दिन तूने उसे बिलकुल बदल दिया। उस बारेमे मुझसे बात करनेकी जरूरत भी तुझे नजर नही आई! यह कैसा व्यवहार है? अपने वचनकी तूने कोई कीमत ही नही गिनी? यह आघात भयंकर था। तूने मुझे बहुत रुलाया। इस कृत्यसे तू अनायास बच सकता था। लेकिन बिखरे हुए पानीको फिर उठाया नही जा सकता। इस दु:खद घटनासे यदि तू अपने वचनकी कीमत आँकना सीख जाये तो बहुत अच्छा होगा। यह याद रखना कि नीतिविहीन ज्ञानकी कोई कीमत नही होती। यह ताँबेके अधन्ने पर पारा चढ़ाकर बनाये गये रुपयेकी तरह है।

अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना। अत्यधिक काम करके अपने शरीरको हड्डियोका ढाँचा मत बना लेना। अपने दिमागको खाली मत कर डालना। मुझे इसमें कोई सन्देह नही है कि सभी परीक्षाओमे तुझे सफलते मिलेगी।

मुझे नियमित रूपसे लिखते रहना।

मै अब भी अस्पतालमे हूँ। कहा जा सकता है कि बुखार तो चला गया। मीराबहनकी खटिया मेरी बगलमे है। उसे तो अभी बुखार है ही। तीसरी रोगिणी बा है जो खाँसीसे पीडित है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी नकल (सी० डब्ल्यू० १०७०७) से, सौजन्य कान्तिलाल गाधी

३३४. पत्र : जुगलकिशोर बिड़लाको

वर्धा
७ सितम्बर, १९३६

भाई जुगलकिशोरजी,

आपका २६-८ का खत मेरे हाथमे आया तब बुखारके हमलेकी तैयारी हो रही थी। अब तो मुक्त हू लेकिन अस्पतालमे बिछाने पर हू तदपि आपको उत्तर देना चाहिए। विपय-बुद्धि भ्रम अवश्य है। मुझे कोई दैवी सदेश नही है। यदि आपकी बुद्धि मेरी बात का स्वीकार न करे तो आप कभी मेरे बात न माने। पत्र से हम और मेरी इस हालत मे मै ही आपको समझाने की आशा नही कर सकता हू। जब मिलेंगे तब मै अवश्य कोशीश करूगा। शायद समझा भी सकु।

आज तो इतना ही कहू — मेरे नजदिक सिख धर्म हिंदु-धर्मका अग है। परतु कानूनी स्थिति भिन्न है। दा० आम्बेडकर धर्मान्तर करना चाहते है। यदि सिख होना धर्मान्तर है तो हरिजनो का यह धर्मान्तर खतरनाक है। और वह भी एक कलमके इशारे से बगैर हरिजनो के पूछताछ के। धर्मांतर, सम्प्रदायान्तर भी, व्यक्तिगत ही हो सकता है। यहा तो ऐसी कोई बात ही नही है। सिख भाई लोगसे कबूल करवा लो कि वे हिंदु-धर्म का अग है, उनसे भिन्न इलेक्टरेट छुड़वा लो, फिर मुझे कोई आपत्ति नही। हरिजन अपने को रामनुजी कहे या सिख कहे।

अधिक अवसर मिलने पर।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी नकलसे · प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य : प्यारेलाल

३३५. पत्र : मुन्नालाल जी० शाहको

८/९ सितम्बर, १९३६

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारी तरफसे बराबर अच्छी खबरे मिलती जा रही है। अभी-अभी सुबह सात बजे तुम्हारी चिट्ठी मिली है। इस बातसे दुःख हुआ कि तुम लोगोके मन ही नही मिल पाते थे। इतना ही नही, इसके कारण काममे बाधा भी होती थी। अब हम लोग आशा करते है कि एक बार [मन][1] मिल जाने पर फिर वैमनस्य पैदा नही होगा।

गोविन्दके बारेमे समझ गया। तुम्हे चाहिए कि उसके और दूसरे बीमारोके पास तुम जाते रहो।

अखबार भेज रहा हूँ।

वहाँ शहदके लिए पीतलकी बर्नी है और कुकरके अन्दरके सफेद धातुके डिब्बेका ढक्कन भी है। दोनो भेजना। यह डिब्बा राधाकिशनके पास भेजा गया था, लेकिन वहाँ उसका ढक्कन बदल गया, जिससे डिब्बेका पूरा उपयोग नही हो पाता।

पुरीसे कहना कि वह अपनी तबीयत और कामके बारेमे मुझे लिखकर भेजे।

मुझे ज्वर बिलकुल नही है। कमजोरी भी कम होती जा रही है। अब भी पूरी तरहसे दूध और फलो पर हूँ। ऐसा लगता है कि मुझे मुक्त करने मे डॉक्टर थोड़ा समय और लेगा। मीराबहनको कल ज्वर आ गया। उसे जुलाब दिया गया था। अब ठीक है। वह भी दूध और फल ही ले रही है।

बा को अभीतक खाँसी चल रही है; मगर कह सकते है, कुछ कम हुई है।

राजेन्द्र बाबू, ब्रजकिशोर बाबू और जयप्रकाश फिलहाल यही है। राजेन्द्र बाबू और जयप्रकाश बीमार है। ब्रजकिशोर बाबू जयप्रकाशकी देखरेख के लिए रोक लिये गये है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैंने प्रह्लादको रोक लिया है। कल सुई निकाल ली जायेगी। कहाँ है, यह तो कल ही मालूम होगा।

[९ सितम्बर, १९३६]

पत्र कल नही भेजा जा सका। अब १० बज गये है। प्रह्लादका ऑपरेशन हो रहा है। सुई दिखाई पड़ गई है।

१. यह अंश साधन-सूत्रमें अस्पष्ट है।

१०-३० बजे[1]

मीराबहन और मैं ऑपरेशन देखने गये थे। सुई निकल गई है। वह अच्छा है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५९८) से। सी० डब्ल्यू० ६९९८ से भी; सौजन्य: मुन्नालाल जी० शाह

३३६. पत्र: मुन्नालाल जी० शाहको

९ सितम्बर, १९३६

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मगर यहाँ अस्पतालमें। हाँ, मैं दूसरे अखबारोंकी बात भूल गया। अब तो कल ही मँगाये जा सकेंगे। आज तो 'बॉम्बे क्रॉनिकल' और 'हरिजन' भेज रहा हूँ। जान पड़ता है, ढक्कन तुम्हारे पास वापस पहुँच गया है। ऐसा हो तो कल यहाँ भिजवा देना।

प्रह्लादकी तबीयत ठीक सुधर रही है। खानेको माँग रहा है। आज तो उसे दूध ही मिलेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५९७) से। सी० डब्ल्यू० ६९९९ से भी; सौजन्य: मुन्नालाल जी० शाह

३३७. पत्र: बलवन्तसिंहको

वर्धा अस्पताल
१० सितम्बर, १९३६

चि० बलवन्तसिंह,

तुमारे तीन कागद मीले है। मुन्नालाल परके खतमें तुमारे खतकी पहोंच दी है। रमणीकलालका खत भी मीला है। मैंने तुमको धन्यवाद भी भेजे है। मेरी उमीद है कि शायद परसों मे वहां पहूच जाउंगा।

मुझको आराम है।

मुन्नालालको अब तो नही बुलाता हूं लेकिन दाक्तर महोदयको भेजनेकी कोशिश करूंगा। दरम्यान सिर्फ दूधपर रहें दस्त साफ न आवें तो दीवेल तेल लेवे और कमसे-कम दस ग्रेन क्विनीन लेवें। उसकी सेवा तो करते ही हो।

१. यह हिन्दी में है।

गंगाबहन का खत नही मीला है। न मुन्नालाल का। प्रह्लाद या किसी के लिये बगैर मागे हुए दूध मत भेजो। प्रह्लादको दूध कल भी दिया था और आज भी दिया है। मगनवाडी से प्रह्लाद अच्छी तरह है। दस दिन कमसे-कम रहना होगा। पुरी को आज नही लिखुंगा।

बाकी कल। दो बोतल [तो वापस][1] आती है। बाकी कल भेजने की कोशिश करुगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८८६) से।

३३८. पत्र : अमृतकौरको

१० सितम्बर, १९३६

मूर्खारानी,

पिछले दिनो पत्र लिखने की शारीरिक शक्ति तो थी परन्तु कितनी ही चर्चाओमे इतना व्यस्त रहा कि सोमवारके अतिरिक्त और किसी दिन लिखनेका कोई काम नही कर सका। आशा है, तुम्हे मेरा उस दिनका पत्र[2] मिल गया होगा।

आज भी रातको सोने से पहले यह लिख रहा हूँ।

हाँ, मुझे शम्मीका एक अच्छा-सा पत्र मिला। मैं तुम्हारी इस बातसे असहमत हूँ कि सेगाँवकी जलवायुका मेरे मलेरियासे कोई सम्बन्ध नही था। सच तो यह है कि सेगाँवकी जलवायु मलेरियाके लिए प्रसिद्ध है। परन्तु मुझे उससे दूर नही भागना है बल्कि उसपर विजय पानी है। आशा है, वहाँ शनिवारको पहुँचूंगा। कल मेरा एक्स-रे होगा। उसीके आधार पर मेरे भाग्यका फैसला होगा।

तुम्हारे पत्र असाधारण नियमिततासे आये है और मेरे लिए अमूल्य निधि सिद्ध हुए हैं। तुम्हे अपने एक्जीमा और अँगूठेके घावके प्रति लापरवाही नही करनी चाहिए। किसी कुशल डॉक्टरको दिखलाओ और जैसा वह कहे वैसा करो। मैं तो नही सोचता कि यदि तुम अडे खाती रहो तो कोई मास खाने की जिद करेगा। अब तुमसे एक तारकी आशा करता हूँ कि तुमने योग्य डॉक्टरसे सलाह की है। शम्मीसे भी इस विषयमे पूछ लो। इसमे हठ नही रखना चाहिए।

इस समय अब बस।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५८८) से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६३९७ से भी

१. साधन-सूत्रमें अस्पष्ट है।

२. देखिए "पत्र: अमृतकौरको", ६/७-९-१९३६।

३३९. पत्र : मुन्नालाल जी० शाह और बलवन्तसिंहको

११ सितम्बर, १९३६

चि० मुन्नालाल और चि० बलवन्तसिंह,

तुम्हारा पत्र मिला। डॉक्टर तो आज आयेगा ही। इसके सिवाय वह बुरहान-पुरी है और तुम भी बुरहानपुरी हो। कल वह नही आयेगा। आज कुछ मरीज होंगे तो उन्हे देखेगा। प्रह्लाद मजेमें है। बलवन्तसिंहके पत्रोंके बारेमें तुमने जैसा लिखा है, वैसा ही हुआ होगा। मुझे तो यह याद है कि मैंने पत्रकी पहुँच दी थी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५९७) से। सी० डब्ल्यू० ७००० से भी; सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह

३४०. पत्र : अमृतलाल ठा० नानावटीको

११ सितम्बर, १९३६

चि० अमृतलाल,

आजसे दूध वगैरहकी जिम्मेदारी किसपर आनेवाली है? अगर मीराबहनके लिए खाखरी बनी हो तो खाखरी और मक्खन भिजवाना है। साथका मक्खन वहाँ रख लेना और दूसरा भेजना। नमककी शीशी भेज रहा हूँ। इसे भी भर देना। अगर खाखरी तैयार न हो तो १० तोला आटा, छोटा तवा, बेलन और चौकी भेजना। इनमें से जो चीजें नये रसोईघरसे भेजी जायें, उनका बिल भेज देना। प्रह्लादके लिये दाल-भात और शाक भिजवाना। तीनों चीजें मिलाकर भी भेजी जा सकती हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७१९) से।

३४१. पत्र : अमृतलाल ठा० नानावटीको

[१२ सितम्बर, १९३६ के पूर्व][1]

चि० अमृतलाल,

आजके दहीमे दो सुन्दर-से वाल तो मैने निकाले। जो पेटमे चले गये होगे, सो अलग। वाल वकरी-माताके थे। इसका मतलव हुआ कि दूध दुहनेवाले की भूल है। दही वहुत खट्टा था। यदि सुवहके दूधका दही जम गया हो तो मै उसे इस वक्त ले सकता हूँ। अगर भेज सको तो लहसुनकी जरूरत है। दूध हो तो लहसुनकी जरूरत नही।

वापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७२०) से।

३४२. सन्तति-निरोधके नुकसान

डॉ० सोखे और डॉ० मगलदास मेहताके बीच हाल मे ही जो उस वारहमासी विपय अर्थात् सन्तति-निरोधपर वाद-विवाद हुआ था, उससे मुझे पुण्यस्मरण स्वर्गीय डॉ० अन्सारीके मतको प्रकट करने की हिम्मत हो रही है, जिससे डॉ० मगलदासके पक्षका समर्थन होता है। तकरीवन एक साल हुआ, मैने डॉ० अन्सारीको लिखा था कि चिकित्सा-शास्त्रीकी दृष्टिसे आप इस विवाद-ग्रस्त विषयमे मेरे मतका समर्थन कर सकते है या नही। मुझे यह जानकर आश्चर्य और खुशी हुई कि उन्होने तहेदिलसे मेरा समर्थन किया। पिछली वार जव मैं दिल्ली गया था, तव इस विपयमे उनसे मेरी रूवरू वातचीत भी हुई थी, और मेरे अनुरोव करनेपर उन्होने अपने निजी तथा अपने अन्य व्यवसाय-वन्धुओके अनुभवके आधारपर तथ्य-आँकडो-सहित यह सिद्ध करने के लिए कि इन कृत्रिम साधनोका उपयोग करनेवालो को कितनी जवरदस्त हानि पहुँच रही है, एक लेखमाला लिखने का वचन दिया था। उन्होने उन लोगोकी दयनीय अवस्थाका अत्यत सजीव वर्णन सुनाया था, जिन्होने यह जानते हुए कि उनकी पत्नियाँ और अन्य स्त्रियाँ सन्तति-निरोधके कृत्रिम साधनोको काममे ला रही है, उनसे कुछ

[1] अमृतलाल नानावटीने पत्रको अगस्त-सितम्बर १९३६ मे रखा है। जान पड़ता है, यह पत्र गाधीजी ने वर्धा अस्पतालसे लिखा होगा। वहाँ गाधीजी के खाने-पीनेकी चीजें मगनवाड़ीसे भेजी जाती थीं। देखिए पिछला शीर्षक; गाधीजी १२ सितम्वरको अस्पतालसे मुक्त हो गये थे।

दिन संभोग किया था। संभोगके स्वाभाविक परिणामके भयसे मुक्त होनेपर वे अमर्यादित भोग-विलास पर टूट पड़े। नित्य नयी-नयी औरतोंसे मिलने की उन्हें अदम्य लालसा होने लगी और आखिर वे पागल हो गये। अफसोस! डॉ० साहब अपनी उस लेखमालाको शुरू करने ही वाले थे कि चल बसे।

कहा जाता है कि बर्नार्ड शॉ ने भी यही कहा है कि सन्तति-निरोधक साधनोंका उपयोग करनेवाले स्त्री-पुरुषोंका संभोग तो हस्त-मैथुनसे किसी प्रकार कम नहीं है। क्षण-भर सोचने से पता चल जायेगा कि उनका कथन कितना यथार्थ है।

इस बुरी टेवके शिकार बनकर धीरे-धीरे अपने पौरुषसे हाथ धो लेनेवाले विद्यार्थियोंके करुणाजनक पत्र तो मुझे करीब-करीब रोज मिलते हैं। कभी-कभी शिक्षकोंके भी खत मिलते हैं। लाहौरके सनातन धर्म कॉलेजके आचार्यका जो पत्र-व्यवहार इन स्तम्भोंमें प्रकाशित हुआ था,[1] वह भी पाठकोंको याद होगा। उसमें उन्होंने उन शिक्षकोंके विरुद्ध बड़ी कड़ी शिकायत की थी जो अपने विद्यार्थियोंके साथ अप्राकृतिक व्यभिचार करते थे। इससे उनके शरीर और चरित्रकी जो दुर्गति हुई थी उसका भी जिक्र आचार्यजी ने अपने पत्रमें किया था। इन उदाहरणोंसे तो मैं यही नतीजा निकालता हूँ कि अगर पति-पत्नीके बीच भी मैथुनके स्वाभाविक परिणामके भयसे मुक्त होने की सम्भावनाको लेकर संभोग होगा, तो उसका भी वही घातक परिणाम होगा, जो हस्त-मैथुन या अप्राकृतिक कृत्यसे निश्चित रूपसे होता है।

निःसन्देह कृत्रिम साधनोंके बहुत-से हिमायती परोपकारकी भावनासे ही प्रेरित होकर इन चीजोंका अन्धाधुन्ध प्रचार कर रहे हैं, पर यह लोकोपकारी भावनाका गलत क्षेत्रमें प्रयोग है। मैं इन भले आदमियोंसे अनुरोध करता हूँ कि वे इसके परिणामोंका तो खयाल करें। वे गरीब लोग कभी पर्याप्त मात्रामें इनका उपयोग नहीं कर सकेंगे, जिनतक ये उपकारी पुरुष पहुँचना चाहते हैं, और जिन्हें इनका उपयोग नहीं करना चाहिए वे जरूर इनका उपयोग करेंगे, और अपना और अपने साथियोंका नाश करेंगे। पर अगर यह पूरी तरहसे सिद्ध हो जाता कि शारीरिक या नैतिक आरोग्यकी दृष्टिसे यह चीज लाभदायक है, तो इसे भी सह लिया जाता। इन सुधारकों और भावी सुधारकोंके लिए डॉ० अन्सारीकी राय — अगर उसके विषयमें मेरे शब्दोंको प्रामाणिक मानें तो — एक गम्भीर चेतावनी है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १२-९-१९३६

१. देखिए खण्ड ६१, पृ० ७-८।

३४३. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
१२ सितम्बर, १९३६

मूर्खारानी,

आखिरकार मैं प्यारे सुपरिचित सेगाँवमें वापस आ ही गया हूँ, परन्तु बा, लीलावती और मोतीके बिना। अमतुस्सलाम कुछ घंटोंके लिए यहाँ है, फिर वर्धा वापस चली जायेगी। लीलावती मगनवाड़ीमें दण्डस्वरूप रह रही है और बा उसकी सहानुभूतिमें वहीं रुक गई है। यहाँ सबकुछ शान्त और भला लग रहा है। मेरे सामने पिंजरेमें कलके पकड़े हुए दो जीवित साँप हैं। तुम्हारे हरे [illegible] टुकड़ा वहीं अपने ठिकाने पर है। कुछ दिन और काम आ ही जायेगा।

तुम्हें जानकर प्रसन्नता होगी कि तुम्हारा थर्मस एक बार अच्छी तरह उपयोगमें आकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। गाड़ीका दरवाजा अचानक खुल गया और थर्मस बाहर गिर पड़ा। अब तुम्हें बदलेमें फिरसे दूसरा नहीं भेजना है। मुझे हिकमतसे बनी चीजोंसे ही जैसे काम चले, चलाना होगा। अबतक तो तुम्हें पता चल गया होगा कि जिन चीजोंकी मुझे आवश्यकता होती है उन्हें माँगनेमें मुझे लज्जा नहीं लगती, ऐसी एक चीज है खूब बढ़िया मैग्निफाइंग ग्लास (आतशी शीशा)। परन्तु यह फुरसतसे भेजना, और डाकसे नहीं। आज जो थर्मस टूटा, उसका मूल्य कितना था? यह प्रश्न केवल जिज्ञासावश ही पूछ रहा हूँ।

आशा करता हूँ, तुमने मेरा कहना मानकर एक्जीमाके लिए विशेषज्ञकी सलाह ली होगी। इसको इतना साधारण रोग नहीं समझना चाहिए।

मेरी चिन्ता मत करना। मैं अपना पूरा ध्यान रखूँगा।

मीरा अब अपनी कुटीमें है।

सप्रेम,

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५८९) से; सौजन्य: [illegible]
६३९८ से भी

३४४. पत्र : मीराबहनको

१२ सितम्बर, १९३६

चि० मीरा,

पुरीने मुझे सहसा आश्चर्यमें डाल दिया है। वह कहता है तुम्हें उसकी आवश्यकता नहीं, और उसकी उपस्थितिसे तुम्हे असुविधा होगी। तुम बिलकुल एकान्त चाहती हो। यदि ऐसा है तो उसे चले जाना चाहिए। वह स्वयं कहता है कि तुम जितनी अपेक्षा रखती हो उतना योग्य वह नही बन सकेगा। बलवन्तसिंह बादमें दूध लेकर जायेगा। तुम्हे उससे जो सेवा लेनी हो, लेना। वहाँ सोयेगा कौन? तुम्हें अपने ऊपर बहुत बोझ नही डालना है। इच्छा होती है कि स्वयं तुम्हारे पास आकर तुम्हें साक्षात् देख सकता, परन्तु वह तो अभी कुछ समय तक असम्भव है।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३६३) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९८२९ से भी

३४५. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१२ सितम्बर, १९३६

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला।

महात्माकी सेवा कैसी होनी चाहिए, इसका अर्थ तो तू महात्मा बने तभी जाने। अभी तो तेरी कल्पना जहाँतक तुझे ले जायेगी वहीतक तू जायेगी। महात्माको एक फुंसी भी हो जाये तो दुनिया-भरमे शोर मच जाता है। बेचारे सामान्य आदमीको भगंदर हो जाये तो उसे फुंसी मान लिया जाता है और उसके बारेमें कोई नहीं जानता। क्या करे?

आज ही अस्पताल छोड़कर यहाँ आया हूँ। अभी कमजोरी तो खूब है, परन्तु अब यहाँ शक्ति आ जाने की आशा रखता हूँ।

अब वहाँ बरसात शुरू हुई मालूम होती है। यहाँ तो जरूरतसे ज्यादा होती रहती है।

तेरे दूसरे वर्णन रोचक हैं। तू अपना काम आगे बढा रही है। परिणाम तो जो आना होगा वह आयेगा।

तेरी लेखन-प्रवृत्तिकी[1] आलोचना करनेकी बात ही नहीं है। जो शक्ति ईश्वरने तुझे प्रदान की है, उसका सदुपयोग तुझे अवश्य करना चाहिए।

लीलावतीका मामला बहुत कठिन तो है ही। एक प्रयत्न करके तो मैं हार गया। अब दूसरा शुरू किया है। मैं बिलकुल हार तो कभी नही मानूंगा।

तेरा प्रश्न ठीक है। परन्तु मुझे स्वराज्य लेना है। मौतसे पहले कैसे मरूँ?

मीराबहनके बारेमें भी तूने जो लिखा है, वह सही है। वह मुझसे दूर बिलकुल नही रह सकती। अब जो हो सो सही।

आज अधिक नही लिखूंगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३७७) से। सी० डब्ल्यू० ६८२३ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कटक

३४६. पत्र : नारणदास गांधीको

१२ सितम्बर, १९३६

चि० नारणदास,

प्रेमाका पत्र सलग्न है। मेरी बीमारीका समाचार तो मिलता ही रहा होगा। सरदार या जमनालालजी तो वहाँ नही जा सकते। दूसरे किसकी आशा रखते हो? मेरी तो यह सलाह है कि किसीकी आशा न रखकर जो वहाँ पहुँच जाये उन्हीसे सन्तोष कर लो। मेरी कोशिशको इससे बिलकुल अलग मानना।

यदि वहाँ अकालकी स्थिति उत्पन्न होती है तो चरखा-कोषको अकाल-निवारण के काममे लाना। फिर भी यह केवल एक सुझावके रूपमे है।

पुरुषोत्तम और विद्याके योग्य 'गीता'की प्रतिपर आज हस्ताक्षर किये है।

आज अस्पतालसे सेगाँव आ गया हूँ। बा और लीलावती मगनवाडीमें रह गई हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५०४ से भी; सौजन्य : नारणदास गाधी

१. सासवड़ जाने के बाद प्रेमाबहन लेख, कहानियाँ, यहाँतक कि किताबें भी लिख रही थीं। उन्हें ऐसी आशका थी कि गांधीजीको उनकी लेखन-प्रवृत्ति शायद न रुचे। इसलिए उन्होंने गांधीजीकी राय मागी थी।

३४७. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

१२ सितम्बर, १९३६

चि० रमणीकलाल,

तुम्हे केवल कार्ड लिखकर सन्तोष कर रहा हूँ। अभी काफी शक्ति नही आई है। तुम ऐसा किसलिए मानते हो कि तुम मुझसे दूर पड़ते जा रहे हो। सब अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार करते है। इसीमे शोभा है। इसीमे सत्य है। शर्मसे या जोर-जबरदस्तीसे कहाँतक काम चल सकता है? तारा[1] अगर फिलहाल पटेल स्त्रियोपर प्रभाव नही डाल पाती तो उसे हार नही माननी चाहिए। वे जो सेवा स्वीकार करें हमें तो उतनी सेवा करके सन्तोष मान लेना चाहिए। सुरेन्द्रसे कहना कि उसे लिखने की बात मैंने दर्ज करके तो रखी है; किन्तु बीचमे बहुत-से विघ्न आ जाते हैं। तुम्हे भी आश्वासन देने लायक लिखा है।

बापूके आशीर्वाद

श्रीयुत रमणीकलाल
मार्फत भाईलालभाई
हरिजन सेवक सघ
बोरिआवी, बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१८३)से।

३४८. पत्रका अंश

१२ सितम्बर, १९३६

. . . वह पढे और विचार करे। "अशोच्यानन्वशोचस्त्व"[2] से प्रारम्भ करे। बा के साथ बहसमे न पडे। उसके या किसी औरके सामने रोना-धोना न करे। अपने दु:खकी चर्चा न करे।

मुन्नालाल, बलवन्तसिंह, मीराबहनके गुण यदि उसे याद हो तो उनका स्मरण करे और उनके कारण मनमे उनका आदर करे। उनके दोषोका स्मरण न करे और यदि दोष याद आये तो भी चुपचाप बर्दाश्त करे।

१. रमणीकलाल मोदीकी पत्नी।
२. भगवद्गीता, २/११।

आज तो इतना ही लिखूंगा। इसकी नकल करके मुझे भेज देना। कुछ और लिखने योग्य होगा तो पत्र भेजूंगा।

राजकुमारीका पत्र आज नही भेजा जा सके तो कल लेट फीस लगाकर भेज देना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

बैलगाड़ीका प्रबन्ध कर लिया होगा।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९५७९) से। सी० डब्ल्यू० ६५५१ से भी; सौजन्य : लीलावती आसर

३४९. पत्र : मीराबहनको

१३ सितम्बर, १९३६

चि० मीरा,

तुम्हारा प्रसन्नता-भरा पत्र मिला। यदि रास्ता सूखा होता तो मैं तुम्हारे पास पैदल आ जाता। अपनेको अधिक थकाओ मत। धैर्यसे पुरीको सब-कुछ सिखाओ। इतनी जल्दी उसकी ओरसे आशा मत खो बैठो।

क्या तुम्हारे पास मेरी टार्च है? और अटेरन भी है क्या?

आशा है, तुम्हारे पास सब आवश्यक चीज है।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३६४)से; सौजन्य मीराबहन। जी० एन० ९८३० से भी।

३५०. पत्र : अमृतकौरको

सेगांव, वर्धा
१३ सितम्बर, १९३६

मूर्खारानी,

मुझे हर बार स्मरण-शक्तिपर भरोसा रखकर ही उत्तर देना पडता है क्योंकि तुम चाहती हो कि पढते ही तुम्हारे पत्र फाड दिये जाये। हाँ, शम्मीने एक मधुर पत्र भेजा था, जिसका उत्तर दूंगा, हालाँकि वे तो नही चाहते।

यह है मेरा तुम्हारे रोगका निदान। तुमने निसर्गोपचार बीचमे ही छोड दिया। चूंकि वह अधूरा रह गया था, इसलिए जलवायुमे एकाएक बहुत बड़ा अन्तर पड़ जाने से प्रतिक्रिया हुई। यदि उसका निराकरण निसर्गोपचार द्वारा ही हुआ होता

तो वह प्रतिक्रिया ठीक मानी जाती। इसका आशय केवल कटि-स्नानसे ही नही है। वाष्प-स्नान, प्रकाश-स्नान इत्यादि और भी कई प्रकारके उपचार होते है। परन्तु वह सब तो हुआ नही। मुझे घबराहट शारीरिक प्रतिक्रियाके कारण नही परन्तु तुम्हारे परिवारके सर्वथा उचित रोषके कारण हुई। उनको तो निसर्गोपचारकी विधियोसे कोई सहानुभूति नही हो सकती।

मेरा तात्पर्य स्पष्ट हो गया न? भगवान्‌को धन्यवाद कि अब परिवारमे पुन शान्ति स्थापित हो गई है।

परन्तु तुम्हे अपने एक्जीमाके साथ खिलवाड़ नही करना चाहिए। यदि मेरे पास होती तो मै अवश्य इलाज करता। किन्तु आना, और वह भी इलाजके लिए, तो बिलकुल असम्भव है। तुम्हे पारम्परिक चिकित्सा-पद्धतिसे ही उपचार कराना होगा। जितनी जल्दी करा लो, उतना अच्छा है।

तुमने परम्परागत जीवन-क्रमसे भिन्न क्रम अपनाया है। अत तुम्हे परिवारकी आलोचनाका बुरा नही मानना है। तुम हृदयकी विशालता और उदारतासे काम लो, तुम्हारे आन्तरिक आनन्दमे वृद्धि हो, तुम शान्ति और समभाव रखो और अपना स्वास्थ्य सुन्दर रखो, तभी तुम्हारे विद्रोहका औचित्य सिद्ध होगा। विद्रोहका औचित्य उसकी सफलतासे ही सिद्ध होता है। अत तुम अपने जीवनके इन परिवर्तनोमें धीरज और समझसे काम लोगी तो सब-कुछ ठीक हो जायेगा।

यदि ताई अभीतक वहाँ है तो उन्हे मेरा प्यार कहना।

अगर तुम्हे समयाभाव हो या आलस्य लगे तो बेशक दैनिक पत्र लिखना बन्द कर दो। पत्र-लेखनसे तुम्हारे मन या शरीरको थकान नही होनी चाहिए।

ढेरो प्यार।

डाकू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७४१) से, सौजन्य . अमृतकौर। जी० एन० ६८९७ से भी

३५१. पत्र : सुभाषचन्द्र बोसको

१३ सितम्बर, १९३६

प्रिय सुभाष,

आपने जो पूछताछ की थी उसके उत्तरमें मैंने तार भेजा था। आशा है, मिल गया होगा। बारह वर्षोंके बाद मुझे बुखार हो आया था। इसी कारणसे आपके प्रश्नोंके उत्तर देने मे देर हुई।

(१) मैं स्वास्थ्यके खयालसे चाय या काफीमें से किसीको भी आवश्यक नही मानता। बल्कि उनसे अक्सर नुकसान ही होता है। यदि चाय हलकी, सूखी घासके रंगकी बनी हो और काफीमें दूधकी मात्रा अधिक और एक या दो ही चम्मच काफी हो तो चाय और काफीसे नुकसान नही भी हो सकता है।

(२) स्वस्थ गायके साफ-सुथरे थनोंसे निकला ताजा दूध यदि बिना उबाले और गरम किये कच्चा ही पिया जाये तो वह सर्वश्रेष्ठ आहार होता है। इसके बाद सुखाये हुए दूधको मैं श्रेष्ठ मानता हूँ। कुछ लोगोंके लिए मीठा दही उत्तम होता है। दहीके माध्यमसे खमीर मिल जाता है और इस तरह फलोंकी आवश्यकता भी नही रह जाती।

(३) पत्तेदार भाजियोंका उपयोग सलादकी तरह किया जाये तो अधिक अच्छा अवश्य होना चाहिए। वैसे हर तरहके पत्ते कच्चे नही खाये जा सकते। पत्ती-वाली सब्जियोंके अलावा प्याज, छिलके-सहित भूरा कुम्हड़ा, परवल, बैंगन, भिंडी, शलजम, गाजर, पत्तागोभी, चुकन्दर, फूलगोभी आदि भी गुणकारी है। आलू और जमीनके अन्दर होनेवाली दूसरी स्टार्च-युक्त चीजोंका उपयोग कम होना चाहिए।

(४) अच्छी पाचन-शक्तिवाले के लिए खजूर बहुत ठीक आहार है। किशमिश अधिक आसानीसे पचती है। मैं दोनो जी-भरकर ले सकता हूँ पर सबके लिए यह सम्भव नही है। बाकी लोग किशमिश और मुनक्का ले सकते है।

(५) पश्चिममें कच्चे लहसुन और प्याजके प्रयोगपर काफी जोर दिया जाता है। मैं रक्तचापके लिए नियमित तौरपर कच्चा लहसुन लेता हूँ। यह सर्वोत्तम विषनाशक ओषधि है। क्षयके रोगियोंको भी लहसुनके उपयोगकी सलाह दी जाती है।

मेरा खयाल है इन दोनों भाजियोंके खिलाफ लोगोंके पूर्वग्रहका कारण इनकी गंध है, हालाँकि यही इनका सार-तत्त्व है। यह पूर्वग्रह वैष्णव सम्प्रदायके उदयके साथ पैदा हुआ। आयुर्वेदमें दोनोंकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की गई है। लहसुनको तो गरीबोंकी कस्तूरी कहा जाता है और वास्तवमें वह है भी। मैं कह नही सकता कि कौन-से ग्रामीण लोग प्याज-लहसुनके बिना काम चला सकते हैं।

(६) हाँ, मीठे सन्तरोंकी जगह नीबू और गुड़ या शहद लिया जा सकता है।

आपके सारे प्रश्नोंके जवाब मैंने दे दिये हैं। आशा है, आप स्वस्थ होंगे। डॉ० राय और डॉ० सरकारने जो जाँच की थी उसके परिणाम मैं जानना चाहूँगा।

सप्रेम,

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य: प्यारेलाल

३५२. पत्र: पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासको

१३ सितम्बर, १९३६

प्रिय सर पुरुषोत्तमदास,

मैं खुद दक्षिण आफ्रिकी शिष्टमण्डलका स्वागत करने नहीं आ पा रहा हूँ, इसका मुझे दुःख है।[1] कृपया उन लोगोंको मेरे इस हार्दिक दुःखसे अवगत करा दें। स्वास्थ्य-लाभके सिवा और कारणोंसे भी अपने नये निवास-स्थान सेगाँवसे निकल पाना मेरे लिए कठिन है। मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ कि दोनों देशोंके बीच जो गलतफहमियोंका जाल है, वह इस यात्राके फलस्वरूप नष्ट हो जाये तथा दोनों देश एक-दूसरेके और निकट आयें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी नकलसे: प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य: प्यारेलाल

१. शिष्टमण्डलके १९ सितम्बर, १९३६ को बम्बई पहुँचनेपर। पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासने यह पत्र शिष्टमण्डलके नेता जे० एफ० हॉफमेयरको दे दिया था।

३५३. एक पत्र

१३ सितम्बर, १९३६

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके सम्बन्धमे मेरा निवेदन है कि मैं आपकी मदद करने मे असमर्थ हूँ। शायद आपको मालूम होगा कि आजकल मैं सक्रिय सार्वजनिक जीवनसे अलग हूँ। लेकिन भारतकी सार्वजनिक सस्थाएँ, विशेषकर राष्ट्रीय काग्रेस, अपनी राय बहुत स्पष्ट शब्दोमें जाहिर करती रही है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अग्रेजीकी नकलसे · प्यारेलाल पेपर्स, सौजन्य . प्यारेलाल

३५४. पत्र : प्रभावतीको

१३ सितम्बर, १९३६

चि० प्रभा,

महादेवभाईसे तो मैंने कहा ही है कि तुझे पत्र लिख दे। मैं कल सेगाँव आ गया। कमजोरी है। और सब ठीक है। अभी दूध और फलोपर ही हूँ। मीराबहन अपनी झोपडीमे चली गई है। फिलहाल बा यहाँ नही है। वह शायद देवदासके पास दिल्ली जायेगी। लीलावती मगनवाडीमे है। मनु गोमतीके पास। शायद वह बा के साथ जाये। इसका यह मतलब हुआ कि यहाँ बलवन्तसिह, मुन्नालाल, प्यारेलाल और खानसाहब हैं। बहुत सम्भव है कि नानावटी आये। मगनवाड़ीका रसोईघर विद्यार्थियो के रसोईघरके साथ मिला दिया गया है और इस तरह बहुत-से लोग छुट्टी पा गये है। इसके सिवाय लोग भी उतने नही बचे।

अमतुस्सलाम आई है। शायद शामको बम्बई जायेगी।

जयप्रकाशको तेरा तार दिखा दिया था, किन्तु वह कोई ऐसा आदमी तो है नहीं कि मेरे या किसीके रोकने से रुक जाये। आज चला गया होगा। पिताजी यही हैं। उन्हे सख्त बुखार आ गया है। डॉक्टर जाँच करेगा। जयप्रकाशको खास कोई दर्द हुआ था, वह ठीक हो गया। राजेन्द्रबाबू तो अभी यही रहेंगे।

कान्ति पढने के लिए बम्बई चला गया है।

बोल, काफी खबरे दे दी न?

तू कैसी है? क्या खाती-पीती है? सिरमें दर्द होता है क्या? दूध मिलता है या नही? फलोके बारेमे भी लिखना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च.]

अभी तेरा २-९-३६ का पत्र पढा। मेरा पत्र २२ दिनसे नही मिला, यह कैसे हो सकता है? यह ठीक है कि मैं अपनी बीमारीके दौरान नही लिख पाया था किन्तु वह तो दस दिनतक ही। कान्तिके साथका पत्र तो मिला ही नही। तुझपर क्रोधित कैसे हो सकता था? या अप्रसन्न भी कैसे हो सकता था? मुझे तो कोई ऐसा प्रसग याद नही आता जब तूने क्रोध या अप्रसन्नताका कारण दिया हो। पत्र भटक जाये, यह तो हो सकता है। यह भी हो सकता है कि मैं लिख न पाऊं। लेकिन यह कभी मत सोचना कि मैं गुस्सेके कारण लिखना बन्द कर दूंगा। बुखारके बाद मेरा वजन १०८ हो गया है। यह ठीक ही माना जायेगा। आगेसे तू कान्तिके नाम न लिख कर मेरे ही नाम लिखना। कान्तिका पता है — सत्याग्रह छावनी, विले पार्ले, बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे। अपनी उदासी दूर कर डालना। मुझे नियमसे लिखना। मेरे जन्म-दिनकी गुजराती तारीख इस बार १२ अक्तूबरको पड़ रही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४५४) से।

३५५. पत्र: क० मा० मुंशीको

१३ सितम्बर, १९३६

भाई मुशी,

"भलुं थयुं भागी जंजाल, सेहेजे मलीया श्रीगोपाल।"[1] हम एक हजारकी जमानत देकर 'हंस' या उसके किसी वंशजका पोषण नही करना चाहते। 'हंस'[2] तो क्षीर-भोजन करनेवाला ठहरा। काका साहबका सुझाव ठीक जान पडता है। किन्तु त्रैमासिकके लिए क्या जमानतकी जरूरत नही होती? यदि जरूरत होती हो तो यह भी उचित नही होगा। तुम दोनो मजेमे होगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७६०५)से; सौजन्य: क० मा० मुंशी

१. नरसी मेहताके भजन की पंक्तियाँ; "भली भई मांग्यो जजाल, सहज मिल गये श्रीगोपाल।"
२. हंस पर श्लेष है।

३५६. पत्र : लीलावती आसरको

सेगांव
१४ सितम्बर, १९३६

चि० लीलावती,

नानावटीने मुझे यह दु:खदायी खबर दी है कि तू रो-रोकर आसमान सिर पर उठाये है। अगर तू वहाँ रहते हुए मेरी बात नही मानेगी तो सेगाँव आनेकी घडी लम्बी खिचती चली जायेगी। मैंने तेरे सुन्दर अक्षरोमे लिखे हुए पत्रकी आशा की थी। उसके बदले मिला यह दु:खदायी समाचार! यह कैसी बात है? बात समझ और जो कहता हूँ, सो कर। तू मुझे दु:ख ही देना चाहती है तो मैं लाचार हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३४४)से। सी० डब्ल्यू० ६६१९ से भी, सौजन्य : लीलावती आसर

३५७. पत्र : कृष्णचन्द्रको

१४ सितम्बर, १९३६

चि० कृष्णचद्र,

तुमको बुखार आया तो इस दफा मुझको भी आया। देखें अब क्या होता है। मेरा खुराक सिर्फ दूध या दही, मुसबी और लसून है।

कातने परसे तुमारा विश्वास उठ गया तो दुःखद बात है। वह तो बडा यज्ञ है लेकिन दलील नही करूँगा।

ब्रह्मचर्यका व्रत दुबारा लेना है तो लो परंतु स्वादको नही जीता है तो ब्रह्मचर्यका शुद्ध पालन अशक्य-सा समझा जाय। तुमारे वर्धा आनेकी तो जरूरत नही है। वहा मैं शायद ही जाता हू। सेगाँव रहने के कारण[1] नही आ सकते हो।

अच्छे हो जाओ।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२८८)से।

१. अर्थात्, "रहनेके खयाल से"।

३५८. पत्र : हीरालाल शर्माको

१४ सितम्बर, १९३६

चि० शर्मा,

तुम्हारा खत मीला। तुमारे चाहियें ऐसे आदमी मेरे पास एक भी नही है। ऐसे आदमी तुमारे ही पैदा करना होगा।

गावमे रहने का तुमारा क्रम मुझको मुद्दल नही जचता। इतने पैसे खर्च कर देहातीओमें प्रचार काम अभी नही हो सकता। मेरे तरफसे इस कार्यक्रममें कोई मदद की आशा न की जाय। अब भी मेरी सलाह है कि तुमारे बगैर पैसे आरंभ करना, देहातमे बैठ जाना और अपनी शक्तिका अदाज निकालना। लेकिन मैं देखता हु तुम हो आकाशगामी [और] मे हु इस जमीनका कीडा और जमीनसे मेरे पैरोको अलग करना नही चाहता। इसलिए हम दोनोके मार्ग इस समय तो भिन्न नजर आते है। इसलिए तुमारा खत घनश्यामदासजी के सामने रखने की मेरी इच्छा नही है।

सतीशबाबुके पास जाकर क्या करोगे? उनके...[1] को अब और .[2] पाप करवा रहा हु। ४२ मे से १२, और हो सके तो इससे भी [ज्यादा], कम करवा रहा हू।

जाहेर है कि देहातोके तुम जानते नही हो। "मीडवाईफ" का काम पुस्तकसे कैसे सीखोगे? तो भी मुझे पुस्तकोकी फेहरीस्त भेजोगे तो मै अवश्य भेजूगा।

मुझे दु:ख है कि तुमको कोई सतोषजनक उत्तर नही दे सकता हु। लेकिन दिलकी बात ही कहु ठीक है ना?

मैं तो बुखार यही छोडकर अस्पताल गया था। काफी "कोनीन" लीया।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी नकलसे : प्यारेलाल पेपर्स; सौजन्य प्यारेलाल

१ और २. साधन-सूत्रमें अस्पष्ट है।

३५९. पत्र : अमृतकौरको

सेगांव, वर्धा
१५ सितम्बर, १९३६

मूर्खा रानी,

प्रसन्नताकी बात है कि तुम्हारा अँगूठा लगभग ठीक हो चला है। परन्तु अभी मैं और प्रतीक्षा करूँगा। घावसे पानीका निकलना रोकना काफी नही, उसका बनना बन्द होना चाहिए। मेहरबानी करके उसके साथ खिलवाड़ मत करो। अगर तुम्हे आलस्य लगे और तुम रोजमर्राके काम न करो, तो मुझे कोई आपत्ति नही है। लेकिन तुम ठीक न हुई हो लेकिन फिर भी अपनेको धोखा देकर मान बैठो कि तुम स्वस्थ हो, ऐसा मत करना।

मेरी तो कितनी इच्छा है कि तुम ताईको वहाँ कुछ समय रोक रखो। उन्हे मेरा स्नेह।

अभीतक मैंने 'स्टेट्समैन' का लेख नही पढा है। वह मेरे पास है। देखूंगा कि उसका क्या किया जा सकता है।[1]

शम्मीको मैंने एक लम्बा-सा पत्र[2] भेजा है। मुझे पत्र भेजने की चिन्ता मत करो। यदि तुम्हे पत्र लिखने मे प्रसन्नता हो और मन हलका होता हो तो बेशक प्रतिदिन लिखो, परन्तु श्रम मत उठाना। अब चूँकि मैं जानता हूँ कि तुम्हे एक-दो दिनका अन्तर देकर पत्र लिखने की छूट है, इसलिए तुम्हारा पत्र न आने पर मैं किसी प्रकारकी दुश्चिन्ता नही करूँगा।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७४२)से; सौजन्य. अमृतकौर। जी० एन० ६८९८ से भी

१. देखिए "जीवन-धर्म", २६-९-१९३६।
२. उपलब्ध नहीं है।

३६०. पत्र : मीराबहनको

१५ सितम्बर, १९३६

चि० मीरा,

कल जहाँ मिले थे वही तुमसे मिलने की आशा की थी, ताकि तुम्हे बैलगाडी न लाने का कारण बता दूँ। मैं उस स्थलको देखने तब जाना चाहता था जब वहाँ पैदल जाया जा सके। देखें, कल क्या होता है। क्या तुम वहाँ अपने लिए दही जमाने को तैयार हो? वैसे यदि इच्छा न हो तो मत जमाओ।

आशा करता हूँ कि तुम्हारी और पुरीकी अच्छी निभ रही होगी।

अब वर्षा सब-कुछ नष्ट कर रही है। जैसी प्रभुकी इच्छा!

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३२७)से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९७९३ से भी

३६१. पत्र : लीलावती आसरको

१५ सितम्बर, १९३६

चि० लीलावती,

तू अभीतक निकम्मी बनी है। जो जरा-सा बोझ उठाने को कहा गया है सो नही उठा रही है। तू किस मिट्टीकी बनी है, इससे यही जाहिर होता है। मैंने तुझसे कहा है कि तू यहाँ आकर मुझे एक घंटे सुख दे सकती है; किन्तु रोने या झगड़ने के लिए तू यहाँ नही आ सकती। तू जैसे-जैसे हठ करती है वैसे-वैसे तेरा सेगाँव आना दूर होता जाता है, यह समझ ले। अगर इसे तूने न आने का उपाय माना हो, तो तू जान। यह कैसी क्रूरता है कि तू मेरी शान्तिके लिए भी पाँच मील दूर रहने को तैयार नही है!

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३४५)से। सी० डब्ल्यू० ६६२० से भी; सौजन्य : लीलावती आसर

३६२. पत्र: कान्तिलाल गांधीको

१५ सितम्बर, १९३६

चि० कान्ति,

तेरा कार्ड आज ही मिला। मै ठीक हूँ। थोड़ी कमजोरी है, चली जायेगी।

अमतुस्सलाम तेरे लिए १५० रुपये दे गई है। मैंने तो इसे उसीके खातेमे जमा करवा दिया है। उसके पास अपनी कौडी भी कहाँसे आई? अपने भाइयोके बल पर नाचती है। भाई जितना कमाते हैं उतना खा डालते हैं। उसके पास पैसा हो तो भी तू उससे भीख क्यो माँगे? किसीको माँ बनाया तो सेवाके लिए या स्वार्थ के लिए? तेरी स्वार्थ-वृत्ति मुझे तो ठीक नही लगती। तू यह वृत्ति छोड़ दे तो अच्छा है। जब देवदास तुझे खर्च दे रहा है तो तेरा इस तरह भीख माँगते फिरना अच्छा नही है। तुझसे मैंने तो यह कहा कि तू मेहनत करके कमा और पढ़। हार क्यो मानता है? अमतुस्सलाम वहाँ जा रही है। उसने मुझे मना कर दिया था, इसलिए मैंने उससे कुछ नही कहा; लेकिन अगर तू उससे इतना कह सके तो अच्छा होगा. "अधिक विचार करने पर मुझे ऐसा लगा कि देवदासके सिवाय मुझे आपसे या किसी औरसे पैसा नही लेना चाहिए।" यह तेरे मनसे ही न उपजे तो मत कहना। अमतुस्सलामसे सख्त बात मत कहना, न उसे ताने मारना। तू अपने मनकी करते हुए भी विवेक या नम्रता मत छोडना। वह बहुत दु:खी है।

शरीर सँभालकर जितनी मेहनत करना चाहे, करना। हाथसे बनाकर खाने मे कोई मेहनत नही पडती। इसके लायक समय बचाकर, सन्तोषके योग्य भोजन करना। मुझे पत्र लिखते रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७३०४)से; सौजन्य: कान्तिलाल गांधी

३६३. पत्र: जेठालाल जी० सम्पतको

१५ सितम्बर, १९३६

चि० जेठालाल,

मुझे कुछ ऐसा खयाल है कि मै तुम्हारे ७ अगस्तके पत्रकी पहुँच तो लिखवा ही चुका हूँ। अस्पतालसे छुट्टी पाकर यहाँ आ गया हूँ। कमजोरी लगती है। कुछ लिखता हूँ, कुछ लिखवा देता हूँ। इन दिनो नानावटी यहाँ आ गये है, इसलिए लिखवाना आसान भी हो गया है। बीमारीके बारेमे तो 'हरिजन', 'हरिजन-सेवक' या 'हरिजनबन्धु'[1] मे देख ही लोगे, इसलिए मै अधिक नही लिखूंगा। तुम्हारे पत्रसे औजारोके

१. देखिए पृ० ३२०-२२।

वारेमे हिम्मत वंधी है। मेरे सामने वडा सवाल यह है कि तुम्हारे पाससे भारी औजार मँगानेमे उनका किराया ही कीमतसे अधिक तो नही हो जायेगा। तुम वहाँ जो कोशिश कर रहे हो, वैसी ही कुछ कोशिश मै यहाँ कर रहा हूँ। इस गाँवमें एक ही लुहार है। वह वेचारा वहुत समझदार नही है। मैंने उससे हालमे ही एक पुरानी रेतीके तीन चाकू वनवाये है। मेहनताना उसने जो माँगा सो दे दिया। किन्तु मेरा मन इसीसे नही मान सकता। मुझे लिखना कि तुम कौन-कौन-सी चीजे वेचना चाहते हो। उनकी फेहरिस्त, कीमत और वर्धातक का किराया भी लिखना। यह कहना जरूरी नही है कि तुम्हारी चीजें निकलवा सकूँगा, तो निकलवाने में मदद करूँगा। तुमने तफसीलसे लिखे पत्रकी वात कही है, वह पत्र अभीतक तो नही मिला। अव लिखना। फिलहाल तुम वहाँ कौन-कौन हो? क्या-क्या करते हो?

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९८५६)से। सौजन्य · नारायण जेठालाल सम्पत

३६४. पत्र : चन्द त्यागीको

१५ सितम्बर, १९३६

भाई चंद त्यागी,

तुम्हारा पत्र कई दिनोसे मेरे सामने पडा है लेकिन आजतक मै उसको पहूच नही सका। वलवीरके वारेमे तुमने खवर अच्छी दी है। मै उसे मेरे पास नही बुला सकता हू क्योंकि देहाती जीवन व्यतीत करने की वडी कोशीश कर रहा हू। इस देहातमें मेरे पास रहने की जगह भी नही है। न मै यहांका कुटम्व वढाना चाहता हू। मै सावरमती इत्यादि जगहमें कर सकता था, वह करने की अव न शक्ति रही है न ईच्छा रही है। देहातकी मेरी साधना परिमित कुटुम्वको रखकर ही हो सकती है। यदि जीवनदोरी आगे चलनेवाली है तो भविष्यमे क्या हो सकता है वह तो ईश्वर ही जाने। राजकिशोरी तो मुझे विलकुल भूल ही गई है न? कभी लिखती भी नही है। क्या करती है? कितना खर्च करती है?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६३३)से। सी० डब्ल्यू० ४२८१ से भी; सौजन्य : चन्द त्यागी

३६५. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

सेगांव, वर्धा
१६ सितम्बर, १९३६

चि० अमला,

तुम तो मानो मुझे बिलकुल ही छोड गई। भला क्यों? मुझे अपना सब हाल बताओ।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स, सौजन्य नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

३६६. पत्र : मीराबहनको

१६ सितम्बर, १९३६

चि० मीरा,

भोजनकी घंटी बज गई है। तुम आज बाहर मत निकलना। मैं आ रहा हूँ। तुम कल सेगांव आ जाओगी।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३६५)से, सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९८३१ से भी

३६७. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

सेगाँव, वर्धा
[१७ सितम्बर, १९३६ के पूर्व][1]

वापा,

तुम्हे लिखूं-लिखूं कर रहा था कि तभी ककलभाई तुम्हारा पत्र ले आये। ककलभाई या बलवन्तभाई से मिला तो नही हूँ। अभी मिलने योग्य परिस्थिति नही है। मिलने की जल्दी भी नही है। जो काम जमा हो गया है उसमें से थोडा-थोडा निवटा रहा हूँ। ज्वर घोडेकी गतिसे आया; शक्ति चीटीकी गतिसे आ रही है। यह ईश्वरकी शिकायत नही है, उसके इशारे वही समझे। वह शक्ति देता है तो लेगा क्यो नही?

ककलभाई और अमृतलालके वीच मेल कराने के लिए अल्मोडा क्यो जाना पड़ेगा? लाठी मारो तो पानी दो हिस्सोमे नही बँट जाता। इनमे तो मेल था ही। सवाल है कि क्या अमृतलालने अपने मनके साथ मेल साध लिया है? मुझे उसे सार्वजनिक जीवनमें फिरसे खीचने की उतावली नही है। उसका मन साफ होने की उतावली मुझे है। इसीलिए जैसे ही मैंने सुना, तुरन्त पत्र लिखा था। यदि उसका मन साफ हो जाये तो वह अल्मोडेमे नही पडा रहेगा। मै तो सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवनमे भेद नही मानता। चाहे जितना होशियार आदमी चरित्रहीन हो तो उसकी गदगीके छीटे सार्वजनिक जीवनपर तो पडते ही है। हम अगर अपनी आँखोसे यह न देख पाये तो ऐसा नही है कि छीटे उड न रहे हो। इसलिए मेरा तो दृढ अभिप्राय यह है कि जो लोग अमृतलालका भला चाहते है और सार्वजनिक जीवनकी उन्नति चाहते है उन्हे चाहिए कि वे अमृतलालको निर्दोष बन जाने दे। उसे प्रलोभनमें डालकर वापस खीचने से उसकी और सार्वजनिक प्रवृत्तिकी हानि ही होगी। मेरा ऐसा ही विश्वास है।

मुझे लगता है कि मै वालुजकरके बारेमे अपनी बात नही समझा पाया। जो रकमे मेरे नामपर चढी हुई है उनमे मैंने जो पैसा अपना बना लिया है उसमे से उसे देना है। मेरी धारणा है कि इस बातमे कौंसिलकी राय लेना जरूरी नही है। ठीक है न? किन्तु यदि मुझे ठीक याद न हो तो मेरी गलती सुधार देना। इसमें तो मुझे कोई हर्ज नही दिखता कि बात कौंसिलके सामने रखी जाये। किन्तु कौंसिल ऐसी रकमोको किस आधारपर पास कर सकती है?

१. पत्रपर दी गई प्राप्ति-तिथिके आधारपर।

रुक्मिणी पागल तो है ही। दोप-मात्र पागलपनकी निशानी है, प्रसिद्ध लोम्ब्रोसो[1] ऐसा ही कह गये है। किन्तु स्त्री कुमार्या कव कहलाती होगी? कुमार्या शब्दको ही छोड दे तो अलग वात है। मेरी सहानुभूति मलकानीकी तरफ जाती है। रुक्मिणीके प्रति जो दया-भाव मनमे आता है, वह अलग तरहका है।

क्या अमतुस्सलामको फिर वहाँ रख सकते हो? यदि वह शुभ हेतुसे वहाँ रहते हुए भी विघ्नरूप लगती हो तो मुझे वताने मे सकोच मत करना। नीलम वच गई, यह ईश्वरका अनुग्रह है। आँकड़ोकी प्रतीक्षा करूँगा। पत्र काफी लम्बा हो गया।

वापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११७०)से।

३६८. पत्र : लीलावती आसरको

१७ सितम्बर, १९३६

चि० लीलावती,

कलम न होने का वहाना खूब मिला। इसके साथ कलम भेज रहा हूँ। तू 'गीता' की किस प्रतिको अपनी कहती है सो तो मुझे नही मालूम, किन्तु जो मिली है सो तुझे भेजता हूँ। कनु कलम वनाना जानता है। तू भी सीख लेना। श्लोक तूने ठीक लिखे है, किन्तु उनका अर्थ जानती है या नही?

कागज हाथका वना काममे लाना चाहिए। कलम हाथकी वनी और कागज मिल का, यह कैसा हिसाव? तू विलकुल स्वस्थ हो जायेगी, मुझे तभी सन्तोष होगा। यदि तू दिलरुवा न वजाती हो तो नानावटीके लिए भेज देना। वजाती हो तो भेजना विलकुल जरूरी नही है।

मैंने जो सुझाव भेजे थे[2], उनकी एक प्रति वनाकर मुझे भेज देना।

वापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९५८०)से। सी० डब्ल्यू० ६५५२ से भी; सौजन्य लीलावती आसर

१. इटलीके चिकित्सक और अपराधविद् ऐसरे लोम्ब्रोसो।
२. देखिए "पत्रका अंश", १२-९-१९३६।

३६९. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव
१८ सितम्बर, १९३६

मूर्खा रानी,

सिर्फ दो-एक वाक्य ही लिखूंगा। तुम्हारे भेजे सेब सबने स्वादसे खाये। यह और भेजने का इशारा नही है।

तुमने लडकियोका[1] जो ध्यान रखा, उसके लिए खान साहब बहुत कृतज्ञ है। वे चाहते है, तुम प्रयत्नपूर्वक आगे बढकर उनको मित्र बना लो और उनका सही मार्गदर्शन करो। यह रहा उनका पत्र।

मुझे खुशी है कि अब शम्मी तुम्हारा इलाज कर रहे है। अब तुम जल्दी ही ठीक हो जाओगी। भली मूर्खाकी तरह खुशीसे उनकी आज्ञाका पालन करो।

ढेरो प्यार।

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५९०)से; सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ६३९९ से भी

३७०. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

[१८ सितम्बर, १९३६][2]

चि० कान्ति,

तेरा पत्र मुझे अच्छा लगा। शुक्रवारकी सुबहके दस तो [कब-के] बज गये। इस समय चार बजे है। अब रातके दस बजेतक यमराजकी प्रतीक्षा करूंगा।[3] यह तो तू जानता ही है कि मैं उनके स्वागतको तैयार बैठा हूँ।

फोटोग्राफरके ५० रुपये मै अवश्य दे दूंगा। मै ये रुपये कहाँ भेजूं?

अन्य चीजोके बारेमे तूने जो लिखा है उसे मै समझ गया हूँ। तेरे चले जाने[4] से मुझे चाहे कितना भी दुःख हुआ हो, किन्तु मैंने तुझसे आशा तो छोडी ही नही है।

१. डॉ० खान साहबकी लड़की मेहरताज और भतीजी मरियम।

२. मनु और कस्तूरबा के दिल्ली जाने के उल्लेखके आधारपर। वे १९ सितम्बरको दिल्ली गईं थीं; देखिए "पत्र: अमृतकौरको", २०-९-१९३६। इसके अलावा, पत्र शुक्रवार को लिखा गया था और १८ सितम्बर शुक्रवार को ही पड़ा था।

३. देखिए "पत्र: अमृतकौरको", २१-९-१९३६।

४. डॉक्टरी पढने लिए; देखिए "पत्र: कान्तिलाल गांधीको", ७-९-१९३६।

मैंने तेरा पत्र फाड़ दिया है।

अमतुस्सलामके बारेमें तू अवश्य अधिक जानता है। यदि तू मुझे कुछ खास लिखना चाहता हो तो लिखना। पैसोंके बारेमें तो उसने मुझसे जो कहा सो मैंने लिखा था। अब तू जो कहता है उसपर मैं अक्षरशः विश्वास करता हूँ।

सरस्वतीके बारेमें मैं समझता हूँ। मुझे विश्वास है कि तू ऐसा काम नही करेगा जिससे तुझे कलक लगे। भगवान् तुझे तदनुसार शक्ति दे।

मैं तुझसे अक्सर विस्तृत पत्रोंकी आशा नही करूँगा। लेकिन हर हफ्ते एक पोस्टकार्ड तो लिखेगा न? कभी विस्तृत पत्र भी लिखना।

बा और मनु कल दिल्ली जा रही हैं।

अब डाकका वक्त हो गया है, अत इतना पर्याप्त है न?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७३८८)से, सौजन्य . कान्तिलाल गाधी

३७१. पत्र : लीलावती आसरको

रात ८-२५, १८ सितम्बर, १९३६

चि० लीलावती,

तेरे अन्तिम वाक्यसे मैं डर गया हूँ। यदि तू एक वर्ष बाद स्कूलमें भरती होना चाहे तो अभीसे भरती हो जाना अच्छा है। पढ तो कभी भी सकते हैं, किन्तु अगर सेगाँवसे निराश होकर भागे और पढने बैठ जाये तो तुझे और मुझे यह बात दु खद लगनी चाहिए। अपने मनको टटोल; मूर्खता छोड। विद्या प्राप्त करने की अपनी भूखको तृप्त कर। सेगाँवमें शुष्कता और मेरे गुस्सेके सिवाय क्या रखा है? तू इसे सहन नही कर सकेगी, ऐसा डर तो मुझे लगता ही रहता है। तेरे हितकी बात सोचने मे मेरा बहुत समय जाता है। यह बात मुझे नही खटकती। किन्तु अगर अन्तमें निराश होकर मेरा त्याग जरूरी हो जाये तो यह तेरे और मेरे विचारमें असह्य होगा। तुझे सेगाँव आना ही हो तो कब आना है, यह तेरे हाथमें है। मेरी शर्त बार-बार पढ और उल्लासके साथ उसपर अमल कर। अपने मनमें से द्वेष-भाव निकाल डाल। रोज जिसके साथ रहना पड़ता है यदि तुझे वही व्यक्ति खटकता हो तो तू मेरे साथ सुखी कैसे हो सकती है? तू यहाँ शान्त कैसे रह सकेगी? क्या यह बात समझने मे सरल नही है? सही बात करने मे कभी भी शर्म क्यो?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३४६)से। सी० डब्ल्यू० ६६२१ से भी, सौजन्य : लीलावती आसर

३७२. टिप्पणियाँ

ताराबहन मेरी चेजलीके बारेमें

विदेशसे आनेवाली प्राय' हर डाकमें मेरे पास स्व० मेरी चेजलीके सगे-सम्बन्धियो और मित्रोके पत्र आते रहते है। इनमे उनके अनेक गुणोका वर्णन रहता है। कई सज्जन उन अनेक प्रकारके उपकारोका वर्णन करते है, जो स्व० ताराबहनने उनपर किये थे। कुछ लिखते है कि उन्होने हमे फलाँ-फलाँ सहायता देनेका वचन दिया था, और कुछ ताराबहन द्वारा छोडे गये एक या अनेक वसीयतनामोका भी उल्लेख करते है। हालाँकि महादेव देसाई इन सब पत्र भेजनेवालोको अपने सीमित समयमें जितना उनसे बन पडता है तफसीलवार जानकारी देनेकी कोशिश करते है, फिर भी तमाम सम्बन्धित लोगोके लाभके लिए यह जाहिर कर देना जरूरी है कि अपनी शोचनीय मृत्युके कुछ ही समय पहले उन्होने मेरे नामपर जो वसीयतनामा लिख दिया था, वह कानूनदाँ मित्रोकी रायमे भारतीय उत्तराधिकार अधिनियमके अनुसार जायज नही मालूम होता। पर अगर यह साबित भी हो जाये कि वह जायज है, तो भी उनके सगे-सम्बन्धियो और मित्रोकी अनुमतिके बगैर उनकी सम्पत्तिका उपयोग हिन्दुस्तानी ग्रामोद्योगोके लिए करनेकी मुझे जरा भी इच्छा नही है, यद्यपि यह काम इधर उन्हे अत्यन्त प्रिय था और इसके लिए वे एक गुलामकी तरह काम करते-करते वीरोचित मृत्युकी गोदमे सदाके लिए सो गई। इस बातकी बहुत ही कम सम्भावना है कि स्व० ताराबहनकी वह सब सम्पत्ति मेरे हाथ आ जायेगी, जिसका वे अपने जीवन-कालमे किसी प्रकारका विनियोग नही कर गई है। पर अगर ऐसा हुआ तो उसे हाथ लगाने से पहले मै उन तमाम वचनो या वादोकी जाँच करूंगा जो उन्होने पश्चिममे किये, और उन्हे पूरा करनेकी कोशिश भी करूंगा। बैंकसे उनके नामपर आये हुए कई चेक मेरे पास पड़े हुए है, जिनका भुगतान भी नही हुआ है। उनके परिवारके बहन-भाइयोको, जिनकी सख्या, मै देखता हूँ, बहुत बडी है, मेरी यह सलाह है कि उनमें जो सबसे नजदीकी हो, वे राज्यसे इस सम्बन्धका एक कानूनी अधिकार-पत्र लेकर मेरे पास भेजे ताकि मै और कुमारी मेरी बार हमारे पास रखी हुई ताराबहनकी चीजे उन्हे सौप सके। मेरे पास तो अनभुने चेक पडे हुए है और मेरी बारके पास उनके छोटे-मोटे कुछ जेवर है। हिन्दुस्तानमे आने पर अपनी जरूरतें उन्होने इतनी कम कर दी थी कि शायद ही ऐसी कोई चीज बची हो, जिसकी कोई कीमत आ सके। अपने जीवन-कालमे उन्हे जो-कुछ मिला, उन्होने ग्राम-सेवाके लिए मुझे दे डाला। उस स्वर्गीय उपकारशीला देवीसे सम्बन्ध रखनेवाली बातोके विषयमे मेरे पास तो इतनी ही जानकारी है। आशा है, यह तमाम सम्बन्धित-जनोके लिए काफी होगी।

तिलका ताड़

अम्बेडकर-मुंजे योजनापर मैंने जो रुख प्रकट किया है[1] उसके बारेमें अफसोस जाहिर करते हुए मेरे दो मित्रोंने मुझे पत्र लिखा है। उनकी दलील संक्षेपमें यह है:

> यह तो निश्चय ही आप तिलका ताड़ बना रहे हैं। गुरु नानक वैसे ही सुधारक हिन्दू थे जैसे अन्य हिन्दू-पंथोंके संस्थापक। सिख तो सब तरह और सब मानोंमें हिन्दू ही हैं। उनकी संस्कृति भी हिन्दुओंकी-सी है। हरिजन अगर अपनेको सिख कहलाना चाहें, तो इसे आप धर्म-परिवर्तन क्यों कहते हैं।

ऐसा मालूम पड़ता है कि ऐसी राय रखनेवाले ये आपत्तिकर्त्ता अकेले ही हैं। अपनी इच्छासे चौदह बरस बाहर रहने के बाद जब मैं १९१५ के उपरान्त किसी समय वापस हिन्दुस्तान आया, तो किसी कामसे मुझे पंजाब जाने का इत्तिफाक हुआ था। वहाँ सिखोंकी एक सभामें भाषण करते हुए मैंने कहा कि मेरी रायमें वे हिन्दू ही हैं और हिन्दुओं के एक सुधारक पथमें ही शामिल हैं। इसपर एक प्रतिष्ठित सिख मित्रने मुझे एक तरफ ले जाकर कहा कि सिखोंको हिन्दू कहकर आपने अनजाने ही उन्हें चोट पहुँचाई है। इस चेतावनीके बादसे मैंने उन्हें कभी हिन्दू नहीं कहा, क्योंकि मेरे या अन्य कुछ व्यक्तियोंके मानने से कुछ नहीं होता। असल बात तो यह है कि वे खुद अपनेको क्या मानते हैं। सिखोंको पृथक् निर्वाचन प्राप्त है। डॉ० अम्बेडकर भी सिखोंको हिन्दू नहीं मानते। वह तो निश्चित रूपसे धर्म-परिवर्तन चाहते हैं। सिख अगर हिन्दुओंका ही एक सम्प्रदाय हो, तो फिर [पूना] समझौतेमें किसी परिवर्तनकी कोई जरूरत ही नहीं है; क्योंकि हिन्दू तो अपना सम्प्रदाय बदलकर भी हिन्दू बना रह सकता है। इसके अलावा सामूहिक रूपसे सब हरिजनोंके फिरकेको न तो डॉ० अम्बेडकर और न रावबहादुर राजा या दूसरा कोई व्यक्ति ही एकदम कलमके एक झटकेसे बदल सकता है। धर्म तो असलमें वैयक्तिक विषय है, जिसका निर्णय हरएकको खुद ही करना होता है। अतएव ऐसा कोई भी व्यक्ति, जो धर्मको पवित्र मानता है, डॉ० अम्बेडकर और मुंजे द्वारा प्रस्तुत की गई योजनामें साझीदार नहीं हो सकता।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-९-१९३६

१. देखिए "एक खतरनाक योजना", २२-८-१९३६।

३७३. मेरी बीमारी

अभी हालमें मुझे जो मलेरिया बुखार आया था, उसके बारेमें कुछ कहकर पाठकोंका समय लेने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं थी। पर इस सम्बन्धमें मैंने प्रार्थनापूर्ण हृदयसे एक निश्चय किया है, जिसे पूरा करने की शक्ति वही सर्वशक्तिमान् देगा। इस निश्चयमें कुछ मित्रोंका भी सम्बन्ध आता है, इसलिए यहाँ उसके विषयमें मुझे कुछ लिखना पड़ रहा है।

मैं तो प्राकृतिक चिकित्साका पक्का हिमायती हूँ। इसीलिए वर्धाके अस्पतालमें दाखिल होना मेरी इच्छा और स्वभावके बिलकुल विपरीत था। अगर यह सब मुझ पर छोड़ दिया जाता तो जहाँतक बनता, मैं प्राकृतिक चिकित्साके अनुसार अपना इलाज कर भी लेता। पर अगर मैं ऐसा करता, तो कुछ मित्रोंके दिलको, जो मेरे आसपास थे, चोट पहुँचे बगैर न रहती। मैं जानता था कि इसमें जमनालालजी के सरपर भी कम जिम्मेवारी नहीं थी, क्योंकि मैं उनके घर अर्थात् वर्धाके नजदीक एक देहातमें आकर बसा हूँ, हालाँकि इस गाँवके चुनावमें तो उनका जरा भी हाथ नहीं था। इस गाँवका चुनाव तो मीराबहनने किया था, और उसको इसलिए चुना गया था कि वहाँ ज्यादातर बस्ती हरिजनोंकी है। दूसरे, वह वर्धासे न तो बहुत दूर है और न ऐसा नजदीक ही। जब मीराबहन सेगाँवमें बसने के लिए गई, तब मैंने एक घोषणा की थी। उसीका पालन करने के लिए मुझे सेगाँव आना पड़ा। जमनालालजी कुछ हदतक और सरदार तो पूरी तरह मेरे अभी किसी गाँवमें जाकर बैठने के खिलाफ थे। फिर, इस सेगाँवमें जाने के तो सभी विरोधी थे। पर मैंने कह दिया कि मैं तो सेगाँवमें जाकर बसने के लिए अपनी इस घोषणाके अनुसार वचनबद्ध हूँ और इन सारे विरोधको किसी तरह हटाकर मैं सेगाँव चला आया। निःसन्देह, वह वचन तो मुझे प्रिय था ही, क्योंकि मेरा हृदय तो गाँवोंमें ही है। मेरी दिली इच्छा तो यह थी कि वहाँ जानेपर मैं पूरे एक सालतक कहीं बाहर न जाऊँ। सब ऋतुओंमें वहीं रहूँ। पर सेगाँवमें जाकर बसने का निश्चय करने के पहलेसे ही दुर्भाग्यवश दो-एक कामोंका भार मेरे सिरपर है। उसके सिलसिलेमें ही वर्ष खत्म होने से पहले ही मुझे अपना काम छोड़कर बाहर जाना पड़ेगा। इसलिए मित्रोंसे मेरा अनुरोध है कि अब इस अवधिमें वे और अधिक बाधा न डालें। मेरे लिए तो यह एक साधना है। गाँवोंकी समस्या मेरी नजरमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है। उसे आगे टालना अपने अस्तित्वको खतरेमें डालने के समान ही है। हिन्दुस्तान शहरोंमें नहीं, गाँवोंमें बसता है। इस ग्रामोद्योग-आन्दोलनका मार्गदर्शक और संचालक मैं माना जाता हूँ, जिसे बम्बईमें कांग्रेसने स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान

किया था।[1] मैं ऐसे किसी आन्दोलनका मार्ग-दर्शन नहीं कर सकता जिसमें मैं खुद सीधा जी-जानसे नहीं कूद पड़ूँ। मगनवाड़ी गाँव तो है, लेकिन बडा गांव है, जो मुझे शिक्षा और प्रेरणा नहीं दे सकता। मेरी तो एक ऐसे गाँवमें बसने की इच्छा थी जिसमे ग्राम-जीवनकी सर्वसामान्य कठिनाइयाँ और समस्याएँ मौजूद हों। सेगाँव ऐसा ही एक गाँव है।

तो, अगर अपनी शिक्षा और प्रत्यक्ष अनुभव पाने के अवसरको छोड़कर मेरे लिए कही बाहर जाना उचित नही, तो फिर स्वास्थ्यके लिए भी मुझे कही नही जाना चाहिए। दूसरे गाँवोकी तरह सेगाँवको भी मलेरिया और देहातकी दूसरी बीमारियोका पूरा हिस्सा मिला है। उसकी आबादी ६०० है। पर शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति बचा हो जो इस मौसममे मलेरिया या पेचिशका शिकार न हुआ हो। मीराबहन और मैंने अबतक कोई २०० मरीजोका इलाज किया होगा। इनमें से अधिकांश मलेरिया और पेचिशके ही मरीज थे। आहारमें कुछ साधारण हेर-फेरके साथ कुछ मामूली दवाइयोसे हमारा अच्छी तरह काम चला। गाँवके लोग बडे-बडे अस्पतालोमें नही जाते। वे तो मामूली दवाखानोमे भी नही जा सकते। वे या तो गाँवके नीमहकीमो से इलाज करवाते हैं, या फिर झाड-फूँकका सहारा लेते है और इसी तरह अपनी जिन्दगी काटते है। मुझे कुछ मामूली रोगोका कामचलाऊ ज्ञान है। हालाँकि जब-जब मुझे जरूरत हुई, हमेशा डॉक्टर मित्र मेरी सहायता करने के लिए उत्सुक रहते है, फिर भी मैंने कई बार उनकी सहायताके बगैर अपना इलाज किया है। अगर मैं 'महात्मा' न कहा जाता, तो शायद मेरी इस बीमारीकी खबर भी किसीको न मिलती। बुखार मुझे बहुत कम आता है। पिछली बार जब मुझे बुखार आया, जिसे लगभग १२ वर्ष हो गये, उस समय भी मैंने खुद ही अपना इलाज किया था। इसलिए अगर कही मुझे फिर मलेरिया या और कोई तकलीफ हुई तो स्वास्थ्य-सुधारके लिए अब तो मुझे सेगाँवसे बाहर और भी नही जाना चाहिए। अगर डॉक्टर या वैद्यकी सहायताकी वैसी जरूरत आ ही पडे, तो मुझे उतने से ही सन्तोष मान लेना चाहिए, जो बगैर शोर-गुलके और बिना सेगाँवसे बाहर गये मिल जाये। मैं भाग्यवादी हूँ और मानता हूँ कि मौतकी घड़ी कोई टाल नही सकता। अच्छीसे-अच्छी डॉक्टरी सहायता भी बडे-बड़े बादशाहो और चक्रवर्ती सम्राटोको कालके पजोसे नही बचा सकी है। फिर मैं तो गाँवोका एक विनम्र सेवक बनने का प्रयास कर रहा हूँ। मुझे तो ऐसे ही इलाजसे सन्तोष मान लेना चाहिए जो मामूली देहातियोको प्राप्त हो सकता है। अगर मैं स्वास्थ्य-सुधारके लिए कही बाहर जाऊँ तो मैं यह देखने का मानो एक अवसर गँवा देता हूँ कि जब तन्दुरुस्ती खतरेमे होती है, तब गाँवोके लोग क्या करते हैं।

मुझे हालमे जो मलेरिया हुआ, उसने मुझे इस निश्चयपर जल्दी पहुँचा दिया कि मैं इस बातका गहराईसे अध्ययन करूँ कि सेगाँवसे यह मलेरिया किस तरह

१. अक्तूबर, १९३४ में; देखिए खण्ड ५९।

जल्दी भगाया जा सकता है। मेरे आसपास तमाम खेतोंमें पानी भरा रहता है। फसलें सड़ रही हैं। आप जमीनपर चलना चाहें तो घुटने-घुटनेतक कीचड़ मिलेगा। सौभाग्यसे मेरी सुविधाके लिए जमनालालजी के खेतोंमें से एक पक्का रास्ता बना लिया गया है, जिसकी वजहसे किसी तरह आदमी वर्धासे सेगाँव आ-जा सकता है। इस रास्तेके कारण मनुष्य और पशुओंको भी काफी आराम हो गया है। कुछ मित्रोंकी सलाह मानकर अगर मैं बरसातके बाद सेगाँव जाता, तो पिछले दो महीनोंकी भारी वर्षाका यह अनमोल अनुभव मुझे कहाँ मिल सकता था? अबतक मैंने जो-कुछ देखा है, उससे तो मेरा यह निश्चय पक्का हो गया कि मुझे कभी सेगाँव नही छोड़ना चाहिए, चाहे प्राण भी क्यो न खतरेमें हो। मित्रोंसे भी मेरा यही अनुरोध है कि वे मेरे इस निश्चयके पालनमें मेरी सहायता ही करे और मेरे साथ परमात्मासे वे भी प्रार्थना करे कि वह खुद मुझे भी इस निश्चयपर डटे रहने का बल दे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १९-९-१९३६

३७४. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव
२० सितम्बर, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

मेरी अहिंसाको स्वय पूर्णत. अपनाये बिना ही यदि तुम उसका पक्ष-प्रतिपादन करती रहोगी तो इस बातका भय है कि ताईकी आँखोमे तुम्हारी साख खत्म हो जायेगी। परीक्षाकी घडी उपस्थित होनेपर हमारे अन्दरका हिंस्र पशु हमारे ऊपर हावी हो जायेगा, इस बातसे हमारी स्थिति मे कोई अन्तर नही आता, बशर्ते कि हमारे अन्दरका हिंस्र पशु जिस समय जगा हुआ हो उस समय भी हमें इस बातका ज्ञान रहे कि हम गलत कार्य कर रहे है। तथ्य तो यह है कि शंका और सन्देहके इस युगमें हमें अपनी स्थितिके ऊपर पूरा भरोसा कभी नही रहता। हमे निरुत्तर कर देनेवाला कोई आकर्षक तर्क हमें उलझनमे तो डाल देता है परन्तु उससे अपनी बुद्धि पर हमे जो अहकार है, वह कम नही होता। अहिंसा, सन्तति-निग्रह आदिके प्रश्न चिरन्तन प्रश्न हैं। इसलिए अन्तत' तुम्हारे लिए यही अच्छा होगा कि मेरे विचारोके बचावमें कुछ कहने का कभी प्रयास न करो। यह तो मुझे पता है कि जहाँतक तुम्हारे अपने विचारोका सवाल है, तुम किसीके भी सामने उनका अच्छी तरह पक्ष-समर्थन कर सकती हो। मैं नही चाहता कि मेरे साहचर्यके कारण लोगोकी दृष्टिमे तुम्हारी असाधारण योग्यताका मूल्य घट जाये। बल्कि मैं तो यह

चाहूँगा कि कहा जाये कि वर्षा आना आरम्भ करने के बाद भी तुम्हारे शरीर या बुद्धिमें कोई ह्रास नहीं हुआ है।

मुझे प्रसन्नता है कि शम्मी अब तुम्हारे एक्जीमाका इलाज कर रहे हैं। तुम्हें अपने पाँवोंके विषयमें दुःख नहीं करना चाहिए। क्या यह अच्छा नहीं कि अन्दरका विकार अब बाहर निकल रहा है? ध्यान रहे कि इलाज ऐसा हो जो रोगको दबाये नहीं बल्कि मिटा दे।

आशा है, पृष्ठ ४ को पढने में तुम्हें कोई कठिनाई नहीं होगी। यदि तुम उसको इसीका अंग समझोगी तो कोई कठिनाई नहीं होगी। तुम मेरा तात्पर्य समझ गई होगी।

निकटतम सम्बन्धियोंमें भी कुछ लोग निर्लज्ज हो सकते हैं। मैं भी उसी श्रेणीका हूँ। इसलिए जबतक मैं मँगवाऊँ नहीं, थर्मस मत भेजना। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे काफी गर्म पेय मिल जाते हैं। इस विषयमें तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

तुमसे मैं पूर्णतः सहमत हूँ कि स्त्रियाँ पुरुषोंकी अपेक्षा अच्छी परिचारिकाएँ होती हैं और छोटी-छोटी बातोंका ज्यादा ध्यान रखती हैं। परन्तु आधुनिकाओंके लिए भी यह बात लागू होती है या नहीं, यह तो तुम मुझसे अधिक अधिकारसे कह सकती हो।

तुम्हारे इधर हालके पत्रोंसे मुझे कुछ चिन्ता होती है। तुम फिरसे अधिक श्रम करने लगी हो। जब भी तुम्हें शारीरिक या मानसिक थकान हो, उस समय 'ना' कहना सीखो।

बा और मनु कल दिल्ली चली गईं। लीलावती अभी भी मगनवाडीमें है। आज मीराको बुखार आने की पारी तो थी परन्तु इस समय तक नहीं आया है।

खान साहब और मैंने तुम्हारे भेजे सेब बड़े स्वादसे खाये।

अच्छा, आज अब बस।

सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५९१) से, सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६४०० से भी

३७५. पत्र : महादेव देसाईको

२० सितम्बर, १९३६

चि० महादेव,

लिफाफे भेजना।

अमतुस्सलामके बारेमे डॉ० शाहसे पूछना कि वह कैसी है, क्या करती है, क्या अच्छी हो जायेगी, आदि।

क्या तुमने बम्बईसे आते रहनेवाले पार्सलमे कुछ खट्टे नीबू भी रखने के लिए लिख दिया था? अभीतक तो नही आये।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' मे प्रकाशित बा का पत्र पढा। इसमे बा की वेदना तो है ही, देवदासकी वेदना भी है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४८८) से।

३७६. पत्र : अमतुस्सलामको

२० सितम्बर, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

कैसी मूर्ख है! तेरे खत कोई पढता नही है। और पढे तो तुझे उसमे शरमाने की क्या बात है? तेरा एक्सप्रेस खत देरसे मिला, इसलिए तेरा काम सफल नही हुआ, ऐसा ही माना जायेगा न? तेरे अक्षर पहचानकर ही उसे किसीने पढा नही। लेकिन तेरी मूर्खता दिखाने के लिए महादेवको मैंने पढकर सुनाया और हम दोनो हँसे।

तू गुजराती या हिन्दीमे क्यो लिखती है? जरूर उर्दूमे लिख। तेरे अक्षर साफ है। मुझे पढने मे जरा देर लगेगी, उसकी फिक्र नही।

कान्तिके लिए तू पैसे दे और वह बात मै उससे न कहूँ, यह मै कैसे समझ सकता हूँ? तूने अपने साथ इस बारेमे चर्चा करने की मनाही की थी। उसे मैंने माना। कान्तिको जरूर मैंने फटकारा। तब कान्तिने लिखा कि तेरी माँग अभी की न थी। बाकी तो तू अपने-आप दुःखी हुआ करेगी तो मै क्या करूँगा?

ऑपरेशनका जो तय हो वह बताना।

सान्ताक्रुज पो० आ० का खत मिला? अब तो खतकी शिकायत नहीं है न? जरा तो सयानी बन। जरा तो हंस। तू अपने-आप जो दुःखी होती है, इसमें तेरी कोई खूबी जाहिर नहीं होती।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४८)से।

३७७. पत्र : घनश्यामदास विड़लाको

२० सितम्बर, १९३६

भाई घनश्यामदास,

परमेश्वरी, पारनेरकर, सरयूप्रसाद, दिनकर और धर्माधिकारीको तीन दिन दिये। पेट भरके बाते की। सबके अभिप्राय भिन्न हैं। पारनेरकर डेरोका कब्जा लेने के लिये तैयार नहीं है। परमेश्वरीके १६ सालका प्रयोग मिटा देना अच्छा नहीं लगता है। पूर्ण निर्णय मैं नहीं कर सका हूं क्योंकि इस कामको खतम करने मे दो-तीन मास तो चले ही जायेंगे। मेरा अभिप्राय है कि परमेश्वरीको और रु० २००० डीसेम्बर ३१ के खर्चके लिए दिये जाये। फसल बोने की कुछ बात है सो तो बोने का मैंने कह ही दिया है। जैसे रु० ५०० दिये है ऐसे ही रु० २००० उसको दिये जाय और अंत जो कुछ भी हो रु० २५०० काम पर फर्स्ट चारज रहे। इतनेमें हमारे कही भी मिलकर अंतीम निर्णय कर लेना चाहिये। अकतुबर २५को[1] तो मुझे बनारस जाना ही होगा। जमनालाल भी वही होंगे। परमेश्वरीको मैंने यह भी कहा है कि वह गवरमेंट एक्स-पर्टका अभिप्राय लेवे।

बापूके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० ८०२३ से; सौजन्य : घनश्यामदास विड़ला

१. भारत माता मन्दिरके उद्घाटन के लिए।

३७८. पत्र : जी० एस० एन० आचार्यको

[२१ सितम्बर, १९३६ के पूर्व][1]

मुझे बिलकुल ज्ञान नही था कि आन्ध्रदेशमे हिन्दी-प्रचारके विरुद्ध कोई आन्दोलन है। परन्तु मै भी भिन्न-भिन्न प्रान्तोकी समृद्ध भाषाओको स्थान-च्युत करने के प्रयासका विरोध करूँगा। ऐसा कोई उद्देश्य नही कि हिन्दी उनका स्थान ग्रहण करे, बल्कि उद्देश्य यह है कि अन्तर्प्रान्तीय सम्पर्कके माध्यमके रूपमे हिन्दी उनकी पूरक बने। अत. हिन्दीका प्रचार प्रान्तीय भाषाओके विकासमे बाधक नही होगा, प्रत्युत उन्हे अधिक समृद्ध करेगा।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २२-९-१९३६

३७९. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
२१ सितम्बर, १९३६

मूर्खा रानी,

तुम्हारा एक्जीमा मिटना ही चाहिए। परन्तु कैसे, यह मुझे पता नही। क्या शम्मी इस बातका समर्थन करेगे कि जिस भागपर एक्जीमा है वहाँ पहले हलकी भापका सेक दिया जाये, फिर बर्फकी पट्टी रखी जाये? यदि उचित समझो तो इसकी चर्चा उनसे करके देखो। फिर भी तुम्हे परेशान नही होना चाहिए, क्योकि यह तो एक चर्म-रोग है। अगर इसपर सोचना छोड दोगी तो यह रोग ज्यादा जल्दी ठीक हो जायेगा। मेरा कितना मन करता है कि मै इस समय तुम्हारे पास होता, पर वह तो असम्भव है।

फील्डेनसे[2] मेरा अभिवादन कहना और मेरी ओरसे बताना कि अपने स्वास्थ्यको खतरेमे डालकर वे जितना काम कर रहे है उसका कोई औचित्य नही है। उन्हे छुट्टी लेकर अपना स्वास्थ्य शीघ्र सुधार लेना चाहिए। और कडे मलेरियाका असर तो बडा बुरा बताया जाता है।

१. जिस रिपोर्ट में यह पत्र दिया गया है, वह दिनांक "२१ सितम्बर, १९३६" के अन्तर्गत छपी थी।

२. लॉयनेल फील्डेन, ऑल इंडिया रेडियोके प्रथम महानिदेशक।

पता नही तुम्हे महादेवने यह गप्प बताई या नही कि पिछले शुक्रवारको सुबह १० बजे हृदय-रोगसे मेरी मृत्यु होनी थी।[1] यह सूचना किसी विद्वान् पुरुषने बड़े गम्भीर भावसे जमनालालजी को दी थी, जिन्होंने मुझे सब-कुछ बताया। उन्होंने इस सूचनाको हँसीमे उडाने की कोशिश तो की, परन्तु बेचारे डॉ० महोदयको यहाँ रात बिताने को भेजे बिना न रह सके। डॉ० महोदय अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न करने के गौरव से तो वंचित रह गये परन्तु उनकी उपस्थिति बहुत काम आई, क्योंकि उस दिन सयोग से मीराको खूब तेज बुखार था।

आशा है, मेहमानोके आगमनसे तुम्हारे कमजोर शरीरपर बहुत भार नही पडा होगा। मै चाहता हूँ कि तुम सर्दीके मौसममे कही छिपकर रह सकती। शिमलासे तो और कोई भी पहाड़ अच्छा रहेगा। एक बार महाबलेश्वर या ऊटी आजमाना क्या असम्भव है?

सप्रेम,

डाकू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५९२) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६४०१ से भी

३८०. पत्र : भूलाभाई झ० देसाईको

२१ सितम्बर, १९३६

भाईश्री भूलाभाई,

ससदीय चुनावका पूरा भार उठाये — पैसेका और कामका भी। आप खुद तो अधिकसे-अधिक पैसा देंगे ही, साथ ही दूसरोंसे भी दिलवायेंगे। यह काम मुख्य रूपसे आपका ही है। बादमे दूसरोका है।

धीरू और मधुरी मजेमे होंगे। दोनोको आशीर्वाद।

बापूके वन्देमातरम्

मूल गुजरातीसे : भूलाभाई देसाई पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. देखिए "पत्र : कान्तिलाल गांधीको", १८-९-१९३६।

३८१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२१ सितम्बर, १९३६

भाई घनश्यामदास,

मेरा अभिप्राय दिन प्रतिदिन दृढ होता जाता है कि सब प्रातो को हरिजन सेवा के बारे में अपने २ प्रातो मे आवश्यक धन इकट्ठा करना चाहीए। मध्यवर्ती केन्द्रसे पैसे जाय और प्रांतो का काम चले वह काम चिरस्थायी कभी नही हो सकता है और उससे हमको सवर्ण हिंदु दिल की परिस्थिति का भी पूरा ख्या[ल] नही मिलेगा। मजबूर होकर हमारे कामको कम करना पडे उससे अच्छा यह होगा कि हम अपनी मर्यादा को पहचान ले।

इसका सार यह होता है कि आज ही सब प्रात अपना बजेट उपरोक्त दृष्टि से देवे और उसे देखकर हम प्रत्येक को जो सहाय एक-दो वर्षके लिये दे सके सो देवे। मैं हमारे कार्य को सिर्फ धार्मिक दृष्टिसे देखता हू। इसलिए हमारे कार्य का विस्तार धार्मिक भावना के त्यागी सतके मिलने पर निर्भर रहेगा। धन उनके पीछे २ चलेगा। धनके पीछे वे नही आवेगे। यदि यह बात हमारी काउसिलके सामने स्पष्ट नही हुई है तो दुर्भाग्यकी बात है।

इस बातका आखरी फैसला करने के लिये अगर काउसिलकी बैठक वर्धा रखना आवश्यक समझा जाये तो रखी जाये।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ८०२२)से; सौजन्य : घनश्यामदास बिडला

३८२. पत्र : जोहरा अन्सारीको

२१ सितम्बर, १९३६

प्यारी बेटी जोहरा,

तुम्हारे निकाह[1] पर मैं तो नहीं आ सकता हूँ लेकिन मेरी रूह तो तुम्हारे साथ होगी ही। तुम दोनोंके लिए मेरी दुआएँ उस रोज मिलेंगी। खुदा तुम दोनोंको उमर दराज करे और दोनोंको खुश रखे।

बापूकी दुआ

महात्मा, भाग ४, पृ० ११२-१३ के बीच प्रकाशित उर्दूकी प्रतिकृतिसे

३८३. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

सेगाँव, वर्धा
२२ सितम्बर, १९३६

चि० अमला,

मुझे खुशी है कि तुमने गुजराती और हिन्दीका अभ्यास चालू रखा है। भला तुम्हें यह क्यों लगा कि मुझे अब तुम्हारे हिताहितमें कोई रुचि नहीं रही? यह भी खुशीकी बात है कि तुम अब कुछ बड़े मकानमें हो। तुम्हें अपनी बीमारीसे पिंड छुड़ाना ही है। तुम्हारी माँ के आनेमें अड़चनें पड़ रही हैं, यह बड़े दुःखकी बात है। खैर, हम आशा रखें कि अन्ततः वे आ पायेंगी।

स्नेह।

बापूके आशीर्वाद

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स, सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

१. २५ सितम्बरको शौकतसे। देखिए "पत्र : अमतुस्सलामको", २७-९-१९३६।

३८४. पत्र : अमृतकौरको

२२ सितम्बर, १९३६

मूर्खा रानी,

एक ही दिन एकके-बाद-एक तुम्हारे दो पत्र आये। मुझे पता है, मेरे पत्रोसे तुम्हे सुख मिलता है, इसलिए यथासम्भव शीघ्र लिखता रहता हूँ।

मेरी बडी इच्छा है कि दिसम्बर और उसके उपरान्त तुम्हे अपनी देखरेखमे रखूँ, परन्तु पहले तुम्हारा एक्जीमा ठीक हो जाना चाहिए। सरदार वल्लभभाई वहाँ २४ तारीखको पहुँचेगे। मैने उनसे कहा है कि तुम्हे देशमुखको[1] दिखला दे। वे सब रोगोकी अच्छी जानकारी रखते है। शायद वे सही उपचार बता सके। विश्वास करता हूँ कि शम्मी इसका बुरा नही मानेंगे।

शम्मीको तो मै अवश्य लिखूँगा ही कि तुम्हे दिसम्बरसे फरवरीके बीच मेरे पास रहने दे। परन्तु मै अभी लिखना नही चाहता, या तुम जब कहोगी तभी लिखूँगा।

तुम्हारे पता भेजते ही मै बन्द होनेवाला चरखा भेज दूँगा। उसे खास कहकर बनवाना होगा।

अपने पत्रोके विषयमे तुम्हारा कहा मै समझ गया। तुम्हारी इच्छाका अक्षरश पालन होता है।

मुझे तो लगता है, तुम शम्मीकी इच्छानुसार मास लेना शुरू कर दो। तुम्हे औषधके रूपमे मास लेने से तो इनकार नही होगा। अभी तुम्हारे अन्दर वैसी स्वतन्त्र विवेक-बुद्धिका विकास नही हुआ है। यह विकास धीरे-धीरे और स्थिर रूपसे होने दो। यदि मैं मासका औषध-रूपमे भी धर्म मानकर प्रयोग नही करता तो तुम मान सकती हो कि यह मेरी एक जीवन-व्यापी साधना है, जिसका आरम्भ मैंने स्वतन्त्र और खूब अच्छी तरह सोच-विचारकर किया था। खैर, यदि शम्मीको पूरा भरोसा है कि वे तुम्हे ठीक कर लेगे, तो मै आग्रह करूँगा कि तुम इस मामलेमे उनकी बात मान लो। लेकिन जो असम्भव हो उसकी आशा तो उनसे भी नही रखनी चाहिए।

सप्रेम,

डाकू

श्री राजकुमारी अमृतकौर
मैनरविले
शिमला डब्ल्यू०

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७४३) से; सौजन्य. अमृतकौर। जी० एन० ६८९९ से भी

१. डॉ० पंजाबराव देशमुख।

३८५. पत्र : लीलावती आसरको

२२ सितम्बर, १९३६

चि० लीलावती,

'पृथ्वीवल्लभ'[1] पुस्तक पूरी करके तुझे भेज रहा हूँ। तू ध्यानमें किन्तु जल्दी पहुँचाना; और बादमें जो विचार तुझे सूझें वे मुझे बताना। यह पुस्तक काका साहबकी है। इसमें दाग न पड़े, निशान भी मत लगाना। इसमें जो निशान हैं वे मैंने नहीं लगाये हैं। दूसरेकी पुस्तकमें कभी निशान नहीं लगाने चाहिए।

कल तेरा पत्र और श्लोक मिले। श्लोकोंका अर्थ समझने के लिए समय न दिया जाये तो उनका अर्थ कैसे लगा सकती है? मनको थोड़ी तकलीफ तो देनी चाहिए न? यह तो मैंने तुझे कमसे-कम और सरलसे-सरल काम सौंपा है। आज भी तू स्वप्नमें दिखी, यह कितने दुःखकी बात है? कितना अच्छा होता यदि मुझे तेरी चिन्ता न करनी पड़ती।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३४७) से। सी० डब्ल्यू० ६६२२ से भी, सौजन्य लीलावती आसर

३८६. पत्र : जयन्ती एन० पारेखको

२२ सितम्बर, १९३६

चि० जयन्ती,[2]

तेरा पत्र पढ़ने लायक समय भी आज ही मिल सका। उसे पढ़ने के तुरन्त बाद कातते हुए यह जवाब लिखवा रहा हूँ। तूने पत्र अपने जन्म-दिवसपर लिखा था। तू दीर्घायु हो और ऐसा काम कर कि जिससे पूर्वजों और देशका नाम उज्ज्वल हो। टुकड़ीके बारेमें तेरा तर्क समझ गया, वह ठीक है। किन्तु टुकड़ीको कभी भी भंग नहीं किया गया। जो इसमें विश्वास करते हैं उनके लिए तो वह आज भी मौजूद है। किन्तु मुझे यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि ऐसा माननेवाले लोग बहुत थोड़े हैं। तू अब मुक्ति माँगता है, सो मैं तुझे दे रहा हूँ। यों इसके पहले अगर मुझे फुरसत मिले तो मैं थोड़ी बातचीत कर लेता। किन्तु यह केवल मेरे मनके सन्तोषके

१. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीका गुजराती उपन्यास।
२. एक आश्रमवासी, जो बादमें साम्यवादी हो गये थे।

लिए है। कई बार यह सन्तोष मुझे छोडना पड़ा है। इस बार भी ऐसा ही किये लेता हूँ। तेरी अन्तरात्मा जो-कुछ कहे, अवश्य तू वही करना। तेरी उन्नति इसी बातमे है। इतना ही याद रखना चाहिए कि अन्तरात्मा जो-कुछ कह रही है, उसे भली भाँति समझ लिया जाये। खूनी आदमी अन्तरात्माकी आवाज सुनकर खून करता है, इसी तरह व्यभिचारी व्यभिचार करता है और चोर चोरी करता है, किन्तु हम ऐसी प्रेरणाको आत्माका अन्तर्नाद नही कह सकते। अनुभवी लोगोने इसकी यह मर्यादा बाँध दी है कि अन्तर्नादका आश्रय वही लोग ले सकते है जिन्होंने उससे सुनने की शक्ति प्राप्त कर ली है। प्राय इस बातको स्पष्ट रूपसे समझा नही जाता और इसलिए धर्मके नामपर प्राय लूटपाट की जाती है। किन्तु तुझे तो यह बात विस्तारसे समझाना जरूरी नही है। मुझे बीच-बीचमे लिखते रहना। मेरा पत्र-व्यवहार तो बहुत-से समाजवादियोके साथ होता रहता है। गुजरातके समाजवादी बन्धुओके साथ मेरा पत्र-व्यवहार नही है। यदि मै अपनी ओरसे इस प्रकारके पत्र-व्यवहारके लिए पहल करने चलूँ तो मेरी धज्जियाँ उड जाये। जो मुझे लिखते है मै उन्हे उत्तर दे देता हूँ। आजकल तो मै इस कामको भी सक्षिप्त बना रहा हूँ। कारण यह है कि फिलहाल मेरी वृत्ति सेगाँवमे डट जाने और उसीमें डूब जाने की है। मेरा यह विचार पूरी तरहसे सफल न हो तो भी मै जितना कर सकता हूँ उतना तो मुझे करना ही चाहिए न? और मै वैसा कर रहा हूँ। इसलिए थोडा-बहुत पत्र-व्यवहार इस कारण बन्द हो गया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२६३) से।

३८७. पत्र: नारणदास गांधीको

सेगाँव, वर्धा
२३ सितम्बर, १९३६

चि० नारणदास,

मै कोशिश तो कर रहा हूँ कि किसी-न-किसीको भेज सकूँ। सरहदी गाधी तो कही नही भेजे जा सकते। इसलिए तुम्हारी कठिनाई समझ पा रहा हूँ।

तुम जो नाम सुझाना चाहो, सो तो सुझाते ही रहना। सोराबजी ने कितना पैसा भेजा था, यह बहीमें क्यो नही मिलता? डर्बनसे तकाजा आता ही रहता है। शायद छगनलाल [गाधी] को मालूम है। शायद छगनलाल जोशीको भी मालूम है। बही तो है ही। कोई भी उसमें छानबीन करके जानकारी पा सकता है। हमारे पास बहियाँ है ही कितनी? इसमे क्या मुश्किल है?

इसके साथ जयसुखलालका पत्र भेज रहा हूँ। उसमे छगनलाल जोशीकी शिकायत की गई है। मैने उन्हे लिखा है कि उन्हे चाहिए कि मुझे जोशीको शिकायते

बता देनेकी अनुमति दे। उन्होंने अनुमति दे तो दी है; किन्तु यह भी कहा है कि मैं वह पत्र तुम्हारे मार्फत भेजूं और तुम्हारी राय भी जान लूं। इसलिए पत्र तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। अपनी राय जरूर सूचित करना। यदि तुम अनुचित न समझो तो यह पत्र जोशीको दिखाकर कहना कि वह अपना उत्तर मुझे लिख भेजे। यदि तुम चाहोगे तो मैं स्वयं यह पत्र जोशीको भेज दूंगा।

अपने जन्म-दिनपर तो तुम हजारों आशीर्वाद मिले, मान सकते हो। मैंने तो तुमसे बड़ी आशाएं रखी हैं। वे फलीभूत भी हुई हैं और आगे भी होंगी। सच्ची परीक्षा तो मेरे न रहनेपर ही होगी न? मैं ऐसा मानकर बैठा हूं कि तुम उस परीक्षामें उत्तीर्ण होओगे।

मुझे ३० तारीखको अहमदाबाद पहुंचना है। वहाँसे उसी दिन नड़ियाद चल देना पड़ेगा। उसके पहले बुजुर्गोंके दर्शन कर लेनेकी इच्छा प्रबल होती जा रही है। इसलिए जहाँतक बनेगा, वहाँ झाँक लेनेकी कोशिश करूँगा। बुजुर्गोंका आशीर्वाद लेकर चला जाऊँगा। कोई धूम-धाम मत करना, किसीको खबर मत देना। मुझसे कोई दूसरा काम न लिया जाये। बहुत हुआ तो एक रात रहूँगा। सम्भव है, समय ही न रहे और सुबह पहुंचूं, रातको चला जाऊं। मेरे लेखे यह तीर्थयात्राके सिवाय और कुछ नहीं है। तुम भी मेरा कोई और उपयोग करने का विचार छोड़ देना। नानालाल, जोशी वगैरह तो जान ही लेंगे। यों तो शुक्ल साहबको भी सूचित करना पड़ेगा। किन्तु सब यही समझें कि मेरा राजकोटका आना-न आना बराबर है। सम्भव है, तब खान साहब भी मेरे साथ रहें। उस समय उनका उपयोग किया जा सकता है। किन्तु पहलेसे इसकी डोंडी नहीं पीटनी है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५०५ से भी, सौजन्य नारणदास गांधी

३८८. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

२३ सितम्बर, १९३६

चि० कान्ति,

तेरा पत्र मिला। अमतुस्सलामके बारेमें तुझे दुःखी नहीं करना चाहता। तू वहाँ जाकर मिल आया, इससे मुझे सन्तोष है।

मच्छरदानी काममें लाता है, यह ठीक ही किया। किन्तु चाहे जितनी सुविधाएँ लेनेपर भी ज्वर नहीं आयेगा, ऐसा मानकर मत चलना। पढ़ने-लिखनेमें मर्यादाका पालन करना। दिन-भर अभ्यास किया हो, तो फिर रातमें आँखोंको कष्ट क्यों देना चाहिए?

सरस्वतीके बारेमे लिखना भूल गया था। इस विषयमे रामचन्द्रनसे पूछूंगा और फिर खबर दूंगा।

देवदासको तो लिखता ही रहता होगा। बा को भी छोटी-मोटी चिट्ठी लिखने से वह प्रसन्न रहेगी। मैंने तुझे लिखा या नही कि बा और मनु देवदासके पास गई है? अमृतलाल और प्यारेलाल आनेवालो मे नये है। लीलावती अभी मगनवाड़ीमे ही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७३०६)से, सौजन्य. कान्तिलाल गाधी

३८९. पत्र: ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

२३ सितम्बर, १९३६

चि० ब्रजकृष्ण,

तुम्हारा खत देका के बारेमे मुझको महादेवने दिया। देका का खत मैंने पढ लिया। दैवयोगसे शकरलाल भी यहा है। उनसे भी बाते कर ली। देका पर जो खत मैंने लिखा है[1] उसकी नकल इसके साथ है। उससे पता चलेगा कि तुम्हारे देका के बारेमे चिंता करने की कोई कारण नही है। कुछ दिनोके पहले मैंने तुमको खत लिखा था, वह मिला होगा। माताजी का स्वास्थ्य खराब होने का पढकर दु.ख हुआ। अब अच्छी होगी।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २४४४)से।

१. उपलब्ध नहीं है।

३९०. पत्र : सुन्दरलालको

२३ सितम्बर, १९३६

प्रिय सुन्दरलाल,

तुमने अच्छा किया जो मुझे यह पत्र लिखा।[1] मैंने मौलाना अब्दुल हक का वक्तव्य नही देखा है, उसका केवल कुछ अश देखा था। उस वक्तव्यकी एक प्रतिलिपि मुझे भेज दो।

इस सम्वन्धमे मैंने जो-कुछ किया है वह केवल शुद्ध भावनासे। मेरी स्थिति हू-व-हू वही है जो १९२० मे थी। मेरा प्रयास यह रहा है कि नामके बारेमें सहमति हो जाये। इसी कारण मैंने काग्रेससे 'हिन्दुस्तानी' शब्दको पास करवाया। हिन्दी साहित्य सम्मेलनमे मै ऐसा नही कर सका, इस कारण इन्दौरमे 'हिन्दी' शब्दके तात्पर्यका स्पष्टीकरण करवाया। अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलनमें[2] मै इससे एक कदम और आगे बढा। मेरा उद्देश्य वही था, यानी हिन्दुओ तथा मुसलमानो द्वारा प्रयुक्त भाषाके दो स्वरूपोको एक नाम देना और उन्हे वास्तवमें एक भाषा बना देना।

तुमने स्वय लिखा है कि 'उर्दू' नाम देने के विशेष कारण थे। इस विषयमे कोई भी मशा थोपने का मेरा कोई इरादा नही था।

मैंने व्याकरणके सम्वन्धमे जो कहा, उसे भी तुम स्वीकार करते हो। यदि हिन्दी लेखक दूसरे प्रकारकी भूले करते है तो उससे मेरे कथनका न तो खण्डन होता है न वह गलत सिद्ध होता है।

इस समय जो गलतफहमियाँ हैं वे निश्चय ही दूर हो जायेंगी। क्योकि वे बिलकुल निराधार है। उर्दूको छोड़ देने की मेरी कतई कोई इच्छा नही है। मै उसका पर्याप्त मान करता हूँ और उसको काफी महत्त्व देता हूँ। प्रतिदिन उर्दूकी कोई-न-कोई चीज पढता हूँ। अनेक मुसलमान भाई-वहनोको उर्दूमें खत लिखता हूँ। मुझमे पर्याप्त धैर्य है।

१. सुन्दरलालने अपने पत्रमें इस बातपर खेद प्रकट किया था कि हिन्दी-उर्दू विवाद-जैसे मुख्यत: साहित्यिक मामलेको साम्प्रदायिक प्रश्न बनाया जा रहा था। दोनोंके व्याकरण और मुहावरोंकी तुलना द्वारा सुन्दरलालने यह दिखाया था कि दोनों भाषाएँ मूलत: एक ही हैं। उन्होंने यह भी कहा था कि उर्दू और हिन्दीके लेखक एक आम भाषा हिन्दुस्तानीके निर्माण और विकासमें बाधक हो रहे हैं और उसके व्याकरणमें उलझनें डाल रहे थे। उन्होंने यह भी दर्शाया था कि 'हिन्दी' या 'उर्दू' दो में से कोई भी शब्द इस आम भाषाका ठीक बोध नही कराता।

२. नागपुरमें २४ और २५ अप्रैल, १९३६ को, देखिए खण्ड ६२, पृ० ३७०-७३।

मेरे विचारमें, मैंने तुम्हारी सब बातोंका स्पष्टीकरण कर दिया है। यदि कुछ और शंकाएँ बचें तो फिर देख लेंगे। इतना लिखने को भी मुश्किलसे कुछ क्षण निकाल पाया हूँ।

तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च :]

एक बात और। तुमने जो वाक्य उद्धृत किये हैं उनकी भाषा मेरी नहीं है। 'तुमने उन्हें कहाँसे लिया?'[1]

[अंग्रेजीसे]
सर्चलाइट, ९-१०-१९३६

३९१. प्रस्तावना : 'गीतापदार्थकोष' की[2]

सेगाँव, वर्धा
२४ सितम्बर, १९३६

काकासाहबने अपने "दो शब्द" में बताया है कि यह कोष बारह वर्ष पहले तैयार हो गया था[3] और जैसा होना चाहिए वैसा न होने के बावजूद अब क्यों प्रकाशित हो रहा है।

जिन्हें मेरे नामसे प्रकाशित ['गीता'के] अनुवादमें[4] कुछ भी रस है, उनके लिए यह कोष सहज ही आवश्यक हो जाता है। सम्भव है, दूसरे गीताभ्यासियोंके लिए भी यह कोष उपयोगी हो। उनको मेरा यह सुझाव है कि यदि 'पदार्थकोष' में दिया हुआ अर्थ उन्हें न रुचे और दूसरा अर्थ अधिक प्रिय मालूम हो, तो उसे वे उसीमें नोट कर लें। ऐसा करने से उनकी अपनी मनोभिरुचिका कोष बहुत थोड़े परिश्रमसे तैयार हो जायेगा। और ऐसे गीताभ्यासी अगर अपना पसन्द किया हुआ अर्थ मुझे लिख भेजेंगे तो मैं उनका आभार मानूँगा।

ज्यों-ज्यों मैं 'गीता' का अभ्यास करता हूँ, त्यों-त्यों मुझे उसकी अनुपमता अधिकाधिक मालूम होती जाती है। मेरे लिए 'गीता' आध्यात्मिक कोष है। मैं जब कार्याकार्यकी दुविधामें पड़ जाता हूँ, तब मैं इसीका आश्रय लेता हूँ, और अबतक इसने मुझे कभी निराश नहीं किया। यह सच्ची कामधेनु है। पहले नित्य एक श्लोक, फिर

१. मूल पत्र हिन्दीमें था, जो उपलब्ध नहीं है।

२. यह प्रस्तावना पुस्तकमें 'वांचनारने विनती' (पाठकोंसे निवेदन) से तथा २५-१०-१९३६ के हरिजनबन्धुमें "गीतारूपी कामधेनु" शीर्षकसे भी प्रकाशित हुई थी।

३. गांधीजी ने गीतापदार्थकोष १९२२-२४ के दरम्यान यरवडा जेलमें तैयार किया था। देखिए खण्ड २५, पृ० १६५।

४. अनासक्तियोग; देखिए खण्ड ४१ पृ०, ९२-१६७।

दो, फिर पाँच, फिर नित्य एक अध्याय, फिर चौदह दिनमें पारायण, और इधर अन्तमे कुछ वर्षोसे सात दिनका पारायण हममें से कुछ लोग करते आ रहे है, और खास-खास दिन खास-खास अध्यायका पाठ प्रातःकाल साढे ४ बजेके लगभग सुनते है। कुछ लोगोने, जो बहुत थोड़े है, १८ अध्याय कंठ कर लिये है। वारके अनुसार सवेरेकी दैनिक प्रार्थनामें यह क्रम चलता है:

शुक्रवार १, २	मंगलवार १३, १४, १५
शनिवार ३, ४, ५	बुधवार १६, १७
रविवार ६, ७, ८	गुरुवार १८
सोमवार ९, १०, ११, १२	

इस प्रकारके विभागके विषयमे इतना ही कहना पर्याप्त है कि इसके पीछे एक विचारश्रेणी रही है। इस रीतिसे मनन करना अनुकल पड़ता है, ऐसा अनुभव है।

शुक्रवारसे पारायण क्यो शुरू हुआ, यह प्रश्न हो सकता है। कारण इसका इतना ही है . खासे समयतक हमारा चौदह दिनका पारायण चलता रहा। यरवडा जेलमें सात दिनके पारायणका विचार मेरे मनमे आया और शुक्रवारको वह विचार कार्यरूपमे परिणत हुआ, इस प्रकार तबसे पारायण-सप्ताह शुक्रवारको शुरू होता है।

पारायणकी बातको यहाँ स्थान देने मे दो हेतु है। एक हेतु तो यह बताने का है कि 'गीता'-भक्ति आजकल हममें से कुछ लोगोको कहाँतक ले गई है, और दूसरा हेतु है, पाठ करनेवालो को अभ्यासके लिए प्रोत्साहित करने का मार्ग बताना।

पर 'गीता'का गान करके ही हम निहाल नही हो सकते। 'गीता' धर्म का दर्शन करानेवाला कोष है, आत्माकी गुत्थियोको सुलझानेवाली एक प्रचंड शक्ति है, दुखियोका आधार है, मूर्च्छासे जगानेवाली है—ऐसा जो मानता है, उसे ही 'गीता'-गान मदद दे सकता है। बिना अर्थ समझे हुए 'गीता'-गान स्वतन्त्र रीतिसे मनुष्यका कल्याण करता है, ऐसा कहने का मेरा यहाँ बिलकुल आशय नही। उचित प्रयत्नसे पाले हुए तोतेको 'गीता' अवश्य कंठ कराई जा सकती है, पर इससे तोतेको या उसके शिक्षकको रत्ती-भर भी पुण्य प्राप्त होनेवाला नही है।

'गीता' जीवित, जीवन देनेवाली, अमर माता है। दूध पिला-पिलाकर पालनेवाली माता किसी दिन दगा देकर चली जायेगी। असख्य माताएँ अपनी सन्तानको खतरोंसे बचाने मे असमर्थ पाई जाती है, ऐसा हमारे देखने मे आता है। किन्तु गीता-माताकी शरण लेनेवाला भयंकर खतरेमेंसे बच जाता है। यह नित्य जागृत रहती है। कभी दगा नही देती। पर जैसे बगैर माँगे माँ भी नही परोसती, उसी तरह गीता-माता भी बिना माँगे कुछ नही देती। वह किसीको गोदमें लेने से पहले उसकी कड़ी परीक्षा लेती है, पूर्ण भक्तिकी अपेक्षा रखती है। कोरी भक्ति भी काम आनेकी

नही। वह तो अनन्य भक्ति चाहती है। इसलिए जो उसे सर्वार्पण करने के लिए तैयार नही, उसे शरण देने से वह साफ इनकार कर देती है।

भौतिक विज्ञानके अभ्यासीको जब वह उसके पीछे पागल हो जाता है तब कही उसका कुछ दर्शन मिलता है। एम० ए०, बी० ए० होने की इच्छा रखनेवाले दिन-रात पढते ही रहते है, इसके पीछे पैसा भी खर्च करते है, शरीर भी क्षीण करते है। इस तरह प्रयत्न करनेवालोमे से सभी विद्यार्थी पहली बारमे पास नही होते। उत्तीर्ण न होनेवाले, निराश न होते हुए, बार-बार प्रयत्न करते है और उत्तीर्ण होनेपर ही शान्त होते है। और अन्तमे --?

गीतामृतका पान करने के लिए तो इन प्रयत्नोकी अपेक्षा बहुत अधिक प्रयत्नकी आवश्यकता होनी चाहिए, और है ही। पर इस अमृत-पानकी गरज कितनोको है? अगर गरज है तो तन-तोड प्रयत्न करने के लिए कितने तैयार होते है? हम यह जानते है कि मेरी बताई हुई दृष्टिसे 'गीता' की भक्ति करनेवालो की संख्या नही के बराबर है। तो भी यह सभी स्वीकार करते है कि 'गीता' समस्त उप-निषदोका दोहन है। कोई हिन्दू बगैर उसके ज्ञानके नही होना चाहिए। पर आज तो धर्म-मात्रकी कीमत घट गई है। इसके कारणोमे उतरने का यह प्रसग नही। इस निवेदनमे मैने तो, 'गीता-पदार्थ' प्रकाशित हो रहा है, इस निमित्तसे जिज्ञासुओका ध्यान 'गीता'-रूपी रत्नकी ओर खीचने का और यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि उसका सदुपयोग किस तरहसे हो सकता है। यह प्रयत्न सफल हो!

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
गीतापदार्थकोष, पृ० तीन से छह

३९२. पत्र: अमृतकौरको

२४ सितम्बर, १९३६

मूर्खा रानी,

दाहिने हाथको कुछ आराम देने के लिए यह पत्र बाये हाथसे लिख रहा हूँ।

लगता है, तुम सामर्थ्यसे अधिक काम कर रही हो। तुम्हे इससे बचने का कोई मार्ग ढूंढ निकालना चाहिए।

अखबारकी कतरन तो हास्यास्पद है। वे लोग तो झूठके बिना जी ही नही सकते। देखते-देखते वे तुम्हे हवामे विलीन कर देंगे! तब तुम सब जगह बिना किसी सगी-साथीके उडती फिरोगी और यदि उडती-उडती सेगाँव आ पहुँची तो मुझे तुम्हारे लिए एक कोना देने की भी आवश्यकता नही रहेगी। परन्तु एक कठिनाई होगी; तुम तो मात्र बयार-जैसी सूक्ष्म होगी, तब तुम्हे पहचानूंगा कैसे? खैर, जबतक

तुम्हें अशरीरी अस्तित्व मिलेगा, मेरी भी छठी सज्ञा विकसित हो चुकी होगी, जिससे तबकत मैं वायवी प्राणियो — या अप्राणियो — को पहचान लूंगा।

क्या तुम्हे ऐसा नही लगता कि मुझे बकवास लिखने के अतिरिक्त और कोई काम ही नही है? मैं तो तुमसे गपशप करना चाहता था। मैं हमेशा तुम्हारे एक्जीमा पर उपदेश नही देना चाहता, और उस बेचारी कतरनने मुझे इस पत्रके लिए विषय-वस्तु प्रदान कर दी।

सेव फिर आ पहुंचे हैं। क्या ये भी तुम्हारे ही बागके है?

सप्रेम,

डाकू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५९३) से; सौजन्य. अमृतकौर। जी० एन० ६४०२ से भी

३९३. पत्र : एस० अम्बुजम्मालको

२४ सितम्बर, १९३६

चि० अम्बुजम,[1]

तुम्हारे भेजे फल नियमसे आ रहे हैं और उनका सही उपयोग हो रहा है।

मैं शनिवारको सेगांव वापस आया। मैं अच्छा हूँ पर कमजोरी अभी भी बनी हुई है। मेरा बस चले तो यहाँसे कही बाहर जाना पसन्द ही न करूँ।

तो, श्रीमती रगसामीने तुम्हे हिन्दी-कार्यके लिए २,००० रु० दिये हैं।

किची अच्छा होगा और उसके माता-पिता भी। और तुम?

तुम्हारा 'रामायण' का पाठ जारी है, यह जानकर खुशी हुई।

स्नेह।

बापू

मूल अग्रेजीसे : अम्बुजम्माल पेपर्स, सौजन्य : नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय

1. सम्बोधन हिन्दीमें है।

३९४. पत्र: अल्बर्ट हेनरी वेस्टको

२४ सितम्बर, १९३६

फीनिक्सका प्रयोग तो मेरे लिए एक जीवन-व्यापी कार्य था। इसलिए यदि तुम कभी भारत आ सको तो देखोगे कि मैं फीनिक्ससे भी सादे ढंगसे रहता हूं। मेरे सामने उस समय जो आदर्श था, वह बराबर कायम रहा है, यही नही, अब उसका अर्थ और भी विस्तृत हो गया है।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य: नारायण देसाई

३९५. पत्र: बलवन्तसिंहको

२४ सितम्बर, १९३६

चि० बलवन्तसिंह,

तुम्हारा खत मिला है। क्या जानू यह कब मिलेगा? यहा तो सब ठीक चल रहा है। रोज छाछ होती है और मक्खन निकलता है। २॥ सेरमें से आज १४ तोला निकला, उसका घी १० तोला। प्यारेलाल इस बारेमे उस्ताद बन गया है। मुन्नालाल दुध की देखभाल कर रहा है।

आज तो बहुत पानी आया।

किशोरलाल का खत इसके साथ है। अब तो ठीक है, दुर्बलता काफी है।

महाराजसे[1] कहो उनका खत मिली गया था।

हां, सफाईका काम भी अच्छी तरह सिखा दो।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १८८७) से।

१. संत तुकडोजी महाराज; बलवन्तसिंह मोजहारीमें इनके आश्रममें पिंजाई, कताई आदि सिखाने गये थे।

३९६. पत्र : एम० एस० केलकरको

२५ सितम्बर, १९३६

भाई आइस,[1]

तुम्हें क्या कहूं ? मैं तो बहुत चाहूंगा कि तुम मेरे पास रहो, परन्तु ज्योतिषमें तुम्हारे गहरे विश्वासके बावजूद मुझे तुम्हारी उपचार-पद्धति पर कोई आस्था नहीं है। तुम्हारी यह धारणा भी कि मुझे तुम्हारे उपचारसे लाभ हुआ था, सही नहीं है। तुम्हारी सारी कोशिशोंके बावजूद मुझे अन्तत: ऑपरेशन कराना ही पड़ा।[2] तुमने साबरमतीमें कितने ही रोगियोंका इलाज किया, परन्तु छोटी मनुको छोड़कर, जिसने कच्चे अंडे खाये, किसीको भी स्थायी लाभ नहीं हुआ। इतने वर्षोंसे तुमने जमकर कोई पक्का काम करने का प्रयास किया तो है, परन्तु अभीतक लुढ़कते पत्थरके समान अस्थिर ही हो। मुझे तो भय है कि तुम आत्म-वचनासे ग्रस्त हो। अब भी अपनी मर्यादाको पहचान लो। मैं जानता हूं तुममें गुण और शक्ति है। इनको बेकार जाते देखकर मुझे दु:ख होता है।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य : महादेव देसाई

३९७. पत्र : बाल द० कालेलकरको

सेगांव, वर्धा

२५ सितम्बर, १९३६

चि० बाल,

तुझे फिर प्रमाणपत्रोंकी धुन कैसे लग गई ? किन्तु मांगता है तो ले, भेजता हूं।[3]

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २१७८) से।

१. बर्फ; इन्हें यह सम्बोधन इसलिए दिया गया कि ये बर्फ (आइस) द्वारा रोगोंका उपचार करते थे।

२. २० जनवरी, १९१९ को, देखिए खण्ड १५, पृ० ७६।

३. देखिए अगला शीर्षक।

३९८. प्रमाणपत्र : बाल द० कालेलकरको

२५ सितम्बर, १९३६

मैं काकासाहब कालेलकरके छोटे पुत्र, चि० बालको अच्छी तरह जानता हूँ। साबरमती आश्रममें एक प्रकारसे इसका लालन-पालन मेरी देख-रेखमें ही हुआ है। यह तीव्रबुद्धि, मिलनसार और खुशमिजाज है। इसे खूब पढ-लिखकर सेवा करने की अभिलाषा है। चि० बालने २१ दिनके[1] दूसरे उपवासके दरम्यान और अन्य अवसरो पर मेरी बहुत अच्छी सेवा की है। यह हमेशा मेरे आशीर्वादोका अधिकारी रहेगा।

मोहनदास गांधी

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २१७७) से।

३९९. पत्र : अमतुस्सलामको

२५ सितम्बर, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

तू मूर्ख तो है ही, पगली भी है। तेरे खतमें पागलपन भरा है। तेरे मन कोई अच्छा आदमी है ही नही। तेरा डॉ० गिल्डरवाला खत मिला है। तेरा एक भी उर्दू खत उन्होंने खोला नही है, पढ़ा भी नही है। पिछले खतमें कुछ खानगी नही था, इसलिए वह मैंने महादेवको पढ सुनाया। माँ-बापको अपने मूर्ख बच्चोकी मूर्खता दिखाने में शर्म काहे की? माँ-बापको इतनी भी छूट नही?

डॉ० गिल्डरवाले खतका जवाब मैंने तुरन्त दिया था। उसमें लिखा था कि डॉ० गिल्डरको दिखाने की जरूरत पड़ी ही, तो वह हो जायेगा। एक खत बारीके पते पर थियोसॉफिकल लॉज भेजा था। वह मिला? तेरे एक भी खतका जवाब न लिखा हो, ऐसा नही हुआ। लेकिन तुझे खत न मिले तो मैं क्या करूँ? अगर तू कहे तो सर्टिफिकेट ऑफ पोस्टिंग लूँ। बेकार अपने-आप क्यो दुःखी हुआ करती है?

जोहरा और शौकतकी शादी आज दिल्लीमें है। बिलकुल खानगी रहेगी।

मुझे बराबर खत लिखती रहना। उर्दूमें ही लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४९) से।

1. ८ से २९ मई, १९३३ तक; देखिए खण्ड ५५।

४००. पत्र : ताराबहन एन० मशरूवालाको

२५ सितम्बर, १९३६

चि० तारा,

तुझे क्या कहूँ? तुझे उपालम्भ देना मुझे पसन्द नहीं है। फिर भी तू अगर वचनका पालन नही करती तो यह असह्य जान पडता है। तू तो मुझे हर अठवाडे अपना हिसाब भेजनेवाली थी न? वह कहाँ है? जो पत्र लिखा उसमें भी हिसाब नही है। इतनी ढीली क्यो रहती है? सावधान कब बनेगी?

डॉक्टर अमनको लिखती है या नही? पढने के विचारसे भी तुझे यह सम्बन्ध बनाकर रखना था। अगर तोड दिया हो तो मेरी सलाह है कि इसे फिरसे जोड़ ले। मैंने तो अभी हार नही मानी है। मेरे पाससे तू रोज नई बातें पूछती रह सकती है, किन्तु लगता है कि तुझे शरीर सुधारने की चिन्ता नही। उस तरफ दिलचस्पी कौन पैदा करायेगा? ईश्वरकी दी हुई सम्पत्तिको सुरक्षित रखना धर्म है। उसे अक्षुण्ण रखकर उसका उपयोग करना चाहिए। किन्तु जान पडता है कि तूने तो अपने सारे दरवाजे बन्द कर डाले हैं। यह ठीक नही है। तुझमे शक्ति है, सेवाभाव है, खरापन है, पवित्रता है, किन्तु एक प्रकारकी हठ कहो, जड़ता कहो या कुछ भी कहो——कोई त्रुटि है, जो तेरी शक्तिको खिलने नही देती। इस त्रुटिको ढूँढकर यदि तू दूर करने का प्रयत्न करे तो अच्छा हो। तू अपने मनमें जो ताला लगाये बैठी है, उसे खोल।

सूत मिला। जिन्होने कातने मे भाग लिया, उन्हे बधाई। माता-पिता मजेमे होगे। अमनकी किताब या दवाइयोकी पेटीका कोई उपयोग करती है या नही?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५२८) से। सी० डब्ल्यू० ५००४ से भी; सौजन्य: कनुभाई एन० मशरूवाला

४०१. पत्र : लीलावती आसरको

२५ सितम्बर, १९३६

चि० लीलावती,

तू सेगाँव आने के लिए उतावली हो उठी है, यह ठीक नही है। अभी तो तू अपने अक्षरोपर भी काबू नही पा सकी है। तू अपने मनसे पूछ कि क्या मुन्नालालके साथ, बलवन्तसिंहके साथ, मीराबहनके साथ, शान्तिसे रह सकेगी? इन दिनो तो यहाँ पूर्ण शान्ति है। किसीके झगडेकी परेशानी नही है, इसलिए शान्ति भंग होने के भयसे मैं काँप उठता हूँ। तू खुद शान्त होकर विचार करना और बताना। इस बीच तू वहाँ काम तो कर ही रही है। तेरा मन भी शान्त है। महादेवको तेरी बड़ी मदद है। उसे इस मददकी आवश्यकता भी है, इसलिए ऐसा लगता है कि तू ठीक जगहपर है। इसका यह अर्थ मत लगा लेना कि मैं तुझे सेगाँवमे रखना ही नही चाहता। मैं तुझे बुलाना चाहता हूँ; किन्तु शान्ति-भंगकी जोखिम उठाकर नही। मैं यहाँ बैठकर तेरे मार्गदर्शनका प्रयत्न तो करता ही हूँ। इससे अधिककी आशा तू क्यो रखती है? तुझे धैर्यपूर्वक इस बातका विचार कर लेना चाहिए कि तू यहाँ शान्तिसे रह सकेगी या नही। यह निश्चय करने मे भी तू महादेवका समय मत लेना। तू अपने मनमें ही इसे सोचना-विचारना और जो सूझे सो मुझे लिखना।

तेरा पाँव ठीक हो गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३४८) से। सी० डब्ल्यू० ६६२३ से भी; सौजन्य : लीलावती आसर

४०२. पत्र : गोपीनाथको

२५ सितम्बर, १९३६

भाई गोपीनाथजी,[1]

...[2] अब मुझे बताइये मलेरियामें आयुर्वेदीय औषध कोई इतना ही असरकारक है जैसा क्वीनीन? ऐसा कौन-सा औषध है जो अंग्रेजी दवाओंसे निश्चयपूर्वक बहुत ज्यादा असरकारक है? देहातोंमें मेरी तीव्र इच्छा दूसरी ही होते हुए मुझे क्वीनीन, सोडा, परमेंगनेट, आयोडीन . . .[3] का सहारा लेना पडता है।

बापुके आशीर्वाद

गुजराती, ३-१-१९३७

४०३. पत्र : कृष्णचन्द्रको

२५ सितम्बर, १९३६

चि० कृष्णचद्र,

पिताजी के देहात से दु:ख होना स्वाभाविक है। हिंदु [सती पत्नी][4] के बारे में तुमने लिखा ऐसा ही है। तुमारे तो माताजी को आश्वासन देना ही।

ब्रह्मचर्य पालन का प्रयत्न छोडने की बात तो है ही नहीं। कल्याणकृत की दुर्गति तो है ही नही ऐसी 'गीता' माताकी प्रतिज्ञा है।[5] शनिश्चर के उपवास से लाभ प्रतीत हो तो अवश्य करो।

सबकुछ देखभाल कर ही किया जाये।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ४२८९) से।

१. आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धतिका प्रचार करनेवाली हिन्दी पत्रिका आरोग्य दर्पणके सम्पादक। यह पत्र गुजराती आरोग्यने दर्पणके नवम्बर १९३६ के अंकसे उद्धृत किया था।

२ और ३. साधन-सूत्रमें छूटा हुआ है।

४. अस्पष्ट है।

५ भगवद्गीता, ६.४०।

४०४. पत्र : श्रीमन्नारायण अग्रवालको

२५ सितम्बर, १९३६

भाई श्रीमन्,

'नये युग का राग' मैं पढ गया हू। कविताए मुझको अच्छी लगी है। हेतु स्पष्ट और निर्मल है। काव्य की दृष्टिसे मैं कुछ भी अभिप्राय देने योग्य अपने को नही मानता हू। तुम्हारी कृति को प्रगट करने के बारे मे तो कवि लोग ही अभिप्राय दे सकते है।

बापुके आशीर्वाद

[पुनश्च.]

इतना लिखने मे मैने कितना समय लिया? क्योकि मैं जानता ही नही था, क्या लिखू।

पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृ० २९९

४०५. जीवन-धर्म

कैनन शेपर्डके युद्ध-विरोधी आन्दोलनकी 'स्टेट्समैन'ने जो टीका की थी, उसके जवाबमे[1] मैने कुछ दलीले पेश की थी। 'स्टेट्समैन'मे उनके प्रत्युत्तरमे अब एक सुविचारित लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेखमे मेरे पक्षका खण्डन करने का बडी चतुराईसे यत्न किया गया है।

लेखक कहता है कि 'भगवद्गीता' उसके पक्षका समर्थन तो करती है, लेकिन आतकवादियोके पक्षका नही। किन्तु सर्जन द्वारा अपने मरीजपर किये जानेवाले बलप्रयोगकी तरह जो बलप्रयोग उससे प्रभावित व्यक्तिके फायदेके लिए नही है, ऐसे बलप्रयोगकी वैधता एक बार स्वीकार कर लेनेपर ऐसी कोई विभाजक रेखा नही खीची जा सकती कि अमुक बलप्रयोग सही है और अमुक गलत। इसी 'महाभारत' मे, जिसका कि 'गीता' एक छोटा-सा अध्याय-मात्र है, एक जगह रातमे किये गये कुछ निर्दोष लोगोके वधका इतना दारुण और विस्तृत वर्णन है कि अगर हमे इस सभ्य युगके युद्धोका अनुभव न होता, तो उसे वास्तविक दृष्टिसे अविश्वसनीय ही समझा जाता। यह तथ्य भयानक भले ही हो किन्तु सत्य है

१. देखिए "अहिंसा परमो धर्मः", ५-९-१९३६।

कि आतंकवादियोंने बिल्कुल ईमानदारी और सच्चे दिलसे तथा अत्यन्त तर्कसंगत ढंगसे अपने सिद्धान्त और नीतिके समर्थनमें 'गीता' का उपयोग किया है। उनमें से कुछएक को तो वह कंठस्थ भी है। बात केवल इतनी-सी है कि 'गीता' का मैं जो अर्थ लगाता हूँ उसका उनके पास सिवा इसके और कोई जवाब नहीं कि मेरा अर्थ गलत है और उन्हींका अर्थ सही है। पर इसका उत्तर तो समय ही देगा कि किसका अर्थ ठीक है। 'गीता' कोई निरी सैद्धान्तिक पुस्तक नहीं है। वह तो एक ऐसी जीती-जागती, किन्तु मूक मार्गदर्शिका है, जिसके निर्देशोंको वही समझ सकता है जो धैर्यपूर्वक प्रयत्न करता रहे।

'स्टेट्समैन' का लेखक इसके बाद कैनन शेपर्डकी तुलना अर्जुनके साथ करता है। निस्सन्देह, यह उपमा गलत है और जल्दबाजीमें दी गई है। अर्जुन पाण्डवोंकी सेनाका अधिपति था। अपने सामनेके उस भयंकर दृश्यपर विचार करते ही वह किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया। वह खूब अच्छी तरह जानता था कि सेनाधिपतिकी हैसियतसे उसका क्या धर्म था। वह जानता था कि उसे अपने ही चचेरे भाइयोंसे युद्ध करना था। वास्तवमें, उसकी मूर्च्छाका कारण तो उसकी क्षणिक दुर्बलता ही थी। अगर वह अपने कर्त्तव्यसे मुँह मोडता तो समरभूमिमें एक विचित्र गड़बड़ी और अव्यवस्था पैदा हो जाती, और साथ ही, उसकी अपनी और उसके अनन्य मित्रों तथा अनुगामियोंकी भी बदनामी होती। उसे तो भयंकर नर-हत्यामें अपने साथियों-सहित भाग लेना ही था, इसके लिए उसने अपनेको और अपने साथियोंको भी प्रशिक्षित कर रखा था। ऐसी जगह पर यह कल्पना करना बिल्कुल बेकार है कि अगर कहीं सचमुच एकाएक उसके हृदयमें यह प्रकाश उदित हो जाता कि उसे मन, वचन और कर्मसे अहिंसाका पालन करना चाहिए तो क्या होता।

पर हम आशा करें कि इन अनमोल चीजने डिक शेपर्ड और उनके साथियोंके हृदयमें स्थान पा लिया है। जो हो, जहाँतक मुझे पता है, उनकी बात अर्जुनसे बिलकुल भिन्न है। वे किसी ऐसी सेनाके नायक तो हैं नहीं जो युद्धके लिए मैदानमें व्यूहबद्ध खड़ी हो। उनके लिए स्वजन-परिजनका कोई भेदभाव नहीं है। उनके लिए तो सब मनुष्य — चाहे वे किसी वर्ण या देशके हों अथवा अपनेको कुछ भी कहते हों — बराबर हैं। शुद्ध अन्त करणसे 'गीता' का — जो उनके लिए सबसे बड़ी जीवन-पुस्तक है — सम्यक् अध्ययन करके अन्तमें वे इस नतीजेपर पहुँचे कि अपने निजी और स्वदेशके स्वार्थके लिए भी वे किसी मानवबन्धुको चोट नहीं पहुँचा सकते, और इसलिए वे युद्धमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूपमें भाग नहीं ले सकते। अब स्वभावत: अगला कदम उन्होंने यह उठाया है कि वे अपने पड़ोसियोंके बीच शान्ति या मनुष्यमात्रके प्रति प्रेम और सद्भावका प्रचार कर रहे हैं। अर्जुनने कभी भी ऐसी स्थिति नहीं अपनाई थी।

लेकिन 'स्टेट्समैन' के लेखकका धनुष तो अनेक प्रत्यंचाओंसे युक्त है। उसकी सबसे जोरदार दलील तो यह है कि वह अहिंसा अथवा प्रेम-धर्मको मानव-धर्म स्वीकार

ही नही करता। और अगर अहिंसा या प्रेम-धर्म सचमुच हमारा जीवन-धर्म नही है तब तो मेरी सारी दलीले निस्सार है। फिर तो एक से बढकर एक युद्ध होते ही रहेंगे। और मैं यह सिद्ध नही कर सकता — और अपने दैनिक कार्यक्रममें से कुछ समय निकालकर किसी अखबारमे लेख लिखकर तो हरगिज नही — कि अहिंसा ही हमारे जीवनका आदि स्रोत और अन्तिम उद्देश्य है। पर मैं कुछ ऐसे सुझाव जरूर देने की हिम्मत करता हूँ जो इस परम धर्मको समझने में सुगमता पैदा कर सकते है। सबसे पहली बात तो यह है कि आजतक जितने भी महापुरुष हुए है उन सबने न्यूनाधिक जोरके साथ इसका उपदेश दिया है। अगर अहिंसा या प्रेम हमारा जीवन-धर्म न होता, तो इस मृत्यु-लोकमे हमारा जीवन कठिन हो जाता। जीवन तो मृत्यु पर प्रत्यक्ष और सनातन विजय-रूप है। अगर मनुष्य और पशुके बीच कोई मौलिक और सबसे महान अन्तर है तो वह यही है कि मनुष्य दिनोदिन इस धर्मका अधिकाधिक साक्षात्कार कर सकता है, और अपने व्यक्तिगत जीवनमे उसपर अमल भी कर सकता है। संसारके प्राचीन और अर्वाचीन समस्त सन्त पुरुष अपनी-अपनी शक्ति और योग्यताके अनुसार इस परम जीवन-धर्मके ज्वलन्त उदाहरण रहे है। निस्सन्देह यह सच है कि हमारे अन्दर छिपा हुआ पशु कई बार सहज विजय प्राप्त कर लेता है। पर इससे यह सिद्ध नही होता कि यह धर्म मिथ्या है। इससे तो केवल यह सिद्ध होता है कि यह आचरणमे कठिन है। और यह क्यो न हो? जो उच्चतामें सत्यके समकक्ष है वह कठिन नही होगा तो क्या होगा? जिस दिन उसका आचरण हमारे लिए सहज, सरल और सार्वभौम हो जायेगा, उस दिन स्वर्ग-लोक इस भूमिपर ही अवतीर्ण हो जायेगा। यो तो मैं जानता हूँ कि स्वर्ग और पृथ्वी सब हमारे ही अन्दर है। हम पृथ्वीसे तो परिचित है। पर अपने अन्दरके स्वर्गसे हम बिलकुल अपरिचित है। अगर हम यह मान लेते है कि कमसे-कम कुछ लोगोके लिए प्रेमका आचरण व्यावहारिक है, तो यह कहना धृष्टता होगी कि दूसरे लोग इसपर अमल कर सके, इसकी सम्भावना भी नही है। हम जानते है कि हमारे पूर्वज, जो बहुत अधिक पहलेके नही कहे जा सकते, मनुष्यका मास खाते थे। उनमे और भी कई ऐसी बुराइयाँ थी जिन्हे हम आज घृणाकी दृष्टिसे देखते है। नि.सन्देह उन दिनो भी डिक शेपर्ड-सरीखे लोग रहे ही होगे, और लोगोने उनका मखौल भी उडाया होगा, बल्कि उन्हे काठमे भी डाल दिया होगा, क्योकि लोगोमे वे ऐसी बेहूदा बातोका प्रचार करते होगे कि मनुष्यको मनुष्यका मांस नही खाना चाहिए। आधुनिक विज्ञानका युग तो ऐसी घटनाओके उदाहरणोसे भरा पडा है कि जो बात कल असम्भव मालूम हो रही थी, वही आज सम्भव हो गई। पर अध्यात्म-विज्ञानकी सफलताओके मुकाबलेमे भौतिक विज्ञानकी सफलताएँ बिलकुल नगण्य-सी है। और अध्यात्म-विज्ञान का सारा मर्म एक ही शब्द 'प्रेम' में छिपा हुआ है, और यह प्रेम ही हमारे जीवनका धर्म है। मैं जानता हूँ कि यह कोई ऐसी चीज नही है जिसे दलीलोसे सिद्ध किया जा सके। यह तो उन लोगोके प्रत्यक्ष जीवनसे सिद्ध हो सकती है, जो परिणामोकी ओरसे निरपेक्ष बनकर इस धर्मका अपने जीवनमे

पालन करते है। वगैर कुर्वानीके ससारमे कोई सच्चा लाभ हासिल नही हो सकता। और चूंकि इस धर्मको प्रत्यक्ष कर दिखाना खुद ही सच्चेसे-सच्चा लाभ है, इस-लिए उसके लिए कुर्वानी भी सबसे बडे दर्जेकी दरकार होगी।

मेरी दलीलोके उत्तरमे 'स्टेट्समैन'के लेखकने जो दूसरी दलीले पेश की है उनका जवाब देनेकी कोई आवश्यकता नही, क्योकि अगर इस नियमकी सचाईको वे मानते है, तो उनकी सारी दलीले निस्सार है। और अगर वे इस नियमको नही मानते या उसकी सचाईमे उन्हे सन्देह हो, तो उनकी दलीले सही है।

पर चलते-चलते एक वात और साफ कर दूं। व्यक्तिगत या राष्ट्रीय लाभमे रहित जो सम्मान मिलता है उसे लेखक तुच्छ समझता है। वह कहता है. "जव कोई राष्ट्र अपनी इच्छासे ही अपना नाश कर ले तव फिर उसका सम्मान कहाँ रह गया?" पर यहाँ मेरे लिए अपना नाश स्वय करने या दूसरेके द्वारा नष्ट किये जानेका तो कोई प्रश्न ही नही है। यहाँ प्रश्न है उस राष्ट्रका जो अपने सम्मानकी रक्षाके लिए निर्भयतापूर्वक डटकर खडा हो जाये और "दूसरेके द्वारा अपना नाश होने दे।" उदाहरणके लिए, हिन्दुस्तानको ही लीजिए और इस स्थितिकी कल्पना कीजिए कि हिन्दुस्तान पर शत्रु चढाई करने आते है, और आक्रमणकारियोके सामने आत्म-समर्पण न करनेका सकल्प लेकर, उनपर उँगलीतक उठाये विना, एक-एक हिन्दुस्तानी अपनी जान दे देता है। वह स्त्री, जो किसी शोहदेके पापी प्रस्तावोके विरोधमे अहिंसापूर्वक अपने प्राणोकी वलि दे देती है, अपनी तथा स्त्री-जातिकी इज्जतकी ही तो रक्षा करती है। जव वालक प्रह्लादने ईश्वरमे अपनी श्रद्धाका त्याग करनेसे वार-वार इनकार किया तव उसने अहिंसापूर्वक अपने प्राणोको सकटमे डालकर अपने सम्मानकी ही रक्षा की थी। मसीहाने भी अपनी श्रद्धा और धर्मको तिलाजलि देनेके वजाय एक चोर-डाकूकी मौत मरना पसन्द करके अपने और मानव-जातिके सम्मानकी रक्षा की।

[अग्रेजीसे]

हरिजन, २६-९-१९३६

४०६. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
२६ सितम्बर, १९३६

मूर्खारानी,

अच्छा, यदि वह न टूटनेवाला थर्मस आ गया तो वापस नही करूँगा। चूंकि मै तुम्हारे सब पत्र फाड देता हूँ, इस कारण धोखेसे महमूदाबादका पता भी नष्ट हो गया। दूसरे कागज पर लिख भेजो।

शिमलामे अपना मकान है, केवल इसीलिए ग्रीष्मकाल वही बिताना निश्चय ही "मूर्खता" है। तुम्हे गर्मीके लिए दूसरा पहाडी स्थल ढूंढना चाहिए, जहाँ तुम वास्तवमे स्वास्थ्य-सुधार कर सको।

अहिंसाका एक गुण याद रखो। अहिंसा बोलती कम है, सादे ढगसे चुपचाप कार्य करती रहती है। यह बुद्धिको नही छूती, सीधे हृदयको भेदती है। अहिंसा जितनी ही बोलती या तर्क करती है उतना ही उसका प्रभाव कम होता जाता है। पैरवीके अभावमे मुकदमा हार जाने से मत डरो। प्रत्यक्ष हारमे वास्तविक जीत निहित हो सकती है। बोलना बहुधा कमजोरीका लक्षण होता है।

यदि शम्मी तुम्हारे लिए मास खाना आवश्यक बताते है तो इसे आजमा कर देखो। यदि इस समय झुकना ही कर्त्तव्य है तो इससे तुम्हारे निरामिषाहारकी नीव और पक्की हो जायेगी।

सप्रेम,

डाकू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५९४) से; सौजन्य. अमृतकौर। जी० एन० ६४०३ से भी

४०७. पत्र : जे० सी० कुमारप्पाको

२६ मितम्बर, १९३६

प्रिय कु०,

जाजूजीने अपना त्यागपत्र भेजा है। लिखा है कि यदि मेरी सहमति हो तो इसे समितिके सामने रख देनेके लिए तुम्हे दे दूं। मैं इस सम्भावना पर बहुत खुश नही हूँ। हालांकि जाजूजीमे अपनेको नई परिस्थितियोके अनकूल ढाल लेनेकी काफी क्षमता है, छोड़नेका यह ..[1] ढग ...[2] मैं नही समझता कि उनका हटना सबके हितमे होगा। मैं चाहता हूँ कि तुम स्थिति पर केवल इसी दृष्टिसे विचार करो। भारतनके साथ मशविरा कर लो, फिर मुझे अपना मत बताओ। अभी मैं इस कागजको रोक रखता हूँ। मैं जाजजीसे भी कह रहा हूँ कि वे इसी दृष्टिसे इसपर विचार करे।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०१११)से।

४०८. पत्र : छगनलाल जोशीको

२६ सितम्बर, १९३६

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। भंगियोकी समस्या ठीक ही सुलझ गई। तुमने जो पत्र माँगा है, सो वापस भेज रहा हूँ।

चन्दूलालके[3] बारेमे आश्चर्य होता है। मैंने तुम्हारे पत्रका वह अश भेज दिया है और उत्तर माँगा है।

तुम्हारा काम अब पटरी पर आ गया होगा। आना ही चाहिए। अब कम लोग रह गये है।

तुम सबसे मिलने की आशा रखता हूँ। मुझे तो केवल कर्त्तव्यवश वहाँ आना है। इसलिए ढोल मत पीटना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५५४०)से।

१ और २. साधन-सूत्रमें यहाँ कई शब्द मिट गये हैं।

३. चन्दूलाल बेचरभाई पटेल, गोंडल राज्यके तत्कालीन शिक्षा-अधिकारी। हरिजन बालकोंको शालाओंमें अलग बैठाने की व्यवस्था पर गांधीजी ने आश्चर्य माना था।

४०९. पत्र : अमतुस्सलामको

२६ सितम्बर, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

तेरा पेन्सिलसे लिखा हुआ खत मैं ही पढ गया। अभी तेरा तार मिला है। डॉ० शाहके नाम खत भेजता हूँ। वे अगर वहाँ न हो तो उनका खत डॉ० जीवराजको तू दिखा सकती है। और कोई जरूरत हो तो मुझे तार करना।

तू मूर्ख है। अपने आप दुखी होती है। जान-बूझकर लोगो पर शक करती है। बुखारमे भाग जानेकी क्या जरूरत थी? चिट्ठी लिखकर कान्तिको क्यो नही बुलाती? सेगाँवमे अभी तुझे या किसीको रखनेकी मेरी हिम्मत नही है। मुझे जरा स्थिर हो जाने दे।

मेरी बात तू क्यो नही मानती?

वारी बम्बईसे बाहर जायेंगे, तब तू क्या करना चाहती है?

बम्बईमें ही तेरे लिए दूसरा बन्दोवस्त करूँ? घरमे कौन-कौन है?

बापूकी दुआ

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५०)से।

४१०. पत्र : क० मा० मुंशीको

२६ सितम्बर, १९३६

भाई मुंशी,

आप काकासाहबके प्रगाढ परिचयमें आ रहे है और इसलिए वे आपकी रचनाओको पढनेका अवसर निकाल रहे है। उन्होने 'पृथ्वीवल्लभ' पढा और मुझसे पढ़कर अपनी राय देनेका आग्रह किया। चार दिन पहले मैंने इसे पढा और अब अपनी राय सूचित कर रहा हूँ। काकासाहब भी इसे पढ लेगे। आपने अपनी अन्य पुस्तके जेलमे ही भेज दी थी, किन्तु मै उनमें से वहाँ कुछ पढ नही पाया। आपने उस समय भी मुझसे राय माँगी थी। 'पृथ्वीवल्लभ' मन लगाकर पढ गया। उसमें से एक भी पात्र मुझे जँचा नही। मुंज-जैसा होने की इच्छा भी नही हुई। ऐसा किसलिए? यदि आप कहे कि पात्र जैसे थे वैसे ही चित्रित किये गये हैं, तो यह बात ठीक नही बैठती। इस पचरगी दुनियामे कुछ तो अच्छे होगे ही। पाखण्डहीन और वफादार कुछ-न-कुछ लोग तो होगे ही। मृणालको तो आपने बिलकुल तोड कर रख दिया, बेचारी

विलास रसनिधिके आगे मोम हो कर रह गई। पुरुष इतने धूर्त हो सकते हैं? और चालीस वर्षकी असुन्दर स्त्री भी पुरुषकी मोहक बातोंमें आकर क्या अपनेको इस प्रकार उसके हाथकी कठपुतली बनने दे सकती है? आदमी किताबें किसलिए पढ़ता है? केवल आनन्द लेने के लिए? कैसा आनन्द? कालिदासने ऐसा नहीं लिखा। शेक्सपियर की छाप भी मेरे ऊपर ऐसी नहीं पड़ी। मैं उनसे कुछ सीख सका। आपसे क्यों नहीं सीख सकता? आपका व्यक्तित्व मुझे प्रिय और आकर्षक लगता है। मैं आपकी तरफ खिंचा हूँ। मैंने आप दोनोंके पाससे बहुत-कुछ पाने की आशा बाँध रखी है। आपकी सर्वोत्तम कृति 'पृथ्वीवल्लभ' ही गिनी जाती है न? मैं उसमें आपके व्यक्तित्वका दर्शन क्यों नहीं कर सका? काकासे इस सवालका जवाब पाने की मुझे आशा नहीं है। वह तो आपसे ही मिल सकता है। किन्तु जवाब तुरन्त देने की कोई बात नहीं है।

अब थोडा मजाक कर लूँ। आपका अन्तिम वाक्य कुछ इस तरहका है "मुजकी देह हाथीके नीचे कुचल कर रोटी-जैसी बन गई।" रोटी शब्द तो ठीक लगा, किन्तु क्या आपने इस बातपर भी विचार किया कि शरीर [कुचलकर] रोटी-जैसा नहीं बन सकता। 'छुंदो'[1]-जैसा बन गया कहे तो ठीक हो भी सकता है। शरीर कुचलकर भुर्ता हो सकता है, चूर्ण बन सकता है, रोटी-जैसा नहीं बन सकता।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७६०६) से; सौजन्य . क० मा० मुंशी

४११. पत्र : प्रभावतीको

२६ सितम्बर, १९३६

चि० प्रभा,

अनियमित होने का तेरे लिए कोई कारण ही नहीं है। खुद अपने में शक्ति आने के पहले तेरी स्थिति मैं जान ही लेना चाहता हूँ।

मेरी शक्ति लौट रही है। इन दिनों खुराक घटा दी है। दूध तीन पावतक लेता हूँ। फलोंमें मोसम्मी, सूखे बेर (प्रून), एकाध बार चीकू और अन्य फल लेता हूँ। आराम ठीक करता हूँ।

तू चाहे जितना सेवा-कार्य क्यों न करती हो, उसमें से आधा घंटा कटि-स्नानके लिए जरूर निकाल सकती है; निकालना। खाने के बारेमें भी लापरवाही नहीं चल सकती, यदि इस ओर ध्यान नहीं दिया तो तू खटिया पकड लेगी।

१. कूट-कूटकर बनाया हुआ लोंदा।

पिताजी के साथ मेरी ठीक बात हो गई। जयप्रकाशको ५० रुपये देना तय हुआ है। इस बारेमें वही अधिक लिखेगा, ऐसा माने लेता हूँ। मीराबहन भी मेरे साथ है। ठीक होती जा रही है। अब वर्षा समाप्त हो गई, ऐसा लगता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४८२) से।

४१२. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
२७ सितम्बर, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

अगर लहसुन अच्छी तरह चबाया न जाये तो बिना हजम हुए ही निकल जायेगा। इसलिए उसे खूब कूट लेना चाहिए। रातको सोने से ठीक पहले एक औंस दहीके साथ लहसुन ले लो या खाते समय ही।

देहातियोंके लिए अपनी रेडियो-वार्त्ताकी एक प्रतिलिपि मुझे भेजो।

तुम मेहरताज और मरियमके लिए जो इतना-कुछ कर रही हो, उसके लिए खान साहब विशेष रूपसे धन्यवाद कहलाते हैं। मुझे खुशी है कि वे तुम्हारे प्रभावमें आ रही हैं।

क्या नवीन तुम्हें कभी पत्र लिखता है?

बहुत देर हो गई है, अधिक नहीं लिखूंगा।

सप्रेम,

डाकू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७४४) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६९०० से भी

४१३. पत्र : अमतुस्सलामको

२७ सितम्बर, १९३६

चि० अमतुल,

तुझे खुश करना बहुत मुश्किल है। मैंने तुझे रोज खत लिखा है। पहला पता तूने पोस्ट मास्टरका दिया, वहाँ खत भेजा। बादमें ईस्टर विलाके पतेपर भेजा। तुझे खत न मिले, सो भी मेरा कसूर है? जो मेरे वसका न हो वह काम अगर मैं न कर सकूँ, तो वह भी मेरा कसूर? बोल, अब तुझे कैसे रिझाऊँ?

डॉ० गिल्डरको अभी दिखाने की जरूरत मैं नहीं मानता। एक को ठीक से आजमा लेनेंके बाद हम दूसरे के पास जायें, यही हमारे लिए ठीक रहेगा। यदि तू चाहे तो मैं डॉ० गिल्डरको भी लिख दूँगा। डॉ० जीवराजसे तू मिले तो उन्हें और जिसे दिखाना ठीक लगे, उसे दिखा सकती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५१) से।

४१४. पत्र : अमतुस्सलामको

२७ सितम्बर, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

तेरा कार्ड मिला। तुझे दुःख भोगना पड़ता है, यह मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता। लेकिन इसका क्या उपाय? जब तू डॉ० शाहके यहाँ जाती है, तब तेरे साथ कोई रहता है? वे बराबर ध्यान तो देते हैं न? तू मुझे बराबर ब्योरेवार लिखती रहना। बारी है या गये? तू अपने-आप जो दुःखी होती है, इसका तो कोई इलाज नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५२) से।

४१५. पत्र : लीलावती आसरको

२७ सितम्बर, १९३६

चि० लीलावती;

यदि मैं तुझे तेरे पूरी 'गीता' लिख लेनेपर ही बुलाना चाहूँ तो तुझे रोज सौ श्लोक लिखने को कहूँगा और इससे 'गीता' का बहाना भी समाप्त हो जायेगा। मुझे शान्ति भग होने का भय लगता है। मैं यह भी नही कहना चाहता कि कसर तुझमें ही है। किन्तु तू तो केवल चरित्र-गठनके लिए ही मेरे साथ रहना चाहती है; इसलिए मैंने तुझसे अधिकसे-अधिक आशा रखी है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९५८१) से। सी० डब्ल्यू० ६५५३ से भी; सौजन्य : लीलावती आसर

४१६. पत्र : महादेव देसाईको

२७ सितम्बर, १९३६

चि० महादेव,

इस पत्रके साथ गाडोदियाका २०० रुपयेका चेक भेज रहा हूँ। इसे फिलहाल तो सेगाँव-खातेमें जमा करवाना है। इसे जमनालालजी के यहाँ ही तो भेजा जायेगा न?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४८५) से।

४१७. पत्र : लक्ष्मीनारायण गाडोदियाको

२७ सितम्बर, १९३६

भाई लक्ष्मीनारायणजी,

दोनो जल-चिकित्सामे तल्लीन हो गये है यह देखकर मुझको बड़ा ही आनद होता है। ऐसे ही भले हमेशा चलता रहे। ऐसी एक शुद्ध पारमार्थिक प्रवृत्ति मिल गई है जिसमे दोनोकी इतनी श्रद्धा जमी हुई है और जिसमें दोनोकी शक्तिका एक-सा व्यय हो सकता है यह मुझको बहुत ही कल्याणकर प्रतीत होता है। प्रात कालका कटिस्नान जब मलेरिया हुआ तब भी करता था। घुमने [का] भी होता था। अब कटिस्नान तो चल रहा है। लेकिन समय दस बजेका कर लिया है। प्रात.कालकी प्रार्थना के बाद मै सो जाता हू। दस बजे कटिस्नान के बाद घूमने का नही बनता है। यो तो दिन-भर मे दो दफा घूम लेता हूँ। घर्षण-स्नान नही बन सकता है। क्योकि आदत छूट जाने से गुह्येंद्रिय की चमडी जैसी ऊपर लानी चाहिये वैसी नही जा सकती है। जब आप लोगोका पहिला पत्र आया था तब ही मैंने प्रयत्न कर लिया था। चमडी है तो अविच्छिन्न और बरसों के पहले मैं घर्पण-स्नान करता भी था। सोने के समय पेट ऊपर मिट्टी बांधने का मैंने आरभ नही किया है। पहले तो मै बहुत दफा मिट्टी का प्रयोग करता था। अब कुछ और कारण नही तो भी आप लोगोके प्रेमके कारण मिट्टी का भी प्रयोग कर लूगा। नैसर्गिक उपचार करनेवाला कोई सज्जन मुझे मिल जाय तो मै अवश्य अपने साथ रक्खू और लोगोमे उसका प्रचार करु। ऐसा सज्जन अबतक तो नही मिला है। जितने हिंदुस्तान मे है उनमें से अधिकतर ने जल-चिकित्सा को पैसे कमाने का साधन कर रक्खा है। आपके मौलवी साहब-जैसे थोड़े है। वे अपने धंधे में से मुक्त नही हो सकते है। ऐसी हालत में क्या किया जाय? २०० रुपयेका चेक मिल गया है। देखू सेगांव मे उसका क्या उपयोग कर सकता हूं। सेगांव मे तीन चोथाई हिस्सा जमनालालजी का है। सेगाव में जो-कुछ भी द्रव्य उनको मिल जाता है वह सब-का-सब सेगांववासियो की सेवा के लिए खर्चने का अधिकार मुझको दे रक्खा है और वह द्रव्य पर्याप्त है ऐसा मानता हूं। ऐसी हालत मे आपके २०० रुपये का खर्च सेगांववासीयों के हितार्थ कब और कैसे कर सकूगा यह सब इस समय तो बता नही सकता।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ५६२४) से।

४१८. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

सेगाँव, वर्धा
२८ सितम्बर, १९३६

चि० अमला,

तुमने तो गुजरातीमें इतनी प्रगति कर ली है कि मुझे लोभ हुआ कि तुम्हारी जो कुछ-एक भूलें हैं, उन्हें सुधार दूँ।

मैं बिलकुल ठीक हूँ। तुम भी अपने लिए ऐसा दावा कर सकती तो क्या बात थी!

आशा करता हूँ कि तुम्हें शीघ्र ही अपनी माताजी के विषयमें और उनकी ओरसे भी अच्छे समाचार मिलेंगे।

खानेके मामलेमें अपने साथ कंजूसी मत करो। तुम्हें खूब फल और सलाद खाना चाहिए।

जिस मित्रसे तुम्हारा तात्पर्य है, वह भली प्रकार है।

सप्रेम,

बापू

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

४१९. पत्र : नारणदास गांधीको

२८ सितम्बर, १९३६

चि० नारणदास,

सन्देश संलग्न है। मातुश्रीसे[1] कहना कि मैं उनकी और पिताजी की[2] गोदमें सिर रखने के लिए बच्चेकी तरह व्याकुल हूँ। अहमदाबाद तक जाऊँ और उनके दर्शन न करूँ, यह असह्य जान पड़ता है। इसलिए यदि प्रभुकी इच्छा हुई तो समझो कि मैं जरूर पहुँचूँगा। तिथि २७ के आसपास की होगी।

तुम्हारा काम तो २ से १२ तारीखके बीचमें कोई आये, तभी चलेगा। मैं सोच रहा हूँ। तुम्हारे मनमें कोई दूसरा नाम हो तो तारसे भी सूचित कर सकते हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ८५०६ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१ और २. देवकुँवर और खुशालचन्द गांधी

४२०. पत्र : महादेव देसाईको

२८ सितम्बर, १९३६

चि० महादेव,

इसके साथ तीन लेख भेज रहा हूँ। इनमे जो पसन्द न आये उसे रद कर सकते हो। मनमें जो सोच रखा था उसे लिख डाला। ८ वजे कलम ली थी और १० वजे छोडी। फाइल साढे सात वजे हाथमे ली थी। हार्डिकरका लेख पढने और ठीक करने मे, राजाके लेखका सक्षेप करने मे और मदुरईके जजोके निर्णयमें मे जरूरी अश छाँटने मे[1] आधा घटा लग गया।

नारणदासको किसी नामाकित सार्वजनिक कार्यकर्त्ताकी जरूरत है। किसे भेजें? तुम्हे कोई नाम सूझता है क्या? काका, जाजूजी, कुमारप्पा, लक्ष्मीदास, मलकानी — इनमे से किसीकी बात सोच सकते हो? क्या बापा जा सकेंगे? क्या कोई बहन ध्यान मे है? मीरा अच्छी हो जाये तो उसे ही भेज दे।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

मगनका पत्र[2] हवाई डाकसे भेजना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४८६) से।

४२१. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

२८ सितम्बर, १९३६

चि० ब्रजकृष्ण,

तुमको डेकाके बारेमे मेरा खत[3] मिल गया होगा। मुझको अच्छा है। अमतुस्सलाम यहा नही है। मगनवाडीमे दो-तीन दिन रही। सेगावमे कभी नही। अब मुंबईमे है, माताजी के बारेमे तो मैंने तुमारे महादेव परके खतमे ही पढ लिया था। अब अच्छा होगी। तुमारी तबीयत कैसी है?

तुमको मेरे खत मिलते जाते है ना?

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २४४३) से।

१. देखिए "जंगलीपनका अवशेष", ३-१०-१९३६।
२. मगनलाल पी० मेहता को लिखा यह पत्र उपलब्ध नहीं है।
३. देखिए पृ० ३३४।

४२२. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
२९ सितम्बर, १९३६

मूर्खा रानी,

तुम्हारे दो पत्र एक साथ मिले।

खान साहब बहुत प्रसन्न है कि तुम लडकियोका इतना ध्यान रख रही हो।

तुम्हे अब शम्मीकी बात मान लेनी चाहिए और जिस प्रकारका मास वे बताये, खाना चाहिए। अभी झुकने मे तो शोभा है। परन्तु यदि परिस्थितिसे विवश होकर मानोगी तो बिलकुल भी शोभा नही रहेगी। और तब कोई सयम सम्भव नही होगा। यह कोई तर्क नही है कि चूँकि जब तुम मास खाती थी तब भी बहुत अल्प मात्रामे ही खाती थी, इसलिए मास खाने से तुम्हारे शरीर पर कोई प्रभाव नही पडेगा। तुम्हे धार्मिक दृष्टिसे तो कोई आपत्ति नही है, इसलिए मै चाहता हूँ कि मेरा कहना मानकर फौरन शम्मीसे कह दो कि जो-कुछ खुराक उचित समझे, बताये। घूमना-फिरना शुरू करने से पहले तुम्हारा एक्जीमा ठीक हो जाना चाहिए।

मै देखता हूँ कि दिसम्बरमें तुम मेरे पास नही आ सकती। देखे, जनवरी और फरवरीमे क्या सम्भव है। परन्तु यदि तुम्हारा अहमदाबाद आना सम्भव हो तो काग्रेस-अधिवेशनके समय फैजपुर भी आना होगा। तुम जालधर कब जाओगी?

शिमलामें ही अपने लिए अलग एक छोटा-सा घर बनवाने का तुम्हारा विचार असगत कल्पना है। यदि ऐसा घर हो तो तुम तो चूर-चूर हो जाओगी। तुम्हारे शरीरमें इतनी शक्ति नही कि मेहमानोका ताँता बँधा रहे और तुम आतिथ्य करती रहो। मीराका बुखार तो उतर गया परन्तु वह अभी पूरी तरह ठीक नही हुई है। दो-चार दिनोमे बिलकुल ठीक हो जायेगी। मेरी शक्तिमे धीरे-धीरे वृद्धि हो रही है।

कटि-स्नान चालू रखना और घर्पण-स्नान भी लेकर देखो। यह कैसे किया जाता है, सो मै तुम्हे समझा चुका हूँ। तिपाईपर पानीके बाहर पाँव रखकर बैठो। पानीकी सतह तिपाईके समान हो और हलके-हलके एक मुलायम तौलियेसे गुप्ताग पोछो। इसका अद्भुत लाभ बताया जाता है। यह स्नान अलगसे लेना चाहिए।

सप्रेम,

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७४५) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६९०१ से भी

४२३. पत्र: नारणदास गांधीको

२९ सितम्बर, १९३६

चि० नारणदास,

मुझे मेरे जन्म-दिनका भान ही नही होता। मैं तो उसे केवल चरखा-जयन्तीके रूपमें ही देखता हूँ। तुम भी इस दिनके प्रति जो दिलचस्पी रखते हो वह इसलिए नही कि तुम मेरे आत्मीय हो वल्कि इसलिए कि चरखा मुझे जितना प्रिय है, उतना ही तुम्हे प्रिय है और तुम उसे अपने आसपास अधिक गतिशील वना सकते हो। आजके शिथिल वातावरणमे यह एक कठिन काम है। नीरस भी कहा जा सकता है। अविचल निष्ठा कठिनको सरल और नीरस लगनेवाली वातोको सरल वना देती है। तुम्हारी श्रद्धा तुम्हारे वातावरणको चरखेकी शक्ति समझने में समर्थ बनाये !

वापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८५०७ से भी; सौजन्य: नारणदास गाधी

४२४. पत्र: जयकृष्ण पी० भणसालीको

२९ सितम्वर, १९३६

चि० भणसाली,

तुमने महादेवकी वात मानकर मेरे पास मानो गुफामें आकर वैठ जानेका विचार छोड़ दिया, यह तो वहुत ही अच्छा किया। तुम जहाँ हो वही तुम्हारी गुफा है। एक और वात सुनो। तुम्हारी वगलमें जो फोड़ा है उसमें शायद केवल मिट्टीसे लाभ न हो सके। सामान्य पोलटिस लगा लेने दो; इसके न पकनेका मैं कोई कारण नही देखता।

वापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

४२५. पत्र : अमतुस्सलामको

सेगाँव, वर्धा
३० सितम्बर, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

तेरा खत तरंगोसे भरा है। तू न भाइयोकी वात मानती है, न मेरी। झोपडी क्यो? ऊटी क्यो जाना चाहिए? सेहत वम्वईमे ही सुधारनी चाहिए। माँ का घर सच्ची झोपडी है। डॉ० शाह जो मेरे खतसे नही करते है, वह अगर पैसेसे करेगे तो मुझे नीचा देखना होगा। उनको जो ठीक लगता है वह करते है, ऐसा समझकर उनसे इलाज करवाना चाहिए। यही मेरी सलाह है। वे नाकका पूरा इलाज कर ले; वादमे होमियोपैथीका इलाज कराना हो तो जरूर कराना।

तेरे उर्दू खत कही खोये तो नही ही है। मैने जवाव तो दिये ही है। मेहरताज वही वकीलके स्कूलमे पढेगी। लाली पचगनी हाई स्कूलमे गया है। अगर तू धीरज नही छोडेगी, तव तो सव ठीक हो जायेगा। तू अगर राजकोट जाना चाहे तो वहाँ की हवा अच्छी है। वालकृष्ण आजकल वहाँ रहते है। उनको ठीक लगता है। तेरा खत मैने खुद पढ़ा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५३) से।

४२६. पत्र : लीलावती आसरको

३० सितम्वर, १९३६

चि० लीला,

तेरी लीला अपरम्पार है। कल तूने लिखा, "मिलूंगी तव वात करूंगी।" आज लिखती है, "आपका पत्र नही मिला।" अक्षर भी कितने खराव? तू चाहे तो अभी राजकोट मत जा। जव हम काशी जाये जव तू वहाँ चली जाना और जव हम अहमदावादसे निकले तव राजकोटसे हमारे साथ हो लेना। तू यही चाहती है न?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४८७) से।

४२७. पत्र : अमृतकौरको

सेगांव, वर्धा
१ अक्तूबर, १९३६

मूर्खा रानी,

दाँतका दर्द ठीक हो जाने की खबर देते हुए तुमने जो छोटा-सा पत्र लिखा, उसे देखकर मुझे खुशी हुई। मैं दन्त-चिकित्सककी रिपोर्टका बेसब्रीसे इन्तजार करूँगा।

आखिरकार टूट न सकनेवाला थर्मस आ ही गया। देखें, यह भी दूसरे थर्मसों की गतिको कब प्राप्त होता है।

आधेसे ज्यादा सेब खाने लायक नही थे। जाहिर है, अब वे इतने पिलपिले पड गये हैं कि यहाँ-वहाँ भेजने लायक नही रह गये हैं। इस तरह पैसा बहाने में कोई मजा आता है क्या? तुम इस तरह जितना पैसा बचा लोगी, सब मेरे खातेमे क्यो न जमा करा दो। जरूरत पडनेपर उससे अच्छे फल खरीदे जा सकते है। प्रस्ताव इतना सटीक है कि एक मूर्ख तकको पसन्द आ जाना चाहिए!!!

अभी तो मैं तुमको इससे ज्यादा समय नही दे सकता, क्योंकि मुझे नानावटी[1] की देखभाल करनी है। वह बुखारमे पड़ा है और बुखार किस किस्मका है, यह मैं अबतक समझ नही पाया हूँ।

सस्नेह,

डाकू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७४६) से, सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६९०२ से भी

४२८. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१ अक्तूबर, १९३६

चि० प्रेमा,

तेरे दोनो पत्र मिले। अन्तिम पत्र कल मिला। उसके पहले दिन मुझे अच्युत पटवर्धनको इनकार लिखना पडा। नारणदासने रेंटियाबारसके[2] लिए माँग की थी। उसे भी स्वीकार नही कर सका। अब क्या तू चाहती है कि तेरे लिए अपवाद करूँ। तू समझ ले कि अभी खान साहबका सार्वजनिक भाषणो आदिके लिए कही न

१. अमृतलाल नानावटी।

२. चरखा-द्वादशी, भारतीय पर्चांगके अनुसार गांधीजी की जन्म-तिथि।

निकलना ही हमारे आदर्शकी दृष्टिसे अच्छा है। हम दोनो धीरे-धीरे एक-दूसरेको पहचान रहे हैं। तो मैं मुक्त हूँ न?

तेरे पहले पत्रका उत्तर तो फुरसतसे दिया जा सकेगा। अभी तो ढेर-का-ढेर काम निकल आया है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

तू किसी बहनकी खोज कर। खुर्शीदबहनको फुसला।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३७८८) से।

४२९. पत्र : एफ० मेरी बारको

१ अक्तूबर, १९३६

चि० मेरी,

बस, अब सोने जा रहा हूँ। यह पंक्ति बस तुम्हारे दो प्रेम-पत्रोंकी प्राप्ति-सूचना देने के लिए। बड़ी मजेदार बातें लिखी हैं तुमने।

तुम दोनोको स्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०६८) से। सी० डब्ल्यू० ३३९८ से भी; सौजन्य : एफ० मेरी बार

४३०. पत्र : महादेव देसाईको

[२ अक्तूबर, १९३६ के पूर्व][1]

चि० महादेव,

तुम जब आये तब काफी देर हो गई थी, फिर भी तुम्हे लौट जाना पड़ा, यह मुझे बिलकुल अच्छा नही लगा। किन्तु तुमसे ठहर जाने का आग्रह करने की हिम्मत भी नही पड़ी। नतीजा यह हुआ कि तुम दोनो खूब थक गये और रातके ११ बजे पहुँचे। इस मौसममें रातको किसीको यहाँ सुला लेने की मेरी इच्छा नही होती। नानावटीको लगातार बुखार बना हुआ है। मलेरिया नही है; हो सकता है, टाइफायड हो। मैं उससे पार पा लूँगा। वहाँसे डॉक्टर भेजने की जरूरत नहीं है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४९७) से।

१. देखिए "पत्र : महादेव देसाईको", २-१०-१९३६।

४३१. पत्र : अमतुस्सलामको

सेगांव, वर्धा
२ अक्तूबर, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

तेरा पत्र मिलते ही जवाब दे रहा हूँ। साथमें वदूदके[1] लिए भी एक पत्र[2] है। उसमें तुझे मेरी सलाह मिलेगी। मैं जल्दीमें हूँ इसलिए ज्यादा नहीं लिखता। तू विचारपूर्वक कदम उठाये तो अच्छा होगा। तुझे वहुत-से रोग हैं। नखका इलाज तुरन्त करना ही चाहिए। नाकके बारेमें शाह जैसा कहे वैसा करना ठीक होगा। लेकिन यदि तुझे होमियोपैथीका इलाज कराना हो तो वही करा। अहमदाबादमें बहुत-से डॉक्टर हैं और राजकोटमें भी हैं। अगर वर्धा तुझे पसन्द ही न आये तो मेरी नजर तो राजकोट पर जाती है। वहाँ तू सुखी होगी, तेरा मन शान्त रहेगा। तुझे किस तरह शान्ति और सुख दूँ, यही विचार मुझे परेशान करता रहता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५४) से।

४३२. पत्र : लीलावती आसरको

२ अक्तूबर, १९३६

चि० लीला,

तू लीलावतीसे लीला कैसे हो गई, यह तो तूने देख लिया। अब तू लिली बने, उससे पहले मुझे योग्यता हासिल करनी पडेगी। यदि मुझमें योग्यता होती तो मुझे तेरे साथ बहस थोडे ही करनी पडती। सगे हुए बिना सगा बन पाना कठिन होता है। कागजके बारेमें जो तुझे ठीक लगे सो करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९५८२) से। सी० डब्ल्यू० ६५५४ से भी; सौजन्य . लीलावती आसर

१. अमतुस्सलाम का भतीजा।
२. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

४३३. पत्र : महादेव देसाईको

सेगाँव
२ अक्तूबर, १९३६

चि० महादेव,

अपने सन्तोषके लिए यदि तुम डॉक्टरको लाना चाहो तो ले आना। अमतुलका पत्र आज चला जाये तो अच्छा हो। बाकी सब तुम्हारे आनेपर। अभी तो यहाँ राजेन्द्र बाबू आदिकी मण्डलीके सब लोग जमे हुए है। नानावटीका बुखार अभी नही उतरा, लेकिन वह प्रसन्न है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४८९) से।

४३४. पत्र : महादेव देसाईको

२ अक्तूबर, १९३६

चि० महादेव,

क्या कवीश्वर-सम्बन्धी फैसला 'टाइम्स' मे मिला? 'हरिजन', 'हरिजनबन्धु' और 'हिन्दुस्तान टाइम्स' नवीनको भेजे जाते है न? कान्तिने भी तो माँग की है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४९०) से।

४३५. जंगलीपनका अवशेष

हमारा यह रोजका दुःखद अनुभव है कि हिन्दुस्तानमे ऐसे बहुत-से पति है, जो अपनी पत्नियोको पशुधन या अन्य किसी माल-असबाबकी तरह एक प्रकारकी सम्पत्ति समझते है और इसलिए ऐसा मानते है कि उन्हे अपनी स्त्रियोको उसी तरह मारने-पीटने का हक है, जिस तरह वे अपने पशुओको मारते है। मगर मुझे स्वप्नमे भी यह खयाल नही था कि अदालते भी इस पाशविक आदतका समर्थन करेगी। यह तो एक मित्रने मेरे हाथमें जब एक अखबारकी कतरन दी, तब मुझे पता चला। इसमें मदुरईके एक सेशन जजका फैसला था, जिसमें उन्होने यह स्वीकार किया था कि पतिको कानूनन यह हक है कि वह अपनी पत्नीको पीट सकता है। सद्भाग्यवश मामलोकी फेहरिस्तको देखते-देखते अचानक एक अंग्रेज जजने मदुरईके सेशन जजके इस

विचित्र निर्णयका किस्सा पढ़ा और फौरन अभियुक्त पतिने नोटिस द्वारा पूछा कि वह अपने अपराधका कारण बताये। यथासमय मामला न्यायमूर्ति पाण्डुरंगराव और के० एस० मेननके सामने पहुंचा और उन्होंने इसपर अपना फैसला दिया। नीचे मैं इसका जरूरी हिस्सा[1] देता हूं :

> ... शायद इस मामलेमें इतना ही कहना काफी होगा कि यद्यपि विद्वान् जजको इस विषयमें व्यक्तिगत रूपसे, वे जैसी चाहे, वैसी राय रखने का अधिकार था, पर न्यायासन पर बैठकर यह घोषणा करना उनके लिए उचित नहीं था कि अगर स्त्री बेहूदा बरताव करे, और किसी तरह बदतमीजीसे पेश आये, तो पतिको यह हक हासिल है कि उसे पीटे और इस तरह सजा दे। ताजीराते हिन्दमें ऐसा कोई हक स्वीकार नहीं किया गया है और न सामान्य अपवादोंमें पत्नीको पीटने के हकका ही कहीं जिक्र है।
>
> अगर यह अदालत इस फैसलेको निराधार और गलत न करार दे तो कोई भी यह कल्पना कर सकता है कि सेशन जजके आसनसे किये गये ऐसे ऐलान का कितना भारी दुष्परिणाम हो सकता है। इसलिए हमें यह जरूरी लगा कि हम साफ-साफ शब्दोंमें कह दें कि विद्वान् जजने पतिका इस मामलेमें जो हक बताया है, वह सर्वथा निराधार है, ताकि भविष्यमें इस फैसलेकी आड़में या इसके भरोसे कोई अपनी पत्नीको पीटे नहीं।

बडी शर्मके साथ हमे यह कबूल करना पडता है कि पढ़े-लिखे पतियोके दिमागसे भी यह खयाल हटा नही है कि उन्हे यह हक है कि वे अपनी स्त्रियोको माल-असबाबकी तरह अपनी सम्पत्ति मानकर उनसे चाहे जैसा व्यवहार कर सकते हैं और जब दिलमे आये, पीट भी सकते हैं। क्या ही अच्छा हो, अगर इस फैसले से वे समझ जायें कि स्त्रियोके साथ यह बरताव तो हमारे जंगलीपनका अवशेषमात्र है!

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३-१०-१९३६

१. यहाँ कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

४३६. हिन्दू-धर्मकी शिक्षा

इग्लैंडमे कैनन शेपर्डके नेतृत्वमे चलनेवाले शान्ति-आन्दोलन पर हालमें ही लिखे गये मेरे लेखोके[1] सिलसिलेमे एक मित्र लिखते है :

> मेरा तो यह मत है कि 'गीता' का उपदेश जिस सन्दर्भमें दिया गया है उसका, तथा श्रीकृष्ण और अर्जुनकी प्रारम्भिक बातचीतका विचार न करे, तो भी हिन्दू-धर्म निर्णयात्मक रूपसे यह नहीं कहता कि जहाँ सुसंगठित आक्रमणके प्रतिरोधका सवाल हो वहाँ भी अहिंसासे ही काम लिया जाये। अपने तमाम उत्कृष्ट धर्मग्रन्थोकी ऐसी अहिंसापरक व्याख्या करने में तो हमें बहुत अधिक खींचतान करनी पड़ेगी। निःसन्देह, दया-भाव अथवा प्रेम-भावको हिन्दू-धर्मने सबसे ऊँचा धर्म बताया है। पर उसका भाव, आप या ये शान्तिवादी जो उपदेश दे रहे हैं, वह तो हरगिज नहीं है। और इस उद्देश्यसे हर चीजको रूपक बना देना तो ठीक नहीं होगा।

मैंने अपनी 'अनासक्तियोग' नामक 'गीता'की भूमिकामे[2] यह स्वीकार किया है कि 'गीता' कोई अहिंसाका प्रतिपादन या युद्धकी निन्दा करने के लिए लिखा हुआ ग्रन्थ नही है। निःसन्देह वर्तमान हिन्दू-धर्म भी युद्धका ऐसा निषेध नही करता जैसा कि मैं कर रहा हूँ। और जहाँतक हमे पता है, जिस रूपमे हिन्दू-धर्मका पालन भूतकालमें किसी भी समय किया जाता रहा है, उसमे भी युद्धका ऐसा निषेध नही है। पर मैंने तो केवल 'गीता' की शिक्षा और हिन्दू-धर्मके सिद्धान्तोका एक नवीन किन्तु स्वाभाविक और न्यायसगत अर्थ जनताके सामने पेश किया है। और धर्मोकी बात छोड भी दे, पर हिन्दू-धर्म तो निरन्तर विकास करता आया है। 'कुरान' या 'बाइबिल' की तरह उसका कोई एक निश्चित धर्मग्रन्थ नही है। उसके धर्मग्रन्थोमें विकास और वृद्धि होती रही है। खुद 'गीता' को ही लीजिए। उसने कर्म, सन्यास, यज्ञ इत्यादिका बिलकुल भिन्न अर्थ प्रतिपादित किया है। हिन्दू-धर्मके अन्दर उसने नया जीवन डाल दिया है। आचारका उसने एक मौलिक नियम बताया है। 'गीता' मे जो कहा गया है वह पुराने धर्मग्रन्थोमें अन्तर्निहित नही था, ऐसी बात नही है। किन्तु 'गीता' ने उन भावोको प्रकट रूपसे भाषाबद्ध कर दिया है, जो उन ग्रन्थोमे गर्भित थे। मैंने ससारके कई धर्मोका श्रद्धापूर्वक अध्ययन और मनन किया है, और खासकर 'गीता'-प्रतिपादित हिन्दू-धर्मके पालनका अपनी शक्ति-भर पूरा यत्न भी किया है। अपने इस अध्ययन और अनुभवके आधार पर, किन्तु किसी प्रकारकी

१. देखिए "अहिंसा परमो धर्म.", ५-९-१९३६ और "हमारे अस्तित्वका नियम", २६-९-१९३६।
२. देखिए खण्ड ४१, पृ० ९२-९।

खींच-तान किये बिना, हिन्दू-धर्म का एक व्यापक और विशाल स्वरूप जनताके सामने रखने का मैंने यत्न किया है। यह इस धर्मका वह रूप नहीं है जो इनके अगम्य धर्मग्रन्थोंमें दबा पड़ा है, बल्कि वह सजीव रूप है, जिसका दर्शन अपने दुःखी बालकको सान्त्वना देनेवाली मातामें होता है। और मेरा यह दावा है कि इनमें मैंने कोई नयी बात नहीं की, अपने पूर्व पुरुषोंके चरण-चिह्नोंका ही मैंने इसमें अनुगमन किया है। हम जानते हैं कि एक समय हमारे पूर्वज शुद्ध देवी-देवताओंको प्रसन्न करने के लिए यज्ञमें प्राणियोंकी बलि देते थे। उनके वंशजोंने, जो कि हमारे नजदीकी पूर्व-पुरुष थे, 'यज्ञ'का भिन्न अर्थ किया। उन्होंने यह बताया कि यज्ञमें बलिदान प्राणियोंका नहीं, हमारे अधम विकारोंका हो और वह शुद्ध देवी-देवताओंको प्रसन्न करने के लिए नहीं, बल्कि अपने अन्तस्तलमें विराजमान प्रभुको प्रसन्न करने के लिए हो। मेरा तो यही मत है कि 'गीता'-धर्मकी निश्चित शिक्षा यही है कि हम सब शान्तिकी उपासना करें, चाहे इसके लिए हमें अपने प्राण भी अर्पण कर देने पड़ें। मानव-जातिकी यह सर्वोच्च आकांक्षा है।

'महाभारत' और 'रामायण' दो ऐसे ग्रन्थ हैं जिनको करोड़ों हिन्दू जानते हैं और अपने मार्ग-दर्शनके लिए पढ़ते भी हैं। वे रूपक हैं, यह तो भीतरी प्रमाणसे ही सिद्ध है। माना कि उनमें अधिकांशमें ऐतिहासिक व्यक्तियोंका ही वर्णन है। पर फिर भी इससे मेरे पक्षको कोई बाधा नहीं पहुंचती। प्रत्येक महाकाव्यमें सत् और असत् शक्तियोंके बीच चलनेवाले सनातन संघर्षका वर्णन होता है। जो भी हो, यह तो मैं स्वीकार नहीं कर सकता कि मैंने पहलेसे अपने कुछ विचार बना लिये हैं और उनका समर्थन करने के उद्देश्यसे मैं हिन्दू-धर्म या 'गीता'की खींच-तान करना चाहता हूँ। मैं तो कहता हूँ कि मेरे विचार वास्तवमें 'गीता', 'रामायण', 'महाभारत' और उपनिषदोंके ही अध्ययनका परिणाम हैं।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३-१०-१९३६

४३७. स्वैरताकी ओर

एक युवकने लिखा है :

संसारका कायाकल्प करने के लिए आप चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य सदाचारी बन जाये। परन्तु आपकी बात ठीक-ठीक मेरी समझमें नहीं आ रही है। आखिर इस सदाचारसे आपका क्या अभिप्राय है? यह केवल यौन प्रवृत्तियों तक ही सीमित है या इसमें मनुष्यके समस्त आचरणका समावेश होता है? मुझे तो ऐसा शक है कि सदाचारकी आपकी बात केवल यौन प्रवृत्तियों तक ही सीमित है, क्योंकि आप अपने पूंजीपति और जमींदार दोस्तोंको तो कभी यह बताने का कष्ट नहीं करते कि वे किस तरह अन्यायपूर्वक मजदूरों

और किसानोंका पेट काट-काटकर अपनी जेबें भरते रहते हैं, लेकिन युवकों और युवतियोंकी यौनाचार-विषयक गलतियोंपर उनकी निन्दा और ताड़ना करते हुए आप कभी थकते नहीं, और सदा उनके सामने ब्रह्मचर्य-व्रतका आदर्श उपस्थित करते रहते हैं। आप भारतीय युवकोंका मानस समझने का दावा करते हैं। मैं किसीका प्रतिनिधि होने का दावा नहीं करता, लेकिन एक स्वतन्त्र युवकके नाते मैं आपके इस दावेको चुनौती देने का साहस करता हूँ। आजके मध्यम वर्गका युवक-समुदाय किन परिस्थितियोंसे गुजर रहा है, लम्बी बेकारी, जीवनको कुचलनेवाले सामाजिक रीति-रिवाजों और सह-शिक्षणसे उत्पन्न प्रलोभन उसकी कैसी दुर्दशा कर रहे हैं — इसकी सही और पूरी जानकारी आपको है, ऐसा मालूम नहीं होता। यह सब पुराने और नये विचारोंके बीच चल रहे संघर्षका परिणाम है और इसमें युवकोंके पल्ले सामान्यतया दुःख और पराजय ही आई है। मैं आपसे नम्रतापूर्वक अनुरोध करता हूँ कि आप युवकोंके प्रति दया-भावसे काम लें और उन्हें आचारकी अपनी अतिशय शुद्धतावाली कसौटीपर न कसें। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि यदि भोगतृप्ति दोनोंकी सहमति और पारस्परिक प्रेमके साथ की जाये तो वह नैतिक ही है, चाहे वह विवाहके दायरेमें, यानी अपनी पत्नीके साथ हो या उसके बाहर। सन्तति-नियमनके कृत्रिम उपायोंकी शोधके बाद विवाहकी प्रथाका यौन आधार नष्ट हो गया है। अब तो उस प्रथाकी उपयोगिता इतनी ही रह गई है कि उससे सन्तानकी रक्षा और उसके कल्याणका ध्येय सधता है। ये बातें सुनकर शायद आपके दिलको चोट पहुँचेगी; पर मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि आजकलके युवकोंको भला-बुरा कहते समय कृपया अपनी युवावस्थाको आप मत भूलिए। आप स्वयं क्या कम कामी थे? आप कितना विषय-भोग करते थे? सम्भोगके प्रति आपकी यह घृणा शायद आपकी इस अति का ही परिणाम है। इसीलिए अब आप ऐसे संन्यासी बन रहे हैं और इसमें आपको पाप नजर आता है। अगर तुलना करें तो मेरा खयाल है कि आजकलके कई युवक इस विषयमें जरूर आपसे ज्यादा अच्छे साबित होंगे।

इस तरहके अनेक पत्र मेरे पास आते हैं। इन नौजवान भाईसे मेरा परिचय हुए लगभग तीन महीने हुए होंगे, परन्तु इतने थोड़े समयमें ही, जहाँतक मुझे दिखाई देता है, ये परिवर्तनकी कई अवस्थाओंमें से गुजर चुके हैं। अब भी वे एक गम्भीर परिस्थितिसे ही गुजर रहे हैं। ऊपर जो उद्धरण दिया गया है वह एक लम्बे पत्रसे लिया गया है और यदि मैं इस पूरे पत्रको तथा उनके अन्य पत्रोंको भी प्रकाशित कर दूँ तो इससे उन्हें प्रसन्नता ही होगी। लेकिन मैंने ऊपर जो अंश दिया है वह कितने ही युवकोंके विचारों और प्रवृत्तियोंको प्रकट करता है।

बेशक, युवकों और युवतियोंसे मुझे महानुभूति है। अपनी जवानीके दिनोंकी भी मुझे अच्छी तरह याद है। मुझे देशके युवकों और युवतियोंमें आस्था है। इसीलिए उनकी समस्याओंपर विचार करते हुए मैं कभी थकता नहीं।

मेरे लिए तो सदाचार, नैतिक नियम और धर्म एक ही बात है। आदमी अगर पूरी तरहसे सदाचारी हो परन्तु धार्मिक न हो तो उसका जीवन बालूपर खड़ी की गई इमारतकी तरह समझिए। इसी तरह सदाचारहीन धर्म भी दूसरोंको दिखाने-भरके लिए होता है और आपसमें सिर-फुटौवलका कारण बनता है। सदाचारमें सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य तीनों आते हैं। मनुष्य-जातिने आजतक सदाचारके जितने नियमोंका पालन किया है, वे सब इन तीन सर्वप्रधान गुणोंसे सम्बन्धित हैं या उन्हींमें प्राप्त हुए हैं। और दूसरी ओर अहिंसा तथा ब्रह्मचर्यकी उत्पत्ति सत्यसे होती है, और सत्य मेरे लिए प्रत्यक्ष ईश्वर ही है।

संयम-पालनके बिना स्त्री या पुरुष अपना नाश ही करेगा। इन्द्रियोंपर कोई नियन्त्रण न होना बिना पतवारकी नावमें सवार होने-जैसा है। ऐसी नाव अपने रास्तेकी पहली ही चट्टान से टकराकर टूट जाती है। इसीलिए मैं संयमपर इतना जोर देता हूँ। पत्र-लेखकका यह कहना ठीक ही है कि सन्तति-नियमनके कृत्रिम उपायोंके आ जानेसे विषय-भोग-सम्बन्धी विचारोंमें परिवर्तन हो गया है। यदि पारस्परिक सम्मतिसे सम्भोग — चाहे वह विवाहके दायरेमें हो या उसके बाहर, और इसी दलीलको थोड़ा और बढ़ा दिया जाये तो ऐसा भी कह सकते हैं कि चाहे वह पुरुष और पुरुष अथवा स्त्री और स्त्रीके बीच ही क्यों न हो — नीतिमय बन जाता है, तब तो यौन सम्बन्ध-विषयक नीतिके नियमोंकी बुनियाद ही नष्ट हो जाती है और युवकोंके लिए फिर सचमुच "दुःख और पराजय" के सिवा और कुछ बाकी नहीं रहता। भारतमें ऐसे अनेक युवक-युवतियाँ मिलेंगे जो पारस्परिक सहमति पर आधारित भोग-वासनाके जिस पाशमें वे अपनेको कैद पाते हैं, उससे छुटकारा पाना चाहते हैं। यह वासना मनुष्यको गुलाम बनानेवाले प्रबलतम नशोंसे भी ज्यादा प्रबल है। यह आशा रखना व्यर्थ है कि सन्तति-नियमनके कृत्रिम उपायोंका उपयोग केवल सन्तानकी संख्या मर्यादित करने के लिए ही होगा। सुष्ठु और पवित्र जीवनकी आशा तभीतक है जबतक कि यौन क्रियाका सम्बन्ध स्पष्टतः बहुमूल्य नये जीवनके निर्माणसे है। इसमें विकृत यौन क्रिया और, उससे कुछ कम अशमें, स्व-पर-स्त्रीका भेद न करनेवाली स्वैरतापूर्ण यौन सम्बन्धके लिए भी कोई अवकाश नहीं है। यौन क्रियाको उसके स्वाभाविक परिणामसे विच्छिन्न कर दिया जाये तो घृणित स्वैराचारके लिए रास्ता खुल जायेगा तथा अप्राकृतिक वासना-तृप्तिका यदि अनुमोदन न होने लगे तो कमसे-कम उसे कोई पाप न मानकर माफ तो किया ही जाने लगेगा।

यौन-समस्यापर किये जा रहे इस विचारसे चूंकि मेरे अपने अनुभवोंका भी सम्बन्ध है, इसलिए जिन पाठकोंने मेरी 'आत्मकथा'[1] के अध्याय नहीं पढ़े हैं वे

१. देखिए खण्ड ३९।

मेरी विषय-लोलुपताके बारेमें कहीं इस पत्र-लेखकके-जैसे ही निष्कर्ष न निकाल लें, इसलिए उन्हें सावधान कर देना ठीक होगा। सबसे पहली बात तो यह है कि मैं चाहे कितना ही विषयी रहा होऊँ, परन्तु मेरी विषय-वासना अपनी पत्नी तक ही सीमित थी। फिर, मैं एक बहुत बड़े सम्मिलित परिवारमें रहता था, जिससे रातके कुछ घंटोंको छोड़कर हमें एकान्त कभी मिलता ही नहीं था। तेईस वर्षकी अवस्थामें ही मैं केवल भोगके लिए सम्भोग करने में समाये दोषके प्रति जागरूक हो गया था। और सन् १८९९ में[1] यानी जब मैं तीस सालका था, मैं पूर्ण ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा लेनेका निश्चय कर चुका था। मुझे संन्यासी कहना गलत होगा। मेरे जीवनके नियामक आदर्श तो सारी मनुष्य-जातिके द्वारा ग्रहण किये जाने के लिए प्रस्तुत हैं। मैंने उन्हें अपने क्रमिक विकासकी अवस्थासे गुजरकर प्राप्त किया है। मैंने हरएक कदम पूरी तरह सोच-समझकर गहरे मननके बाद उठाया है। ब्रह्मचर्य और अहिंसा दोनों अपने व्यक्तिगत अनुभवसे मुझे प्राप्त हुए और अपने सार्वजनिक कर्त्तव्योंको पूरा करने के लिए उनका पालन मेरे लिए नितान्त आवश्यक हो गया। दक्षिण आफ्रिकामें एक गृहस्थ, एक बैरिस्टर, एक समाज-सुधारक अथवा एक राजनीतिज्ञकी हैसियतसे मुझे जो एकाकी जीवन व्यतीत करना पड़ा, उस जीवनमें अपने उपर्युक्त कर्त्तव्योंको पूरा करने के निमित्त मेरे लिए यह जरूरी हो गया कि मैं कठोर संयमका पालन करूँ तथा स्वदेश-बन्धुओं और यूरोपीयों दोनोंके साथ अपने व्यवहारमें सत्य और अहिंसाका कड़ाईसे आचरण करूँ। मैं एक मामूली आदमीसे अधिक ऊँचा होने का दावा नहीं करता। मुझमें उससे भी कम योग्यता है जितनी सामान्य मनुष्यमें होती है। मेरे इस अहिंसा और ब्रह्मचर्य-व्रतके पालनमें भी कोई बधाई देने लायक बात नहीं; क्योंकि वे तो वर्षोंके निरन्तर प्रयाससे मेरे लिए साध्य हुए हैं। मुझे तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि मैंने जो सिद्धि प्राप्त की है उसे हर पुरुष और हर स्त्री प्राप्त कर सकती है, बशर्ते कि वह भी मेरी ही तरह प्रयत्न करे और अपने मनमें मेरी-जैसी ही आशा और आस्था लेकर चले। आस्थाहीन कार्य अगाध समुद्रकी थाह लेने का प्रयत्न करने-जैसा है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३-१०-१९३६

१. लेकिन गांधीजी ने वास्तवमें ब्रह्मचर्य-व्रत १९०६ में लिया; देखिए खण्ड ३९, पृ० १६१।

४३८. पत्र : अमृतकौरको

मगाँव, वर्धा
३ अक्तूबर, १९३६

मूर्खा रानो,

डॉ० देशमुखने, दिन ढलने पर ही सही, तुम्हारी जाँच की, यह जानकर बड़ी खुशी हुई। हमें उम्मीद रखनी चाहिए कि तुम उनके नुस्खेसे लाभ उठाओगी।

प्राकृतिक चिकित्सासे शम्मीकी चिढ़ या तो एक ढोंग है या फिर उसकी जड़में अज्ञान-जनित पूर्वग्रह है। अन्सारीने तो इसे हमेशा पसन्द किया।

मुझे तो बहुत अच्छा लगेगा कि तुम खराब सेहत लेकर ही यहाँ मेरे पास चली आओ और मैं तुमको भली-चंगी बना दूँ। लेकिन तुमको अधीर नहीं होना चाहिए। धैर्य और सतत प्रयत्नके बिना कोई भी व्यक्ति अपनी बाहरी अथवा अन्दरूनी खामियोंसे उबर नहीं सकता।

इस एक्जीमाको लेकर तुम जो इतना सिर धुनती हो, मुझे लगता है कि कहीं यह कुछ दिनके लिए थोड़ी शक्ल बिगड़ने की वजहसे ही न हो। मेरा अनुमान अगर ठीक है तो रूपका तुमको कितना मान है। इससे छुटकारा पाने के लिए तुमको निश्चय ही मेरे पास आना पड़ेगा। और यहाँ कमसे-कम तुमको अपने दागों या ऐसी किसी भी चीजका हर समय खयाल नहीं बना रहेगा। यहाँ तुम्हें अपने समकक्ष लोगोंका साथ नहीं मिलेगा। जो भी हो, इस बीमारीको लेकर तुम्हारे लगातार घुलते रहने से मुझे चिन्ता होती है। मैं चाहता हूँ कि तुम इससे ऊपर उठ सको। कर सकती हो ऐसा? डटकर प्रयास करो और इस गन्दी चीजको भूल जाओ।

जाहिर है, मैं जब अपने बारेमें कुछ नहीं कहता तो तुमको समझ लेना चाहिए कि मैं भला-चंगा हूँ। लेकिन एक बीमार साथीकी परिचर्या करनी पड़ रही है — नानावटीकी, जो एक श्रेष्ठ कार्यकर्त्ता और अच्छा गवैया है। वह मगनवाड़ीमें रसोईका काम सँभाले हुए था। लगता है, उसे हलका-सा टाइफाइड है। उसको केवल सन्तरेका रस या शहद और गरम पानी दिया जा रहा है। कटि-स्नान और एनिमा भी रोज ले रहा है। वह अपनी शारीरिक शक्ति बनाये हुए है और काफी प्रफुल्लित रहता है। मुझे आशा है, वह हफ्ते-भरमें ठीक हो जायेगा। आज पाँचवाँ दिन है। तुम जानती ही हो कि मुझे परिचर्या करना बहुत अच्छा लगता है। मुझे उसमें थकान महसूस नहीं होती। प्यारेलाल रसोईका काम देखता है। वह तो जैसे न कभी थकता है और न उसे नींद ही आती है।

सरदार आज यहाँ पहुँचनेवाले हैं।

सस्नेह,

तानाशाह

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७४७) से; सौजन्य: अमृतकौर। जी० एन० ६९०३ से भी

४३९. पत्र : अमतुस्सलामको

३ अक्तूबर, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

कल तो बहुत जल्दीमें पत्र लिखा था। आज भी जल्दी तो है ही। मेरे सामने डॉनावटी बुखारसे खटियामें पड़ा है। उसको गीली चादरमें लपेटा है। तबीयत सुधारने के लिए त्रिवेन्द्रम जाने में मेरी अनुमति नहीं मिलेगी। वहाँकी आबोहवा अच्छी नहीं मानी जाती। वहाँकी खुराक भी तेरे लिए ठीक नहीं है। वहाँ तुरन्त कुशल डाक्टर भी नहीं मिलते। और तेरे लिए वह इतनी दूर है कि सेहत सुधारकर ही तू वहाँ जा सकती है। तू चंगी हो जाये और सरस्वतीसे मिलने जाये, तो इसमें मुझे जरा भी आपत्ति नहीं है। तुझे क्या करना चाहिए सो तो मैं लिख चुका हूँ। कान्तिके लिए मेरे आशीर्वाद तो सदा हैं ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५५) से।

४४०. पत्र : महादेव देसाईको

३ अक्तूबर, १९३६

चि० महादेव,

इसके साथ [भेजने के लिए] कुछ तार भेज रहा हूँ। सरदारकी कोई खबर है?

मोतीहारीमें शायद तारघर नहीं होगा।

कुछ पत्र भी भेज रहा हूँ।

जवाहरको यहाँसे दस बजे रवाना कर दूँगा, क्योंकि यहाँ बीमारी चल रही है, इसलिए मैं कल किसीको भोजन कराने की स्थितिमें नहीं रहूँगा। तुम तो कल यहाँ आ ही रहे होगे। मैंने मान लिया है कि सरदार आज तीसरे पहर अवश्य आयेंगे।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

तार कुमारप्पा अथवा भारतनको दिखाकर लेना, जिससे कोई भूल न रह जाये। यदि महादेव यहाँके लिए रवाना हो गया हो, तो कनु तार भेजे और पत्र डाकमें डाले। जिनकी नकल करना जरूरी हो, उनकी नकल कर ले।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४९१) से।

४४१. पत्र : देवदास गांधीको

३ अक्तूबर, १९३६

चि० देवदास,

बा के पत्रमें मैं तेरा दुख देख रहा हूँ। बा का दुख तो मैं जानता ही था।[1] किन्तु इस सबको अपरिहार्य मानकर इसका सोच नहीं करना चाहिए।[2] और यह कौन कह सकता है कि हरिलालके पतनमें जाने-अनजाने मेरा अथवा हम दोनों माता-पिताका कैसा और कितना हाथ रहा। 'तुख्मे तासीर'[3], इस कथनमें एक पूरा शास्त्र छिपा हुआ है। गुजरातीमें भी ऐसा ही है. "बड तेवा टेटा, बाप तेवा बेटा।"[4] जब ऐसे विचार मनमें आते हैं, तब हरिलालको दोष देने का मन नहीं होता। मेरे अपने ऊपर क्रोध करने से भी क्या होगा? उस समयके अपने विषयी मनकी मुझे याद है। दूसरी बातोंको खोज पाना कठिन है। ईश्वरकी सूक्ष्म गतिको कौन जान सकता है? हम तो प्रसिद्ध दृष्टान्तोंके आधारपर कुछ सिद्धान्त ही स्थिर कर सकते हैं।

बा के पत्रपर निजी अथवा सार्वजनिक पत्रोंमें कोई आलोचना हुई हो तो बताना।

तेरी तबीयत कैसी रहती है? कुछ सुधार हो रहा है क्या?

लक्ष्मीका क्या हाल है? वह प्रसन्न रहती है या खिन्न? मनुडीका क्या हाल है?

कान्ति अपने अध्ययनमें डूब गया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०३७) से।

१. हरिलाल गांधीको लिखा गया।
२. भगवद्गीता, २/२७।
३. जैसा बीज वैसा पौधा।
४. जैसा वृक्ष वैसा फल, जैसा बाप वैसा बेटा।

४४२. पत्र : कस्तूरबा गांधीको

३ अक्तूबर, १९३६

बा,

इस बीच तेरा पत्र नही आया। क्या बीमार पड गई थी? अब तो सब ठीक हो गया होगा। मीराबहन ठीक है। कमजोर तो है। बुखार नही है। नानावटीको थोड़ा बुखार है; लगता है, दो-एक दिनमें उतर जायेगा।

अखबारमें तेरा पत्र पढा। यह सब लिखने का कारण क्या है? उसके आधार पर एक अंग्रेज बहनने तुझे पत्र लिखा है। वह पत्र देवदाससे समझ लेना और उसे जवाब लिखा देना। लीलावती समय-समयपर महादेवके साथ आती रहती है। सब ठीक चल रहा है।

अब वहाँ सबकी तबीयत ठीक होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०३८)से।

४४३. पत्र : प्रभावतीको

३ अक्तूबर, १९३६

चि० प्रभा,

तेरा पत्र विचलित कर देनेवाला है। एक तरफ तो दूध और फलके बारेमें तू जो कहती है, वह सच जान पडता है और दूसरी तरफ यह खुराक न मिलने के कारण तेरा बीमार पडना भी नही पुसाता और यदि तू बीमार पड जाये तो डॉक्टर और दवापर जो खर्च होगा, उसमें यह बची हुई सारी रकम खर्च हो जायेगी। धर्मका पालन इतना कठिन है। मेरा तुझे अधिक पैसे भेजना भी उचित नही है और इस प्रकार तेरा अधिक दूध और फल खाना भी उचित नही है। मैं इतना ही कह कर शान्त हो जाता हूँ कि यदि तू किसी प्रकार अधिक दूध और फल खा सके तो खा। भगवान् तेरी रक्षा करेगा। तेरी चिन्ता करनेवाला भला मैं कौन हूँ?

तेरा यह कहना ठीक ही है कि तू जो-कुछ करती है, मुझसे पूछकर ही करती है। तेरा यह कहना भी ठीक है कि ऐसा तू मेरी आज्ञासे करती है। तू जो-कुछ कर रही है, वैसा करना तेरा स्पष्ट कर्त्तव्य है। इसको देखते हुए मैं तुझे और दूसरा-कुछ करने की आज्ञा भी क्या दूं? लेकिन जबतक तू अपने कुटुम्बकी सेवामें लगी

रहेगी तबतक तुझे २५ रुपये कैसे दिये जा सकते है? इसलिए, जयप्रकाशके लिए ही २५ रुपये और प्राप्त करने का निश्चय किया है। और तदनुसार भेजने के लिए कह भी दिया है। तुझे पूरी तरह आराम लेना चाहिए और थोड़ा घूमना-फिरना भी चाहिए। आशा है, तू तेल और मसाला तो नही खाती होगी। आटा चोकरवाला ही होता है न? तुझे पत्तीदार भाजी क्या मिलती है? और तुझे जो गुड़ मिलता है वह अच्छा तो होता है न?

अपने बारेमे तो मैं तुझे लिख ही चुका हूँ। आजकल दूध, फल और सब्जी लेता हूँ। कही फिर बुखार न आ जाये, इस डरसे मैंने रोटी खाना शुरु नही किया है। इधर मैंने अपना वजन तो नही लिया है, क्योंकि उसकी कोई व्यवस्था यहाँ नही हो सकी है। बा अभी देवदासके पास है और मनु भी वही है।

पिताजी से तेरे बारेमे और क्या बात कही जा सकती है? वे तेरे स्वभावकी प्रशसा कर रहे थे और तुझसे प्रसन्न थे। हाँ, २४ तारीखको मैं काशी[1] पहुँचूंगा और वहाँसे २६ को राजकोटके लिए निकलूंगा। राजकोटमे नारणदासके माता-पिताके दर्शन करके अहमदाबाद और वहाँ तीन दिन ठहरकर सेगाँव पहुँच जाऊँगा। तू काशी थोड़े ही आनेवाली है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४८३)से।

४४४. बातचीत : जवाहरलाल नेहरूसे[2]

[३ अक्तूबर, १९३६][3]

यही कारण है कि तुम्हे बादशाह कन्यूट बनाया गया है, ताकि तुम इस कामको औरोसे ज्यादा बेहतर ढगसे कर सको।[4]

जवाहरलाल नेहरू : लेकिन क्या इससे कोई अच्छा तरीका नहीं है? क्या यह जरूरी है कि यह सब आप खुद ही करें?

नही तो और कौन करे? पासके गाँवमे जाकर देखो तो पाओगे कि ६०० में से ३०० लोग तो बीमार है। क्या उन सबको अस्पताल जाना चाहिए? हमें अपना इलाज आप ही करना सीखना है। हम अपने ही पापोका फल भोग रहे है। बगालमें

१. शिवप्रसाद गुप्तके आमन्त्रणपर गाधीजी को भारतमाता मन्दिरका उद्घाटन करना था।

२. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

३. हरिजन, १७-१०-१९३६के अंकमें प्रकाशित महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) में बताया गया है कि सरदार पटेलके साथ जवाहरलाल नेहरू ३ अक्तूबरको सेगाँव गये थे।

४. जवाहरलाल नेहरूने रोगियोंकी शुश्रूषा स्वय करने के गाधीजी के आग्रहकी तुलना इंग्लैंडके राजा कैन्यूट द्वारा समुद्रके ज्वारको रोकने के प्रयत्नसे की थी।

जलकी समस्यापर प्यारेलालने जो लेखमाला लिखी है, उसमें तुमने देखा होगा कि मलेरिया, हैजा और दूसरी तमाम बीमारियाँ हमने खुद पैदा की हैं। व्यक्तिगत दृष्टान्त पेश न करें तो फिर इन बेचारे गाँववालोंको और किस तरह उस सम्बन्धमें कुछ सिखायें?

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १०-१०-१९३६

४४५. बातचीत : अमृतलाल ठा० नानावटीसे[1]

[३ अक्तूबर, १९३६ के पश्चात्][2]

तुम अगर इसलिए जाना चाहते हो कि तुम्हारे खयालसे अस्पताल या काका साहबके घर चले जानेसे तुम अपने माता-पिताको ज्यादा खुश कर सकोगे, तो तुमको अवश्य चले जाना चाहिए। मैं एक स्ट्रेचर तत्काल मँगवाकर तुमको वहाँ पहुँचवा सकता हूँ। लेकिन अगर तुम मेरी सुविधाके खयालसे जानेकी सोच रहे हो तो मैं तुमको बतला दूँ कि यह मेरे प्रति तुम्हारा ईमानदारीका व्यवहार नहीं होगा। कोई भी बेटा अपने बापकी सुविधाके खयालसे उसे छोड़ जानेकी बात नहीं सोच सकता। अगर पुत्रके मुँहसे दबी जबान भी ऐसी कोई बात निकल जाये तो उससे पिताके मनको गहरी ठेस लगेगी। और यहाँ तो इस तरहका कोई खयाल करनेकी जरूरत भी नहीं है। यहाँ मुझे, जितनी मैं चाहूँ, उतनी मदद मिल सकती है और मैं तुमको फिरसे स्वस्थ बना सकता हूँ, यह बात उतनी ही अच्छी तरह जानता हूँ जितनी अच्छी तरह, जब बा दक्षिण आफ्रिकामें मौतके दरवाजे तक पहुँच चुकी थी[3] तब, यह जानता था कि मैं सेवा-शुश्रूषा करके उसे बचा लूँगा या जितनी अच्छी तरह मुझे यह मालूम था कि अपने बेटे मणिलालको मैं उस टाइफाइड बुखारसे जिन्दा बाहर खींच लाऊँगा जो ४२ दिनतक आता रहा था।[4] डॉक्टरोंने मुझे दोनों ही मामलोंमें गम्भीर चेतावनी दे दी थी और साफ कह दिया था कि उनकी मृत्युके लिए मैं ही

१. महादेव देसाईने अपने "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) में इस बातचीतका विवरण इस भूमिकाके साथ दिया है: "[अमृतलाल नानावटीकी] हालत देखकर स्पष्ट ही हम सब कुछ चिन्तित हो रहे थे और काकासाहब, मैं तथा अन्य मित्र सोच रहे थे कि उन्हें अस्पताल ले जायें, जिसके दो लाभ रहेंगे — एक तो यहाँकी विचपिच कम होगी और गांधीजी की व्यस्तता तथा चिन्ता कम हो जायेगी और दूसरे, मरीजको चिकित्सीय सुविधा अधिक सुलभ हो जायेगी। हमने यह प्रस्ताव जब गांधीजी के सामने रखा तो मरीजको अस्पताल ले जानेकी बातपर वे बिलकुल सहमत हो गये पर उनका आग्रह था कि दो-एक बातोंका स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए।"

२. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) में दी गई जानकारीके अनुसार।

३. देखिए खण्ड ३९, पृ० २४६-४९।

४. देखिए खण्ड ३९, पृ० १९०-९२।

जिम्मेदार होऊँगा। लेकिन मैं उनकी बलि देने के लिए उतना ही तैयार था जितना कि उनको बचा लेने के लिए चिन्ताकुल और उनकी परिचर्यामें सतर्क था। ईश्वरने मेरी आस्थाकी परीक्षा जरूर ली, लेकिन उसने मुझे उस परीक्षाको झेलने की शक्ति भी प्रदान की। चूँकि तुम एक वीर पुरुष हो इसलिए मैं तुमको बतला सकता हूँ कि यदि नौबत आ ही जाये तो मैं तुमको खो देने से भी कतई नहीं डरता, लेकिन इतना मैं जानता हूँ कि तुमको इससे बाहर निकालने के लिए जितना भी कुछ करना चाहिए वह सब मैं कर रहा हूँ। इसलिए तुम अगर मेरे ऊपर तरस खाकर मुझे छोड़कर जाने का फैसला करो, तो यह मेरे प्रति और स्वयंके प्रति भी तुम्हारा ईमानदारीका व्यवहार नहीं होगा। मैं यह बात तुम्हारे सामने इतने स्पष्ट रूपमें इसलिए रख रहा हूँ कि हम लोग सत्याग्रही हैं और यह जरूरी है कि हम अपने प्रत्येक कार्यके उद्देश्यों और प्रेरणाओंके बारेमें विवेकपूर्ण ढंगसे विचार कर लें और हम न तो अपने-आपको धोखेमें रखें न दूसरोंको।

नानावटीको इसका उत्तर देनेमें कोई कठिनाई नहीं पड़ी: "मैं केवल आपके खयालसे जाने की सोच रहा हूँ। मुझे लगता है कि मुझे आपकी इतनी चिन्ता का कारण नहीं बनना चाहिए। वैसे मैं जानता हूँ कि संसारमें अन्यत्र कहीं भी मेरी इससे अच्छी परिचर्या और इससे अधिक स्नेहपूर्ण देखभाल नहीं हो सकती।" और उन्होंने वहीं बने रहना पसन्द किया।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १७-१०-१९३६

४४६. पत्र : कान्तिलाल गांधीको

सेगाँव, वर्धा
४ अक्तूबर, १९३६

चि० कान्ति,

तेरा पत्र कल शामको वर्धा पहुँचा, इसलिए मुझे आज सुबह मिला। इतवार होते हुए भी तेरे मनकी शान्तिके लिए मैंने जो तार भेजा था, वह भी तुझे मिला होगा।

लम्बा पत्र नहीं लिख सकता, क्योंकि दो बीमारोंके बिस्तरोंके बीच बैठा हूँ। बलवन्तसिंह और नानावटी बुखारकी चपेटमें आ गये हैं।

तू बड़ी मुसीबतमें पड़ गया है, उससे मुक्त तो हो ही जायेगा। धीरज और हिम्मत रखना। नम्रता किन्तु दृढ़तापूर्वक उससे मिलने से इनकार करना। कहना कि बापूका हुक्म है। मैं उसे भी लिख रहा हूँ[1] कि तुझसे बिलकुल न मिले, न तुझे

१. देखिए अगला पत्र।

तंग करे। उससे तंग आकर अहमदाबाद जाने की जरूरत नहीं है। वह तो ऐसी है कि वहाँ भी तेरे पीछे चली आयेगी। मैंने ही उसे अहमदाबाद अथवा राजकोट जाने का सुझाव दिया है। बीमारीकी हालतमें त्रिवेन्द्रम जाने को मना कर दिया है।[1] वह तेरे पीछे चाहे जहाँ जाये, उससे न मिलने में ही तेरा निस्तार है।

किन्तु किसी और कारणसे यदि तेरा मन अहमदाबाद जाने को करता हो, तो शौकसे जा। मगनभाईके साथ रहना। दीवान वलूभाई [अपने स्कूलमें] तेरा स्वागत करेंगे। देवदास तेरी फीस देंगे। तू तो बस आनन्दसे और शान्तिपूर्वक अपना अध्ययन कर। मैं अमतुस्सलामको तुझे तग नही करने दूँगा। मुझे लिखते रहना। उतावलीमें कोई कदम न उठाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ७३०७) से; सौजन्य: कान्तिलाल गाधी

४४७. पत्र : अमतुस्सलामको

४ अक्तूबर, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

आज कान्तिका बहुत ही दु:खद पत्र मिला। वह लिखता है कि तू उसे छोड़ती ही नहीं। घंटों समय बरबाद करती है और निकम्मी बातें करती है, हालाँकि उसके पास एक मिनटका भी समय नहीं है।[2] मैंने तुझे खास तौरसे कहा था कि कान्ति चाहे तभी तू उससे मिल सकती है। मैंने कान्तिको तुझसे मिलने को मना कर दिया है, और तुझे भी कान्तिसे मिलने को मना कर रहा हूँ। कान्तिका तो जो होनेवाला होगा सो होगा। तू उसकी चिन्ता मत कर। बस तू चगी हो जा।

मुझे लिखना कि तू अब उससे नही मिलेगी। उसे कुछ लिखना हो तो मुझे लिखना। मेरा कल का पत्र मिला होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५६) से।

१. देखिए "पत्र : अमतुस्सलामको", ३-१०-१९३६।
२. कान्ति गांधी मैट्रिककी परीक्षाकी तैयारी कर रहे थे।

४४८. पत्र : अमृतकौरको

मेगांव, वर्धा
५ अक्तूबर, १९३६

मूर्खा रानी,

शहदकी एक, और सेवोकी दो टोकरियाँ पहुंच गई है, साथमे दो गिलास भी।

मुझे पूरी उम्मीद है कि देशमुख तुमको फिर देखेगे।

निश्चय ही मैं अब मासके वारेमे तुम्हारे साथ और सिर खपानेवाला नही हूँ। मैं तुम्हारे औचित्यानौचित्यके विचारका सम्मान अवश्य ही करना चाहता हूँ।

मै दक्षिण आफ्रिकी शिष्ट-मण्डलके[1] तुम्हारे अनुभव सुननेके इन्तजारमे हूँ।

फिलहाल मुझसे लम्बे पत्रोकी उम्मीद मत रखना। दो लोग काफी बीमार है और अब मीरा फिर पड गई है। वह समझ नही पा रही है कि अपना पथ्य किस तरहका रखे। समझता कौन है? मूर्ख लोग समझते हो तो समझते हो।

सस्नेह,

डाकू

मूल अग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५९५) से, सौजन्य अमृतकौर। जी० एन० ६४०४ से भी

४४९. पत्र : जे० एच० हॉफमेयरको

५ अक्तूबर, १९३६

प्रिय श्री हॉफमेयर,

आपका हार्दिकतापूर्ण पत्र[2] पाकर वडी प्रसन्नता हुई। मुझे पूरी आशा है कि इस देशमे आप अपने समयका लाभदायक उपयोग कर पा रहे है और आप जिन लोगोके सम्पर्कमे आ रहे है, वे आपका उचित सत्कार करते है।

मुझे इस वातका खेद रहेगा कि भारतमे आपके इतने सारे मित्र है [और आप उनसे मिल रहे है] किन्तु हम शायद विलकुल ही न मिल पाये।

इस जानकारीमे शायद आपकी रुचि हो कि मैं जिस कागजपर लिख रहा हूं, वह हाथका वना है और मैं इसपर गाँवमे सुलभ नरकटकी कलमसे लिख रहा

१ और २. देखिए "पत्र : पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासको", १३-९-१९३६।

हूँ। आपको भारतके कुछ प्रतिनिधि गाँवोको देखे बिना भारतसे नही जाना चाहिए। हाँ, ऐसी आशा रखना तो मेरे लिए मूर्खतापूर्ण ही होगा कि आप वर्धा और सेगाँव आकर देखे कि हम भी किस प्रकार अपना एक छोटा-मोटा प्रयत्न यहाँ कर रहे है।

आपको और आपके साथियोको स्नेह-वन्दन।

हृदयसे आपका,
मो० क० गाधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, सौजन्य. नारायण देसाई

४५०. पत्र : महादेव देसाईको

५ अक्तूबर, १९३६

चि० महादेव,

जितनी सामग्री तैयार हो सकी, उतनी भेज रहा हूँ। लेख अभी लिख रहा हूँ। उसे पूरा करना चाहूँ तो कनुको अभी एक घंटा और रोकना पडेगा। इसलिए यदि कोई आदमी यहाँ आया तो उसके हाथ भेजूंगा, या विशेष वाहकके साथ आज शामको या कल सवेरे। मै आज तो बीमारोके बीच किसी प्रकार काम कर रहा हूँ। सरदार यदि नारणदासको १२वी-१३वी तारीख दे, तो काठियावाडके कार्यकर्त्ता बुलाये जाये। उनकी इच्छा जानकर तदनुसार नारणदासको लिखना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च .]

मुझे कुछ डाक तो भेजनी ही पडेगी, इसलिए आदमी तो वहाँ जायेगा ही।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४९४) से।

४५१. पत्र : नारणदास गांधीको

५ अक्तूबर, १९३६

चि० नारणदास,

फिलहाल तुम्हे मेरे पत्रकी आशा नही करनी चाहिए। मीरा और नानावटी बहुत सख्त बीमार है। उनकी सेवामे मेरा पूरा दिन निकल जाता है। जमना[1] भी मेरे पत्रकी आशा न करे।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

प्रेमाका पत्र इसके साथ है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ८५०८ मे भी; सौजन्य नारणदास गाधी

४५२. पत्र : छगनलाल जोशीको

५ अक्तूबर, १९३६

चि० छगनलाल,

जयसुखलालके बारेमे तुम्हारी कैफियत मिली। उससे मुझे पूर्ण सन्तोष है। तुम्हारे विरुद्ध बहुत-सी जगहोसे शिकायतें आई है। किन्तु उनमें से बहुत-सी शिकायतो पर मैंने विश्वास ही नही किया। जिनपर विश्वास किया, उनके बारेमे मैंने तुमसे बातचीत कर ली। मैं तुम्हारा पत्र जयसुखलालको[2] भेज दूंगा।

चन्दूलालका विस्तृत उत्तर मिला है। उसका उत्तर तुम सीधे भेज देना। या फिर नकल करने का समय बचाने के लिए मुझे भेज देना।

अब तो हम मिलेंगे ही, हालांकि जिस दिन मैं वहाँ पहुँचूंगा, मेरी इच्छा उसी दिन भाग आने की है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५५४१)से।

१. नारणदासकी पत्नी।

२. देखिए "पत्र : जयसुखलाल गाधीको", ६-१०-१९३६।

४५३. पत्र : महादेव देसाईको

[५ अक्तूबर, १९३६][1]

चि० महादेव,

सलग्न सामग्री पूरी करके प्रह्लादके साथ भेज ही रहा था कि तुम्हारी वदूककी गोली आई। लेकिन वह फुस्स हो गई। तुम्हारा शुभ सन्देश पढ़कर मै हँसा। आजकल यहाँ हँसने को समय जो नही मिलता। मेरी टिप्पणीमें[2] तुम्हारी आलोचना है, यह तो मेरे मनमे भी नही था। मीरावहनने जव उस ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया, तव भी मैंने कहा, "महादेव क्या कर सकता है?" मेरी टिप्पणी रद करके अपनी टिप्पणी देना। इसमें मुझे क्या आग्रह हो सकता है? कुछ न दो, तो भी मैं तो निभा ले जा सकता हूँ। प्रस्तुत अकमे भी ऐसी भूल रह गई है। उसे तो मैं सुधारूंगा भी नही। तुम जितनी समझते हो, उससे वहुत अधिक शक्ति मुझमे ऐसी वातोकी उपेक्षा कर जाने की है। किन्तु तुम ठहरे कवि, सो भी पतली चमडीके, इसलिए वात-वातमें क्षुव्ध हो जाते हो। इसकी दवा मैं कहाँसे लाऊँ? 'यह टिप्पणी इस तरह लिखी जाये, तो कैसा हो?'— इतना ही पूछ लेते तो भी काम चल जाता। इसके लिए इतना वतगड क्यो? लेकिन जो हुआ, सो हो गया। "आदत जो पड जाये भला वो दूर कहाँ होती है?" लीलावतीकी सफाई देना व्यर्थ है। वह यहाँ आई, यह तो उसके दोपके सिर सेहरा वँध जाने-जैसा हुआ। किन्तु ज्यो ही वह[3] वीमार पड़ा, त्यों ही उसने उसकी देखभालका काम खुद ही अपने हाथमे क्यो नही ले लिया? सच तो यह है कि उसपर जो दया की जाती है, उसके वोझके नीचे वह दव गई है।

देखो, अव कभी नाराज न होना। मैंने अनुचित कहा हो तो सुधारना। लेकिन दुःख मत करना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैकएरिसनका भाषण भेज रहा हूँ। इसका पहला अनुच्छेद हटाकर वाकी सव दे देना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४९२)से।

१. देखिए "पत्र : महादेव देसाई को", ५-१०-१९३६ और ६-१०-१९३६ तथा "पत्र : लीलावती आसरको", ६-१०-१९३६।

२. कदाचित् यहाँ आशय "एक सुधार" १०-१०-१९३६ से है

३. प्रभुदयाल; देखिए अगला शीर्षक।

४५४. पत्र : महादेव देसाईको

सेगांव, वर्धा
६ अक्तूबर, १९३६

चि० महादेव,

पत्रके साथ इतनी डाक तो भेज ही रहा हूँ। कल रात लिख चुका था। नानावटीका बुखार आज भी नही उतरा। आज तो उसे काफी कमजोरी लग रही है। बलवन्तसिंहका बुखार उतर गया है। मीराबहन फिर बीमार पड गई और उसकी बीमारी गहरी मालूम होती है। उसके आँचलमे फोडा-सा हो गया है, वह शय्या-ग्रस्त है।

लीलावतीने हालमे जो आघात दिया, उससे मुझे बहुत दु:ख हुआ है। आँखोके सामने पडे हुए बीमारको वह भूल सकती है, यह तो मैंने कभी नही सोचा था। तुम उसे प्रोत्साहन देते हो, ऐसा मुझे लगता है। तुम्हीने क्यो उसे प्रभुदयालकी सेवामे नियत नही किया? कनु रात-भर जागा। सवेरे तीन बजे भणसालीने देख लिया और उसे छुट्टी दी। कनुसे मैंने लिखकर पूछा, तब उसने इतनी बात कही। उसने यह भी कहा कि वह बातोमे तुम्हारा बहुत वक्त लेती है। मुझे लगा कि उसके मनमे अनेक शिकायते है। मुझे तो समय नही मिलता, और फिर मै तो लगभग गूँगा हूँ। तुम उससे मालूम करना। झूठी दयासे उसका सुधार नही होगा। उसका रोग गहरा है। कही भी अनुशासन नही माना, यह तो वह खुद ही कहती है।

मेरे लिफाफे फिर खत्म हो गये। मुझे आठ बडल क्यो नही भेज देते? कितने ही पत्र मुझे बिना लिफाफेके भेजने पडे। कार्ड तो बेहिसाब है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४९३)से।

४५५. पत्र : एस० अम्बुजम्मालको

६ अक्तूबर, १९३६

चि० अम्बुजम,[1]

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे भेजे फल मुझे नियमित मिल रहे है। उनकी कीमत बतानी पडेगी। यदि फल महँगे है तो मुझे तुमसे नही लेने चाहिए। भेंटमें मिले तब भी मुझे फल ऐसी जगहसे मँगवाने चाहिए जहाँ वे सस्ते हो। आजकल यहाँ तीन व्यक्ति बीमार है।

तुम्हारी दलील सही भी है और गलत भी। मैं अन्धविश्वाससे ज्यादा महत्व अस्पतालको दूंगा। एक बीचकी राह भी है—समझदारीसे घरेलू इलाज किया जाये

१. सम्बोधन हिन्दीमें है।

और फिर पूरे विश्वासके साथ उसके परिणामकी प्रतीक्षा। राजाओंको भी मरना पड़ता है। हजारोंकी मृत्यु अस्पतालोंमें होती है। यह सब भाग्यकी बात है। जीवन की डोर तो ईश्वरके हाथोंमें है। हम लोग उसके नियमोंका अनुसन्धान करके उनका पालन ही कर सकते हैं। मुझे ऐसा सम्भव नहीं लगता कि कभी वह समय भी आयेगा जब प्रत्येक ग्राम-वासी चाहे तो अस्पतालमें अच्छी चिकित्सा पा सके। हाँ, मैं इतना अवश्य सोच सकता हूँ कि ऐसा समय आयेगा जब उसे घर बैठे सही सलाह मिल जाया करेगी। लेकिन वह दिन भी अभी बहुत दूर है।

आशा है, तुम सब स्वस्थ होगे।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजीसे: अम्बुजम्माल पेपर्स; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

४५६. पत्र : नन्दलाल बोसको

६ अक्तूबर, १९३६

प्रिय नन्दलाल बाबू,

आपके पत्रके लिए अपना आभार प्रकट करने और आपको यह बतलाने के लिए ही बस एक पंक्ति लिख रहा हूँ कि इस महीनेकी १३ तारीखको आप जब चाहे तब मुझसे मिल सकते हैं। आप अपने आने की तिथि महादेवको तार द्वारा सूचित कर देने की कृपा करेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गां०

श्री नन्दलाल बोस
मार्फत – रवीन्द्रनाथ ठाकुर
६, द्वारकानाथ ठाकुर लेन
जोड़ासाँको, कलकत्ता

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९७७८)से।

४५७. पत्र : ग्लैडिस ओवेनको

६ अक्तूबर, १९३६

प्रिय ग्लैडिस,[1]

तुम्हारी शुभकामनाएं पाकर मुझे प्रसन्नता हुई।

तुम अजीब औरत हो। तुमको उन्हीं दिनों छुट्टी लेनी थी जिन दिनों मुझे यहाँ नहीं रहना है। मैं २२ तारीखको रवाना होकर ५ नवम्बर तक यहाँ पहुँचनेवाला नहीं हूँ। मैं २४ और २५ [अक्तूबर][2] को काशीमें रहूँगा। लिखना कि तुम कब आ सकती हो।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१९३) से।

४५८. पत्र : रेहाना तैयबजीको

६ अक्तूबर, १९३६

प्रिय रेहाना,

तुम्हारा मर्म-स्पर्शी पत्र मिला। निश्चय ही, मैं तुम्हारी और अम्माजान की रायसे सहमत हूँ। तुम्हारा पहला पत्र मिला तो मैं यही नहीं समझ सका कि अपने समाजकी वर्तमान अवस्थामें अन्तर्जातीय विवाहकी बात अम्माजानने मान कैसे ली। हमीदा इतनी अच्छी लडकी है कि मुझे पूरा भरोसा है, वह तुम्हारी और अम्माजानकी रायके खिलाफ खड़ी नहीं होगी। मैं समझता हूँ, उसको लिखा मेरा पत्र[3] तुमने देख ही लिया होगा। अब शकरलालसे पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ और जरूरी हुआ तो प्रबोधको भी लिखूँगा। कोई नयी बात हो तो मुझे लिखती रहना।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६५०) से।

१. बनारस के थियोसॉफिकल सोसाइटी स्कूल की अध्यापिका।

२. साधन-सूत्रमें "नवम्बर" दिया गया है।

३. यह उपलब्ध नहीं है।

४५९. पत्र : लीलावती आसरको

६ अक्तूबर, १९३६

चि० लीला,

लीलासे [फिर] लीलावती हो गई, यह क्या कम लीला है? कही तू लिली हो जाती, तो न जाने मेरा क्या हाल होता?[1] तेरा निर्णय मुझे पसन्द है। मुझसे चिपटे रहना तेरी शक्तिके बाहर था। तू जहाँ भी होगी, मेरे आशीर्वाद तो तेरे साथ रहेंगे ही। मुझसे दूर भले रह लेना, मुझे एकदम भूल मत जाना।

मुझे छोड़ने का तेरा कारण अजीब है। तू काहेकी क्षमा माँग रही है? तूने क्या अपराध किया है? यदि किया है, तो उसका प्रायश्चित्त मुझे छोड देने मे नही, बल्कि दृढ़तर निश्चयपूर्वक मुझसे चिपटे रहने, तदनुसार आचरण करने तथा आगे अधिक सावधानी बरतने में है। किन्तु विचित्र कारणसे भी किया गया निर्णय सदा स्वीकार करने के योग्य होता है। यही बात तेरे निर्णयके विषयमे भी है। तू जो भी कदम उठाये, महादेवसे परामर्श करके उठाना। कल तूने मेरी नाराजी देखी, किन्तु क्या उसमें मेरा असह्य दुःख नही देख सकी, मेरा प्रेम नही पढ सकी?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३४९)से। सी० डब्ल्यू० ६६२४ से भी। सौजन्य : लीलावती आसर

४६०. पत्र : जयसुखलाल गांधीको

६ अक्तूबर, १९३६

चि० जयसुखलाल,

इस पत्रके साथ तुम्हारी शिकायतका जवाब भेज रहा हूँ। मै तो पूरी तरह मानता हूँ कि छगनलालका इनकार करना ठीक है। मेरे खयालमे नारणदासका भी यही मत है। कमसे-कम तुम्हारा समर्थन तो वह नही ही करता। अब तुम्हे या तो अपने आरोप सिद्ध करने चाहिए या फिर अपने मनको साफ कर लेना चाहिए। छगनलालमे दोष है, किन्तु मेरा विश्वास है कि जिस दोषका आरोप तुम उसपर लगा रहे हो, वह नही है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/३)से।

१. देखिए "पत्र : लीलावती आसरको", २-१०-१९३६।

४६१. पत्र : हीरालाल शर्माको

६ अक्तूबर, १९३६

चि० शर्म्मा,

दो दर्दी तो मेरे पास ही है। दोनो को बुखार। एक को आठ दिन से है, ९९ से नीचे गया ही नहीं। दूसरा है सीमला में। ऐसों का क्या करोगे? दूसरे दर्दी भी यो तो काफी है। घर के सब अच्छे होंगे।

बापुके आशीर्वाद

बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृ० २६० के सामने प्रकाशित प्रतिकृतिसे।

४६२. पत्र : महादेव देसाईको

६ अक्तूबर, १९३६

चि० महादेव,

इस पत्रके साथ जितनी लिखी जा सकी उतनी डाक भेज रहा हूँ। पूरी तो न जाने कब तैयार होगी। लीलावतीने जलेपर नमक छिड़का है। फिर भी उसका निर्णय बिलकुल सच्चा है। मेरे साथ वह कभी सुखसे नही रह सकती। उसको अपने भविष्यके लिए मार्गदर्शन चाहिए।

यहाँ तो लगता है, बड़ी गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो गई है। मीराबहनका बुखार साफ-साफ पलटा हुआ बुखार है। इस बार बुखार खतरनाक मालूम होता है। नानावटीकी तबीयत भी ठीक तो नही ही है। लगता है, वह भी मन-ही-मन निराश हो रहा है। जैसी भगवान्‌की इच्छा!

पत्रोंमें नन्दलाल बोसको लिखा एक कार्ड है। शायद लेट फीस देकर भेजना ठीक होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४९५) से।

४६३. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
८ अक्तूबर, १९३६

मूर्खा और विद्रोहिणी दोनो,

तुम्हारा ही कोरा कागज बाकायदा भरकर लौटा रहा हूँ। खुर्दबीनोका इस्तेमाल शुरू भी हो गया है। उनका इस्तेमाल तरह-तरहके कामोके लिए किया जाता है — जैसे कि मरीजोकी और साथ ही साँपोकी जाँच के लिए भी। साँपोके दो जिन्दा नमूने मुझे फिर मिल गये है।

हाँ, नानावटी मेरे पास ही है। तीन लोग एक साथ बीमार चल रहे है — मीरा, नानावटी और बलवन्तसिंह। बलवन्तका बुखार उतर गया है। बाकी दोनो तो ठीक हो ही नही रहे है। उतार-चढाव के साथ उनका बुखार कायम ही रहता है। दोनोंकी परिचर्यामें बडी सावधानीकी जरूरत है। जल-चिकित्सा चल रही है और उनको फलोके रसपर रखा जा रहा है। अभीतक ऐसा कुछ नही है जिसके कारण चिन्ता हो जाये।

शिमलामें भी, जाहिर है, उतनी हारी-बीमारी तो है ही जितनी और सब जगह रहती है और मैं जब पहली बार वहाँ गया था तो लोगोने मुझे बताया था कि वह जगह रतिज रोगोंके लिए बदनाम है। लेकिन जो लोग चाहें वे वहाँ पहाडोकी हवाका लाभ उठा ही सकते है। इसलिए यदि वहाँकी आबोहवा तुमको अनुकूल पड़े तो तुमको वहाँ जबतक शम्मी चाहे तबतक रुकना चाहिए। मँगनवालका[1] ग्राम-सुधार कार्य तबतक अपने ढंगसे चलता रहेगा।

मैं अहमदाबाद जानेपर देखूंगा कि महिलाओके मतभेदोंके सिलसिलेमें क्या-कुछ किया जा सकता है। लेकिन मैं उम्मीद नही बँधा सकता। वहाँके हालात मैं जानता हूँ। तुमने मुझे जो लिखा है उससे तो लगता है कि मृदुलाकी[2] ओरसे तुमको अपने पत्रका उत्तर नही मिला। पर वह निश्चयपूर्वक कहती है कि उसने तुमको पत्र लिखकर अपने घर आने के लिए आमन्त्रित किया है।

खानसाहब कहते है कि लड़कियाँ तुम्हारा साथ चाहती है, यही काफी है। वे कहते है कि तुमने उनको जो स्नेहपूर्ण आमन्त्रण दिया है उसके लिए वे आभारी है। वे न तो चाहते है और न उनको ऐसी अपेक्षा ही है कि तुम उन्हे कुछ सिखाओ। खानसाहब बीमार तो नही पड़े। मैंने सुझाया था कि वे अपने दाँतोकी

१. पंजाब में एक स्थान।
२. मृदुला साराभाई।

कठोर बना रहेगा। इसके विपरीत फर्ज कीजिए कि हमे एक पाई भी खर्च नही करनी पडती है और सद्भाग्यसे अचानक सवर्णोका हृदय पलट जाता है, अस्पृश्यताका पाप एक भूतकालकी चीज बन जाता है, तब तो संघका सारा उद्देश्य सफल हो जाता है। उस दशामे तो प्रत्येक पाठशाला, देवालय और अन्य सस्थाओके द्वार हरिजनोके लिए भी उसी भाँति खुल जायेगे, जिस तरह कि आज वे सवर्णोंके लिए खुले हुए है। कोई नही कह सकता कि वह शुभ दिन कब आयेगा। शायद हमारी आशासे जल्दी आये। शायद देरसे भी आये। पर यह जब भी आये, हरिजन सेवक सघका उद्देश्य है यही। उसका उद्देश्य यह तो हरगिज नही है कि हरिजनोके लिए अलग-अलग पाठशालाएँ, मन्दिर, कुएँ वगैरह वह बनवाता रहे और इस तरह हम अस्पृश्यताकी उम्र बढाते रहे। बेशक, मन्दिर, कुएँ और पाठशालाएँ तो खुद हम भी अभी बनवा ही रहे हैं, पर बनवाते है उसी उद्देश्यको पूरा करने के लिए। इन चीजो का बनवाना हमारे लिए जरूरी तो इसलिए हो गया कि सवर्णोके हृदयमे परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे हो रहा है।

सुधारकोकी संख्या जरूर बढ रही है। पर वे केवल अपने बीचसे छुआछूतका पाप हटाकर और इस तरहकी घोषणाएँ करके ही अपनेको कृत्यकृत्य न समझ ले। यह परिवर्तन उनके आचरणमें भी नजर आना चाहिए। हरिजन-कार्यके लिए कुछ आर्थिक सहायता करना इस परिवर्तनका एक प्रत्यक्ष प्रमाण और हरिजन-सेवाके कार्यक्रमका एक आवश्यक अग होगा, पर अगर कही यह एक ऐसी चीज बन जाये जो मुट्ठी-भर लोगोतक ही सीमित हो और ये लोग महज अपने दिलको समझाने के लिए ही उदारतापूर्वक रुपये-पैसेकी सहायता कर दिया करते हो तो वह मेरे बताये महान् आदर्शका चिह्न नही हो सकता। इसीलिए सघका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपने कार्यक्रमके इस बुनियादी हिस्सेकी ओर अपनी शाखाओका ध्यान आकर्षित करे और शाखाओका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे इसके महत्त्वको महसूस करते हुए अपने-आपको पूरे तौरपर स्वावलम्बी बनाने की तैयारीमें लग जाये। असल मे, प्रान्तीय संघोपर धीरे-धीरे यह भार डालना शुरू भी कर दिया गया है कि वे खुद ही अपनी सस्थाओंकी आर्थिक सहायता करे, पर अब तो इस सम्बन्धमें निश्चित और आखिरी निर्णय करने का समय आ गया है।

जबतक तमाम कार्यकर्त्ता यह अनुभव नही कर लेते कि यह आन्दोलन मुख्यतया धार्मिक है, तबतक पूर्ण स्वावलम्बनका हमारा यह लक्ष्य पूरा नही हो सकता। इस देशमे हम ऐसी चीजोपर खुले दिलसे खर्च करते है जिन्हे लोग धार्मिक समझते है। अगर इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण देखना चाहे तो वह हमारे तीर्थस्थानोकी एक बार सैर कर ले। धार्मिक कार्योके निर्वाहके लिए स्थापित दानकी निधियोके इतिहास का अगर हम अध्ययन करे तो हमे यह जानकर दु.ख होगा कि किस तरह लाखो-करोड़ो भोले-भाले लोग इन संस्थाओको अतुल धनराशि अर्पण कर देते है और इस बातकी परवाह तक नही करते कि उसका उपयोग किस तरह हो रहा है। अगर उन्हे यह विश्वास हो जाये कि जिस चीजके लिए वे दान कर रहे हैं, वह धार्मिक है

तो इतना उनके लिए काफी है। हरिजन-सेवक जिस उद्देश्यसे सेवा कर रहे हैं, वह शुद्धतम अर्थमें सम्पूर्णतया धार्मिक है। अगर अपने अंगीकृत कार्यमें उन्हें पूरी श्रद्धा हो, तो वे पर्वतोको भले ही विचलित न कर सकें, पर इतना धन तो अपने आसपास से जरूर इकट्ठा कर सकते हैं कि जिससे उनकी संस्थाओंका काम चल जाये।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १०-१०-१९३६

४६६. एक सुधार

मुझे मालूम है कि 'हरिजन' में अकसर छपाईकी भूलें रह जाती हैं। हर सप्ताह शुद्धि-पत्र देना पण्डिताऊपन नहीं तो कष्टसाध्य तो होगा ही। 'हरिजन' जिन कठिन परिस्थितियोंमें प्रकाशित किया जा रहा है, उनको देखते हुए मेरे सामने समस्या यह है कि इसका प्रकाशन बन्द कर दूँ या नियमित रूपसे होनेवाली छपाईकी भूलोंके बावजूद प्रकाशित करता रहूँ। और जबतक काफी संख्यामें ग्राहक इन भूलोंको बरदाश्त कर रहे हैं तबतक मैंने दूसरा रास्ता ही अख्तियार किये रहने का निश्चय किया है। लेकिन २६ सितम्बरके अंकमें "द लॉ ऑफ आवर बीइंग" ("जीवन-धर्म") शीर्षक लेखमें दो भारी भूलें हैं जिन्हें सुधारना जरूरी है।[1]

जान पड़ता है कि गलतियोंकी शुरुआत वर्धामें हुई, जहाँ टाइपिस्टने सेगाँवसे भेजी पाण्डुलिपिको पढ़ने में भूल कर दी।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १०-१०-१९३६

४६७. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
१० अक्तूबर, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

इधर कुछ दिन मैं तुम्हारी तरफ ध्यान न देनेपर विवश था। सन्तोष इसी बातका है कि तुम्हें नहीं लिखा तो लगभग किसीको नहीं लिखा और अपना सारा समय बीमारोंको देता रहा। मैं अभी नहीं कह सकता कि उनकी हालत सुधर रही है। रोज ही बुखार धीरे-धीरे चढ़ रहा है। अभीतक कोई खतरा नहीं दिखाई देता। लेकिन दोनों बहुत कमजोर हो गये हैं। यदि उनके शरीरमें जीवनशक्ति पर्याप्त हुई, तो वे बिलकुल चंगे हो जायेंगे। चिन्तित न वे हैं और न मैं ही। आज सिविल सर्जन उनको देखने आये थे। उनकी केवल जल-चिकित्सा चल रही है।

१. देखिए "जीवन-धर्म", २६-९-१९३६। हिन्दी में भूलों को सुधारकर अनुवाद दिया गया है। भूल-सुधार यहाँ नहीं दिया जा रहा है क्योंकि हिन्दी खण्डकी दृष्टि से वह अनावश्यक है।

मैं तुम्हारा रेडियो-प्रसारण[1] अभी-अभी पूरा पढ़कर उठा हूँ। तुमने गाँवोके अपने अनुभवोको वड़े सुन्दर ढंगसे पेश किया है। दूसरा हिस्सा इतना सन्तुलित नही है।

तुम्हारा कहना है कि "प्राचीन व्यवस्था . . . . नष्ट हो चुकी है।" यदि नष्ट हो चुकी हो तो फिर पुनरुद्धारका सवाल ही कहाँ उठता है? लेकिन बादमें तुमने खुद ही दिखाया है कि अधिकसे-अधिक यही कहा जा सकता है कि वह सड़-गल गई है, नष्ट नही हुई है।

और फिर तुमने शुरुआत गलत सिरेसे की है — सड़कों तथा मकानोके निर्माणसे। ये कौन कर सकता है? सफाई निश्चय ही पहली चीज है।

इसपर तो हम सहमत भी थे!! और तुमने उसीसे शुरू भी किया। लेकिन तुम यदि इतनी मामूली-सी चीजको याद रख सकती तो फिर मूर्खा रानी कैसे कहाती? और फिर तुमने कोई ऐसा स्पष्ट विभाजन भी नही किया कि कौन-से काम जनता खुद और कौन-से सरकार कर सकती है और उसे करने चाहिए। इससे ज्यादा तो तुम नही चाहती हो न? और तारीफकी तो तुमको जरूरत ही नही। उससे तो तुम अघा गई होगी।

यदि तुम सिर्फ दो महीने मेरे पास रहने की अनुमति पा जाओ, तो मुझे आशा है कि मैं तुम्हारा काया-कल्प कर दूँगा। डॉक्टरी दृष्टिसे यह एक्जीमा निश्चय ही वडी चिन्ताकी चीज है। लेकिन मैं इसके वारेमें इतनी हताशा महसूस नही करता। जाहिर है, यदि तुम बिलकुल चगी न हो तो तुमको अहमदाबाद नही जाना है।

इधर कुछ दिनोसे तुम्हारे भेजे सेव पिलपिले नही रहते और सब अच्छी हालतमे मिलते हैं। तुमको मुझे यह बताना चाहिए कि हर बार भेजे गये फलोकी कीमत कितनी पडती है और उनपर रेल-भाडा कितना लगता है। शहद भी बिलकुल हिफाजतसे आ गया। कल मैंने सारा निवटा दिया। बडा बढ़िया था।

मुझे लॉयनेलका कोई पत्र अवतक नही मिला है।

खान साहब जितने फल खा सकते हैं, उनके पास हैं। मुझे सेव तुम और अम्बुजम भेज देती हो — मेरी जरूरतसे ज्यादा — मोसम्बियाँ बम्बईसे आ जाती हैं और सतरे यहीसे।

सस्नेह,

तानाशाह

[पुनश्च :]

खान साहब १४ तारीखको दिल्लीके लिए रवाना होंगे।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३७४९) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६९०५ से भी

१. ग्रामीण-महिलाओं के नाम।

४६८. पत्र : देवदास गांधीको

१० अक्तूबर, १९३६

चि० देवदास,

पूरी विचारश्रेणी बा की है,[1] यह जानकर प्रसन्न हुआ। उसमें ऐसी शक्ति तो है ही। पत्र तो अच्छा है ही। डॉ० महमूदने लम्बा पत्र लिखा है। इस पत्रके साथ है, पढ़कर फाड़ डालना। तूने इतना लम्बा पत्र लिखा है, इससे क्या यह समझना चाहिए कि अब तू ठीक-ठीक लिख सकता है? दो बीमार मेरा बहुत वक्त ले लेते हैं। यह वक्त देना मुझे अच्छा भी लगता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २०३५) से।

४६९. पत्र : वैकुण्ठभाई ल० मेहताको

१० अक्तूबर, १९३६

भाई वैकुंठ,

कल ही सुना कि लल्लूभाई[2] फिर बीमार पड़ गये हैं। जहाँ आप-जैसे सेवक शुश्रूषामें लगे हो, वहाँ सब प्रकारसे कुशल ही होगा। आशा है, अबतक तो आराम आ गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

कृषि-विभागके बारेमें शंकरलालसे बात कर ली है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १३६३) से।

१. देखिए "पत्र: कस्तूरबा गांधीको", ३-१०-१९३६।
२. वैकुंठभाई के पिता लल्लूभाई शामलदास।

४७०. पत्र : प्रभावतीको

१० अक्तूबर, १९३६

चि० प्रभा,

तेरा पत्र मिला। मेरी तो अवश्य ही ऐसी इच्छा है कि तू मुझे काशीमें मिले। किन्तु इसे धर्मके विरुद्ध जाकर पूरा नही करना है। यदि तू वहाँसे मुक्त नही हो सकती, अथवा यदि मुक्त हो सकती है किन्तु जयप्रकाशकी इच्छा न हो, तो तेरा आना अनुचित माना जायेगा और मेरी इच्छा भी धर्म-विरुद्ध ही मानी जायेगी। अत: यदि उपर्युक्त दो शर्तोंकी रक्षा करके तू आ सके तो मुझे अच्छा लगेगा। मेरी इच्छा तो यह भी होती है कि इस समय तू मेरे साथ होती तो कितना अच्छा होता। किन्तु यह इच्छा भी धर्म-विरुद्ध ही मानी जायेगी, क्योकि अभी तेरा धर्म वही रह कर जो सेवा तू कर रही है, सो करना है। मेरे पास मीरावहन और नानावटीकी खाटें पडी हैं। दोनो वहुत वीमार हैं। ऐसे समय तू हो, तो मुझे वहुत मदद मिले। किन्तु मैं ऐसी इच्छा कैसे कर सकता हूँ? यो तो महादेव हो, तो भी मदद मिले। किन्तु उसकी उपस्थितिकी इच्छा करना भी अधर्म है। उसके सामने वह धर्म है, जो मैंने उसे सौपा है। ऐसा ही दूसरोके विषयमे भी है। अव तो तू इच्छाकी वात समझ गई न? हमारी सारी इच्छाएँ भगवान् कहाँ पूरी होने देते हैं?

इस सारे काममें मेरी तवीयत ठीक रहती है। अभीतक यही वात मेरे स्वभाव में रही है। वीमारोकी देखभालके समय भगवान् मुझे चगा रखते आये है। इस वार भी ऐसा ही होगा, यही आशा सँजोये हुए हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३४८४) से।

४७१. पत्र : लीलावती आसरको

सेगाँव, वर्धा
प्रातः ५ बजे, ११ अक्तूबर, १९३६

चि० लीला,

देखना, तेरे बारेमे मुझे जो डर है, उसे सच मत कर देना। यहाँ आने के बन्धनसे छूटी, यानी क्या सब बन्धनोसे छूट गई? क्या श्लोकोंकी नकल करना बन्द कर दिया? तेरा मतलब यह तो नही है कि अब किसी भी दिन तू यहाँ नहीं आ सकती? दिलरुबा-वादक[1] तो इस समय खटियासे लगा है। तो क्या बाजा अब तेरे पास भेज दूँ? और भी तेरी अनेक चीजें यहाँ पडी हैं, उनकी सूची भेज दे तो उन्हे भी भेज दूँ अथवा तू ले जा। जैसा ठीक लगे, वैसा करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९३५१) से। सी० डब्ल्यू० ६६२६ से भी; सौजन्य : लीलावती आसर

४७२. पत्र : अमतुस्सलामको

११ अक्तूबर, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

मैं तेरा पत्र ध्यानसे पढ़ गया हूँ। तू अपने निश्चयपर दृढ रहना। बम्बई मत छोड़ना। मुझसे जो मदद चाहिए सो माँग लेना। खुश रहना और अपनी तबीयत सुधार लेना। तबीयत सुधार लेनेके बाद भले तू सेगाँव आ जा। इस गाँवमें तो तीन चौथाई हरिजन हैं। मेरे पास हरिजन ही हैं। वे मौज करते हैं। उनकी तबीयत भरके सेवा करना। अब और क्या चाहिए? लेकिन यह याद रखना कि यदि बीमार पडी तो तुझे फिर बम्बई जाना पड़ेगा। तू अपने-आप बीमार पड़ती है। अपना नख तुरन्त ठीक करा लेना।

कान्तिके बारेमे मेरा कलका पत्र मिला होगा। यदि तू उसपर प्रसन्नतापूर्वक अमल करेगी तो तू, मैं और कान्ति सुखी होंगे। मुझे याद करने की अपेक्षा यदि खुदाको याद करती तो तू जो चाहती है वह जरूर मिल जाता। अब भी ऐसा ही कर। मुझे भूल, कान्तिको भूल, सरस्वतीको भूल। केवल ईश्वरका ध्यान धर। इसका

१. मतलब अमृतलाल नानावटी से है, जो उस समय बीमार थे।

यह अर्थ नही कि तू मुझे छोड दे या मैं तुझे छोड दूँ। लेकिन इसका यह अर्थ तो है ही कि मेरे प्रति तेरा जो विशेष रुझान है उसे छोडकर सिर्फ खुदाका ही भरोसा कर। यदि ऐसा करेगी तो तू जरूर सुखी होगी और शान्ति भी मिलेगी।

खुदाको याद करके रोने मे तो एक अर्थ है। मनुष्यको याद करके रोने से आँखें खराब होनेके सिवा और कुछ नही मिलता। अगर मेरी माने तो वही धीरजसे पड़ी रहना।

वदूद से कहना, अब उसे अलग से नही लिखता। यह भी रातको आठके बाद लिख रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५७) से।

४७३. चर्चा : मारवाड़ी विद्यालयके विद्यार्थियोंके साथ[१]

१२ अक्तूबर, १९३६

गांधीजी ने विद्यार्थियोंसे कहा कि उनको प्रधानाचार्य श्रीयुत आर्यनायकमके योग्य बनना चाहिए। श्रीयुत आर्यनायकमने जमनालालजी के आमन्त्रणपर संस्थाका कार्य-भार सँभालना स्वीकार किया है। उन्होंने कैम्ब्रिज और लन्दन और बादमें शान्तिनिकेतनके अपने कार्य-कालमें विशिष्ट सफलताएँ प्राप्त की हैं। अब वे अपनी धर्मपत्नीके साथ वर्धा आ गये हैं। उनकी पत्नी भी संस्कृतकी बड़ी विद्वान् हैं और वे बनारस विश्व-विद्यालयकी एक प्रतिष्ठित स्नातिका हैं। उनको जमनालालजी द्वारा ही खड़ी की गई संस्था, महिला विद्यालयका कार्य-भार सौंपा गया है। गांधीजी ने विद्यार्थियोंसे कहा कि वे अपनेको प्रधानाचार्य ही नहीं, जमनालालजी के भी योग्य बनायें। . . . [गांधीजी ने आगे कहा]:

वे [जमनालालजी] बहुत पहले ही जाति और सम्प्रदायके बन्धनोको तोड़ चुके है, और हालांकि यह संस्था केवल मारवाड़ियोके दानके बलपर ही खडी हुई है और इसीलिए इसको यह नाम दिया गया है, पर जमनालालजी को तबतक सन्तोष नही होगा जबतक इसके द्वार सभी जातियो और धर्मोके बालकोके लिए नही खोल दिये जाते। वे इसके कार्यमें तबतक कोई रुचि नही लेगे जबतक वे इस सस्थाका वर्तमान सकुचित रूप बदलनेका — इसके द्वार अन्य हिन्दुओकी ही तरह हरिजनोके लिए और हिन्दुओकी ही तरह मुसलमानोके लिए भी खोल देनेका — रास्ता नही निकाल

१. महादेव देसाई के "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। इस विद्यालयके प्रधानाचार्य और विद्यार्थी गांधीजी के जन्म-दिवस पर, जो गुजराती पंचाँग के अनुसार १२ अक्तूबर को पड़ा था, उनसे मिलने आये थे।

लेते। उनके हृदयमें अस्पृश्यताके लिए और ऐसी भावनाके लिए भी बिल्कुल गुंजाइश नही है कि हिन्दू-धर्म अन्य किसी भी धर्मसे किसी भी तरहसे श्रेष्ठ है। उन्होंने हिन्दुओकी सस्थाओकी जितनी सहायता की है उससे किसी भी कदर कम सहायता मुसलमानोकी सस्थाओकी नही की है। उनके अनेक मुसलमान मित्र है जिनको वे अपने सगे भाइयोकी तरह मानते है। मै आप हिन्दू और मुसलमान विद्यार्थियोंसे कहता हूँ कि आप जमनालालजी के जीवनसे शिक्षा लेकर दूसरोंके धर्मोका उतना ही सम्मान करे जितना जमनालालजी करते है और एक-दूसरेके साथ सगे भाइयों-जैसा व्यवहार करे। मै आपको एक बात बतलाता हूँ जो आप शायद नहीं जानते और शायद बहुत लोग नही जानते। अस्पृश्यता-निवारणके प्रति जमनालालजी के मनमें जो लगन है, साम्प्रदायिकताकी भावनासे वे जिस तरह मुक्त है और उनके मनमे सभी धर्मोंके प्रति जो समान आदर-भाव है, उसका कारण मै बिलकुल भी नही हूँ। कोई भी अपना विश्वास दूसरेके हृदयमे नही बैठा सकता। कोई व्यक्ति बस इतना ही कर सकता है कि किसीके अन्दर जो विश्वास पल रहा है, उसे निखारने में वह उसकी कुछ सहायता कर दे। लेकिन जहाँतक जमनालालजी के अन्दर ये विश्वास उदित होने या इनके निखरने का सम्बन्ध है, मै इसमे उनकी कोई सहायता करने का श्रेय तक नही ले सकता। मुझसे उनकी मुलाकात होने के बहुत पहलेसे ही उनके ये विश्वास बन चुके थे और वे उनको अपने जीवनमें उतारने लगे थे। उनके इन आन्तरिक विश्वासोके कारण ही हम दोनो एक-दूसरेके निकट आये और उन्हीके कारण हम इतने वर्षोंसे परस्पर पूरा सहयोग करते हुए काम करते आ रहे है। आप बच्चोको ऐसे व्यक्तिके योग्य बनना पड़ेगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २४-१०-१९३६

४७४. पत्र : अमतुस्सलामको

१३ अक्तूबर, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

तेरे पत्र मिले। लेकिन मुझे बीमारोकी तीमारदारीसे एक मिनटकी भी फुरसत नही मिलती। नानावटी और मीराबहन टाइफाइडसे पीड़ित है। उनके पास रात-दिन किसीको बैठना पड़ता है। मुश्किलसे ही किसीको पत्र लिख सकता हूँ। अगर तुझे पूरी सुविधा मिले और तेरा शरीर जाने लायक हो तो जरूर मक्का शरीफ जा।

यदि तू किसी भी तरह अपना स्वास्थ्य सुधार ले तो बडी बात होगी। मै तो अच्छा ही हूँ। वजन तो लिया नही। साधन भी नही है।

डॉ० जीवराजके लिए पत्र[1] इसके साथ है। डॉ० गिल्डरके बारेमें भी लिख रहा हूँ।

फिलहाल ज्यादा पत्र पाने की आशा छोड़ देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५८)से।

४७५. पत्र : महादेव देसाईको

सेगाँव
१३ अक्तूबर, १९३६

चि० महादेव,

जब तुम्हारा मस्तक मेरे चरणोमे ही है तो फिर तुम्हे भूलने की बात ही कहाँ उठती है?

मेरा खयाल है, लेख[2] जैसा है वैसा ही जाने दो। उसकी दलीलोका पूर्वानुमान करने की अपेक्षा स्वय उसे अपना असन्तोप प्रकट करने देना अधिक ठीक होगा। मै अपनी पुरानी दलील भूल गया था, तिसपर भी आज फिर वही अनायास मेरे मनमे उभर आई, तो मुझे लगता है, यह ठीक ही है। अतः अच्छा है, लेख जैसा है वैसा ही जाये। मैंने कह तो दिया था न कि मेरे पास कोई सामग्री नही है। बीमारोकी वजहसे समय नही निकाल पाता, इसका मुझे दु:ख नही है। शेप कुशल है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

तुम्हारे हिस्से जो सेवा पड़ी है, उसीमे पूर्ण सन्तोष मानना चाहिए।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४९६)से।

१. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।
२. देखिए "अहिंसा की गुत्थियाँ", १७-१०-१९३६।

४७६. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

सेगाँव
१४ अक्तूबर, १९३६

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। तू तो अब गगन-विहारिणी हो गई है। भले ही उड़। परन्तु थककर गिरना मत।

मेरी अगल-बगलमें मीरा और नानावटीके बिस्तर हैं। दोनों आन्त्रज्वरसे पीड़ित हैं।

कहा जा सकता है कि मेरी डाक बन्द है। परन्तु तू अपनी छावनीके लिए मेरा जो आशीर्वाद माँगती है, वह तो है ही। मुझे आशा है कि सेविका होनेके कारण तू बिना किसी आडम्बरके सेवा ही करेगी और समझेगी कि सेवाका पुरस्कार सेवा ही है।

मैं तो यह नही जानता कि मुझे बम्बई जाना है। अहमदाबाद जाना भी अब तो अनिश्चित हो गया है। मीराको इस स्थितिमे छोड़कर तो मैं हरगिज नही जा सकता। यह कहा जा सकता है कि नानावटीकी तबीयत अब सुधारपर है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३८५)से। सी० डब्ल्यू० ६८२४ से भी, सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

४७७. सन्देश : मिल-मालिक संघ और मजदूर-संघको[1]

[१५ अक्तूबर, १९३६ के पूर्व][2]

महात्माजी का कहना है कि उनको टाइफाइड बुखारके दो मरीजोंकी देखभाल करनी है, फिर भी वे २१ अक्तूबरको दो घण्टेका समय देने को तैयार हैं। यदि मरीज काफी ठीक हो गये तो उनको २२ अक्तूबरको बनारसके लिए रवाना हो जाना हैं।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १६-१०-१९३६

१. मिल-मालिकों और मजदूरों, दोनों के संघों ने वेतन की कटौती के प्रश्न के सिलसिले में अपनी-अपनी बात गांधीजी को समझाने के लिए उनसे अनुरोध किया था कि वे अपनी सुविधानुसार कोई तिथि निश्चित कर दें।

२. यह सन्देश "अहमदाबाद, १५ अक्तूबर" की तिथि-पंक्तिके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

४७८. पत्र : महादेव देसाईको

सेगाँव
१६ अक्तूबर, १९३६

चि० महादेव,

कल अखवार नही आये। साथमें दो पत्र है। तार तो है ही। आज नानावटी की तबीयतमें बहुत सुधार कहा जा सकता है, सवेरे तापमान ९९ था। मीराकी तबीयतमे भी सुधार तो हुआ ही है; बहुत दिनोके बाद आज तापमान १०१ हुआ। लीलावतीके कपडे मैंने किसीके साथ भेजे थे, मिले होगे। अब भी कुछ रह गया है क्या? हो तो लिखे, जिससे मैं खोज निकालूँ। एक खूब फटी हुई बदरग साडी है जो बिलकुल सफेद हो गई है, क्या वह उसकी है? भणसालीका क्या हाल है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११४९८)से।

४७९. पत्र : अमृतकौरको

१६ अक्तूबर, १९३६

मूर्खा रानी,

थोडी फुरसत मिली है। सोचा कि तुमको कुछ शब्द लिखने मे इसका उपयोग कर लूँ। मरीज चगे हो रहे है, हालाँकि बुखार अभी गया नही है। गाँवोके कितने लोग अस्पताल जा सकते है? मैं चाहता तो दोनो मरीज अस्पताल चले गये होते। मैं अपने पिछले जीवनको और हालमे ही लिखे अपने लेखको[1] नकारे बिना ऐसा नही कर सकता था। ईश्वर जबतक मेरी इस देहसे इस धरतीपर काम कराना चाहता है, तबतक वह खुद ही इसकी हिफाजत करेगा। और जब अन्तिम घडी आ पहुँचेगी तब ससारके सारे चिकित्सक मिलकर भी मुझे नही बचा पायेगे।

सस्नेह,

तानाशाह

मूल अग्रेजी (सी०, डब्ल्यू० ३५९६) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६४०५ से भी

१. देखिए "मेरी बीमारी", १९-९-१९३६।

४८२. अहिंसाकी गुत्थियाँ

एक कॉलेजके प्रोफेसर और एक कक्षाके पचास विद्यार्थियोके दो प्रतिनिधि लिखते हैं:[1]

आपको अवश्य ही पता होगा कि पियर्स और आर्यरत्न द्वारा सम्पादित इन्टरमीडिएटकी पाठ्य-पुस्तक 'मॉडेल्स ऑफ कम्पैरेटिव प्रोज' में, जो इस साल हिन्दुस्तानके अधिकांश इन्टरमीडिएट कॉलेजोमें पढ़ाई जा रही है, आपकी 'द स्टोरी ऑफ माई एक्सपेरीमेंट्स विद ट्रुथ' में से एक पाँच पृष्ठका अध्याय दिया गया है। इसका शीर्षक "नॉन-वायलेंस" (अहिंसा) है। उसमें आपने इस विचारोत्तेजक सिद्धान्तकी और जीवनमें उसके प्रयोगकी चर्चा की है।

मेरी कक्षाके पचास विद्यार्थी और उनका अध्यापक, मैं भी, इस निबन्धके अध्ययन और चर्चामें कक्षाके कई घंटे लगा चुके हैं। . . .

पर एक जगह तमाम विद्यार्थी और उनका अध्यापक, मैं भी, आपके विचार ठीक तरहसे नहीं समझ पाये हैं। मेरा मतलब आपके उस कथनसे है जहाँ आपने इसका जिक्र किया है कि युद्धके समय अहिंसाके अनुयायीको क्या करना चाहिए। आपके शब्द ये हैं[2]: "दो राष्ट्रोंके बीच युद्ध छिड़ने पर अहिंसा में विश्वास रखनेवाले व्यक्ति का धर्म है कि वह उस युद्धको रोके। जो इस धर्मका पालन न कर सके, जिसमें विरोध करने की शक्ति न हो, जिसे विरोध करने का अधिकार प्राप्त न हुआ हो, वह युद्ध-कार्य में सम्मिलित हो; और सम्मिलित होकर भी उसमें से अपने को, अपने देश को और सारे संसारको उबारने का हार्दिक प्रयत्न करे।" जरा आगे चलकर (यूरोपीय महायुद्धके समय अपने सामने उपस्थित तीन मार्गोंकी चर्चा करते हुए) आपने लिखा है: ". . . अथवा उसके युद्ध-कार्य में सम्मिलित होकर उसका मुकाबला करने की शक्ति और अधिकार प्राप्त करना चाहिए। मुझमें ऐसी शक्ति नहीं थी। इसलिए मैंने माना कि मेरे पास युद्धमें सम्मिलित होने का ही मार्ग बचा है।"

हम अत्यन्त अनुगृहीत होंगे, अगर आप इस विषयपर जरा अपने पुराने और मौजूदा विचार भी साफ-साफ और कुछ विस्तारसे लिखने की कृपा करें। . . .

१. पत्र के कुछ अंश ही यहाँ दिये जा रहे हैं।

२. देखिए खण्ड ३९, पृ० २६८।

मैं नहीं कह सकता कि इस कॉलेज और इन पत्रपर सही करनेवालोंके नाम अप्रकट रख छोड़ना जरूरी था या नहीं। विद्वान् प्रोफेसरने उत्तरके लिए टिकट लगा हुआ एक लिफाफा भी भेज दिया है। इससे तो मानी है कि मैं खुद उन्हींको जवाब भेजूं। पर मेरे पास समय कम है। और फिलहाल तो और भी कम है। क्योंकि इन दिनों मैं दो बड़े प्यारे मरीजोंकी परिचर्यामें लगा हुआ हूं। पर 'हरिजन' के पाठकोंसे हर हफ्तेकी वातचीत करना भी तो मैं नहीं छोड़ना चाहता। इसलिए अपने पत्र-प्रेषकोंसे क्षमा मांगते हुए मैं तो "एक पथ दो काज' बना लेता हूं।

पत्रमें उठाया गया प्रश्न वहुत ही महत्त्वका है और इसने मेरे सामने कई बार वड़ी कठिनाई खड़ी कर दी है। कठिनाई यह नहीं कि किसी खास प्रसंगमें मुझे क्या करना चाहिए। नहीं, इसका निर्णय करने में मुझे कोई कठिनाई नहीं होती है। कठिनाई होती है अहिंसाकी दृष्टिसे अपने आचरणका औचित्य सिद्ध करने में, क्योंकि अहिंसा और हिंसा दोनोंके अनुयायी ऐसा आचरण कर सकते हैं जो ऊपरसे देखने में समान लगे। ऐसे समय, कार्यका सच्चा अर्थ तो उसके उद्देश्यसे ही लग सकता है।

यह लिखते समय मेरे सामने न तो वह पाठ्यपुस्तक है, और न वह मूल गुजराती ही, जिससे अंग्रेजीमें अनुवाद किया गया है। पर मैंने जो लिखा है, मुझे याद आ रहा है। और इससे भी वड़ी वात तो यह है कि जहांतक मुझे पता है, अहिंसाके विषयमें आज भी मेरे वही विचार हैं जो पहले थे।

ऊपर उद्धृत अंशमें मैंने जिस सर्वसामान्य सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है, वह तो गत महायुद्धके समय मुझे जो रास्ता अख्तियार करना पड़ा था, उससे उपलब्ध हुआ था। मैं अपनी जान तकको जोखिममें डालकर पूरे दिलसे युद्धमें शामिल हो गया था। जोखिमसे मेरा मतलव उन खतरोंसे नहीं है जो कि युद्धमें कुदरती तौर पर होते हैं। असलमें, जिन दिनों मैं कवायदोंमें शरीक हो रहा था और छावनियोंमें रहता था, प्लुरिसीसे वीमार था। वदनमें वड़ी कमजोरी थी, युद्धसे दो-तीन महीने पहले मैंने चौदह दिनका एक उपवास किया था, जिसके कारण मेरी शक्ति वेहद घट गई थी। अभीतक खोई हुई शक्ति लौट नहीं पाई थी। उस समय मेरा विश्वास था कि ब्रिटिश साम्राज्य कुल मिलाकर मनुष्य-जातिके लिए लाभदायक ही है। मैं तो उन दिनों यह सपना देख रहा था कि उसे किसी दिन युद्ध-मार्गसे हटाकर शान्तिके मार्गका हिमायती वना लूंगा—और किसी हेतुसे नहीं तो कमसे-कम उसके अपने अस्तित्वको, भिन्न रूपमें ही सही, कायम रखने के लिए। पर मुझे अपनी मर्यादाका भी पूरा भान था। मैं तो एक नाचीज जर्रेके वरावर था। उसकी सामान्य नीतिका प्रतिरोध करने की जरा भी ताकत मुझमें नहीं थी। मैं युद्धमें शरीक होता या न भी होता, उसे मेरा विवशतापूर्ण सहयोग तो हासिल था ही, क्योंकि मैं ब्रिटिश नौसेना द्वारा रक्षित खाना खा रहा था, उसीकी छत्रछायामें व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका उपभोग कर रहा था। इसलिए अगर मुझे किसी-न-किसी तरह युद्धमें सहायता करनी ही थी तो मुझे लगा कि अहिंसाके भक्तके रूपमें मेरे लिए वेहतर यही है कि मैं उसमें प्रत्यक्ष रूपसे भाग लेकर उसका जल्दी अन्त करने में सहायता करूं। यह विलकुल

मुमकिन है कि यह सब दुर्बलतासे ही उत्पन्न दलील रही हो, और मेरा दिल यह कह रहा था कि युद्ध एक बुराई है तो मुझे हर हालतमें उससे दूर ही रहना चाहिए था, चाहे इसके कारण मुझे भूखो मरना पड़ता या बागीकी मौत मरना पडता। खैर, न तब मैंने वैसा सोचा और न आज सोचता हूँ।

यह एक बिलकुल अलग बात है कि आज, जबकि मैं यह विश्वास ही नही करता कि यह साम्राज्य कुल मिलाकर कल्याणकर शक्ति है, तब, मेरा क्या रुख होगा।

अपने जवाबको अधिक साफ करने के लिए मै अपने जीवनसे ही एक और उदाहरण लेता हूँ। जब मै निरा बालक ही था, तभीसे मेरा हृदय और बुद्धि छुआ-छूतकी बुराईके खिलाफ बगावत कर रहे थे, पर चूँकि उस समय परिवारमे मेरी हस्ती बहुत ही तुच्छ थी, मै भी हरिजनोके प्रति चुपचाप उसी प्रकारका व्यवहार कर रहा था जैसाकि परिवार के अन्य व्यक्ति कर रहे थे, किन्तु आज मै वैसा नही कर सकता। कहने की जरूरत नही कि अपने व्यवहारका औचित्य मै उस समय दलीले देकर सिद्ध नही कर सकता था। मुझे उस समय यह नही लगा कि अपने इस व्यक्तिगत विश्वासको लेकर मै परिवारके साथ रह ही नही सकता।

बात यह है कि जीवनमे इसी तरह समझौते करते रहने पडते है। और चूँकि अहिंसा शुद्धतम और नि स्वार्थ प्रेम है, इसलिए उसे प्राय. ऐसे समझौतेकी अपेक्षा रहती है। पर उसकी शर्तें साफ और कडी है। अहिंसक व्यक्तिके समझौतेके आचरण के पीछे कोई स्वार्थ, किसी प्रकारका भय या असत्य नही होना चाहिए। और उससे अहिंसा-धर्मकी सेवा होनी चाहिए। एक बात यह भी हो कि समझौता बाहरसे लादी हुई चीज न हो, बल्कि व्यक्तिके मनकी सहज प्रेरणासे उद्भूत हुआ हो।

शायद मेरे इस उत्तरसे उन प्राध्यापक महोदय और उनके विद्यार्थियोको सन्तोष न हुआ हो। पर इससे मुझे अचरज नही होगा। अपने ही कार्योका मुझे बार-बार हवाला देना पडता है, इसके लिए मै क्षमा चाहता हूँ। पर इसका कारण तो स्पष्ट है। मै कोई ऐसा व्यक्ति नही हूँ जिसने बहुत विस्तृत अध्ययन करके ज्ञानार्जन किया हो। अहिंसाके बारेमें मैं जो-कुछ भी जानता हूँ, अपने अनुभवो और उन प्रयोगोसे ही जानता हूँ जो मै दुनियाकी नजरोके सामने सत्य-रूप ईश्वरसे डरते हुए विनम्र और शास्त्रीय ढगसे करता रहता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १७-१०-१९३६

४८३. पत्र : लीलावती आसरको

सेगाँव
१८ अक्तूबर, १९३६

चि० लीला,

मै तेरा सन्ताप समझ रहा हूँ। यदि मुझमें हिम्मत होती तो मैं तुझे आज ही बुला लेता। लेकिन तू धीरज धर। मैं यात्रासे लौट आऊँ, तब तुझे सेगाँवमें रखूंगा। यदि महादेवको सेगाँवमें छोड़ जाऊँ, तो तू भी यहाँ रहना। यदि हम दोनों जायँ तो तू राजकोट चली जाना, और जब अहमदाबादसे रवाना हों, तब हमारे साथ हो लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९५८३) से। सी० डब्ल्यू० ६५५५ से भी; सौजन्य : लीलावती आसर

४८४. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

१८ अक्तूबर, १९३६

चि० रामेश्वरदास,

पारनेकर ने प्रदर्शनीमें गोसेवा विभाग के बारे में योजना भेजी है, मुझे अच्छी लगती है। यदि तुमारी शक्ति के बहार नही हो तो उसका खर्च रु० १३०० से १५०० तक का तुमारे उठाना उचित लगता है। काग्रेस कमिटि के तरफसे रु० ५००० से अधिक नही लेना है सारे प्रदर्शनके लिए।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० १७३) से।

४८५. पत्र : सैयद महमूदको

सेगाँव, वर्धा
१९ अक्तूबर, १९३६

प्रिय महमूद,

दो अनमोल मरीजोकी वजहसे मेरी सारी खतो-कितावत बन्द होकर रह गई है। यह खत मै किसी तरह वक्त निकालकर लिख रहा हूं। हिन्दी-हिन्दुस्तानीके वारेमे अपने रुखकी सफाईमे कहने के लिए मेरे पास ज्यादा कुछ नही है। मेरा खयाल है कि तुम्हे इसका पूरा किस्सा मालूम नही है। मौलाना अब्दुल हकने तसवीर काफी तोड़-मरोड़कर पेश की है। मै हिन्दी सम्मेलनमे अभी साल-भरसे ही तो नही आया हूं। उन्होने अपनी कान्फरेन्सकी सदारतके लिए मुझे जब पहले-पहल बुलाया था,[1] उसे अब दस साल होने आ रहे है। मैने तब हिन्दीके एक हिस्सेके तौरपर उर्दूको तसलीम करने की पैरवी की थी। मैने उस वक्त अपना जो नजरिया पेश किया था, वह १९०८ से भी पहले बन चुका था। साल-भर पहले इन्दौर कान्फरेन्समे[2] मै एक कदम और आगे गया, मैनें उसकी एक परिभाषा मंजूर करा ली थी, जिसमे उर्दू भाषा और लिपि शामिल थी। मेरे सारे कुसूरकी जड़ यही है न? उन्हे यह सब मालूम था? अगर मालूम था तो फिर तुम्हारी समझमें क्या नही आ रहा है? क्या मेरी गलती है कि मै उस सभाके लिए हिन्दी-उर्दूको या महज हिन्दुस्तानी को तसलीम नही कर सका? मै इस सवालके वारेमे 'हरिजन' में काफी तफसीलसे लिख चुका हूं।[3] उसे पढ लो और फिर भी अगर तुम्हे वात पूरी तरह ठीक न जंचे तो मुझे तफसीलसे लिखो। तब मै तुम्हे समझाने की कोशिश करूंगा। मुझे जो एक मसला बिलकुल ही सीधा-सादा लगता है, अगर उसके वारेमे भी मै तुम्हें कायल नही कर सका तो मुझे अपने-आप पर ज्यादा भरोसा नही करना चाहिए।

प्यार समेत,

बापू

डॉ० महमूद, वार-ऐट-लॉ
छपरा, बिहार

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५०७९) से। महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे भी, सौजन्य : नारायण देसाई

१. गांधीजी ने २९ मार्च, १९१८ को हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर-अधिवेशन की अध्यक्षता की थी, देखिए खण्ड १४, पृ० २७७-८१।

२. देखिए खण्ड ६०, पृ० ४८६-९२।

३. देखिए खण्ड ६२, पृ० ४१३-१५ और ४४०-४२।

४८६. पत्र : नारणदास गांधीको

१९ अक्तूबर, १९३६

चि० नारणदास,

पत्रिका सुधारकर भेज रहा हूँ। सही तारीख अब बादमें लिखूंगा।

जवाहरलालजी[1] से भाषणके समय मिलना ठीक नही होगा। यदि वे घर पधारेंगे तो मैं अवश्य मिलूंगा। [सूत्र] यज्ञ और प्रार्थना, दोनोंके समय ठीक है। खान साहबके लिए मुसलमान भाइयोंसे भेटकी व्यवस्था करना। सब लोगोंसे मिलने के खयालसे कोई अन्य सम्मेलन भी — यदि हो सकता हो, अर्थात् सबकी इच्छा हो, तो — रख सकते हो। किन्तु मैं उसमे भाग नही ले सकूंगा। खान साहबके लिए ऐसा कुछ भी न हो सके तो कोई बात नही। जो हो, सो स्वाभाविक होना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२)से। सी० डब्ल्यू० ८५०९ से भी; सौजन्य : नारणदास गाधी

४८७. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

१९ अक्तूबर, १९३६

चि० मणिलाल और सुशीला,

मुझे तुम दोनोके पत्र पसन्द आये। मणिलाल, तुमने मेरी कमी बताई है, तो कोई अशिष्टता नही की। यह तुम्हारा कर्त्तव्य था। माता-पिताके दोष जानते हुए भी उनके प्रति आदरका भाव रखना, इसीको माता-पिताकी भक्ति कहते हैं। इस विषयमे यदि हरिलालको छोड दिया जाये तो तुममें से कोई अनुत्तीर्ण होनेवाला नही है। यो हरिलालका भी दोष क्या है? शराबकी धुनमें वह जो करता अथवा बोलता है, उसके लिए उसे उत्तरदायी कैसे माना जाये?

मैं बीमारोसे घिरा हुआ हूं, इसलिए लम्बा जवाब नही लिखूंगा। आज मीराबहन और नानावटी, दोनोकी तबीयत ठीक है।

मैंने तुम लोगोको जो शिक्षा दी, उसके बारेमें मुझे पश्चात्ताप नही है। इसी दिशामें और अधिक दे सकता तो मुझे अच्छा सन्तोष होता। तुम्हारा अहित होगा, यह समझकर मैंने तुम्हे अपने यज्ञमे नही होमा, हित समझकर होमा है। नतीजा बुरा

१. एक जैन साधु।

हुआ है, ऐसा भी मैं नही मानता। सोराबजी को[1] भेजने का विशेष उद्देश्य था। उसने वह उद्देश्य सिद्ध भी कर दिया। वह जीवित रहता, तो हम देखते। छगनलालको[2] तो विशेष कामके लिए ही तैयार होने को भेजा था। उसमें असफलता मिली, सो इसलिए कि उसे क्षयका भय हो गया और वह इग्लैंडसे लौट आया। तुम रिच[3] और पोलकको[4] क्यो भूलते हो? उन्हे भेजना भी सोद्देश्य था। तुम्हे न भेजना भी सोद्देश्य था। तुम समझदार हुए, तबतक मेरा पश्चिमी शिक्षाका मोह टूट चुका था। पैसेके अभावसे तुम्हे शिक्षा न दी हो, ऐसा नही था। डॉक्टरकी[5] थैली मेरे लिए खुली थी। जब रिचको भेजा, तब तो मैं भी पैसा खर्च कर सकता था। किन्तु जान-बूझकर तुम्हे अनुभवकी शालामे गढा, सेवाके क्षेत्रमें डाला। आजके युगको देखते हुए तुम्हे कलक रह जाये, यह मैं समझता हूँ। किन्तु उससे मेरी विचार-शैलीमे कोई परिवर्तन नही होता। तुम तो जानते हो कि मेरी निगरानीमे रखे गये यहाँके बालको और बालिकाओके साथ भी मैंने यही किया है। उसके विरुद्ध राधा, केशू, शकर, बाल, जयन्ती, कान्ति आदिने विद्रोह किया, उसकी मुझे चिन्ता नही है। इसमे मुझे, आज जो हवा बह रही है, उसकी ताकत नजर आती है, न कि अपनी विचार-धाराका दोप। यहाँ जो उत्तमसे-उत्तम काम करनेवाले लोग हैं वे पश्चिमी शिक्षा पाये हुए व्यक्ति नही है। महादेव-जैसे व्यक्ति, जिन्होंने वह शिक्षा प्राप्त की है, मेरे पास अपनी उस शिक्षाके बूते नही, वरन् अपने अन्य गुणोके कारण हैं। मैं जो उनकी शिक्षाका भी उपयोग कर लेता हूँ, तो यह कोई बडी बात नही है। कहा जा सकता है कि यह मेरी कार्यदक्षता है। महादेवसे मगनलालकी कीमत ज्यादा थी, यह महादेव खुद भी स्वीकार करेगा। मेरी फौजमे तुम्हे पढे-लिखे कितने दिखाई देंगे? उनपर भरोसा करके बैठा होता तो मेरी क्या दशा होती? जोजेफ, दोनो गॉडफ्रे और बर्नार्डको भेजने मे मेरा हाथ था, यह तो तुम जानते होगे? वे आज कहाँ है? उन्होने कौन-से तीर मारे? बैरिस्टर, डॉक्टर बनाने की कला भी मैं जानता था। किन्तु वह कला फली-फूली नही। मेरी समझमें तो तुम सब भाई उस भ्रम-जालसे बच गये। वेस्ट[6] और सैमके[7] सम्बन्धमे जो अपवाद किया, उसमे तुम मेरी अहिंसा क्यो नही देख पाते? उनके प्रति उदारता न दिखाता तो उन्हे अथवा उन-जैसोको स्थान कैसे दे पाता? तुम जानते हो कि किचिन[8] जब बीमार थे, तब मैं उन्हे मास खाने के लिए प्रोत्साहित करता था। नतीजा यह हुआ कि अन्तमे उन्होने मासका सर्वथा त्याग कर दिया। बोअर युद्धमे मैंने अपने हाथसे अपनी टुकड़ीके मिस्तरियोको शराब

१. देखिए खण्ड ११, पृ० ३३०।
२. छगनलाल गांधी।
३. एल० डब्ल्यू० रिच; देखिए खण्ड ४, पृ० ३९७।
४. एच० एस० एल० पोलक।
५. डॉ० प्राणजीवन जगजीवन मेहता।
६. ए० एच० वेस्ट।
७. गोविन्दस्वामी; देखिए खण्ड ४, पृ० ४६२।
८. एच० किचन।

पिलाई, तथा अन्य लोगोको बीडी दी। यह सब करने मे विवेक-बुद्धिकी बहुत आवश्यकता होती है। अपने स्वयके प्रति जितनी कठोरता आवश्यक है, दूसरोंके प्रति उतनी ही उदारता आवश्यक है।

यह पत्र जितना सोचा था, उससे अधिक लम्बा हो गया। कान्तिको तुम्हे कुछ नही भेजना है। देवदासने उसका सारा खर्च अपने ऊपर ले लिया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८५८) से।

४८८. पत्र : बलवन्तराय के० ठाकुरको

सेगाँव, वर्धा
१९ अक्तूबर, १९३६

भाईश्री बलवन्तराय,[1]

मै इन दिनो दो बीमारोकी तीमारदारीमें लगा हूँ। थोडा-थोडा करके आपका पत्र कल शामको पूरा किया। पता नही, अहमदाबादमे मेरे किये क्या होगा। मै तो अपनेको इस सम्मेलनका अध्यक्ष होने के अयोग्य मानता हूँ। किन्तु महात्मा बना दिया गया हूँ, इसलिए शायद मै सब-कुछ कर सकता हूँ। आप अपने सुझाव क्या सुधारोके रूपमे भेजेगे? हम मिल सके तो मुझे अच्छा लगेगा; लेकिन वह मौका कैसे आयेगा? बम्बई तो मुझे आना नही है। मै तो भटकता-भटकता अहमदाबाद पहुँचनेवाला हूँ।

आशा है, आप कुशल होगे।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[पुनश्च .]

आपका पत्र गुप्त रहेगा। मैंने उसे फाड डाला है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९२३८) से।

१. (१८६९-१९५२); गुजराती कवि और साहित्यकार

४८९. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

१९ अक्तूबर, १९३६

भाई बनारसीदास,

परभुदयाल ने तुमारे भाई के देहात की खबर दी। तुमारे मे ज्ञान है इसलिये आश्वासन की आवश्यकता कम है। जो रास्ते रामनारायण गये वही रास्ते हम सबको जाना होगा। समय का ही फरक है। उसमे शोक क्या? लेकिन हा, प्रेमीओ के मृत्युसे हमारी जिम्मेदारी बढती है और तुमारी तो बहूत ही बढ गई। ईश्वर ही ऐसे मौकेपर सच्चा मददगार है। वही तुमको मार्ग बतायगा।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० २५१६) से।

४९०. पत्र : महादेव देसाईको

१९ अक्तूबर, १९३६

चि० महादेव,

आज तो मैंने काफी लिखा। बावाने तो बडा काम किया। मीराका ताप आज ९८ है। अभी इससे अधिक नही हुआ। फिर भी उसे बेचैनी रहती है। मुंहमे लार नही बनती, चिकटापन रहता है। ग्लूकोज लेने अथवा फल खाने की भी इच्छा नही होती। और भी कुछ कसर है। मुझे सतरे या नीबू नही चाहिए। नीबू मुन्नालालने भूलसे मंगा लिये थे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५००) से।

४९१. पत्र : अमृतकौरको

सेगाँव, वर्धा
२१ अक्तूबर, १९३६

प्रिय विद्रोहिणी,

तुमने निश्चय ही 'हरिजन' के लिए मुझे बहुत बढ़िया सामग्री[1] दी है। महादेव तुम्हारा पत्र देखेगा। मै उसके कुछ अंशोको समझदारीके साथ इस्तेमाल करूंगा। तब तुमको भी थोडा प्रचार-कार्य करना होगा, समाचारपत्रोको भी लिखना होगा और अन्य महिलाओसे भी वैसा करने को कहना होगा। यदि तुम महिलाएं अपनी गरिमा और अपनी विशेष स्थितिको सचमुच समझ लो और मानवताके हितके लिए उनका पूरी तरह उपयोग करने लगो, तो तुम लोग मानवताको आजकी अपेक्षा कहीं बेहतर बना दे सकती हो। लेकिन पुरुषोने तुम लोगोको दासी बनाकर रखने मे सुख अनुभव किया है और तुम लोग खुशी-खुशी इस दासत्वको अपनानेवाली सिद्ध हुई हो; और अन्तमे स्थिति यहाँतक पहुंची है कि दास तथा दास-प्रभु दोनो मानवताको पतनके गर्तमे खीच ले जाने का अपराध एक होकर कर रहे हैं। तुम कह सकती हो कि बालपनसे ही मेरा विशेष कार्य यही रहा है कि नारीको उसकी अपनी गरिमा पूरी तरह अनुभव करने मे समर्थ बनाऊँ। एक समय था जब मैं स्वयं भी दास-प्रभु था, लेकिन बा ने स्वेच्छासे दासी बनना मजूर नही किया और इस प्रकार मेरी आँखें खोल दी और मैं अपने जीवनके महत् उद्देश्यको समझ सका। उसका काम तो उतने से ही पूरा हो गया। अब मैं एक ऐसी नारीकी तलाशमें हूं जो अपने जीवनके महत् उद्देश्यको पूरा कर सके। क्या तुम ऐसी नारी हो, क्या तुम ऐसी नारी बनोगी?

यदि शम्मी यूरोप जाने से सुखी और स्वस्थ हो सकता है पर तुम्हारे साथके बिना वहाँ जाने को तैयार न हो, तो तुम उसके साथ चली क्यो नही जाती? अधिक लिखने का समय नही है। कल तुमको एक लम्बा पत्र[2] लिखा था।

सस्नेह,

तानाशाह

[पुनश्च :]

हाँ, तुम्हे नटेसनको निश्चय ही लिखना चाहिए।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ३५९७) से; सौजन्य : अमृतकौर। जी० एन० ६४०६ से भी

१. देखिए खण्ड ६४, "अश्लील विज्ञापन", १४-११-१९३६।
२. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।

४९२. पत्र : लीलावती आसरको

२१ अक्तूबर, १९३६

चि० लीला,

मैं इस बीच तुझे लिख नही पाया, किन्तु तेरी याद तो आती ही रहती है। शर्तोंसे मुक्ति माँगकर तूने अपने ऊपर बहुत अधिक बोझ लाद लिया है, इसका तो भान है न? तू स्वेच्छाचारिणी नही होना चाहती। तू तो सयमी है, और उस दिशामे प्रगति करना चाहती है। इतना याद नही रखेगी, तो समझना, तूने रोजकी किटकिट अपने सिर ले ली है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११७५७) से।

४९३. पत्र : महादेव देसाईको

२१ अक्तूबर, १९३६

चि० महादेव,

थोडी डाक भेज रहा हूँ। राजकुमारीका पत्र पढने के लिए भेज रहा हूँ। वापस लौटाना, 'हरिजन' के लिए चाहिए। अगले हफ्ते क्या लिखा जाये, क्या न लिखा जाये, यह प्रश्न खडा होगा। दोनो बीमार मजेमे हैं — 'सबनॉर्मल'। मीराबहनकी शिकायतें आज कम हो गई हैं। उसे दही देता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५०१) से।

४९४. पत्र : महादेव देसाईको

२१ अक्तूबर, १९३६

चि० महादेव,

शिवप्रसादको[1] तार कर सकते हो। कौन-कौन साथ आ रहे हैं, यह भी लिख देना। तुम अपना आना भी निश्चित ही समझो। साथ का पत्र राजाजीके[2] लिए है। स० को लिख देना कि मैंने राजाको लिखा है।

प्रेमचन्दजी[3] के सम्बन्धमे किस ढगसे लिखा जाये, मेरी समझमें नहीं आ रहा। वियोगी हरिको लिखे तो वे शायद सक्षेपमे कुछ लिख दें। हम लोग साहित्यिकों पर सम्पादकीय टिप्पणी नही लिखते। किन्तु लल्लूभाईके[4] बारेमे थोडा विचार करने की आवश्यकता है। मेरा इरादा तो यहाँसे ६ बजे निकलने का है। वहाँसे कोई प्रवन्ध नही करना। सामान यहाँसे गाडीमे आयेगा। मैं, जितना बनेगा, चलूंगा। चलने की शक्ति है, ऐसा लगता है। जरूरत मालूम हुई तो गाड़ीमें बैठ जाऊँगा। रास्तेमें कमलाके[5] बालकको देखता आऊँगा। समय रहा तो मगनवाडीमें भी झांक लूंगा। इसमे तुम्हे कोई परिवर्तन सुझाना हो तो सुझाना। बीमार मौज कर रहे है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ११५०२) से।

४९५. पत्र : राधाकृष्ण बजाजको

२२ अक्तूबर, १९३६

चि० राधाकिसन,

विनयके[6] बारेमे खबर सुनी। कमलासे मिलने का मेरा बहुत मन है। वह यहाँ आये तो अच्छा हो। कल मैं यहाँ ठेठ पाँच बजेतक काममे लगा रहूँगा। इसलिए यदि मैं वहाँ आया भी तो मुझे दो-चार मिनटमें ही भागना पड़ेगा। कमलाको अब

१. शिवप्रसाद गुप्त।
२. यह पत्र उपलब्ध नहीं है।
३ और ४. जिनका हाल में निधन हो गया था।
५. कमला नेवटिया, जमनालाल बजाज की पुत्री।
६. कमला नेवटिया का पुत्र।

वहाँ बँधे रहने की जरूरत नहीं है। यह पत्र यदि तुम्हें ठीक लगे तो कमलाको पढ़वा देना और या तो उसे यहाँ भेज देना अथवा स्वयं ले आना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१२१) से।

४९६. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

वर्धागंज
२२ अक्तूबर, १९३६

सदाकी भाँति इस बार भी जन्म-दिवसके बधाई-सन्देश मुझे बहुत बड़ी संख्यामें प्राप्त हुए हैं। इन कृपालु मित्रोंको अलग-अलग उत्तर भेजना मेरे लिए सम्भव नहीं है। इसलिए मैं समाचारपत्रोंके जरिये उनकी शुभकामनाओंके लिए धन्यवाद दे रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २३-१०-१९३६

४९७. पत्र : अमतुस्सलामको

सेगाँव, वर्धा
२३ अक्तूबर, १९३६

चि० अमतुस्सलाम,

तेरा पत्र अभी-अभी मिला। कान्तिका खुशखबरीवाला पत्र 'रेंटिया बारस' [गांधी-जयन्ती] का था। उसमें था क्या जो तुझे भेजता? उसे फुरसत ही नहीं मिलती, इसलिए मैं उसे तकलीफ नहीं देता।

तू अस्पताल गई, सो अच्छा हुआ। खुर्शीद बहनने लिखा था। यदि तू उसकी मदद करे तो मुझे अच्छा ही लगेगा।

मैं खुद तो यात्रा नहीं करता। तीर्थस्थानोंमें बहुत पाखण्ड चलता है। मक्का शरीफ हो आनेवाले बहुत-से लोगोंको मैं जानता हूँ। वे वहाँ जाकर स्वस्थ होकर लौटे हों, ऐसा मैंने नहीं देखा। लेकिन तेरी श्रद्धा है, इसलिए मैं तुझे क्यों रोकूँ? तू खुशीसे जा और ज्यादा दृढ़, तन्दुरुस्त और निर्मोही (मोह-विहीन) होकर लौट आ। इससे ज्यादा और क्या कहूँ?

मैं आज काशी जा रहा हूँ। मैं वहाँ दो दिन रहूँगा और फिर कुछ घंटे राजकोटमें रुकूँगा। ३० को अहमदाबाद पहुँचूँगा। बीमारोंको अब बुखार नहीं है। तू जल्दी अच्छी हो जा।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३५९) से।

४९८. बातचीत: एक अंग्रेजके साथ[1]

[२४ अक्तूबर, १९३६ के पूर्व]

अभी उस दिन एक मित्रवत् अंग्रेजने गांधीजी से एक ऐसा प्रश्न पूछा जो मुझे कुछ विचित्र लगा: "आप गुजराती है, आप गुजरातके है। तब आपने अपने कार्य और अपने प्रयोगोंके लिए एक मराठी-भाषी प्रदेश क्यों चुना? और फिर वर्धा ही क्यों?" गांधीजी को भी यह कुछ कम विचित्र नहीं लगा, पर उन्होंने शान्त भावसे उत्तर दिया:

मै गुजरातका नही, समूचे भारतका हूँ। वर्धाको मैंने इसलिए चुना कि वहाँ बहुत सारी सुविधाएँ सुलभ है। वहाँ जमनालाल बजाज है, जिनको मेरे कार्य और मेरे प्रयोगोंके कार्यक्रममे बडी रुचि है, और उन्होंने मुझे ग्रामोद्योग सघके लिए अपना बहुमूल्य उद्यान और अपना उद्यान-कुटीर दे दिया। मैंने वर्धाको सघका प्रधान कार्यालय बना लिया।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २४-१०-१९३६

४९९. चतुर्दिक वृद्धि?

महाराष्ट्र चरखा सघके श्री कृष्णदास गाधी मुझे सूचित करते है कि कर्तयोंकी मजदूरी बढ़ने के कारण सूत बटनेवालियो की मजदूरीमे वृद्धि करना भी जरूरी हो गया है। इसलिए अब इस उद्देश्यसे प्रयोग किये जा रहे है कि खादीके मूल्यमें कोई वृद्धि किये बिना सूत बटनेवाली महिलाओकी कार्य-क्षमता कैसे बढाई जा सकती है जिससे कि वे तीन आने प्रतिदिन तक कमा सके। इसलिए उन्होंने दो तकुओवाला मगन चरखा इस्तेमाल करना शुरू कर दिया है। यदि खादी-उत्पादनका काम करनेवाले सभी कार्यकर्त्ता कृष्णदास गाधी और ऐसे ही चन्द अन्य कार्यकर्त्ताओकी-जैसी भावनासे अनुप्राणित होकर काम करने लगे तो खादीके सभी विभागोंकी मजदूरीमे जैसी चाहिए वैसी वृद्धि भी हो जायेगी और खरीदारोकी जेबोंपर कोई अनावश्यक बोझ भी नही पडेगा। और यदि हम खादीके सभी दस्तकारोको पूरी मजदूरी देने में सफल हो जाते है तो हमे अन्य सभी ग्रामोद्योगोको इस स्तरतक ले जाने मे कोई कठिनाई नही पडेगी। जरूरत इस बातकी है कि इसके लिए वैज्ञानिककी भावना अपनाई जाये,

१. महादेव देसाई के "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत।

जो किसी भी चीजको स्वत. सिद्ध मानकर न चलेगा, जो दिमागी या शारीरिक सुस्ती या काहिलीको बर्दाश्त न करेगा, और जो अपने उच्च उद्देश्यमे अटूट आस्था रखकर चलेगा। आस्थाके बिना पूरा कार्य निर्जीव रहता है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २४-१०-१९३६

५००. भैंस बनाम गाय

यदि समय रहते गायोकी रक्षाके लिए उपाय नही किये गये तो जल्दी ही उनका नाश होनेवाला है। लेकिन गायकी रक्षाके काममे लगे लोगोंसे एक प्रश्न अकसर पूछा जाता है। प्रश्न यह है कि यदि धार्मिक भावनाकी बात अलग रहने दें[1] तो क्या भैंस रखना गाय रखनेकी अपेक्षा सस्ता नही पड़ता। इस विषयका विशेष नही, बल्कि केवल सामान्य ज्ञान रखनेवाले व्यक्तिकी तरह मैंने बराबर साहस बटोर कर यह राय जाहिर की है कि कमसे-कम अन्तमें जाकर तो गाय रखना अपेक्षाकृत सस्ता ही पडता है, गाय और भैंस दोनोंकी एक साथ रक्षा करना असम्भव है; और अगर हम सिर्फ गायकी रक्षा करनेपर ही अपना ध्यान केन्द्रित कर दें तो भैंसकी रक्षा सहज ही हो जायेगी। लेकिन यदि गायोकी नस्ल मिट गई तो भैंसे कभी भी उसका स्थान नहीं भर सकेंगी और जीविकाके लिए सघर्ष करने तथा भूखकी ज्वालाको झेलते हुए अपने काममे लगे किसान, गाय तथा उसकी नर-सन्ततिसे वचित हो जाने से, एक ऐसी कठिनाईमें पड़ जायेंगे कि फिर उनकी पस्ती दूर नहीं हो पायेगी। इस महत्त्वपूर्ण समस्याके समाधानमें रुचि रखनेवाले लोगोके लिए मेरे एक मित्र द्वारा मेरे पास भेजी मॉण्टगुमरी डेरी फार्मसे सम्बद्ध सरदार दातारसिंह, एम० डी० डी० (इग०) की निम्नलिखित राय[2] सहायक सिद्ध होगी।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २४-१०-१९३६

१. यहाँ साधन-सूत्र में एक शब्द अधिक आ जाने से सन्दर्भ को देखते हुए अर्थ ठीक नहीं बैठता। अतः उस शब्द को छोड़कर अनुवाद किया गया है।

२. यहाँ नहीं दी जा रही है। इसमें यह बताया गया था कि किन कारणों से भैंस आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं है।

५०१. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको[1]

रेलगाड़ीमें
२४ अक्तूबर, १९३६

चि० अमला,

मीरा और नानावटी बीमार पड़े थे, इसलिए उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ।[2] अब वे पहलेसे अच्छे हैं। मैं बनारसके रास्तेमें हूँ। लगभग ५ नवम्बरको मैं सेगांव लौटूंगा। मैं ३० तारीखको अहमदाबाद पहुँच रहा हूँ और वहाँ कमसे-कम चार दिन रुकूँगा। आशा है, तुम मेरे किये हुए संशोधन समझ गई होगी। हाँ, दूध और मक्खन तुम्हारे लिए जरूरी है और इसी तरह फल भी। अधिक खर्चसे बचनेके लिए इनको बतौर दवाके लो।

सस्नेह,

बापू

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल कागजात, सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

५०२. पत्र : जेठालाल जी० सम्पतको

काशी जाते हुए रेलगाड़ीमें
२४ अक्तूबर, १९३६

चि० जेठालाल,

कहा जा सकता है, मीराबहन और नानावटीकी सार-संभालसे एक मिनटकी भी फुरसत नहीं मिलती थी। अब उनकी तबीयत ठीक है। काशी जा रहा हूँ, सो गाड़ीमें समय मिल गया है। तुम्हारे पत्र पढ़ गया हूँ। गृह-सदस्य (होम मेम्बर)को मैंने खुद ही लिखनेका निश्चय किया है। देखें क्या होता है। मौका देखकर 'हरिजन' में भी लिखूंगा। मैं इस बातको छोड़ नहीं सकता।

निश्चय ही तुम प्रदर्शनीमें कारीगर ला सकते हो। किन्तु उन्हें लानेका खर्च तुम्हींको भुगतना पड़ेगा। इस बार प्रदर्शनी पर ५,००० से अधिक खर्च न करनेका निश्चय हुआ है, इसलिए सब अपने-अपने खर्चसे आयेंगे। प्रदर्शनीके दौरान रहने और खानेका खर्च कमेटी देगी। यदि खर्चा निकालकर नफा हुआ तो वह खर्च करनेवाले सभी लोगोंमें बाँटा जायेगा। यदि तुम कुछ औजार लाओ या बनवाओ, तो मैं २००

१. मार्गरेट स्पीगल के दिनांक १ अक्तूबर, १९३६ के गुजराती में लिखे गये पत्र के उत्तर में।
२. मूल में यह वाक्य गुजराती में है।

रुपये तकके औजार लागत पर २० प्रतिशत नफा देकर बिकवा दूंगा। इससे तुम्हें साफ ४० रुपयेका फायदा हो जायेगा। मुझे तो 'गांधी औजारों' की ताकत आजमानी है। दूसरी तजवीज भी कर ही रहा हूँ। जलगाँव वगैरह में क्या हो सकता है, इसका पता भी तुम्हीं लगाना। मुझे इतना समय कहाँ मिलता है?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

५ से ९ नवम्बरके बीच मैं वापस सेगाँव पहुँच जाऊँगा।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० १८५७) से, सौजन्य : नारायण जे० सम्पत

५०३. भाषण : भारतमाता मन्दिर, बनारसमें[1]

२५ अक्तूबर, १९३६

इस मन्दिरमें किसी देवी-देवताकी मूर्ति नहीं है। यहाँ संगमरमर पर उभारा हुआ भारतका एक मानचित्र-भर है। मुझे आशा है कि यह मन्दिर सभी धर्मों, हरिजनों-समेत, सभी जातियों और विश्वासोंके लोगोंके लिए एक सार्वदेशिक मचका रूप ग्रहण कर लेगा और इस देशमें पारस्परिक धार्मिक एकता, शान्ति तथा प्रेमकी भावनाओंको बढ़ाने में बड़ा योग देगा।[2]

इस तीर्थका उद्घाटन करते हुए मेरे मनमें जो भावनाएँ उमड़ रही हैं उनको मैं शब्दोंमें व्यक्त नहीं कर पा रहा हूँ। प्रेमकी पुकार टाली नहीं जा सकती। मैं प्रेमकी पुकारपर ही अपने दो प्यारे-प्यारे मरीजोंको और गाँवके अपने कामको छोड़कर, सेगाँवसे चलकर यहाँ काशीमें आ गया हूँ। संत मीराबाईके शब्दोंमें, प्रेम एक कच्चे धागे-जैसा कोमल, जरा-से झटकेसे टूटनेवाला लेकिन स्वयं जीवन-जितना ही मजबूत होता है। प्रेम लोगोंको हजारों मील दूरसे खींच लाता है। मैं भी शिवप्रसादके स्नेहके सामने टिक नहीं सकता था। मैं इस तीर्थका उद्घाटन करने योग्य बिलकुल नहीं हूँ, परन्तु शिवप्रसादके स्नेहमें मैं अपनी सीमाओं, अपनी अपात्रताको बिलकुल ही भूल गया हूँ।[3] इन शिवप्रसादको जबसे मैं जानता हूँ, तबसे मैं देखता हूँ कि गंगातटको उन्होंने अपना निवास-स्थान बना रखा है, और गंगाजलसे अपनी देहको पवित्र रखने के

१. गांधीजी ने तीसरे पहर इस मन्दिरका उद्घाटन किया था। समारोहमें देशके सभी भागोंसे आये हुए २५,००० से अधिक लोगों का विशाल जनसमुदाय उपस्थित था, जिसमें हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, जैन, बौद्ध और हरिजन सभी शामिल थे।

२. यह अनुच्छेद बॉम्बे क्रॉनिकल से लिया गया है।

३. यहाँ बॉम्बे क्रॉनिकल का विवरण इस प्रकार है: "गांधीजी ने साथ ही कहा कि वे मन्दिरका उद्घाटन करने के लिए उपयुक्त पात्र तो नहीं हैं, परन्तु पण्डित मालवीय के आशीर्वाद से वह पाकर ही उद्घाटन कर रहे हैं।"

बावजूद उन्होंने अपने हृदयमें एक दूसरी ही गंगाको स्थान दे रखा है। यह भावना और कल्पनाकी गंगा इनके हृदयमें हमेशा बहती रहती है, और उसमें ये नित्य अवगाहन करते हैं। वे भावनाके घोड़े भी गढ़ते हैं और पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करते हैं। भावनाका बल ऐसा है कि यदि वह शुद्ध हो तो स्वर्गमें भी उड़ा ले जा सकता है, और अशुद्ध हो तो नरकमें भी ले जा सकता है। उनकी भारत-भक्तिकी भावना पूना-स्थित कर्वेके विधवाश्रममें उकेरे हुए एक नक्शेको देखकर मूर्तिमन्त हुई, और इसपर अपनी समुचित धनराशि खर्च कर डालने का उन्होंने विचार किया। जैसी इनकी भावना थी, वैसे ही इन्हे कलाकार भी मिल गये, शिल्पी और इंजीनियर भी वैसे ही मिल गये। एक बार तो उन्हें अपने जीवनकी भी आशा नहीं थी, किन्तु भगवान्‌ने उन्हें जीवित रखा, और उनका स्वप्न, उनकी भावनाकी प्रतिमा आज हम अपने सामने खडी देख रहे हैं।[1]

आज सुबह जब मुझसे पूर्णाहुति सम्पन्न करने के लिए कहा गया था और वेद-मन्त्रोका पाठ चल रहा था, तब उसे सुनते हुए मुझे अपनी प्रातःकालीन प्रार्थनाका एक श्लोक याद आ गया, जिसका पिछले बीस वर्षोंमें हम पाठ करते आ रहे हैं :

समुद्र वसने देवि पर्वत स्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

हम आज जिसकी सेवाके लिए अपने-आपको समर्पित कर रहे हैं वह यही धरित्री-माता है। हमे जन्म देनेवाली माँ मर्त्य होती है, परन्तु हमे पालने-पोसने और जीवित रखनेवाली हमारी धरित्री-माताके साथ तो ऐसी बात नहीं है। धरित्री-माताका अन्त भी कभी आयेगा, परन्तु तब उसके साथ उसकी सारी सन्तान भी कालके गालमें समा जायेगी। इसीलिए वह हमसे अपने प्रति जीवनपर्यन्त निष्ठाकी अपेक्षा रखती है। शिवप्रसादने इस मन्दिरको बिना किसी भेदभावके सभी धार्मिक विश्वासोंके लोगों को समर्पित किया है, वे सभी इसमें आराधना कर सकेंगे। उन्होंने इसके लिए किसी भी तरहकी कोई शर्त नहीं रखी है। इस मन्दिरमें भारतमातासे प्रेम करनेवाले हर व्यक्तिका स्वागत होगा और वह यहाँ अपनी सामर्थ्य तथा अपने विश्वासके अनुरूप आराधना कर सकेगा। इसलिए मैं शिवप्रसादका स्नेह-भरा आमन्त्रण अनसुना नहीं कर पाया। आइए, हम सब अपने विभेदों और मतभेदोंको भुला दें, भारतमाताके चरणोंपर उनकी बलि चढा दें और अपनी शुद्धतम भावनासे उसकी सेवामें जुट जायें। ईश्वरकी कृपासे शिवप्रसादका स्वप्न साकार हो गया है। ईश्वर इतनी अनुकम्पा और करे कि शिवप्रसादकी हार्दिक अभिलाषा भी पूरी हो जाये कि परस्पर जूझते सभी धार्मिक विश्वासों, भिन्न-भिन्न मतों और हितोंकी आपाधापी बन्द हो जाये।

१. यह अनुच्छेद हरिजनबन्धुसे लिया गया है। आगेका अंश हरिजनमें प्रकाशित "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से लिया गया है।

और ईश्वरसे मेरी प्रार्थना है कि शिवप्रसाद इतने दीर्घजीवी हों कि अपनी आँखोंसे इस अभिलाषाको फलवती होते देख सकें।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ३१-१०-१९३६, हरिजनबन्धु, १-११-१९३६ और बॉम्बे क्रॉनिकल, २६-१०-१९३६

५०४. भाषण: बनारसमें

२५ अक्तूबर, १९३६

मेरे हाथों यह जो भेंट दिलवाई गई, वह अच्छी नहीं मालूम हुई।[1] इस कामके लिए मैं सर्वथा अनुपयुक्त हूँ।[2] न तो मैं कवि हूँ, न मैं हिन्दी भाषाको ही अच्छी तरह जानता हूँ। मुझे तो किसी छोटे या बडेकी जयन्ती मनाना भी पसन्द नही है। यदि किसीकी जयन्ती मनानी भी हो तो तब मनानी चाहिए जबकि वह आदमी न रहे।

किसी महान् व्यक्तिको लोग कोई ऐसी पुस्तक भेंट करें जिसे मैं योग्यताके प्रमाण-पत्रोंका एक संग्रह कहना चाहूँगा, यह बात मेरे विचारसे धृष्टतापूर्ण नहीं तो सर्वथा अनुचित अवश्य है। इसलिए मैंने इस अभिनन्दन-ग्रन्थके लिए कुछ भी लिखने मे इनकार कर दिया। लेकिन महात्मा शब्द तो न जाने कितनी निर्योग्यताओं का द्योतक है और मैं समझता हूँ, इसीलिए मुझसे यह ग्रन्थ भेंट करने को कहा गया। मेरा यह हार्दिक विश्वास है कि जबतक कोई आदमी जीवित है, तबतक वह कवि, अथवा महात्मा या अवतार-जैसी किसी उपाधिका पात्र हो ही नही सकता।[3]

रामचन्द्रजी जब जीवित थे तब वे अवतार नही माने जाते थे। तुलसीदासजी जब थे तब उनकी जयन्ती नहीं मनाई गई थी।

उनको अवतार हमने बनाया है। आखिर 'गीता'का यह सूत्र कि "कर्म करने पर ही तुम्हारा अधिकार है, उसके फलपर नही", कवियों और महात्माओं पर ही तो विशेष रूपसे लागू होता है। इसलिए अगर मैथिलीशरणजी ऐसा मानते हों कि वे भारतके एक महान् कवि हैं तब तो मुझे उनसे झगड़ना पड़ेगा।[4]

उसी तरह यह जयन्ती तब मनानी चाहिए थी, जब कवि न होते। वैसे समय मे लोग जानते कि उनके लिए कुछ किया जा रहा है। लोग क्षमा करेंगे। मैंने तो जब पद्मनारायणजी सेगाँव गये थे, यह कह दिया था कि किसी अच्छे कविके

१. मैथिलीशरण गुप्त की पचासवीं वर्षगाँठ पर गांधीजी ने उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया था।

२. यह वाक्य हरिजन, ३१-१०-१९३६ में प्रकाशित महादेव देसाई के "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से लिया गया है।

३ और ४. ये अनुच्छेद हरिजन से लिये गये हैं।

लिए सम्मतियोंका लिखाना अच्छा नहीं। किसी सत्कविकी कृति कभी सम्मतिकी अपेक्षा नहीं करती। मैंने यदि कभी गुरुदेवके लिए, मालवीयजी के लिए अथवा द्विवेदीजी के लिए कुछ लिखकर दिया है तो दबावमें ही। सच पूछो तो मेरी इच्छा कभी किसी महापुरुषके सम्बन्धमें लिखने की नहीं हुई।

यदि उस समय मैंने गलती की थी तो क्या अब भी वही गलती करता रहूँ? यदि तुम भी कुछ दबाव डालो तो मैं तुम्हें भी कुछ लिखकर दे सकता हूँ, पर स्वेच्छावश नहीं। मैथिलीशरणजी को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। उनके बारेमें कुछ नहीं लिखता, फिर भी हममें कोई गलतफहमी नहीं होगी। मैं चिरगाँवमें उनका आतिथ्य भी स्वीकार कर चुका हूँ।

कवि किसीके निर्देश-इंगितपर नहीं, बल्कि अपनी प्रेरणापर लिखता है। इसलिए वह प्रशंसा पाने के लिए नहीं लिखता। उसका आनन्द और उसका पुरस्कार तो उसकी कृतिमें ही निहित होता है।[1]

सम्पादकके पच्चीस वर्ष, पृ० ८६ तथा अंग्रेजी साप्ताहिक हरिजन, ३१-१०-१९३६ से भी

५०५. पत्र : मीराबहनको

काशी
२६ अक्तूबर, १९३६

चि० मीरा,

इससे पहले तुमको लिख नहीं पाया। अभी-अभी मुन्नालालकी मार्फत तुम दोनोंके बारेमें शुभ समाचार[2] सुनने को मिला है। आशा है, तुम शरीर और मन दोनों दृष्टियोंसे स्वस्थ होगी। यह तो हर्षका विषय है कि हमारे दोष हमारे लिए चेतावनियाँ बनकर प्रकट होते हैं। इसलिए पिछले दिनकी घटनाकी स्मृतिसे तुम्हें प्रसन्न ही होना चाहिए।

प्रभा यहीं है।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३६६) से, सौजन्य मीराबहन। जी० एन० ९८३२ से भी

१. यह अनुच्छेद हरिजनसे लिया गया है।

२. मीराबहन और अमृतलाल नानावटी [illegible] रहे थे [illegible] तथा उन्हीं दोनोंके स्वास्थ्यमें सुधार होने से है।

५०६. पत्र : अमृतलाल ठा० नानावटीको

२६ अक्तूबर, १९३६

चि० अमृतलाल,

अभी-अभी तुम्हारे बारेमें तार मिला। चंगे होते ही चले जाना। मुझे पत्र लिखना।

काकासाहब यहाँ हैं। ताकत आ जानेपर दिलरुबा हाथमें लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७२१)से।

५०७. पत्र : मुन्नालाल जी० शाहको

२६ अक्तूबर, १९३६

चि० मुन्नालाल,

तुम्हारा तार अपेक्षित समय पर मिल गया। सब काम धीरजके साथ करना। वहाँ मेरी . . .[1]

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५९४) से। सी० डब्ल्यू० ७००२ से भी। सौजन्य : मुन्नालाल जी० शाह

१. साधन-सूत्रमें अस्पष्ट है।

५०८. पत्र : मोतीलाल रायको[1]

चलती गाड़ीमें
२६ अक्तूबर, १९३६

प्रिय मोतीबाबू,

आपका स्नेहपूर्ण तार और कर्जके सम्बन्धमें आपका पत्र दोनों मिले। जबतक पूरे कर्जका भुगतान नहीं हो जाता हम दोनोंमें से किसीको भी सन्तोष नहीं हो सकता। मैं अन्नदा बाबूका सबसे ताजा पत्र आपके पास भेज रहा हूं। जो गाड़ी पहुँचाई गई है उसका मूल्य यदि बाजार-भावपर तय नहीं किया गया है तो यह गम्भीर मामला माना जायेगा। और जबतक कर्जका भुगतान नहीं हो जाता, या कौंसिलसे सन्तोषजनक समझौता नहीं हो जाता तबतक आप प्रमाण-पत्रकी मांग कैसे कर सकते हैं?

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११०४७)से।

५०९. पत्र : एडमंड और इवॉन प्रिवाको

सेगाँव, वर्धा, म० प्रा०,
भारतके पतेपर
२६ अक्तूबर, १९३६

प्रिय भक्ति और आनन्द,

तुम्हारा प्यारा-सा पत्र बस अभी मेरे हाथ आया है। मैंने लोगोंसे अपील तो की थी कि जहाँतक बन पड़े मुझसे अधिक पत्र-व्यवहार न करें, लेकिन उन लोगोंमें तुम्हें अपने-आपको शामिल करनेकी जरूरत नहीं। तुम-जैसे मित्रोंसे, जिनसे मेरे सम्बन्ध सर्वथा अनौपचारिक हैं और जो दूर-देशोंमें रहते हैं, पत्र पाकर मुझे बराबर खुशी होती है।

अपने कामके कारण तुमको वहीं रहना पड़ रहा है और इस कारण तुम लोग फिर भारत नहीं आ सकते — यह कोई दुःखकी बात नहीं। जो हृदयसे एक हों, उनकी दैहिक दूरी कोई महत्त्व नहीं रखती।

१. प्रवर्तक संघ के।

सत्य और अहिंसा अनेक तथाकथित वैज्ञानिक तथ्योसे कही अधिक सच्चे है। हाँ, उनपर अमल करना कठिन है। लेकिन यदि पहलेसे ठीक तैयारी की गई हो, तो यह उतना कठिन भी नही जितना देखनेमें लगता है। पर हम तो जीवनके इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्यके लिए अपनी फुरसतके चन्द घण्टोसे अधिक कोई समय देते ही नही। किसको कितना महत्त्व देना चाहिए, इसपर हमे पुर्नविचार करने की जरूरत है।

तुमने मीराकी गम्भीर बीमारीके बारेमे पढा ही होगा। अब वह खतरेसे बाहर है। कमजोर अब भी है।

यह पत्र चलती गाडीमे लिख रहा हूँ।

तुम दोनोको स्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० २३३८) से।

५१०. पत्र : मीराबहनको

रेलगाडीमे
२८ अक्तूबर, १९३६

चि० मीरा,

प्रवासके दौरान तुमको लिखा मेरा यह दूसरा पत्र[1] है और यह इतना ही बतानेके लिए लिख रहा हूँ कि तुम मेरे मनमे सदा बसी रहती हो। आशा है, दोनोके स्वास्थ्यमे निरन्तर सुधार हो रहा होगा।

दिल्लीमे मैं सारा दिन चुपचाप जुटकर काम करता रहा। बा हमारे साथ है। मनु देवदासके साथ रह गई है। इन दिनो दिल्लीमे बहुत मजेदार ठण्ड पड रही है। देवदास पहलेसे बहुत अच्छा है।

सस्नेह,

बापू

[पुनश्च]

कल हम राजकोटमे होंगे। ३० को अहमदाबादमे।

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६३६७)से; सौजन्य · मीराबहन। जी० एन० ९८३३ से भी

१. पहले पत्रके लिए देखिए "पत्र : मीराबहनको", २६-१०-१९३६।

५११. पत्र : सैयद महमूदको

रेलगाड़ीमें
२८ अक्तूबर, १९३६

प्रिय महमूद,

मैं यह चलती गाडीमें लिख रहा हूँ। उम्मीद है कि मेरा पिछला खत[1] तुम्हें मिल गया होगा। वह मैंने तुम्हारी टिप्पणीपर एक उडती हुई नजर डालने के बाद लिखा था। अब मैंने उसे गौरसे पढ लिया है। उसमें एक बडी तवारीखी गलती मौजूद हे। उससे साफ झलकता हे कि तुम समझते हो, यहाँ मुसलमानोकी काफी बडी सख्या बाहरसे आये लोगो और उनकी ही बादकी पीढ़ियोंके लोगोंकी है। लेकिन सचाई इससे बिलकुल उलटी है। आज मुसलमानोकी भारी सख्या किसी वक्त इस्लाम कबूल कर लेनेवाले यहीके लोगो और उनकी बादकी पीढियोकी है, और इसलिए उन लोगोकी है जिनको वैदिक सभ्यता और सस्कृति विरासतमें मिली है। और प्रवासी मूल निवासियोके पूर्वजोकी उपलब्धियोपर गर्व क्यो न करे? तुम्हारी टिप्पणीमे और भी कई बडी-बडी गलतबयानियाँ और उनसे निकाले गये गलत नतीजे या गलत-सलत अटकले मौजूद है। मुझे लगता है कि उसे बडी जल्दबाजीमे तैयार किया गया है। काश कि मेरे पास उनकी तरफ तुम्हारा ध्यान दिलाने का समय होता! लेकिन मेरे पास इतना समय नही। तुम अपनी टिप्पणी दुबारा पढ जाओ तो शायद कुछ गलतियाँ तो तुम्हे खुद ही दिख जायेंगी।

आखिरमे, मैं अब भी मुसलमानोंके बिना स्वर्गमे जाने को तैयार नही और न एकता पैदा करने की मेरी कोशिशमे ही किसी कदर ढिलाई आई है। बात सिर्फ यह है कि मेरा तरीका अब जुदा हो गया है, लेकिन वह है ज्यादा ठोस और ज्यादा गहराईतक असर करनेवाला। नतीजा तो ईश्वरके हाथ है।

प्यार समेत,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५०७८) से।

1. देखिए "पत्र : सैयद महमूदको", १९-१०-१९३६।

५१२. पत्र : कनु गांधीको

रेलगाडीमे, पालनपुर
२८ अक्तूबर, १९३६

चि० कन्हैया,

लगता है, अपने समकालीनोंमे आजतक एक तू ही दृढ बना रहा। मेरा विश्वास है कि इससे तूने कुछ भी नही खोया। भगवान् तुझे ऐसी शक्ति दे कि तू सदा दृढ रह सके। तू दीर्घायु हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

५१३. पत्र : मुन्नालाल जी० शाहको

रेलगाडीमे
[२][1]८ अक्तूबर, १९३६

चि० मुन्नालाल,

तुम सबका काम बगैर खीचतानके चल रहा होगा। दोनों भाई आनन्दमे होगे। कल दिल्लीमें तुम्हारे पत्र और तारकी राह देखी, लेकिन कुछ नही मिला। अब देखूं, राजकोटमे क्या होता है। आज नानावटीको अलगसे नही लिखता।

बलवन्तसिंह मजेमे होगा और तुम दोनो दूध और शक्करकी तरह घुलमिल गये होगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८५९३) से। सी० डब्ल्यू० ७००१ से भी, सौजन्य मुन्नालाल जी० शाह

१. यह अंक साधन-सूत्र में अस्पष्ट है। गांधीजी २७को दिल्ली में थे। इबारत से लगता है, यह पत्र उसके अगले दिन लिखा गया होगा।

५१४. भाषण : हरिजन-सेवकोंके समक्ष[1]

राजकोट
२९ अक्तूबर, १९३६

गांधीजी ने हरिजन-सेवकोसे कहा कि उनकी खोटके जो मामले मेरी नजरमें आये, उनको देखते हुए मेरा यह विश्वास पक्का हो गया है कि किसी भी हरिजन आश्रमको केन्द्रीय कार्यालयकी ओरसे वित्तीय सहायताकी कोई आशा नहीं रखनी चाहिए। हाँ, यदि वे राजी हो तो केन्द्रीय संस्थाके अनुशासन और नियन्त्रणमें भले ही रहें। उनमें आई खोटसे मैं इतना आशंकित हो गया हूँ कि अब इन संस्थाओंकी वित्तीय सहायताके लिए किसीसे भी आग्रह करने का साहस मुझमें नहीं रह गया है। इन संस्थाओका कार्य-भार सँभालनेवाले सभी लोगोका यह एक स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वे जनता से कोई भी वित्तीय सहायता माँगने से पहले उसे अपने खरेपनके बारेमें आश्वस्त कर दें।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-११-१९३६

५१५. भाषण : विट्ठल कन्या विद्यालय छात्रावास, नड़ियादमें[2]

३० अक्तूबर, १९३६

मुझसे इस अवसरपर भाषण करने के लिए आग्रह नही किया जाना चाहिए था, क्योंकि यहाँ मेरी उपस्थिति ही यह बतलाने के लिए काफी है कि इस संस्थाको मेरा आशीर्वाद प्राप्त है। और मैं जब गत वर्ष यहाँ आधारशिला रखने आया था[3] तो मैंने इसको अपना आशीर्वाद दिया ही था। लेकिन अब चूँकि मुझसे भाषण करने के लिए कहा गया है, इसलिए मैं कहता हूँ कि मेरा आशीर्वाद कुछ शर्तोंके साथ है। मैं इसके संचालकों, अध्यापकों और बालिकाओंको भलीभाँति समझा देना चाहता हूँ कि यह संस्था नैतिक आधारके बिना टिकी नही रह सकेगी। सभी कार्यकर्त्ताओंको निःस्वार्थ भावसे काम करना चाहिए और यहाँ जो शिक्षा दी जाये, वह

१. यह और इसके बाद के दो शीर्षक महादेव देसाई के "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत किये गये हैं।

२. जमनालाल बजाज ने छात्रावास का उद्घाटन किया था।

३. ३१ मई को, देखिए खण्ड ६१, पृ० १२६-२७।

सच्ची शिक्षा हो, अर्थात् ऐसी शिक्षा जो छात्राओके चरित्रके सर्वोत्तम गुणोको जगा सके, उनको विकसित कर सके। हममें से प्रत्येककी आत्मामे सद्गुण निहित रहते है, पर अध्यापकोको उनको मुखर बनाना पड़ता है। यह पवित्र कार्य वही अध्यापक कर सकते है जिनका अपना चरित्र निष्कलुष हो, जो सदा ही सीखने और अधिकसे-अधिक पूर्णता प्राप्त करने के लिए तैयार हो। बालिकाओको भी ग्रहणशील बनना पडेगा। उनको अपनी-अपनी खूबियाँ दिखाने की फिक्रमे न रहकर इस बातकी चिन्ता करनी चाहिए कि वे क्या करे जिससे उनके शिक्षकोको उनके सर्वोत्तम गुणोको विकसित करने में सहूलियत हो। मुझे इस प्रकारकी सस्थाओका बडा कटु अनुभव रहा है, इसलिए मै ऐसी नयी-नयी सस्थाओको आशीर्वाद देने मे हिचकता हूँ। मुझे तो इसमें भी शका है कि अध्यापकोको मेरे आशीर्वाद सचमुच दरकार है। मै कह सकता हूँ कि उनमे से कुछ तो मुझे समयसे पिछडा हुआ समझते है, ऐसा आदमी मानते है, जिसे वर्तमान युगकी भावना और आधुनिक प्रवृत्तियोकी कोई समझ नही और जो आजके युवकोको सम्बोधित करने योग्य बिलकुल नही है। ठीक है, ऐसा सोचनेवाले लोग मेरी कही बातोपर कान न दें।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-११-१९३६

५१६. बातचीत : छात्र-छात्राओंसे

नडियाद
३० अक्तूबर, १९३६

विद्यालयकी[1] छात्राएँ गांधीजी के जन्म-दिवसपर काता हुआ अपना सूत उनको भेंट करने के लिए तीसरे पहर जमा हुई। बोचासनके वल्लभ विद्यालयके छात्र भी वहाँ मौजूद थे। बालिकाओने १,२२,४७५ गज सूत भेंट किया; इतना ही नहीं, उनमें से ६० ने अपनी जरूरतके वस्त्रोंके लिए वर्ष-भरमें १,००,००० गज सूत कातने की प्रतिज्ञा ली।

[गांधीजी] तुम लोग जानती हो कि आज तुम्हारे छात्रावासका उद्घाटन सेठ जमनालाल बजाजने किया है। तुमको उस भले इनसानके योग्य बनने की कोशिश करनी चाहिए। शायद तुम जानती हो कि वे एक भले इन्सान है?

[बालिकाएँ :] हाँ, जरूर।

नही, "हाँ, जरूर" नही, "जी, हाँ।"

वे एकसाथ ऊँचे स्वरमें बोल पड़ीं : "जी, हाँ।"

१. विट्ठल कन्या विद्यालय।

लेकिन वे अगर एक भले इनसान है, तो बाकी सब कैसे है?

सभी भले है।

तुम लोगोको छोडकर?

हम भी भली है।

सबकी-सब, एकदम सभी? बिलकुल पक्की बात?

जी, हाँ।

अच्छा, तो बताओ, तुममे से कोई झूठ बोलती है?

"हाँ, बोलती है।"—उनमें से कुछ बोलीं।

हमेशा या कुछ मौकोपर?

कुछ मौकोपर।

और क्या तुम झगड़ती नही?

झगड़ती है।

हमेशा?

"जी हाँ", उनकी यह आवाज खिलखिलाहटोंमें दब गई।

हाँ, लेकिन मुझे कहना पडेगा कि तुम लोग भली हो, क्योकि तुम यह स्वीकार करने के लिए तैयार हो कि तुम कभी-कभी झूठ बोलती हो और आपसमे झगड़ती हो, और बाकी हम लोग भी बस इसी मामलेमे भले है। लेकिन उन लोगोको क्या कहोगी जो धडल्लेसे कहते फिरते है कि हर आदमीको सच बोलना चाहिए, पर वे खुद कभी सच नही बोलते?

वे पाखंडी है।

बिलकुल सही है। हमे कभी पाखडी नही बनना चाहिए। एक प्रश्न और। तुम लोगोने वर्ष-भरमे एक लाख गज सूत कातने की प्रतिज्ञा की है। और तुमने प्रतिज्ञा तोड दी तो?

"ऐसी कोई आशंका मत रखिए", उन्होंने जोरदार विरोध प्रकट किया।

लेकिन अगर तोडी तो?

"हम जानती है, हम नही तोड़ेंगी", उन्होने और ज्यादा जोरसे प्रतिवाद किया।

पर मान लो कि तुम तोड़ देती हो तब?

(एक छात्रा) 'उपवास'!

कौन करेगा? मै या तुम लोग?

हम लोग करेंगी।

दूध और फलके सहारे उपवास?

जी नहीं। हम पानीके अलावा कुछ नहीं लेंगी।

लेकिन तुम कितने दिनका उपवास करोगी?

जबतक हम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कोटा पूरा नहीं कर लेतीं।

बहुत सुन्दर। लेकिन इतना समझ लो कि यहाँ सम्वाददाता लोग भी बैठे हैं। वे हमारी इस बातचीतको छाप देंगे और अगर तुम न कर पाईं तो तुमको अफसोस होगा।

इसके बाद वल्लभ विद्यालयके लड़कोंकी बारी आई। ये धाराला जातिके छात्र हैं। वहाँ उनके पढ़ने, रहने तथा खाने की निःशुल्क व्यवस्था है। अध्यापकने १२ अक्तूबरको धुनकर बनाई गई पूनियोंसे काते गये सूतका बुना वस्त्र गांधीजी को भेंट किया, जिसके लिए धुनाईकी मजूरीके पैसोंसे खरीदी गई कपासका उपयोग किया गया था। अध्यापकने कहा कि छात्र सड़कोंकी सफाई और झाड़ू-बुहारी भी करते हैं।

हर रोज?

नहीं, गांधीजी के जन्म-दिवसपर हमने ऐसा किया।

अच्छा, मैं तुम लोगोंसे कहता हूँ कि यदि तुम हर रोज ऐसा करो, तो सफाईकी दृष्टिसे तुम बोचासनको एक आदर्श गाँव बना दोगे और तुम खुद किसी दिन सरदार वल्लभभाई पटेल बन सकते हो। अगर तुम सरदार वल्लभभाई न बन पाओ, तो भी ऐसा तो माना ही जायेगा कि तुम लोगोंने एक बहुत ही भला काम किया। लेकिन मेरी यह बात भी समझ लो कि तुम अगर सडकोंकी सफाई नही करोगे तो तुम कभी भी सरदार वल्लभभाई नही बन पाओगे।

इसपर एक लड़केने कहा: "लेकिन हमारा गाँव एक बुरा गाँव है। वह इस योग्य नहीं कि उसके लिए इतना सब किया जाये। हम भले ही सड़कें साफ करते जायें, लोग उनको गन्दा करते ही रहेंगे।"

नही, ऐसा मत कहो। सारे गाँव इसी तरहके हैं, और हमारा यही कर्त्तव्य है कि वे सडकोंको जितना ज्यादा गन्दा करे, हम उतने ही अधिक धैर्यसे अपने काममें जुटे रहे। और तुम लोगोंको यह नही भूलना चाहिए कि तुम गाँवकी ही सन्तान हो।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ७-११-१९३६

५१७. भाषण : नगरपालिका बालिका विद्यालयमें[1]

अहमदाबाद
३० अक्तूबर, १९३६

मेरा मन सेगाँवमे रमा है। मुझे ऐसी चीजोमे अब रुचि नही रही। वैसे, एक दूसरी ही दिशामे जीवनका मोड आने से पहले मै इनमे रुचि लिया करता था।

साथ ही उन्होंने कहा कि नारी-शिक्षाको नारीत्वके विकासमें सहायक होना चाहिए, जिससे कि स्त्रियाँ अपना जीवन पवित्र बना सके।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, ३१-१०-१९३६

५१८. स्वयंसेवक भंगी

'भगी' शब्द सुनकर जैसा बहुत-से लोग करते है, उसी तरह कोई पाठक भी बिदक न उठे। भगी शायद समाजका सबसे उपयोगी सदस्य होता है। समाजका स्वास्थ्य कदाचित् उचित आहारसे भी अधिक सफाई-स्वच्छताकी ठीक व्यवस्थापर निर्भर करता है। कहने की जरूरत नही कि यहाँ मैं भगी जातिका विचार नही कर रहा हूँ। मै तो उस पेशेका विचार कर रहा हूँ जिसका 'भगी' शब्दसे बोध होता है। मै भगीके पेशेको एक नेक पेशा मानता हूँ — जिन पेशोको "प्रतिष्ठा-जनक" माना जाता है उनसे भी अधिक नेक। ये प्रतिष्ठाजनक पेशे बड़ी आसानीसे कलकमय बन जा सकते है, लेकिन भगीका पेशा नही।

बहरहाल, श्री अप्पा पटवर्धन, जो एम० ए० है, स्वयसेवक भगियोके दलके प्रधान बन गये है। वे इस दलको फैजपुरके काग्रेस-शिविरकी सफाईका काम करने के लिए खड़ा कर रहे है। स्वागत समितिके सामने सवाल यह था कि इस कामके लिए पेशेवर भगियोको रखा जाये या स्वयंसेवक लोग ही इसे करे। किसीने कहा कि पिछली काग्रेसमे तो यह काम शहरके भगियोने ही किया था। लेकिन निर्णय स्वयसेवक भगियोके ही पक्षमे हुआ। और इस कामके लिए इससे अधिक योग्य व्यक्ति नही हो सकता था। अप्पा साहबने इस कामकी पात्रता प्राप्त की है, क्योकि वे लम्बे समयतक इसका प्रशिक्षण पा चुके है और इससे भी बड़ी बात यह है कि समाजके इस सार्वाधिक तिरस्कृत वर्गके प्रति उनके हृदयमे प्रेम है। और उनका

१. भवन के उद्घाटन-समारोह में।

यह प्रेम कोरी भावुकता नही रहा है। उन्होंने भंगियोके साथ मिलकर खुद भी सफाईका काम किया है और उन्हे मालूम है कि ठीक तरहसे सफाई करने का काम भी दूसरे विज्ञानोकी ही तरह एक विज्ञान है। उन्होने इस कामके लिए १८ वर्ष और उससे अधिक आयुके दो सौ स्वयसेवकोकी नि शुल्क सेवा प्राप्त करने के निमित्त काम करने को उत्सुक लोगोसे प्रार्थनापत्र भेजने को कहा है। प्रार्थनापत्र ऐसे ही लोग भेजे जो काग्रेस-अधिवेशनके दौरान सारे पाखानो और शिविरकी सफाई राजी-खुशीसे करने को तैयार हो। वे ऐसे उत्साही नौजवान हो जो तमाशा या काग्रेस प्रतिनिधियोको काम करते हुए देखने की खातिर अपने कर्त्तव्यकी उपेक्षा न करे। उनके हिस्से तो यही गौरव-पद रहेगा कि प्रतिनिधियोको सफाई वगैरहकी पूरी सुविधा जुटाकर वे उनके लिए काम करना सम्भव बनायें।

महाराष्ट्र अच्छे और परिश्रमी कार्यकर्त्ताओका गढ है। इस कामके लिए दो सौ अच्छे और ईमानदार नौजवान जुटा पाना उस प्रान्तके लिए कठिन नही होना चाहिए। इसका मतलब यह नही कि दूसरे प्रान्तोके नौजवान प्रार्थनापत्र न भेजे। लेकिन और किसी बातकी खातिर नही तो मितव्ययिता की ही खातिर यह अच्छा होगा कि जिस प्रान्तमें काग्रेसका अधिवेशन हो, उसीमें से ऐसे कामके लिए नौजवान लोग मिल जाये, और जिस ताल्लुके या जिलेमे अधिवेशन हो, यदि उसी ताल्लुके या जिलेसे मिल जायें तब तो और भी अच्छा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३१-१०-१९३६

५१९. अपमान किसका?

एक हरिजन-सेवकके लम्बे पत्रसे मैं निम्नलिखित अनुच्छेद उद्धृत कर रहा हूँ:

> अपनेको हिन्दू कहने मे शिक्षित हरिजनोकी चिढ़ दिन-दिन बढती जा रही हे। कारण, अगर वे कहते है कि वे हिन्दू है तो फिर उन्हे अपनी जाति भी बतानी पड़ती हे, और मनमें हीनताकी भावना होने के कारण यह बात उन्हे बड़ी अरुचिकर लगती है। अपनेको हिन्दू बताकर अपमान सहने की अपेक्षा अपनेको ईसाई कहना उन्हे अच्छा लगेगा। तो फिर उन्हे सिख या बौद्ध बनने को कहकर हम इस अपमानका अन्त क्यों न कर दें? क्योकि सिख और बौद्ध तो हिन्दुओं-जैसे ही है।

सिख और बौद्ध हिन्दुओ-जैसे ही है, यह कहकर पत्र-लेखकने अपने पक्षका खण्डन आप कर दिया हैं। क्योकि अगर बात ऐसी हे तो हरिजनोको सिख या बौद्ध बनने की प्रेरणा देना व्यर्थ ही हे। यह छूट तो हर हिन्दूको है कि वह अपनेको हिन्दू-धर्मके अनेक सम्प्रदायोमे से चाहे जिसका अनुयायी बताये। ऐसा करके भी वह हिन्दू ही रहेगा। और अगर कोई हिन्दू न चाहे या उसने जात-पाँतको त्याग दिया हो तो वह

अपनी जाति वताये ही क्यो ? वहुत-से हिन्दू जात-पाँतमे विश्वास नही करते। मैंने यह वतानेकी कोशिश की है कि जाति-प्रथा हिन्दू-धर्मका अग नही है। वर्ण जाति नही, वर्ग है। यदि कोई ब्रह्म-ज्ञानका उपदेशक है तो वह मजेमे अपनेको ब्राह्मण कह सकता है, यदि वह सैनिक है तो अपनेको वखूवी क्षत्रिय कह सकता है, अगर व्यापारी या किसान है तो वह वेखटके अपनेको वैश्य कह सकता है; और इसी तरह यदि वह सेवा-कार्य करता है तो अपनेको शूद्र कह सकता है। ये विभाजन जातिगत नही, वर्गगत है और इनका सम्वन्ध विभिन्न धन्धोमे है। अस्पृश्य नामका कोई वर्ग नही है। इसलिए कोई जरूरी नही कि अस्पृश्य कहा जानेवाला आदमी अपनेको अस्पृश्य वताये। वह चाहे तो कह सकता है कि हिन्दू-समाजने उसे अस्पृश्य माना है, लेकिन वह इस भेदको स्वीकार नही करता। यहाँ मैं यह वता दूँ कि यद्यपि मुझे हिन्दू-समाजने वनिया जातिका माना है, मैं वनिया नही हूँ, क्योकि जात-पाँतमे मेरा विश्वास नही है। लेकिन अगर मुझे अपनेको हिन्दू कहने के वाद कुछ और भी कहना हो तो मैंने अपनेको हरिजन कहना पसन्द किया है, सो इसलिए कि जहाँतक मेरे लिए शक्य है, मैंने हरिजनोके पक्षको अपना वना लिया है।

और हिन्दू-समाजने हरिजनको जिस वर्गमे रखा है, अपनेको उस वर्गका वताने मे उसका अपमान कहाँ है? अगर इसमे अपमान है तो उस समाजका है जिसने अपने सदस्योको ऐसे दासोकी अवस्थामे पहुँचा दिया है जिन्हे वस्तीसे दूर उपेक्षित क्षेत्रोमे रहना पडता है और जिनसे समाजके सभी लोग दूर भागते है। और शिक्षित होने से तो हरिजनोमे यह अभिमान जागना चाहिए कि वे अपनेको सच्चे अर्थोमे हिन्दू कह सकते है, यद्यपि तथाकथित उच्च वर्णोने अपने जीवनसे धर्मको तिलाजलि देकर उनपर अवर्णनीय अत्याचार किये है। यदि अस्पृश्यता समूल नष्ट हो जाती है और हिन्दू-धर्म जीवित रहता है तो भावी इतिहासकार हिन्दू-धर्मके इतिहासमे हरिजनोको परम सम्मानका स्थान देगे। क्योकि तव यह माना जायेगा कि अपने ही सहधर्मियोके क्रूरतापूर्ण अत्याचारोके शिकार होकर भी वे अपने धर्मपर अडिग रहे। इसलिए किसी हरिजनको जव-जव यह वताना पडता है कि हिन्दू-समाजमे उसे कहाँ रखा गया है तव-तव अपमान उसका नही, वल्कि उसपर अत्यचार करनेवाले तथाकथित सवर्ण हिन्दुओका होता है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ३१-१०-१९३६

५२०. भाषण : मजदूरोंकी सभा, अहमदाबादमें

३१ अक्तूबर, १९३६

सन् १९१८ मे कुछ मजदूर हड़तालके बाद ढीले पड़ गये थे, थक भी गये थे। २१ दिनतक हड़ताल चलाना, शान्ति बनाये रखना, किसीको एक ककड तक न मारना, यह किसी भी मनुष्यके लिए एक कठोर परीक्षा थी। उस परीक्षामे २१ दिनतक आप लोग बिलकुल ठीक उतरे। बादमे, आपमे से कुछ ढीले पड़ गये। फिर जानते है कि मुझे क्या करना पड़ा, और उसका क्या परिणाम निकला था? आप लोग २१ दिनतक झडा लिये घूमते रहे थे, और उसके ऊपर "एक टेक" लिखा हुआ था। मै आपको रोज ईश्वरका स्मरण कराता और कहता कि ईश्वरको सामने रखकर ही सब कीजिएगा, अन्यथा मेरे लिए मरने का प्रसग आ सकता है। जो "एक टेक" आपके झडेपर है, वह हृदयमे भी है। आप लोग कुछ ढीले पड़ गये थे, तथापि आपने अपनी भूमिका ठीक अदा की थी। जिसको टेक निभानी हो उसे खूब विचार करके निश्चय करना चाहिए, अपनी मर्यादा अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए, अपनी शक्ति देख लेनी चाहिए। कहावत है कि चादर देखकर ही पाँव पसारने चाहिए। मजदूरोको यह क्या समझाना? आप तो हमेशा सिकुडकर ही सोते है। सात फुटकी खटिया तो सबको मिलनी ही चाहिए, फिर भले ही मजूरकी खटिया रस्सीसे बुनी हो, और अमीरका पलंग रेशमसे। अमीरका पलग भले रँगा हुआ हो और मजदूरकी खाट बबूलकी लकड़ीकी बनी हो, पर पैर पसारकर सो सके, इतनी चारपाई तो सभीको चाहिए। मैं जानता हूँ कि आज यह स्थिति नही है। आपकी कोठरीमे इतनी जगह ही कहाँ कि उसमे सात फुटकी खटिया समा सके? सम्भव है, कुछ लोगोके पास हो, पर अधिकाशके पास तो नही है। और फिर एक खटिया हो तो भी आपके घर इतने बड़े कहाँ है कि उनमें आपकी माँ, पत्नी, बच्चे और बहन, इन सबकी खाटें भी समा जायें? आप तो छोटी-छोटी कोठरियोमे रहते हैं। सर्दियोके मौसमकी तरह सिकुड़कर ही आपको तो हमेशा सोना पड़ता है। पैर फैलाने तक की जगह नही है, यह तो आप जानते ही है। आज सभी बातोमे यही स्थिति है। हमारी शक्ति कुछ आकाशमे उड़ने की नही है। अब तो ऐसे-ऐसे आविष्कार हुए है कि आकाशसे बमका गोला गिरे तो हजारो आदमी मर जायें। पर यह शक्ति मुझे नही चाहिए। ऐसी शक्तिकी हम इच्छा भी नही करते। फूंक मारकर हजारोका नाश करने की शक्ति मुझे मिलती हो तो भी मै उसे नही लूंगा। अगर हमने एक टेक पकड़ी है तो उसे अन्ततक निभाने की शक्ति हम अवश्य चाहते है। इतनी शक्ति मिल जाये तो काफी है। हम सब धरतीसे पैदा हुए है, और अपने मानकी रक्षा करते हुए हम धरतीपर रह सकें, यही हमारी और आपकी टेक थी। बीस वर्ष

तक आपने यह टेक निभाई। अगर कल आप अपनी इस टेककी पूंजी खो दें तो बीस बरसकी कमाईसे हाथ धो बैठेंगे। आपकी टेक तो मरते दमतक चलनी चाहिए, नही तो यह सारी कमाई धूलमे मिल जायेगी। आज भी ऐसे करोडपति है जो दिवालिया हो जाते है तो जहर खाकर मर जाते है। टेककी कीमत तो अरब-खरबसे भी ज्यादा है, इसकी कीमत कभी आँकी ही नही जा सकती। यह पूंजी आपने बीस साल जोड-जोडकर रखी है। ब्याज लगाया जाये तो यह दूनी या तिगुनी हो जाती है। पर हम सूदखोर नही है। मूलधन बना रहे, इतना ही काफी है। पर यह मूल पूँजी जिस दिन खो गई, उस दिन आपका दिवाला निकल जायेगा।[1]

आपके सामने असल सवाल यह है कि आप अधिक शक्तिशाली हुए है या मिल-मालिक। यदि मिल-मालिक पच-फैसला अस्वीकार कर दे तो आपको हडतालका आश्रय लेना होगा। उस हालतमें वे आपकी शक्तिकी परीक्षा लेना चाहेगे। मै तो मिल-मालिकोसे यह कहना चाहता हूँ कि यदि आपकी शक्ति बढे तो उन्हे डरका कोई कारण नही है। किन्तु यदि उनकी शक्ति बढती है तो आपको डरने का कारण है।

मालिकोके और हमारे बीचमे क्या भेद है? उनकी शक्ति पैसा है और हमारी शक्ति मेहनत है। उनके पास पैसेका बल है, हमारे पास शरीरका बल है। वे पैसेके बलपर लड़ते है और हम मेहनतके बलपर। पूँजीके साथ अगर मेहनत न हो तो एक भी मिल न चल सके। आप और हम उनकी मिलोमे काम न भी करे, तो भी आपके भाई वहाँ जाकर काम करेगे। पैसेसे, धमकीसे, जोर-जबरदस्तीसे या डंडेके बलसे उन्हे मजदूर मिल जायेगे, मगर मजदूरोंके साथ उन्हे सहयोग तो करना ही पडेगा, नही तो उनकी मिले बन्द हो जायेंगी। इसलिए चाबी तो आपके हाथमे है। भले ही वह मजदूर-महाजनके हाथमे न हो, पर आपके, यानी मजदूर वर्गके हाथमें तो है ही।

आप करोड़ो है, पर अगर आपके पास पूँजी न हो तो क्या करे? बुद्धि न हो और करोडो रुपये हो तो आप क्या करें? चलानेवाला भी चाहिए। मुझे कोई करोड़ रुपया दे दे तो भी मुझे यह व्यापार करना नही आयेगा। मै तो हरिजनोके कार्यमे या खादी पैदा करने मे उस रुपयेका उपयोग करूँगा। पर मै आदर्श मिल नही चला सकता। यह भी हो सकता है कि किसी मिल-मालिकसे आजिजीके साथ कहूँ कि एक मिल आप हमे दे दीजिए तो वह दे देगा। पर उसे चलाने की शक्ति हमारे पास नही है। मै चाहता हूँ कि यह शक्ति किसी दिन आपमें आ जाये। पर बीस वर्षमे यह नही आई और अगले बीस वर्षमे भी नही आयेगी। ऐसा हो सकता है कि कोई मजदूर इस योग्यताको प्राप्त कर ले, किन्तु वह उसका उपयोग दूसरे मजदूरोको अपना गुलाम बनाने के लिए ही करेगा। मतलब यह कि मजदूर-समुदायमे आज यह शक्ति नही है। आज यह शक्ति आ गई है, अगर आप ऐसा मानते हो,

१. अगला अनुच्छेद *हरिजन*में प्रकाशित महादेव देसाई के "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से लिया गया है।

तो फिर आपको किसी नेताकी जरूरत नही। मैं नही मानता कि वह शक्ति आ गई है। जिस दिन यह शक्ति आ जायेगी, उस दिन कोई वाद नही रह जायेगा। आज अगर यह शक्ति आ गई हो तो आप स्वय पूँजीवादी हो गये। आपको आज अपनी पूँजीका ज्ञान हो जाये तो मिल-मालिक और मजदूर एक हो जायेंगे। मैं ऐसे समय की कल्पना कर रहा हूँ कि हम अपनी "एक टेक" पर दृढ रहकर इस स्थितिको लाये। लेकिन मालिकोका सर तोडकर हमे यह नही करना है। वर्ग-विग्रहवादी चाहे जो कहे। उनका कहना अगर मेरी समझमें आ जाये तो सम्भव है कि मैं वर्ग-विग्रहवादी हो जाऊँ। पर अगर मैं वर्ग-विग्रहवादी हो जाऊँ, तब भी मेरे साथ वहाँ भी अनेक उपाधियाँ रहेंगी — जैसे, अहिंसा, सत्य आदि — यद्यपि मेरी रायमे ये उपाधियाँ नही बल्कि अमूल्य सिद्धान्त है।

मिल-मालिकोंके साथ हमे लडना पडे तो भी उनसे द्वेष नही करना है। उनके साथ लडना ही हो तो इस तरह लड़े जैसे कि आप माँ या अपनी स्त्री या बच्चोके साथ लडते-झगडते हैं। एक ही रक्त-मासके मनुष्योंके साथ जिस तरह और जैसे प्रसगके लिए जितने प्रेम और वेदनासे तथा आदर और विनयसे हम लडते है उसी तरह मिल-मालिकोंके साथ लडे। बीस सालमें जो सबक सीखा है उसपर आज भी कायम रहे। मिल-मालिक तो प्रतिपक्षी ठहरे। पर दूसरोका भी तो हमें विचार करना है। जिन्हे 'ब्लैकलेग्ज' कहते है, हमे उन द्रोहियोका भी विचार करना है। वे हमारी इतने बरसोकी मेहनत जरामे मिट्टीमें मिला देते है। उनके साथ लड़ने के बजाय हमे उन्हे विनय और प्रेमसे समझाना है। हो सकता है कि आपकी बात वे न भी मानें। आपकी बात सुनकर वे चले जाये तो अच्छा है, आपके साथ हो जायें, तो बहुत ही बेहतर; पर अगर यह न हो तो भी हमे उन्हे सहन करना है।

यहाँ मजदूरोका एक दूसरा सघ भी है। उसने मुझे एक खुला पत्र भेजा है, जिसका भावार्थ यह है कि आप सब उस सघमे शामिल हो जाये, अन्यथा मजदूरोके दो सघ हो जायेंगे। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि अहमदाबाद-जैसी जगहमे दो सघोके लिए स्थान नही है। आप बीस वर्षसे जो काम करते आये है उसे नष्ट कर डालना आसान है, उसकी रक्षा करना कठिन है। उसे नष्ट ही करना हो तो साबरमती पासमें ही है। यह तो हो सकता है कि नये सघमे अध्यक्षका पद जल्दी मिल जाये, शायद कुछ सफलता भी मिले, पर आप लोग इस प्रलोभनमे न पड़े। विग्रहवादी कह सकते है कि सहकार हानिकारक है। हमारे लिए तो पहला सबक सहकारका है। सरकारके साथ जब मैंने असहकार करने को कहा, तब यह तो था ही नही कि उसके साथ सहकार कभी किया ही न जाये। सरकारके साथ असहकार किया था, वह अन्तमे सहकार करने के लिए ही। सरकार जिस दिन सेवक हो जाये, उस दिन उसके साथ सहकार अवश्य किया जाये। उसी तरह ये लोग भी, यानी मिल-मालिक मित्र हो सकते है, पर तभी जब वे अपना वाद छोड दे।

आपके साथ तो मुझे सारी जिन्दगी रहना है। किसी समय दुर्भाग्यवश असह-कार करना पड़े, तो वह भी बादमे सहकार करनेके लिए ही होना चाहिए। सहकार

न करे तो दोनोकी ही हानि है। आप भी नाहक परेशानीमे पड़ेंगे और मालिकोको भी नुकसान होगा। हमारा काम तो सबको मिलाने का है, अलगाने का नही। यह काम तो विग्रहवादियोका है।

पचोमे मै भी एक हूँ, इसलिए न्याय-अन्यायके विषयमे मै कुछ नही कहूँगा। मैं तो आशावादी हूँ। मै ऐसी आशा रखता हूँ कि आपको हड़ताल नही करनी पडेगी।[1] मालिकोने इस हदतक अपनी समझ-शक्ति साबरमतीमे नही फेक दी है कि वे कहे कि हम लड़ लेगे। यदि लडना बीस बरसतक हानिकारक समझा गया तो आज एक मिनटके अन्दर उसमे क्या अच्छाई आ गई? मै तो अन्ततक प्रयत्न करता ही रहूँगा, पर तानते-तानते चीज टूट भी जाती है, ऐसी हालतमे मैं क्या करूँगा? तब मैं यह समझूँगा कि ईश्वर परीक्षा लेनेवाला है। मजूर एक टेकपर दृढ रहते हैं या नही, यह ईश्वर देखना चाहता है। आपकी टेक कच्ची है या सच्ची, यह सब मालूम पड जायेगा। जो शराबघरमे जाता होगा, जो जूआ खेलता होगा, वेश्यागमन करता होगा, वह क्या अपनी एक टेकपर दृढ रह सकेगा? हम तो आपके सेवक हैं। आपके लिए कष्ट भोगेगे। मार खानी होगी तो वह भी खा लेंगे। हो सकता है कि हमे मार न खानी पडे, आपको ही खानी पड़े। ऐसा हुआ तो हम आपकी सार-सँभाल करेगे। लेकिन अन्तमे बोझा तो आपको ही उठाना है। इस बोझको उठाने मे हमे आपकी मदद करनी है। जो भी करें बुद्धिका उपयोग करके करें, केवल श्रद्धासे नही।

मै ऐसा मानता था कि स्वराज्यकी चाबी मजदूरोके हाथमे है। पर अब मुझे लगता हैं कि वह केवल मजदूरोके हाथमे नही है। जबतक देशकी गरीबी दूर नही होती, तबतक स्वराज्य नही आ सकता। गरीबी मिटाने की सजीवनी बूटी सेगाँवमे है — गाँवोमे है। सेगाँव छह सौ लोगोंकी आबादीका छोटा-सा गाँव है। वहाँ तीन चौथाई आबादी हरिजनोकी है। वहाँ रेलवे स्टेशन नही है। यह स्थान अस्पृष्ट है, ऐसा समझकर ही मैं वहाँ बसा हूँ, मौज या शौकके लिए नही। मेरी मौज या शौक तो यही है कि हमारे ये गरीब, हमारे ये दरिद्रनारायण सुखी हो। उन्हें रोटी तक नसीब नही होती। और मिलती है तो खराब और सूखी रोटी और गन्दा नमक। इसका मै साक्षी हूँ। इन लोगोका दुःख किस तरह दूर हो, इसकी खोज करनी है। यह खोज यहाँ बैठकर कैसे हो सकती है? आप लोग तो उनकी अपेक्षा बहुत अच्छी स्थितिमे है। वहाँ न कोई चाल है, न कोई पाठशाला, न आपके-जैसा अस्पताल। वहाँ तो मीराबहनके लिए भी डॉक्टर ढूँढे नही मिलता। सक्रामक रोगोके रोगी दोनो बाजू पडे है और उनके बीचमे हम। पर मेरा विश्वास दिन-दिन बढता ही जाता है।

•

१. इस भाषण की बॉम्बे क्रॉनिकलमें प्रकाशित रिपोर्टमें यहाँ कहा गया है: "उन्हें आशा थी कि मजदूरोंको हड़ताल नहीं करनी पड़ेगी। मिल-मालिक सघके अध्यक्ष सेठ कस्तूरभाई लालभाई आज इनसे मिलेंगे।"

आपकी मुक्तिकी चावी सेगाँव-वासियोंके पास है। आप अपने दु.खको जानते है। पर जिन्हे अपने दु खोका ज्ञान नही, वे ही असलमे दु खी है। वे खुद गुलाम है और अपनी गुलामी भुला बैठे है। उनकी स्थिति ऐसी है कि उन्हे रोटीमें अगर आप घी दे तो उनका पेट दुखने लगे। सेगाँवसे ज्यो-ज्यो हम दूर जाते है त्यो-त्यो हमें गाँवोका शोषण और भी ज्यादा हुआ दीखता है। मुझे तो कोई सजीवनी बूटी मिल जाये तभी मै अपना मनचाहा सब कर सकता हूँ। मुझे कोई भाषण देने का शौक नही है। यदि आप मेरे वलपर लडेंगे तो आपको निराशा ही हाथ लगेगी। मुझे भूल ही जाना चाहिए। मैं अधिकाधिक दूर चला जा रहा हूँ और आप लोगोमें मेरी दिलचस्पी कम होती जा रही है। कारण, वह चावी आपके पास नही है। उस चावीकी खोजमे मुझे आपसे वहुत दूर जाना पडेगा। मेरे लिए कोई दूसरा आनन्द तो है नही। मेरा आनन्द तो एक ही वातमें है--- ईश्वर-दर्शनमे है। यह दर्शन गरीवोमें ओतप्रोत होने से ही होगा। कगाल देशके गरीवोमें अगर मै ओतप्रोत हो जाऊँ तो सारी दुनियाके साथ ओतप्रोत हो सकता हूँ। सच्ची चावी पाने के लिए ही मै दूर भागता जा रहा हूँ। मैं तो वरसोसे देहाती रहा हूँ। मेरा मन देहाती ही है। वही मै अपना आनन्द लूटता हूँ। मुझे जो पुसाता है वह आपको नही पुसायेगा। आज तो मेरी परीक्षा हो रही है। सेगाँवमे एक वर्ष रह सकूँगा या नही, यह मैं नही जानता; तव दूसरोसे क्या कहूँ?

मै वहुत आगे चला गया हूँ। मैंने आपको अव यह नोटिस दिया है कि मेरे भरोसे मत लडना। मेरी जरूरत है, ऐसा तार आयेगा तव भी मैं इनकार कर दूंगा। मिल-मालिक कहेंगे तो भी इनकार कर दूंगा। कोई सेगाँव आये तो वहाँ मुझसे वह यथासम्भव सेवा ले सकता है। सेगाँव मेरी साधना है, सेगाँव मेरी समाधि है। वहाँके लोग मुझे ककड-पत्थर मारेंगे तो भी मेरा डेरा वहीं रहेगा। पहले तो पानी भी नही मिलता था, पर अव ठीक-ठीक चल रहा है। लेकिन रास्ता साफ नही हुआ। इस कँटीले मार्गसे मैं भागनेवाला नही। वहाँ भी मै सो जाऊँगा, और फूलोकी सेज मिले तो वहाँ भी सो जाऊँगा। लडना आपकी अपनी शक्तिपर निर्भर करता है। ईश्वरके नामपर लडेंगे तो पार हो जायेंगे, मेरे वलपर लडेंगे तो गड्ढेमे गिरेंगे। हम तो सव आपके सेवक है। जितनी हो सकती है आपकी सेवा करते हैं। लडना ही हो तो आप अपने और ईश्वरके वलपर लडना।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, ८-११-१९३६ और हरिजन, ७-११-१९३६

५२१. भाषण : गुजराती साहित्य परिषद्में

अहमदाबाद
३१ अक्तूबर, १९३६

भाई मुंशीने आपसे जो कहा, वह सत्यसे भिन्न है। उन्होंने आपसे यह कहा कि सन् १९२५ मे मैंने दृढतापूर्वक यह कह दिया था कि मै परिषद्का अध्यक्ष नहीं वनूँगा और यदि ऐसा कोई अनुरोध मुझसे किया जायेगा तो मै असमर्थता प्रकट करूँगा। श्री मुंशीकी इतनी वात सही थी। किन्तु उन्होंने उतावलीमे यह भी कह दिया कि जितनी दृढ़तासे मैंने उस समय अध्यक्षका पद स्वीकार करने से इनकार किया था, इस वार उतने ही उत्साहसे उसे स्वीकार कर लिया है। यह वात गलत है, सत्यसे भिन्न है। उस वार मै इस पदके योग्य था ही नहीं। आज उस समयसे भी कम योग्य हूँ। यह पद स्वीकार करने के लिए मै विलकुल उत्सुक न था, तथापि मैंने उसे स्वीकार कर लिया है। किन्तु उत्साहसे किया है, ऐसी वात नही है। मै तो यहाँ इसलिए आ गया हूँ कि धर्म-सकटमे पड गया था। जिन मित्रोसे मैं काम लेना चाहता हूँ, वे मित्र जव मुझपर कोई भार लादना चाहते है तव मै उसे स्वीकार कर लेता हूँ।

इसे स्वीकार करने के वाद मै वीमार पड गया।[1] मैंने खवर भेजी कि मुझे कृपा-पूर्वक इस जिम्मेदारीसे मुक्त कर दिया जाये और अधिवेशनका कार्य वे लोग मेरे विना ही निपटा ले। किन्तु मुझे तो 'महात्मा' माना जाता है न? इसलिए मेरी वात कौन सुनता? महात्माका पद मुझे किसके हृदयमे मिल गया है, यह तो भगवान् ही जाने। मै अपने हृदयमे तो अल्पात्मा ही हूँ। महात्माके शब्द वेकार सिद्ध हुए, मै वीमार पड़ गया और नही आ सका। फिर, एक दूसरी कठिनाई भी खडी हो गई। सेगाँवमे दो साथी वीमार पड गये और मुझे लगा कि यदि मैं नही गया, तो मैं अव अल्पात्माओंका भी अल्पात्मा हो जाऊँगा। शास्त्र कहते है कि अमुक परि-स्थितियोंमे यदि हमने कोई काम करना स्वीकार किया हो तो उन परिस्थितियोंमे परिवर्तन होनेपर उसे अस्वीकार भी किया जा सकता है। किन्तु मैं तो अपनी वातका पालन अक्षरशः करना चाहता हूँ। इसलिए मैं आ गया। वे वीमार साथी भी वच गये है और आप मुझे यहाँ वैठा हुआ देख रहे हैं।

मुझे यह आशा थी कि परिषद्मे उपस्थित होने से पहले मैं सारा सम्वन्धित साहित्य इकट्ठा करके पढ़ डालूँगा और इस अवसरके लिए भाषण तैयार कर लूँगा। किन्तु मै तो आज दिवालिया हूँ। भाषण मैं नही लिख सका और मैंने यह खवर पहुँचाई कि मुझसे लिखित भाषणकी आशा न की जाये। वहाँ परिस्थिति ऐसी नही थी कि मैं वीमारोकी सेवासे छुट्टी ले लेता। वादमे मुझे यह आशा थी कि राजकोट

१. ७ दिसम्वर, १९३५ को; देखिए खण्ड ६२, पृ० १८०।

में कुछ अवकाश मिलेगा, किन्तु वहाँ भी मै सारा समय व्यस्त रहा, एक क्षण भी खाली नही मिला। यहाँ आया तो देखा कि आग सुलग रही है—मालिको और मजदूरोके बीच झगड़ा चल रहा है। फिर ऐसी आशा थी कि रातको कुछ देख लूँगा, देखने के लिए मैंने सामग्री भी निकलवाई। किन्तु यहाँ आनेतक मै महत्त्वकी चर्चाओमें ही व्यस्त रहा और यहाँ मुझे जो-कुछ कहना है उसके विषयमें कोई छोटा-मोटा नोट भी नही लिख पाया। क्या आपकी परिषद्ने अपने अध्यक्ष-पदके लिए कोई इससे भी अधिक अयोग्य व्यक्ति कभी चुना था?

इसे बारहवाँ अधिवेशन कहा जा रहा है। कही ऐसा न हो कि मेरे हाथो इस अधिवेशनकी बारहवी[1] ही हो जाये? दुर्भाग्यवश मेरे ओठोपर यह अपशकुन-सूचक शब्द आ गया। किन्तु मै सौभाग्यशाली हूँ। जहाँ भी जाता हूँ वहाँ लोगोमें अनेक प्रकारकी आशाएँ जन्म लेती है। उन्हे लगता है कि मै कुछ नया कर दूँगा। लेकिन नया करने का मतलब तो वही हो गया न जो बारहवी करने का है। मेरे पास समाचारपत्रोकी कतरने आई है।[2] परिषद्के विधानमे सशोधन करने के लिए मेरे पास सशोधनके कोई बारह प्रस्ताव आये है। उन्हे मै पढ गया हूँ, किन्तु मै यहाँ सविधानका अध्ययन किये बिना ही आया हूँ। इसलिए यदि कोई विधि-शास्त्री कोई प्रश्न खड़ा करेगा तो मै उलझनमें पड जाऊँगा।

हमारे समक्ष आजके कार्यक्रममे बारह वस्तुएँ है। उनमे से एक मेरा भाषण है और यह सारा कार्य हमें साढे पाँच बजेके पहले निपटा देना है।

इतनी प्रस्तावनाके बाद अब मै, मुझपर जो बोझ लादा गया है, उसके लिए आपका आभार मानता हूँ। मालिक लात मार दे तो भी सेवक उससे यही कहता है कि मुझे खेद है कि मैंने भूल की और आपको मुझे लात मारनी पडी। मेरे तो ३० करोड मालिक है। उन्होने मुझे सेवक नियुक्त नही किया; मैंने स्वयं ही यह मान लिया है कि मै इन ३० करोड स्वामियोका सेवक हूँ। इन ३० करोडमे आप भी है। और आपको तो स्वामी होने का दुहरा अधिकार है, क्योकि आपने मुझे सेवक नियुक्त भी किया है। तथापि मै यह आशा लेकर आया हूँ कि आप मुझे किसी-न-किसी तरह निभा लेगे।

मेरे विषयमे समाचारपत्रोमे जो-कुछ कहा गया है और जो कतरने मेरे पास भेजी गई है उन्हे तो मै नही पढ सका हूँ। किन्तु मेरे पास जो पत्र आये है उन्हे तो मुझे पढना ही चाहिए—और किसी कारणसे नही तो शिष्टाचारकी खातिर ही। मुझे "डेमोक्रेट" माना जाता है और मै हूँ भी। इसलिए ये लोग मुझसे कुछ आशा करते है। इन लोगोने यह कहा है कि परिषद्का सविधान मुशीका बनाया हुआ है। सविधानकी रचना उनका एकाधिकार माना जा सकता है। वे विधिशास्त्री है, इसलिए उन्होने उसकी रचना इस तरह की है कि हम उसकी एक

१. मृत व्यक्ति की बारहवीं तिथि का श्राद्ध।

२. अखबारोमें गुजराती साहित्य परिषद्के तथाकथित "अलोकतान्त्रिक" सविधानकी बड़ी आलोचना हुई थी और कहा गया था कि सविधान इतना कठोर है या मुशीने उसे इतनी चतुराईसे गढ़ा है कि उसमें कोई सुधार हो ही नहीं सकता।

भी ईंट इधर-उधर नही कर सकते, हाँ, आप उसकी एक-दो ईंटे हिलाये-डुलाये तो शायद कुछ हो सकता है। यह भी हो सकता है कि मै उनपर कुछ दवाव डालूँ और यहाँ-वहाँ जो परिवर्तन कराया जा सके, कराऊँ। इसके सिवा कुछ अन्य सुझाव भी मेरे पास आये। इन सुझावोको मै पचा नही सका।[1]

मै अपनेको "डेमोक्रेट" — लोकशासनमे विश्वास रखनेवाला — मानता हूँ। और ऐसा "डेमोक्रेट" तो इशारेमे यह समझ जायेगा कि लोकशासन कहाँ चल सकता है और कहाँ नही चल सकता। काग्रेसका सविधान जव पहली वार तैयार हुआ तो कुछ लोगोने कहा था कि हम काग्रेसकी सदस्यताके लिए चार आने क्यो दें? चार आने न देने का आग्रह रखनेवाले इन लोगोसे मैने यह कहा कि तव आप काग्रेसमें आना ही क्यों चाहते है। कल्पना कीजिए कि देशकी सेवाके लिए हम एक पीपुल्स वैककी — वड़े-वडे सेठ जिन्हे खोलते है वैसा नही वल्कि सचमुच एक लोकहितकारी वैककी — स्थापना करते है। ऐसे वैंकमे लोगोका हित सिद्ध करने के लिए क्या हमे ऐसे ही व्यक्तियोंको नही रखना होगा जो प्रामाणिक हो, योग्य हो, नि स्वार्थ हो और लोकहित चाहनेवाले हो। यदि ऐसी सस्थामे हम लोकशासनके सिद्धान्तके अनुसार लोगोंको निर्वाचनके आधारपर रखना चाहें तो हमारा काम नही चलेगा। एक दूसरा उदाहरण लीजिए। कल्पना कीजिए कि हम हाई कोर्ट वना दें। तो क्या हम इस हाई कोर्टका सविधान लोकशासनके सिद्धान्तपर वनायेंगे? राम-राज्यमे भी हाई कोर्ट तो होगा ही। किन्तु शुद्धतम "डेमोक्रेसी" मे भी ऐसी सस्थाएँ होगी जिनमे "डेमोक्रेसी" के ही हितमे, हमे "डेमोक्रेसी" के नियमोके अनुसार नही, वल्कि किन्ही दूसरे नियमोके अनुसार काम करना होगा। मै तो यह जानता ही हूँ कि "डेमोक्रेसी" कहाँ चल सकती है, कहाँ नही चल सकती। इसीलिए मै कहता हूँ कि साहित्य परिषद्मे हम "डेमोक्रेसी" के सारे नियमोका अनुसरण नही कर सकते। . . .

मुझे आपसे कुछ गम्भीर वाते भी कहनी है। लेकिन गम्भीर वात कहकर मै आपको रुलाना नही चाहता। ऐसा गाम्भीर्य मुझमे है भी नही। यह तो मुझसे फाँसीपर चढते समय भी नही होगा। इसलिए मै आपको हँसाऊँ तव भी आपको मेरी वात ध्यानसे सुननी चाहिए।

मै "डेमोक्रेट" हूँ, तथापि मै यह कहता हूँ कि ऐसी परिषदे "डेमोक्रेसी" के नियमोके अनुसार नही चल सकती। उनमे "डेमोक्रेसी" का तत्त्व अवश्य होगा किन्तु उसके नियम नही होगें। आज जो विलकुल अपढ है ऐसे वालक, स्त्रियाँ और वृद्ध भी एक दिन "डेमोक्रेसी" का अर्थ समझने लगेगे। उस दिनके आनेतक मै तो नही रह सकता किन्तु जो लोग तव भी जीवित होगे वे यह याद रखे कि ऐसी सस्थाओमे "डेमोक्रेसी" के नियम नही चल सकते। यदि उनमे ये नियम चलाये जायेंगे तो वहाँ "डेमोक्रेसी" नही "मॉवोक्रेसी" — भीडशाही — होगी। इसलिए जिन्होने मुझे यह लिखा है कि यदि मै "डेमोक्रेसी" पसन्द करता होऊँ तो मुझे इतने परिवर्तन

१. अगला अनुच्छेद हरिजनमें प्रकाशित अंग्रेजी रिपोर्टसे लिया गया है।

कराने चाहिए, उनसे मै विनयपूर्वक यही कहना चाहता हूँ। लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि इस सविधानपर मुशीका एकाधिकार है। इस सविधानको मैंने पढ लिया है। मेरी ऐसी प्रसिद्धि है कि मै कोई भी सविधान अविलम्ब तैयार कर दे सकता हूँ। मै विधिशास्त्री तो हूँ नही इसलिए मेरी भाषा देहाती होती है, लेकिन मै उसे ऐसा रूप देता हूँ कि विधिशास्त्री उसे समझ सकते है और सामान्य लोग भी उसे समझ लेते है। मैंने अपनी बुद्धि अभी किसीको वेची नही है इसलिए मै कहता हूँ कि इस सविधानमे मुशीका कोई एकाधिकार नही है।[1]

अब दूसरी बात : आप कहते है कि सविधान ऐसी चतुराईसे बनाया गया है कि उसमे कोई बिन्दु-विसर्गका भी परिवर्तन नही कर सकता। मै इस बातको नही मानता। ऐसा सविधान तो आजतक किसीने बनाया ही नही। आजतक ऐसा कोई व्यक्ति हुआ ही नहीं जो बिलकुल नीरध्र सविधान बना दे। कोई भी सविधान हो, उसमे से चार घोड़ोवाली गाडी या मेरे-जैसोकी बैलगाडी जा ही सकती है। कैसा भी सविधान हो, उसमे न्यूनता तो रहेगी ही। पूर्णता, सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता तो ईश्वरमे ही हो सकती है। और ईश्वर भी महान् "डेमोक्रेट" है ही। वह कितना सहता है? उसकी सन्तान हम कितनी धोखा-धड़ी करते है! हम पूछते है कि हमें बताओ, ईश्वर कहाँ है। वह सर्वत्र है, सृष्टिके कण-कणमें व्याप्त है, फिर भी पूछते है। लेकिन ईश्वरको देखने की शक्ति ईश्वरने किसीको दी नही। उसकी इच्छा होने पर ही और जिसे वह चाहे वही उसे देख सकता है। उसके आँख, नाक, कान आदि नहीं हैं, किन्तु जिसे वह अपनेको देखने की शक्ति देता है उसके आगे वह प्रकट होता है। किन्तु यह शक्ति उसने अपने पास ही रखी है।

मुशी तो हममें से ही एक है और हम एक गुलाम राष्ट्र है। किन्तु रूस, इटली या अन्य कही भी ऐसा सविधान नही है जहाँ कि उस सविधानमे कोई परिवर्तन कराना चाहे पर करा न सके। हाँ, बन्दूकके बलपर आधारित सविधान अवश्य ऐसे हो सकते है। किन्तु ऐसे सविधानकी रचना तो कोई नही कर सकता कि फिर उसमें किसी प्रकारका परिवर्तन करने की आवश्यकता कभी पड़े ही नही।

इस परिषद्के सविधानमे जो लोग परिवर्तन कराना चाहते है उन्हे मेरा एक सुझाव है। सही किस्मके परिवर्तन इन दो दिनोमे नही कराये जा सकते। मै यहाँ चाहे जितनी अनिच्छासे क्यो न आया होऊँ, हूँ तो मै अध्यक्ष ही। अध्यक्षके अधिकार मै जानता हूँ और अध्यक्षकी जिम्मेदारियोको भी मै समझ गया हूँ। किन्तु वास्तविक अध्यक्ष है कौन?

आनन्दशंकरभाईकी ओर देखकर :

ये जो उपाध्यक्ष है, ये ही वास्तविक अध्यक्ष है। मै तो झूठमूठ ही अध्यक्ष हो गया हूँ। इन्होंने मुझे पत्र लिखा था कि आप अध्यक्ष है तो सही पर मै आपकी रक्षा कर लूँगा। इसलिए जो भी काम यहाँ होना है, यही उसे करायेगे। सविधान

१. अगले दो अनुच्छेद हरिजनमें प्रकाशित अंग्रेजी रिपोर्टसे लिये गये हैं।

दो दिनमें नही बदला जा सकता। आनन्दशकरभाई पर भी इसका भार नही डाला जा सकता। अधिवेशन निष्फल न हो — और जबतक मै अध्यक्ष हूँ तबतक मै उसे निष्फल नही होने दूँगा — इसलिए मुझे जैसा सूझेगा और अपनी सारी चतुराईका उपयोग करके मै सविधानमे सशोधन सुझाऊँगा। इसका यह अर्थ नही है कि ये संशोधन मै करा ही दूँगा। मै जो-कुछ सुझाऊँगा वह संविधानकी दृष्टिसे ही सुझाऊँगा। मै कभी किसी दिन किसी भी व्यक्तिसे ऐसी कोई बात नही कहता जिसमे किसी प्रकारका छल-प्रपच हो। मुझमे सीधी बात सीधी तरह कहने की शक्ति है। अतः मै बिलकुल सीधी तरह जो सशोधन कराये जा सकते है, उन्हे बताऊँगा।

अब मै अपने भाषणपर आता हूँ। आप विद्वानोसे मै क्या कहूँ? सर चीनुभाईने मेरे विषयमे यह कह ही दिया है कि मै न तो विद्वान् हूँ और न साहित्यकार। किन्तु मै विद्यापीठका कुलपति हूँ। मैने [गुजरातीका] 'जोडणी कोश' तैयार कराया है। इस विद्यापीठके विषयमे सर चीनुभाईने भूतकालका प्रयोग किया। मै सर चीनुभाईसे यह कहने की अनुमति लेता हूँ कि विद्यापीठ तो आज भी है और हमेशा रहेगा। वह ऐसी सस्था नही है कि दो-चार दिन रहकर विलुप्त हो जाये। विद्यापीठ तबतक रहेगा जबतक हम स्वराज्यका मन्त्र जपते रहेगे, जबतक हमे स्वराज्यका मन्त्र याद रहेगा। जैसे जगम आश्रम होते है, उसी प्रकार जगम विद्यापीठ भी रहेगा। किसीने ढाई लाख रुपया हमे दिया, इससे विद्यापीठका एक मकान हो गया। किन्तु मकान न होता तब भी विद्यापीठ तो चलता ही रहता। जब हमारे पास पैसा नही था तब भी विद्यापीठ तो था। वह भूतकालमे था, वर्तमानमे चल रहा है और भविष्यमे चलता रहेगा। विद्यापीठका रूपान्तर होता रहा है और होता रहेगा। आज विद्यापीठमे गिडवानी[1] नही है, कृपलानी[2] नही है, काका नही है। आज उसमे देहाती लोग है। किन्तु क्या केवल विद्वान् ही विद्यापीठ चला सकते है? कोई मनुष्य भले देहाती हो, वह सहृदय होना चाहिए। उसके व्यवहारमे नाटकीय कृत्रिमता नही होनी चाहिए। काठियावाडमे एक जातिके लोग है जिन्हे "वालीडा" कहते है। उनसे जिसका भी अभिनय कराना हो वे उसीका अभिनय कर देते है। हमे ऐसे देहाती नही चाहिए। जिनका हृदय सचमुच देहाती हो ऐसे लोग ही विद्यापीठको चला सकेगे। विद्यापीठ अहमदाबादके गुड्डे-गुडियोके लिए नही है। भाई अम्बालालकी कन्या[3] उसमे आई है, यह अच्छा ही है। किन्तु विद्यापीठ ऐसा कोई डिपो नही है जिसमे गुड्डे और गुड़ियाँ आये, हम उनका शृगार करे और जैसे वे थे और थी, उसी रूपमे उन्हे माँ-बापको वापस सौप दे। विद्यापीठ तो देहाती स्त्री-पुरुषोको गढने के लिए स्थापित हुआ है। उसे उन्हे ठीक-ठीक गढना नही आता, किन्तु वह प्रयत्न करता रहता है ऐसे लोगोके लिए 'गीता' के छठे अध्यायमे यह[4] कहा गया है कि उनका कर्म

१. चोइथराम गिडवानी।
२. जे० बी० कृपलानी।
३. मृदुला साराभाई।
४. भगवद्गीता, ६/४०।

अकल्याण नहीं होना। यह भगवानकी प्रतिज्ञा है और सच्ची भावनावालोंके विषयमें वह सफल होगी। विद्यापीठने भूतकालमें जो-कुछ दिया है उससे विद्यापीठको दान देनेवालों को अपने कियेका पूरा फल मिल गया है। सर चीनुभाई, मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि जिस प्रकार विद्यापीठने भूतकालमें अपने दाताओंको उनके दानका पूरा मूल्य चुकाया है, उसी प्रकार वह भविष्यमें भी चुकाता रहेगा। और आप स्वयं यह देखेंगे।

अब परिषद्के विषयमें: साहित्य-परिषद् क्या करे? परिषद्से मैं क्या आशा रखूँ? काका कालेलकरने इसके विषयमें नौ पन्ने लिखकर मुझे दिये थे। उन्हें मैं पढ़ तो गया था परन्तु भूल गया हूँ। डॉक्टर हरिप्रसादने भी पत्र भेजा था, किन्तु वह न मालूम कहाँ पड़ा है। होगा तो सुरक्षित, परन्तु यहाँ आते समय मुझे नहीं मिला। उन्हें फिर लिखकर देने को कहा तो उन्होंने रातको मेरे सो जाने के बाद भेजा। वह भी यहाँ नहीं लाया। इस तरह उन्होंने जो-कुछ चाहा, वह मैं नहीं दे सकता। यह मेरा दुर्भाग्य है। मुझे समय मिले तभी तो पकाऊँ और आपके लिए भोजन तैयार करूँ? किन्तु इस समय जो-कुछ कहता हूँ, वह मेरे लिए तो ठीक ही है। क्योंकि जो हृदयसे निकलता है वही मैं कहता हूँ, मुलम्मा चढ़ाये बिना कहता हूँ।

स्वागताध्यक्षने मेरा बोझ हलका कर दिया है। मैंने पहली साहित्य परिषद्में जो-कुछ कहा था उसे उन्होंने फिर कह सुनाया है, ताकि कहीं मैं आपको चाबुक न लगाने लगूँ। परन्तु अहिंसाका पुजारी भी कभी चाबुक लगाता है? मेरे पास चाबुक नहीं हो सकता। उस समय मैंने तो नम्रता ही बताई थी। आज नरसिंहरावभाई[1] यहाँ नहीं हैं, इसका मुझे बड़ा दुःख है। उनके साथ मेरा सम्बन्ध लगातार बढ़ता गया है। वे आज यहाँ होते तो मैं बहुत खुश होता। और रमणभाईका[2] तो आज शरीर भी नहीं रहा। उनसे मैंने कहा था कि मेरे पासके कुएँपर चरसा चलाने-वाला चरसिया जो भाषा बोलता है, उसका उसे पता नहीं होता। वह गाली देता है, इसका उसे पता नहीं होता। उसे मैं क्या कहूँ? जो कवि हो वह उसके पास जाये। मुंशी ठहरे उपन्यासकार, वे तो नहीं जा सकते। कोई अद्भुत कलाकार ही उसके पास जाकर उसे समझा सकता है। [अवसर देखकर] दो शब्द यहाँ कहे, और दो वहाँ कहे और ऐसी भाषामें कहे कि वह अनायास समझ जाये।

हम साहित्य किसके लिए तैयार करें? कस्तूरभाई ऐंड कम्पनीके लिए या अम्बालालभाईके लिए या सर चीनुभाईके लिए? उनके पास तो रुपया है इसलिए वे जितने चाहे उतने साहित्यकार रख सकते हैं और जितने चाहे उतने पुस्तकालय कायम कर सकते हैं। परन्तु उस चरसियेका क्या हो? उस समय मेरे सामने वह अकेला ही था।

१. नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया।
२. सर रमणभाई नीलकण्ठ।

और वह भी किसी वास्तविक गाँवका नही बल्कि कोचरबका था। कोचरब भी कोई गाँव है? वह तो अहमदाबाद की जूठन है। वहाँ जीवनलालभाईका बँगला था। मेरे जैसा भूत ही वहाँ जाकर बस सकता था। वहाँ उन्हे ज्यादा किराया देनेवाला भी उस समय कौन मिलता? किन्तु मुझे यहाँ रखना था, इसलिए जीवनलालभाईने बँगला दिया और सेठ मगलदासने रुपया देने को कहा। किन्तु आज तो उस चरसिये-जैसे बहुत लोग मेरे सामने मौजूद है। इस समय मै सेगाँवमे पडा हुआ हूँ। वहाँ ६०० मनुष्य है। उनमे १० आदमी भी मुश्किलसे ऐसे होगे जो पढ सके। दस कहने मे अल्पोक्ति हो तो पचास कहने को तैयार हूँ, परन्तु पचास कहने मे अतिशयोक्ति हो जायेगी। वहाँ मै क्या करता हूँ? विद्यापीठके कुलपतिका पद मुझे शोभायमान करना है। इसलिए मुफ्त पुस्तकालय खोला। वहाँ किताबे जमा करना शुरू किया। परन्तु पढ सकनेवाले दस लोगोमे से समझकर पढ़नेवाले तो दो-तीन ही होगे। और बहनोमे तो एक भी ऐसी नही जो पढ सके। वहाँ ७५ फीसदी हरिजन है।

वर्धाकी उन्हे छूत तक नही लगी। छूत लगी होती तो मै दूर चला जाता। वहाँ तो मलेरिया है किन्तु जहाँ मै जाऊँ वहाँ मलेरियाकी गुजर नही हो सकती। मलेरियाके साथ मेरा ऐसा करार है। वहाँ बहुत-से डबरे है। किन्तु एक धनी व्यक्ति[1] मिल गया, जिसने सडक बनवा दी है। छह महीने पहले जैसी हालत थी, वैसी हालतमे आनन्दशकरभाई-जैसे वहाँ आ भी नही सकते थे।

वहाँ मैने एक पुस्तकालय खोला है। उसमे साहित्य तो क्या हो सकता है? एक-दो लड़कियोकी काममे ली हुई किताबे उनसे उधार ले ली। ये निकम्मी पाठ्य-पुस्तके तैयार करनेवालो के बारेमे बोलूँ, तो आपको खूब हँसा सकता हूँ और घंटो बात कर सकता हूँ। किन्तु समय नही है।

वहाँका प्रदेश महाराष्ट्री ठहरा। वहाँ गुजरातकी-सी निरक्षरता नही है, परन्तु सेगाँवमे निरक्षरता है। वहाँ मेरे पास एक एल-एल० बी० है।[2] वह कानून भूल गया है। भूलसे एल-एल० बी० हो गया। वह गुजरातका है परन्तु थोडी-सी मराठी जानता है। मैने उससे कह दिया कि लोग समझ सके, ऐसी किताबे पढाओ और उनमे से जो पढ़ाओ, उसे अपने ज्ञानसे और बढाओ। आजकलके अखबार तो है, पर वहाँके लोग उन्हे क्या समझे? उन्हे भूगोल पढाना है। वे रूसको क्या जाने? उन्हे क्या पता कि स्पेन कहाँ है? इन साढ़े तीन रुपयोकी किताबोके लिए घर ऐसा है कि बरसातमे वहाँ बैठ भी नही सकते। कोई दियासलाई डाल दे तो सुलग उठे। यह मीराबहनकी झोपड़ी थी। मीराबहन त्यागी है पर मूर्ख है। मैने उससे कहा था कि जहाँ लोग पाखाने जाते हो वहाँ तू नही रह सकती। मै तो गाँवकी सीमापर ही रह सकता हूँ। मेरे देहातमें बसने की यह शर्त है कि मुझे साफ हवा, साफ पानी और साफ भोजन मिलना चाहिए। सौभाग्यसे मै जहाँ पड़ा हूँ, उस तरफकी जमीनको लोग पाखानेके लिए इस्तेमाल नही करते। मीराबहनवाली उस

१. जमनालाल बजाज।
२. मुन्नालाल जी० शाह।

झोपड़ीमे हमने पुस्तकालय जमाया। ऐसे गाँवमे मैं लोगोको क्या पढ़कर सुनाऊँ? मुंशीका उपन्यास सुनाऊँ? श्री कृष्णलालभाईका 'कृष्ण-चरित्र' पढ़ूँ? 'कृष्ण-चरित्र' मौलिक पुस्तक नही है, अनुवाद है, फिर भी इस अनुवादको जब मैंने पढ़ा था, तब वह मुझे मीठा लगा था। मैं इसे पढ़कर खुश हुआ था। किन्तु यह हमारा दुर्भाग्य है कि मैं उनकी इस पुस्तकको भी सेगाँवमे नही चला सकता। पढे-लिखे लोग यह बात मेरे मुँहसे न सुने तो किसके मुँहसे सुनेंगे? सेगाँवसे मैं एक भी लडकेको यहाँ नही लाया। किराया दूँ तो चला आये। परन्तु यहाँ आकर क्या करे? तो भी मैं उनका प्रतिनिधि हूँ, ऐसा प्रतिनिधि जिससे न तो उन्होने इसके लिए कहा है और न चुना ही है। तो उनके प्रतिनिधिकी हैसियतसे मैं गाँवोंके लोगोके दिलका दर्द आपको सुनाता हूँ। यह सच्ची "डेमोक्रेसी" है। इन लोगोसे सीख-सीखकर मैं आपसे कहता हूँ कि सच्चा स्वराज्य चाहिए तो यहाँ आइए। आपके लिए मैं रास्ता साफ कर रहा हूँ। वहाँ काँटे तो बिछे ही हैं, परन्तु थोड़े-से गुलाब भी मैं लगा दूँगा।

जब यह बात कहता हूँ तो डीन फेरर याद आता है। वह जबरदस्त विद्वान् था। मैं मानता हूँ कि अंग्रेजीमे बड़े-बड़े विद्वान् मौजूद है। मैं अंग्रेजोके साथ लड़ूँ भले ही, परन्तु मैं गुणग्राही हूँ। मुझे किसी अंग्रेजसे या अंग्रेजी भापासे दुश्मनी थोड़े ही है! डीन फेररको लगा कि जनताके सामने मुझे ईसाका जीवन लिखकर रखना है, किन्तु वह कैसे लिखा जाये? अंग्रेजी भापामे ईसाके जितने जीवन-चरित है वे सब वह पढ़ गया, किन्तु उसे सन्तोप न हुआ। फिर वह फिलिस्तीन गया। वहाँ 'बाइबिल' ली और उसमे दिये हुए जीवन-वृत्तान्तके अनुसार सब-कुछ अपनी आँखो देख लिया। फिर उसने श्रद्धाभावमे पुस्तक लिखी। इसके लिए उसने कितनी सामग्री इकट्ठी की, कितनी मेहनत की और कितने वरसोंके बाद उसने यह पुस्तक लिखी! अंग्रेजी भाषाकी वह अद्भुत पुस्तक है। जब मैंने नेटाल छोडा, तब एक पादरीने वह मुझे पढने को दी थी। अंग्रेजी भापामे यह एक सुन्दर और सर्वमान्य पुस्तक है। इसमे जॉन्सनकी अंग्रेजी नही है। डिकन्स-जैसी सुन्दर और सरल अंग्रेजी है। यह पुस्तक आम लोगोके लिए लिखी गई है। तो क्या हमारे विद्वान् लोग 'रघुवंश' पढकर, भवभूति पढकर, और अंग्रेजी पढ़कर गाँवोमें जायेंगे? ये पुस्तके पढते-पढते इन्हे क्षय हो जाये, संग्रहणी हो जाये या ब्लड-प्रेशर हो जाये, तो भी उन्हे पढने का लोभ तो रह ही जाता है। फिर ये गाँवके लिए पुस्तके तैयार करने बैठेंगे, तो इनकी पुस्तके भी इनकी तरह रोगी ही होगी। ऐसे आदमियोंका गाँवोमे काम नही। नर्मदाशंकरने कहा है, वैसे सभी बातोंमे पूरे आदमीका वहाँ काम है। गाँवोमे थर्मस लेकर जानेवाले मेरे जैसे आदमीसे भी ज्यादा सच्चे देहातीकी तरह जाकर वहाँ रहनेवालो का काम है। वे ही वहाँके लोगोको जीता-जागता साहित्य दे सकेंगे।

रविशंकर रावल-जैसे लोग अहमदाबादमे बैठे-बैठे कूँची चलाया करते है। किन्तु गाँवोमे जाकर वे क्या करेंगे? हाँ, उनके चित्रोकी प्रदर्शनी देखकर मेरी छाती फूल गई, क्योकि पहले यहाँ ऐसे चित्र नही थे। डॉ० हरिप्रसाद मुझे आजसे पहले भी

कुछ चित्र दिखाने ले गये थे, किन्तु तबसे अब बहुत ज्यादा प्रगति हो गई है। साहित्य चित्रोके जरिये भी दिया जा सकता है। किन्तु ये चित्र दूसरे ही होते है। यहाँ तो रविशंकर रावल चित्रोमे शब्दोका ज्ञान पूरते थे। किन्तु सच्ची कला तो ऐसी होनी चाहिए कि वे चुप रहे तो भी मै उसे समझ सकूँ। मै शिक्षित होऊँ, रस्किन मैने पढा हो और फिर मै इनकी कला समझ सकूँ या ये समझाये तब समझूँ, तो इसमे कोई बडी कला नही। मुझे तो देहाती आँखसे देखना है। फिर भी मेरी छाती इनके चित्रोको देखकर फूल गई। किन्तु मुझे लगा कि चित्र ऐसे होने चाहिए जो मुझसे बोले, मेरे आगे नाचे। ऐसे चित्र दुनिया-भरमे बहुत थोडे है। रोममे पोप के सग्रहमे मैने एक मूर्ति देखी, जिसे देखकर मै अपना भान भूल गया था। यह मूर्ति 'क्राइस्ट ऑन दि क्रास' (सलीबपर ईसा)की है। यह मूर्ति देखकर मनुष्य पागल हो जाता है। इसे समझाने को रविशकर रावल मेरे पास खडे नही थे। उसे देखकर ही मै स्तब्ध हो गया था। यह तो विदेशकी बात हुई। परन्तु कुछ साल पहले मै मैसूरमे बेलूर गया था। वहाँके पुराने मन्दिरमे नग्न अवस्थामे खडी एक स्त्रीकी मूर्ति देखी थी। वह मुझे किसीने बताई नही थी, परन्तु एकदम मेरा ध्यान उधर गया और मै आकर्षित हुआ। मै नग्न अवस्थामे खडी स्त्रीका वर्णन यहाँ नही करना चाहता, किन्तु चित्रका जो भाव मैने समझा, वह बताता हूँ। उसके पैरके सामने एक बिच्छू पडा है। उसका कवि बीभत्स नही था, इसलिए स्त्रीको उसने कपडेसे कुछ ढँक दिया है। वह काले सगमरमरकी मूर्ति है। उसे देखकर ऐसा लगता है कि कोई रम्भा है, जो बेचैन हो रही है। मै उसका वर्णन अपनी देहाती शैलीमे ही करता हूँ। मै तो देखता ही रह गया। वह अपने शरीरपर के कपड़ेको झटक रही है। कलाको वाणीकी जरूरत नही होती। मुझे ऐसा लगा, साक्षात् कामदेव यहाँ बिच्छू बनकर बैठा है। उस स्त्रीके शरीरमे आग जल रही है। कविने कामदेवकी विजय होने दी है, परन्तु उस स्त्रीने आखिर अपने कपडेमे से उसे झाड़कर फेंक दिया है और उसकी जीत नही होने दी। उस स्त्रीके अग-प्रत्यगपर उसकी वेदना चित्रित है। रविशकर भले ही इसका कुछ भी अर्थ करें, किन्तु उनका वह शहरी अर्थ गलत होगा और मेरा देहाती अर्थ सच्चा।

मै क्या चाहता हूँ सो मैने कह दिया। इच्छा तो होती है कि इस चित्रमे और रग भरूँ। किन्तु जो इतने चित्रसे न समझ सके, वह कला-रसिक नही कहला सकता।

मैंने जो इतनी बडबड़ाहट की है उसके लिए मुझे माफ कीजिएगा। मेरे दिलमे आग जल रही है। इच्छा तो होती है कि अस्पष्ट खीची हुई लकीरोको मै पूरा कर दूँ, किन्तु मजबूरीसे खत्म कर देता हूँ। मुझे जो-कुछ कहना है, उसमे से थोडा ही मैने कहा। इस समय मेरा दिल रो रहा है। किन्तु मै आँखमे से आँसू कैसे निकालूँ? खूब वेदना होते हुए भी मुझे तो हँसना है। रोने के प्रसग आते है तब भी मै नही रोता। जी कडा कर लेता हूँ। परन्तु वह सेगाँव — वहाँके अस्थिपजर देखता हूँ[1]

१. यहाँ गांधीजी का गला भर आया था और वे कुछ देर के लिए रुक गये थे।

तो मुझे आपका साहित्य निकम्मा लगता है। आनन्दशंकरभाईसे मैंने सौ पुस्तकें माँगी। उन्होंने मेहनत करके मुझे भेजी भी, परन्तु मैं इन पुस्तकोंका क्या करूँ? वहाँ किस तरह ले जाऊँ?

वहाँकी स्त्रियोंको देखता हूँ, तो ऐसा लगता है कि इन स्त्रियोंका अहमदावादकी स्त्रियोंके साथ क्या सम्बन्ध है। वे स्त्रियाँ साहित्यको नहीं जानतीं, रामधुन गवाऊँ तो गा नहीं सकतीं? वे साँप-बिच्छूकी परवाह किये बिना, बरसात, ठंड या धूपका खयाल किये बिना, मेरे लिए पानी लाती हैं, घास काट लाती हैं, ईंधन ला देती हैं, और मैं उन्हें पाँच पैसे दे देता हूँ, तो वे मुझे अन्नदाता समझती हैं। वहाँ उन्हें पाँच पैसे देनेवाले अम्बालालभाई नहीं हैं। यह भारत अहमदाबादमें नहीं, सात लाख गाँवोंमें है। उन्हें आप क्या देंगे? उनमें से पाँच फीसदी ही लिख-पढ सकते हैं। मुश्किलसे सौ-दो सौ शब्दोंकी उनके पास पूँजी है। मैं जानता हूँ कि उनके पास क्या ले जाना चाहिए। किन्तु मैं आपसे कहकर क्या करूँ। कहकर बताने का मेरा विषय नहीं, जो कहकर बताऊँ। कलम तो मैंने मजबूरन पकड़ी है। उसे लाचारीमें चलाता हूँ। आज बोल रहा हूँ, सो भी परिस्थितिवश। मैं बरसोंतक नहीं बोला। मित्रोंने मुझे "डल" [मूर्ख] समझा। छोटी-सी मंडलीमें भी मैं नहीं बोल सका था। अदालतमें गया तो मुझे यह भी पता नहीं था कि "माई लॉर्ड" कहूँ या क्या कहूँ। मुझे बोलना नहीं आता था। बैरिस्टर बन गया किन्तु देहाती। इसलिए बोलना छोड़ दिया। मैंने यह सूत्र पकड़ लिया कि जितना हो सके उतना करूँ। मैं जानता हूँ कि स्वराज्यकी कुंजी मजदूरोंके पास भी नहीं है। स्वराज्यकी कुंजी तो देहातमें है। गाँव भी मैं ढूँढने नहीं गया। सत्याग्रह भी मैं ढूँढने नहीं गया था। इन गाँवोंकी कई स्त्रियाँ आकर मुझे जबरन वरती हैं। किन्तु मैं उन्हें वरूँ तो मेरा एक-पत्नीव्रत जाता है। इसलिए मैंने उन्हें माताएँ बनाया है। मैं उन्हें माताके रूपमें ही देखता हूँ और पूजता हूँ। इस माताके मन्दिरमें मैं आपको भी न्योता देता हूँ।

केशवलाल ध्रुवकी ओर देखकर :

केशवलालभाई, मैं आपको भी न्योता देता हूँ।

केशवलाल : तो साथमें उतनी आयु भी दीजिए।

यह तो तब जब मैं भी लम्बी आयु तक जिऊँ। हमारी आयुमें बहुत अन्तर कहाँ है।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २२-११-१९३६, और *हरिजन*, १४-११-१९३६

५२२. पत्र : विट्ठल ल० फड़केको

अहमदाबाद
२ नवम्बर, १९३६

चि० मामा,

जिन हरिजन भाइयोको मेरे न आने से निराशा हुई हो, उन्हे मेरा धर्मसंकट समझा देना। मेरा मन सेगाँवमे ही है। यहाँ तो मजबूरीमे ही आया हूँ। यहाँका काम निबटा कि तुरन्त सेगाँवकी ओर रवाना हो जानेवाला हूँ। कोई और अवसर भगवान् देगे तो अवश्य गोधरा आने का प्रयत्न करूँगा।

मन्दिरके निमित्त जो पैसा हरिजन भाइयोने इकट्ठा किया है, उसे बचाकर रखने मे कोई दोष नही है। हाँ, पैसा अच्छी जगह रहना चाहिए। उसका महाजनी व्याज मिलना चाहिए और उसे मूल पूँजीमे जुड़ते रहना चाहिए। मन्दिरके बारेमे मेरी सादीसे-सादी कल्पना यह है कि कोई शुद्ध हृदयका पुजारी मिल जाये और जिस स्थानपर वह प्रार्थना कराये, वही मन्दिर है। इस कल्पनामे जितने चाहो उतने रग भरे जा सकते है। मन्दिरकी इमारत बनाने मे उतावली करके पैसा खर्च नही करना चाहिए। यदि पैसे हो तो मैं ऐसा मन्दिर बनवाने मे पैसे अवश्य लगाऊँ जिसे ठाकुरद्वारे, पाठशाला, महाजनकी बैठक और धर्मशालाके रूपमे काममे लाया जा सके। बाकी हम यह तो समझते ही है कि हम सब अपने-अपने हृदयमे मन्दिर लिये घूमते है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८३७) से।

५२३. भाषण : बारहवीं गुजराती साहित्य परिषद्की समापन-बैठकमें[1]

[अहमदाबाद]
२ नवम्बर, १९३६

सर्वप्रथम तो मुझे आप सबका आभार मानना चाहिए। सामान्यतः सभापति आभार मानता ही है, किन्तु मैं रूढिका पालन करने के लिए आभार नही मानता। मैं तो आपके प्रेमके कारण यहाँ आया हूँ। मैं उतना समय भी आपको नही दे सका जितना मुझे देना चाहिए। मैंने तो निरर्थक, बिना सोचे-विचारे अलिखित

१. इस भाषणका महादेव देसाई द्वारा तैयार किया गया संक्षिप्त सार २१-११-१९३६ के हरिजनमें भी प्रकाशित हुआ था।

भाषण[1] दिया, इसलिए मुझे आपसे क्षमा माँगनी चाहिए। आपने मुझे निवाह लिया, इसके लिए मै आपका हृदयसे आभार मानता हूँ।

ऐसी बात नही कि मुझे सुन्दर निबन्ध पढना अच्छा न लगता हो। ऐसी अनेक वस्तुएँ है जिनका रस लेने की इच्छा मेरे मनमे रही है किन्तु जिसे मै तृप्त नही कर पाता। उनमे से कुछ रस सूख गये है और जो बाकी बच गये है, वे अवसर मिलते ही तबतक अपना सिर उठाते ही रहेगे जबतक मुझे "पर" के दर्शन नही हो जाते। आनन्दशकरभाईने मुझसे कहा कि यहाँ कवि-सम्मेलन हुआ था, जिसमे नवयुवकोने भी खुलकर भाग लिया था। इन्दौरके पुरातत्त्वके विषयमे जो भाषण यहाँ हुआ उसमे जाने की भी मेरी इच्छा थी। किन्तु न तो मैने वह भाषण सुना और न मै उस कवि-सम्मेलनमे गया। मेरी इन सभी त्रुटियोको आपने निवाह लिया, यदि यह आपकी उदारता नही तो और क्या है?

पुरस्कारोंके लिए दिये गये दानके बारेमे सुनकर मुझे स्कॉटलैडको विशाल पुस्तकालय भेट देनेवाले कार्नेगीकी याद आई। स्कॉटलैडके प्रोफेसरोने उनसे कहा, "यदि दान देना है तो आप पुस्तकालयका आग्रह क्यो करते है? आपको अपने व्यापारके बारेमें जानकारी हो सकती है, इस मामलेमे आप क्या जानें?" मैं भी अपने दानवीरोसे कहता हूँ कि यदि आपको ऐसा लगे कि आपके पैसोका उचित उपयोग होगा तो आप हमे बिना शर्त दान दे।

उपन्यासोकी तो आजकल बाढ आई हुई है। इन्हे पढना भी एक मुसीबत हो गई है। कुकुरमुत्तेकी तरह वे बाहर निकलते ही आते है। यदि आप यह जानना चाहे कि उपन्यास कैसे लिखा जाता है तो मै आपको बहुत-कुछ बता सकता हूँ। किन्तु सभ्य स्त्री-पुरुषोके सामने इसका चित्रण नही किया जा सकता। कल्पनाका घोडा तो किसी भी दिशामे दौड़ाया जा सकता है, क्योकि वह बेलगाम है। किन्तु हम इन उपन्यासोके बिना अपना काम चला सकते है। गुजराती भाषा उपन्यासोके बिना विधवा नही हो जायेगी। आज तो गुजराती भाषा विधवा ही है। जब मै दक्षिण आफ्रिका गया था तो अपने साथ कुछ गुजराती पुस्तके ले गया था, जिनमे टेलरका गुजराती व्याकरण भी था। वह मुझे बहुत ही अच्छा लगा था। इस बार भी परिषद्के पहले दिन कलकी रातको मैने उक्त व्याकरण पढने को निकाला था। किन्तु पढने का समय कहाँ था? इस व्याकरणका उपसहार मुझे याद रह गया है। इसमे टेलर पूछता है "गुजरातीको अपूर्ण किसने कहा? सस्कृतकी सुन्दर कन्या यह गुजराती अपूर्ण कैसे हो सकती है?" और अन्तमे उसने कहा: "यथा भाषक तथा भाषा।" यह गुजराती भाषाकी दरिद्रता नही बल्कि उक्त भाषा बोलनेवालो का दारिद्र्य गुजरातीमे दिखाई देता है। उस दारिद्र्यको उपन्यासोसे नही धोया जा सकता। 'नन्दबत्रीशी'-जैसी कुछ पुस्तके बढ जाने से हमारी भाषाका उद्धार थोड ही होनेवाला है?

१. देखिए "भाषण: गुजराती साहित्य परिषद्में", ३१-१०-१९३६।

मैं तो गाँवमें पडा हुआ हूँ, इसलिए गाँववालो की दृष्टिसे मैं आपको यह बताता हूँ कि मुझे किन पुस्तकोकी भूख है। मैंने मैट्रिकमें खगोल-विज्ञानकी पुस्तक पढ़ी, किन्तु किसीने मुझसे आकाशकी ओर देखने को नही कहा। काकासाहब ठहरे रसिक व्यक्ति, वे तो यरवडा-जेलमें रोज आकाशके तारोको देखा करते थे। मुझे लगा, ये भला रोज क्या देखते होगे? किन्तु उनके जेलसे छूटनेके बाद मैंने भी पुस्तकें मँगवाईं। मैं गुजराती पुस्तक चाहता था और एक बेकार-सी पुस्तक मुझे मिली भी। किन्तु उससे मेरी भूख कैसे मिट सकती थी? क्या हम अपने गाँववालो को खगोलकी ऐसी पुस्तक नही दे सकते जिसे वे समझ सके?

किन्तु खगोलकी बात जाने दे, उन लोगोके लायक भूगोलकी पुस्तके भी कहाँ है? सच बात तो यह है कि हमने गाँवोकी ओर ध्यान ही नही दिया। हालाँकि हम अपने अन्न-वस्त्रके लिए गाँवोपर निर्भर रहते है, किन्तु उनसे इस तरह व्यवहार करते है जैसे हम उनके अन्नदाता हो। हमने उनकी आवश्यकताओके बारेमें कभी विचार ही नही किया। क्या कोई ऐसा दरिद्र देश है जो अपनी भाषाको छोडकर परभाषाके द्वारा अपना सारा काम-काज चलाता हो? इसीलिए हमारा देश दरिद्र और हमारी भाषा विधवा बनी रही। फ्रेंच या जर्मन भाषाकी ऐसी एक भी पुस्तक नही होगी जिसका अनुवाद उसके प्रकाशित होते ही अंग्रेजीमें न हो गया हो। बालकोके लिए उत्तम पुस्तकोके सार-संक्षेप बडी तादादमे तैयार होते है। गुजरातीमें इस तरहका क्या है? यदि ऐसा हो तो मैं उसकी बलैयाँ लूँ।

मैं इस सम्बन्धमे एक प्रस्ताव लाना चाहता था, किन्तु अब तो मैं इस सुझावसे ही सन्तोष कर लूँगा। मैं अपने लेखकोसे कहता हूँ कि शहरके लोगोके लिए लिखने के बजाय अपनी मूक जनताके लिए लिखो। इस मूक जनताका स्वयंनियुक्त प्रतिनिधि मैं हूँ। उसकी ओरसे मैं आपसे कहता हूँ कि इस क्षेत्रमे कूद पडिए। आप मनोरंजक कहानियाँ लिखते होगें किन्तु उससे उसकी बुद्धिपर प्रभाव नही पड़ेगा। हमारे यहाँ एक ग्राम-सेवक विद्यालय है, जिसके अध्यापकसे मैंने कहा कि उद्योग सिखाने से पहले उसमे काम आनेवाले औजारोका अध्ययन करो, बसूलेकी बनावटको समझो। यदि आप अपनी बुद्धिको विकसित करना चाहते हो तो ग्रामीण साधनोका अध्ययन करें, उनकी खूबियों और खामियोको समझे, और फिर उनके बारेमे लिखे। जिन लोगोका दिमाग ताजा है उन्हे गाँवोमें नयी-नयी चीजे देखने और जानने को मिलेगी। ऐसी बात नही है कि गाँवोंमे जानेसे आपकी बुद्धिका विकास रुक जायेगा। जो लोग ऐसा कहते है, उनसे मैं कहूँगा कि वे अवरुद्ध मस्तिष्क लेकर ही वहाँ गये होगे। असलमे, बुद्धिके विकासका क्षेत्र गाँव ही है, न कि शहर।

कल मैंने विषय-समितिके सामने एक बात कही थी। उसके बारेमे मैं यहाँ भी कुछ कहूँगा। मुझे ज्योति संघकी ओरसे श्रीमती लीलावती देसाईका पत्र मिला था। हालाँकि उसकी भाषा मुझे नही रुची लेकिन उसका सार ठीक ही था। उक्त पत्रका भावार्थ यह था कि स्त्रियोके बारेमें जो-कुछ लिखा जाता है वह उन्हे चुभता है। आधुनिक साहित्यमे स्त्रियोका जो वर्णन मिलता है, वह विकृत है। ये बहनें चिढकर

पूछती है कि क्या ईश्वरने हमें इसलिए गढा है कि पुरुष हमारे शरीरका वर्णन करे? जब हम मर जायेंगी तो क्या आप हमारे शरीरमे मसाला लगाकर रखेंगे? यह मान बैठने की जरूरत नही कि हम खाना बनाने और बरतन माँजने के लिए सिरजी गई हैं। मुझे एक व्यक्तिने 'मनुस्मृति' मे से छाँट-छाँटकर कुछ श्लोक भेजे है। स्त्रियोंके बारेमे बुरेसे-बुरा जो कहा जा सकता है वह सब उन्होंने 'मनुस्मृति' मे से खोज निकाला है। बेचारी कुछ स्त्रियाँ स्वय भी कहती है कि हम अबला है, गँवार है, ढोर है, तो क्या इस कारण यह वर्णन हर स्त्रीपर लागू हो सकता है? क्या ऐसा नही हो सकता कि 'मनुस्मृति' मे ऐसे गन्दे श्लोक किसी अन्य व्यक्ति द्वारा मिला दिये गये हो?

अब ये बहनें पूछती है कि हम जैसी है, हमारा चित्रण वैसा ही क्यो नही किया जाता? हम न तो रम्भाएँ है, न अप्सराएँ और न गुलाम दासियाँ ही। हम भी आपकी तरह स्वतन्त्र इन्सान है। आप हमारा चित्रण पुतलियोंकी तरह क्यो करते है? स्त्रियोंके बारेमे बोलते हुए आपको अपनी माताका खयाल क्यो नही आता? एक समय ऐसा था कि मेरे पास झुण्ड-की-झुण्ड बहनें रहती थी। दक्षिण आफ्रिकामे मै कोई साठ कुटुम्बोंकी स्त्रियोंका भाई और पिता बन बैठा था। उनमें रम्भाएँ और कुरूप स्त्रियाँ भी थी। हालांकि वे स्त्रियाँ अनपढ थी किन्तु उनमे जो बहादुरी की भावना थी, उसे मैंने जगाया और वे पुरुषोंकी तरह वीरतापूर्वक जेल गई।

मै आपसे कहता हूँ कि आप अपना दृष्टिकोण बदले। मुझे बताया गया है कि आजकलके साहित्यमें तो स्त्रियोंकी स्तुति भरी हुई है। मुझे ऐसी झूठी स्तुति, उनके नेत्र, नाक, कान और अन्य अगोंका वर्णन नही चाहिए। क्या आप अपनी माताके अगोका कभी वर्णन करते है? मै तो आपसे कहता हूँ कि जब आप स्त्रीके बारेमे लिखने के लिए कलम उठाये तो अपनी जननीको अपनी नजरके सामने रखे। यदि आप इस बातका विचार करते हुए लिखेंगे तो आपकी लेखनीसे जो साहित्य निकलेगा वह, जैसे सुन्दर आकाशसे वर्षाकी बूँदे झरती है, उसी तरह निसृत होगा और जैसे वर्षाकी बूँदे धरतीका पोषण करती है, उसी प्रकार वह भी स्त्री-रूपी धरतीका माताकी तरह पोषण करेगा। किन्तु आज तो आप बेचारी स्त्रीको शान्ति और प्रोत्साहन देने के बजाय उसे कुढाते है। उस बेचारीको लगता है कि मेरा जैसा वर्णन किया जाता है वैसी तो मै नही हूँ, वैसी मै कैसे बनूँ? क्या इस तरहका वर्णन साहित्यका अपरिहार्य अग है? क्या हमें 'उपनिषद्' 'कुरान', 'बाइबिल' मे कोई अश्लील बात पढने को मिलती है? क्या हमे तुलसीदासके ग्रथोंमे ऐसी अश्लीलता नजर आती है? क्या ये महान् ग्रथ साहित्य नही है? क्या 'बाइबिल' साहित्य नही है? कहा जाता है कि अग्रेजी भाषा 'बाइबिल' के पौन भाग और शेक्सपियरके चौथाई भागसे बनी है। इनके बिना अग्रेजी भाषा कहाँ होगी, 'कुरान' के बिना अरबी कहाँ होगी और तुलसीके बिना हिन्दी कहाँ होगी? आप ऐसे साहित्यका सृजन क्यो नही करते? मैंने जो यह कहा है उसपर आप विचार करे, अभी विचार करे, और यदि वह आपको निरर्थक जान पडे तो उसे अस्वीकार कर दे।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २०-१२-१९३६

५२४. प्रश्नोत्तर[1]

सावरमती

[२ नवम्बर, १९३६][2]

प्र० : यह अस्पृश्यता दूर करनेका काम तो बहुत कठिन लगता है। इसे कैसे हल करें?

उ० : चुपचाप और धीरजके साथ काम करते जाइए। पर अच्छा तो यह होगा कि मैं आपको सुना दूं कि मैं सेगाँवमे किस तरह काम कर रहा हूँ। मैं उन्हे कभी उपदेश नही देता। बस, परिणामका खयाल किये बिना अपना काम किये जाता हूँ। सिर्फ एक शर्त है। अपने जीवनमे किसी भी रूपमे अस्पृश्यताको जरा भी स्थान न दीजिए। मैंने तो यह निश्चय कर लिया है कि जितने भी हरिजनोको अपने आसपास एकत्र कर सकूं, करूँ। वे सेवक बनकर आते है पर वे फौरन यह जान लेते है कि वे हमारे भाई है। हरिजनोके बीच भी हम किसी भेदभावको बरदाश्त नही करते। हालाँकि इस मूक सेवाका क्या परिणाम हो रहा है, इसका कोई ठोस प्रमाण मैं आपको नही दे सकता, फिर भी मैं इतना तो जरूर कह सकता हूँ कि तमाम हरिजनो और कट्टर हिन्दुओमें कोई अच्छा परिवर्तन होता साफ दिखाई दे रहा है।

प्र० : हरिजन जहाँ अपना गाँव छोड़ना चाहते हैं, वहाँ भी गाँव छोड़ना उनके लिए कोई आसान काम नही है। कवीठाकी मिसाल तो सामने है ही। उन्हें काम कहाँसे मिलेगा?

उ० मैं तो अब भी वही सलाह देता हूँ। उनसे यह कहते हुए शर्म आनी चाहिए कि आप इसी गाँवमे रहे और इसी तरह अत्याचार सहते रहे। उनके लिए काम ढूंढना हमारे लिए असम्भव तो नही होना चाहिए। अपना गाँव छोडकर जाने-वालो की सख्या बहुत बडी नही होगी।

प्र० : पर मेहतरोकी हालत बहुत-सी जगहोंमें बड़ी दयनीय है। नगरपालिकाओं से वे अपने प्राथमिक अधिकार कैसे प्राप्त करें?

उ० उन्हे सबसे पहले यह जान लेना चाहिए कि वे भी चाहे जैसी परि-स्थितिमे सेवा करनेके लिए कोई बँधे हुए नही है। नगरपालिकाएँ अगर उनकी बात नही सुनती, तो वे काम छोड सकते है लेकिन दरअसल हमे उनके बीच बसकर उन्हे उनके हितकी बाते समझानी चाहिए, आँखें मूँदकर उन्हे हडताल कर देनेके लिए नही भडकाना चाहिए। उन्हे यह मालूम हो जाना चाहिए कि उनके भी मित्र और भला चाहनेवाले कोई है। जहाँ दूसरोकी तरह उन्हे भी हडताल करनेका हक

१. महादेव देसाईके "वीकली लेटर" (साप्ताहिक पत्र) से उद्धृत। ये प्रश्न हरिजन आश्रम, साबरमतीमें पिंजाई और कताई सीखने के लिए गुजरात तथा काठियावाड़ से आये कुछ हरिजन-सेवकों ने पूछे थे।

२. तारीख गांधी : १९१५-४८ से ली गई है।

हासिल है, वही उन्हे उसकी मर्यादाएँ भी जान लेनी चाहिए। उन्हे इस बातका एहसास करा देना चाहिए कि समाजकी सेवाके दूसरे तमाम कामोकी तरह उनका काम भी प्रतिष्ठायुक्त है। मुझे तो इसमे जरा भी सन्देह नही कि समाजके वे ऐसे सेवक है जिनकी सबसे अधिक उपेक्षा होती रही है। हम उनकी जितनी भी सहायता कर सके, उसके वे पात्र है।

प्र० : हमारे आश्रमों और अन्य संस्थाओंकी शोचनीय आर्थिक अवस्थाके विषयमें आपकी क्या राय है?

उ०. हमारी आर्थिक नही, नैतिक अवस्था शोचनीय है। अभी हालमे नैतिक पतनकी जो घटनाएँ हुई है, उन्हे तो आप जानते ही है। समाजका सबसे बडा आधार तो पवित्रता है। ऐसा कोई आन्दोलन या प्रवृत्ति धनाभावमे बन्द नही हो सकती जो अपने कार्यकर्त्ताओंकी चारित्रिक शुद्धताके मजबूत पायेपर खडी हो। फिर, हम गुजरातियोको यह भी समझ लेना है कि हमे हमेशा अपने यहाँके धनवान लोगो पर ही निर्भर नही रहना चाहिए। हमे उनसे कम पैसेवालो के पास भी पहुंचना है। इतने सारे भिखारियो, मन्दिरो आदिका गुजारा मध्यवित्त, बल्कि गरीब लोगोके ही दान-दाक्षिण्यसे होता है; फिर थोडे-से अच्छे कार्यकर्त्ताओंके निर्वाहके लिए वे सहायता क्यो नही देंगे? हमे दरवाजे-दरवाजे जाकर अपनी झोली फैलानी चाहिए। लोग अन्न दे तो वही ले लेना चाहिए, ताँबेके सिक्के दे तो उन्हीको स्वीकार कर लेना चाहिए। लोग जैसा बिहार और महाराष्ट्रमे कर रहे है, आप भी वैसा ही करे। महाराष्ट्रमे पैसा-फड और मुष्टि-फंड चलता है। यह सवर्ण हिन्दुओंके बीच प्रचारका सबसे अच्छा तरीका होगा। लेकिन याद रखिए कि सब-कुछ अपने उद्देश्यके प्रति आपकी अखण्ड श्रद्धा, अपने कर्त्तव्यके प्रति परमनिष्ठा और आपके चरित्रकी शुद्धतापर निर्भर होगा। जबतक लोगोको हमारी नि.स्वार्थताका पूरा भरोसा नही होगा तबतक ऐसे कार्योके लिए वे कुछ देनेवाले नही है।

प्र० : जो हरिजन ईसाई हो गये हैं, लेकिन तब भी जिनकी अवस्था हरिजनोंसे बेहतर नही है उनके बारेमें आपका क्या कहना है?

उ० अस्पृश्यताके मिटते ही सब-कुछ अपने-आप ठीक हो जायेगा। जब अस्पृश्यता नही रहेगी तब फिर वे अपनेको हिन्दूके अतिरिक्त कुछ कहे, इसका कोई कारण ही नही रह जायेगा। यह बात मैं उनके बारेमें कह रहा हूँ जो नाम-मात्रको ही ईसाई बने है। यदि हम अपने दोष दूर कर ले तो फिर हमे ऐसी कोई चिन्ता करने की जरूरत ही नही रह जायेगी कि हरिजन अपना धर्म इस तरह बदल लेगे, मानो कोई अपना कपडा बदल रहा हो।

प्र० : यदि अस्पृश्यता-निवारणके काममें सवर्ण हिन्दुओंका सहयोग प्राप्त करना असम्भव है तो क्या ग्रामोद्योगके कार्यको हाथमें लेना ज्यादा अच्छा नही रहेगा?

उ० यह तो एक भ्रम ही है। सच मानिए कि जो लोग इस बहाने हरिजन-कार्य छोड देंगे वे ग्रामोद्योगके लिए उससे भी कम ही काम कर पायेंगे। आप गाँवमे बसकर हरिजनोकी बात न सोचे, यह असम्भव है; क्योकि वे समाजके असली आधार है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २८-११-१९३६

सामग्रीके साधन-सूत्र

गाधी स्मारक सग्रहालय, नई दिल्ली गाधी-साहित्य और गाधीजी से सम्वन्धित कागज-पत्रोका केन्द्रीय सग्रहालय तथा पुस्तकालय।

नेहरू स्मारक सग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

सावरमती सग्रहालय, अहमदावाद पुस्तकालय तथा सग्रहालय, जिसमें गाधीजी के दक्षिण आफ्रिकी तथा भारतीय कालसे सम्वन्धित कागजात रखे हैं।

'वॉम्बे क्रॉनिकल' वम्बईसे प्रकाशित अग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू' मद्राससे प्रकाशित अग्रेजी दैनिक।

'सर्चलाइट' पटनासे प्रकाशित अग्रेजी दैनिक।

'गुजराती' बम्बईसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'हरिजन' (१९३३-५६) रामचन्द्र वैद्यनाथ शास्त्री द्वारा सम्पादित तथा हरिजन सेवक सघके तत्त्वावधानमे प्रकाशित अग्रेजी साप्ताहिक, जिसका प्रथम अक गाधीजी की देखरेखमे १ फरवरी, १९३३ को पूनासे प्रकाशित हुआ था।

'हरिजनवन्धु' (१९३३-५६) चन्द्रशंकर शुक्ल द्वारा सम्पादित तथा हरिजन सेवक सघके तत्त्वावधानमे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक, जो १२ मार्च, १९३३ को पहली वार पूनासे प्रकाशित हुआ था।

'हरिजन-सेवक' (१९३३-५६) वियोगी हरि द्वारा सम्पादित तथा हरिजन सेवक सघके तत्त्वावधानमे प्रकाशित हिन्दी साप्ताहिक, जो २३ फरवरी, १९३३ को पहली वार दिल्लीसे प्रकाशित हुआ था।

'इसिडेन्ट्स ऑफ गाधीजीज लाइफ' (अग्रेजी) चन्द्रशकर शुक्ल द्वारा सम्पादित, वोरा ऐंड क० पब्लिशर्स लि०, वम्वई, १९४९।

'ए वच ऑफ ओल्ड लेटर्स' (अग्रेजी) जवाहरलाल नेहरू द्वारा सम्पादित, एशिया पब्लिशिंग हाउस, वम्वई, १९५८।

'महात्मा लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गाधी', खण्ड-४ (अग्रेजी) डी० जी० तेन्दुलकर, विट्ठलभाई के० झवेरी एव डी० जी० तेन्दुलकर, वम्वई, १९५२।

'माई डियर चाइल्ड' (अग्रेजी) एलिस एम० वार्न्ज द्वारा सम्पादित, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदावाद, १९५६।

'गीतापदार्थकोष' (गुजराती) : मोहनदास करमचन्द गांधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९३६।

'बापुना पत्रो–२. सरदार वल्लभभाईने' (गुजराती) मणिबहेन पटेल द्वारा सम्पादित, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापुना पत्रो–६ : ग० स्व० गंगाबहेनने' (गुजराती) काकासाहब कालेलकर द्वारा सम्पादित, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; १९६०।

'गांधीजी और राजस्थान' शोभनलाल गुप्ता द्वारा सम्पादित, राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि, भीलवाडा, राजस्थान, १९६९।

'बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष' हीरालाल शर्मा, ईश्वरशरण आश्रम, इलाहाबाद, १९५७।

'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद': काका कालेलकर द्वारा सम्पादित, जमनालाल बजाज ट्रस्ट, वर्धा; १९५३।

'सम्पादकके पच्चीस वर्ष' : देवीदत्त शुक्ल, कल्याण मन्दिर, इलाहाबाद, १९५६।

प्यारेलाल पेपर्स श्री प्यारेलाल, नई दिल्लीके पास सुरक्षित कागजात।

महादेवभाईकी हस्तलिखित डायरी. स्वराज्य आश्रम, बारडोलीमें सुरक्षित।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१ जून, १९३६—२ नवम्बर, १९३६)

२ जून, १९३६ बंगलोर। हरिलाल गांधीके धर्मान्तरणके सम्बन्धमे गांधीजी ने मुसलमान मित्रोके नाम अपील जारी की।

९ जून मसूरीमे अब्बास तैयबजीका निधन।

१० जून आदि-कर्नाटक संघके शिष्टमण्डलको गांधीजी ने मुलाकात दी। सायंकाल कंगेरीमे हरिजन-सेवकोके सम्मेलनमे बोले।

११ जून एम० वी० जम्बुनाथन्से मुलाकात।

१२ जून कंगेरीमे हरिजन-सेवकोके सम्मेलनमे बोले। हिन्दी प्रचार सभाकी अध्यक्षता की। बंगलोरमे विज्ञान-संस्थान देखने गये। बंगलोरसे प्रस्थान।

१३ जून वर्धा जाते हुए मद्रास पहुँचे। निर्माणाधीन हिन्दी प्रचार सभा-भवन देखने गये।

१४ जून प्रातःकाल वर्धा पहुँचे।

१६ जून सेगाँव पहुँचे।

२७ जून वर्धामे कांग्रेस कार्य-समितिकी बैठक। गांधीजी वर्धा पहुँचे, लेकिन बैठकमे शामिल नही हुए।

२९-३० जून वर्धामे जवाहरलाल नेहरूसे चर्चा।

३ जून, से ४ जुलाई वर्धामे।

५ जुलाई वर्धामे भारतीय साहित्य परिषद्की अध्यक्षता की। सायंकाल सेगाँव वापस।

१५ जुलाई रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी अध्यक्षतामे कलकत्तामे सार्वजनिक सभा, जिसमे साम्प्रदायिक निर्णयमे संशोधनका सुझाव रखा गया।

१७ जुलाई गांधीजी ने खादी-सेवकोको सन्देश दिया।

१९ जुलाई ग्राम-सेवक प्रशिक्षण विद्यालयके विद्यार्थियोसे मिले।

३० जुलाई हरिजन सेवक संघके निमित्त कोष-संग्रहके लिए जारी की गई अपीलका अनुमोदन किया।

२ अगस्त अब्दुल गफ्फार खाँ रिहा।

४ अगस्त धर्मानन्द कोसम्बी तथा अब्दुल गफ्फार खाँ गांधीजी से मिले।

११ अगस्त च० राजगोपालाचारीने कांग्रेससे त्यागपत्र दिया।

१६ अगस्त च० राजगोपालाचारी और जवाहरलाल नेहरू गांधीजी से मिले।

२७ अगस्त गांधीजी अ० भा० च० संघकी बैठकमे शामिल हुए। जवाहरलाल नेहरूसे बातचीत की।

२८ अगस्त अ० भा० च० संघकी बैठकमे शामिल हुए। च० राजगोपालाचारीसे बातचीत की।

३० अगस्त. जयप्रकाश नारायण गांधीजी से मिले। हरिलालने, जो मुसलमान बनने के बाद अब्दुल्ला कहलाते थे, इस्लामका प्रचार किया।

३१ अगस्त: गांधीजी मलेरिया-ग्रस्त।

२ सितम्बर: विश्व शान्ति सम्मेलनको सन्देश भेजा।

३-११ सितम्बर. वर्धा अस्पतालमें।

१२ सितम्बर: सेगाँव वापस।

१७ सितम्बर: नशेमें होनेके कारण मद्रासमें हरिलाल पर जुर्माना।

२१ सितम्बर. जोहरा अन्सारीके विवाहपर गांधीजी ने आशीर्वाद भेजा।

२४ सितम्बर: 'गीतापदार्थकोष' की प्रस्तावना लिखी।

३ अक्तूबर: जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल और राजेन्द्रप्रसाद गांधीजी के पास ठहरने आये।

७ अक्तूबर: अ० भा० ग्रा० संघकी बैठक।

१२ अक्तूबर: गांधीजी ने वर्धा-स्थित मगनवाडी विद्यालयके छात्रों और शिक्षकोंसे बातचीत की।

२३ अक्तूबर: सेगाँवसे बनारसको रवाना।

२४ अक्तूबर: बनारस पहुँचे।

२५ अक्तूबर: बनारसमें। भारत माता मन्दिरका उद्घाटन-समारोह सम्पन्न किया।
मैथिलीशरण गुप्तकी स्वर्ण-जयन्तीपर उन्हें अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट किया।
कला-भवन और नागरी प्रचारिणी सभा देखने गये।

२७ अक्तूबर: दिल्ली पहुँचे।
बेगम अन्सारी तथा ब्रजकृष्ण चाँदीवालाकी रुग्ण माँ से मिले।
अहमदाबादको प्रस्थान।

२८ अक्तूबर: अहमदाबाद पहुँचे।

२९ अक्तूबर: राजकोट पहुँचे। चचेरे भाई खुशालचन्द गांधीसे मिले।
हरिजन-सेवकोंकी सभामें बोले।

३० अक्तूबर. नड़ियादमें। विट्ठल कन्या विद्यालय छात्रावासके उद्घाटनके अवसरपर बोले।
अहमदाबाद पहुँचे। नगरपालिका कन्या विद्यालयके भवनका उद्घाटन किया।

३१ अक्तूबर: मजदूरोंकी सभामें बोले। कला-प्रदर्शनी देखने गये।
बारहवीं गुजराती साहित्य परिषद्की अध्यक्षता की।

१ नवम्बर. गुजरात विद्यापीठके दीक्षान्त-समारोहकी अध्यक्षता की।
गुजराती साहित्य परिषद्की बैठकमें शामिल हुए।

२ नवम्बर: बारहवीं गुजराती साहित्य परिषद्के समापन अधिवेशनमें बोले।
सेगाँव जाते हुए बड़ौदाके लिए प्रस्थान।
बड़ौदामें तैयबजी-परिवारसे मिले।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

झ

ट

ठ

ड

त

प

फ

ब

भ

म

स

ह